विज्ञान

खन्ना स्मृति अंक

मूल्य १ ०० रु० फरवरी १९६६

सम्पादक
डा० शिवगोपाल मिश्र

विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद

भारतीयता के प्रतीक खन्ना जी

आदर्श शिक्षक खन्ना जी

(१)

लखनऊ, २३-१०-६५ ई०

प्रिय महोदय,

आपका १५ अक्तूबर का पत्र प्राप्त हुआ जिसमें आपने लिखा है कि श्री हीरा लाल खन्ना जी की स्मृति में विज्ञान परिषद् की ओर से एक विशेषांक प्रकाशित किया जा रहा है। श्री खन्ना जी से मेरा सम्पर्क शिक्षक के नाते, कभी अध्यापक संगठन एवं कभी शिक्षा सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार करने हेतु निर्मित समितियों के सदस्य की हैसियत से हुआ था। श्री खन्ना जी ने शिक्षकों के समक्ष कार्य-कुशलता, लगन, नैतिकता एवं मौलिक विचारों के रूप में आदर्श उपस्थित किया है। अवकाश प्राप्त करने के पश्चात् भी जीवन पर्यन्त वह शिक्षा सम्बन्धी कार्यों में लगे रहे। विद्यार्थियों में और विद्यालयों में अनुशासन एवं नैतिकता लाने का उनका सतत प्रयास रहता था। उन्होंने इन विषयों पर अध्ययन एवं मनन भी किया था। बहुत से अध्यापकों को उन्होंने प्रेरित किया और बहुधा मार्ग-दर्शन भी करते रहे। श्री खन्ना जी के प्रति मैं अपना आदर प्रदर्शित करता हूँ और आशा करता हूँ कि अन्य शिक्षक उनसे प्रेरणा लेकर सरस्वती देवी की उसी रूप में सेवा और अर्चना करते रहेंगे जैसा खन्ना जी ने की।

कैलाश प्रकाश

शिक्षा मंत्री, उत्तर प्रदेश

(२)

पानदरीबा

लखनऊ

दिनांक नवम्बर २६-११-६५

मैं लखनऊ विश्वविद्यालय से अपनी शिक्षा पूरी नहीं करने पाया था कि राष्ट्रपिता गाँधी के नेतृत्व में अहिंसात्मक स्वातंत्र्य संघर्ष छिड़ गया जिसमें उत्तर प्रदेश से स्वर्गीय आचार्य नरेन्द्रदेव की गणना देश के अग्रणी नेताओं में थी। नरेन्द्रदेव जी राजनीतिज्ञ ही न थे, काशी विद्यापीठ के आचार्य के नाते शिक्षक थे और हिन्दी-सेवी भी। मैं नरेन्द्रदेव जी का सहयोगी राजनीति के क्षेत्र में हुआ, तो हीरालाल जी खन्ना शिक्षक होने के कारण आचार्य के सहयोगी शिक्षण और हिन्दी सेवा के क्षेत्र में हुए। यों मेरा उनसे सम्पर्क हुआ जिसका निर्वाह खन्ना जी आमरण करते रहे।

खन्ना जी सफल शिक्षक ही न थे शिक्षण संस्थाओं के निर्माता और सृष्टा भी थे। उन्होंने अपने बिश्वम्भरनाथ सनातन धर्म इन्टर कालेज का विकास तो किया ही, कानपुर में कई अन्य शिक्षालय भी उनके नेतृत्व में स्थापित हुए।

सार्वजनिक संस्थाओं के लिए भीख माँगना हम दोनों ने महामना मालवीय जी से सीखा था। हम दोनों उनके अनुयायी रहे हैं। खन्ना जी हिन्दी सेवी थे, उन्हें हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य की बहुत कमी दिखी और स्वर्गीय रामदास गौड़ को उन्होंने वैज्ञानिक साहित्य की निर्माण सेवा में रत पाया, तो वह हिन्दी सेवा के इस विशिष्ट पक्ष की ओर उन्मुख हुए। उनके ही सतत प्रयत्न से प्रयाग में विज्ञान परिषद् की स्थापना हुई, तो उचित ही है कि परिषद् की ओर से "विज्ञान" का खन्ना स्मारक अंक प्रकाशित हो। 'विज्ञान' और विज्ञान परिषद् के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ। खन्ना जी की पावन स्मृति में मेरी श्रद्धांजलि भी।

चन्द्रभानु गुप्त

(३)

नई दिल्ली
२३-१०-६५

श्री हीरालाल खन्ना उन महान जननायकों में से थे जिनका जीवन शिक्षा की उन्नति में लगा। उनके अन्तिम वर्ष हिन्दी पाठक जनता के लिए विज्ञान को लोकप्रिय बनाने में बीते। विज्ञान परिषद् उनका विशेष ऋणी है क्योंकि हिन्दी जानने वाले वैज्ञानिकों के कल्याण के लिए वे अपने अथक प्रयासों द्वारा विज्ञान परिषद् का निर्माण कर सके। कानपुर क्षेत्र तथा उत्तर प्रदेश के अन्य भागों में शिक्षा के क्षेत्र में उन्होंने जो सेवायें की हैं वे अनन्तकाल तक विस्मृत नहीं हो सकेंगी। उनकी मृत्यु के साथ राष्ट्र का एक मूक एवं लगनशील साधक जाता रहा।

केशवदेव मालवीय
सदस्य लोकसभा

(४)

रायपुर (म० प्र०)
दिनांक २७ नवम्बर, १९६५

प्रियवर,

आपका १५ अक्टूबर का पत्र मिला। खन्ना जी के निधन की बात जानकर शोक हुआ। वह हिन्दू बोर्डिङ्ग हाउस में दो वर्ष तब मेरे साथ रहे जब मैं इलाहाबाद में कालेज में पढ़ता था। उन्होंने तब से बराबर मुझे बड़े भाई का स्नेह दिया। प्रकृति से वह सौम्य थे और उनकी बहुमुखी प्रतिभा से उत्तर प्रदेश की जनता ने यथेष्ट लाभ उठाया। ईश्वर उनकी आत्मा को सद्गति दे। आशा है कि स्मारक ग्रन्थ निकालने के अतिरिक्त आप विज्ञान परिषद् भवन में कोई उनका स्थाई स्मारक स्थापित कर सकेंगे।

आपका,
बाबूराम सक्सेना
उपकुलपति, रविशंकर विश्वविद्यालय

(५)

चण्डीगढ़—२
ति० ६-११-१९६५

सुहृद्वर,

आपके १५ अक्टूबर १९६५ के कृपापत्र के अनुसार श्री हीरालाल खन्ना की स्मृति में विशेष अंक के लिये अपना एक लेख "भारतीय दर्शन में 'द्रव्य' की संकल्पना" भेजता हूँ जो साथ ही संलग्न है।

श्री हीरालाल खन्ना ने कुछ वर्ष हुए, मुझे दिल्ली में दर्शन देने की कृपा की थी। विज्ञान के लिए और विशेषतः हिन्दी संसार में विज्ञान के प्रसार के लिये उनके उत्साह से मैं बहुत प्रभावित हुआ था। किसी ने सच कहा है :—

अगर न होते सन्तजन तो जल मरता संसार।

आशा है, आप सर्वथा सकुशल होंगे।

भवदीय
सिद्धेश्वर वर्मा

स्व० हीरालाल खन्ना स्मृति अंक

जीवनी खण्ड

(संस्मरण, श्रद्धांजलियाँ एवं निबन्ध)

पूज्य खन्ना जी

डा० ब्रज मोहन, प्रिंसिपल, सेण्ट्रल हिन्दू कालिज, बनारस

(१)

आज वातावरण स्तब्ध है, कण्ठ अवरुद्ध है और जिह्वा मूक। लेखनी भी कुण्ठित हुई जा रही है। सहसा विश्वास नहीं होता कि पूज्य खन्ना जी नहीं रहे। पिछले ४० वर्ष की स्मृतियाँ दिन-रात आँखों में घूम रही हैं और भुलाये नहीं भूलतीं। यों तो खन्ना जी की अवस्था ७६ वर्ष की हो चुकी थी, और इस देश के लिये इतनी आयु को पर्याप्त ही माना जायगा, किन्तु स्वजनों के विछोह के लिये कोई कभी तैयार नहीं रहता और फिर ऐसे व्यक्ति के लिए जिसने अपने चमत्कारिक सम्पर्क से सैकड़ों युवकों का जीवन बनाया हो। मैंने तो आज तक कभी कल्पना भी नहीं की थी कि एक दिन ऐसा भी आयेगा जब गुरु जी नहीं रहेंगे और मैं उन पर पुष्पांजिल चढ़ाऊँगा।

अधिकांश स्मृतियाँ समय के चक्र में पड़कर धुँधली होती जाती हैं और अन्त में लुप्त हो जाती हैं। परन्तु कुछ स्मृतियाँ ऐसी भी होती हैं जो मानस-पटल पर सदा के लिए अंकित हो जाती हैं। एक ऐसी ही अविस्मरणीय स्मृति मेरे मानस पटल पर है। वह है मेरे पूज्य गुरु स्वर्गीय श्री हीरालाल जी खन्ना की स्मृति। आज अपने श्रद्धेय गुरु के बारे में सोचता हूँ तो मस्तिष्क समय की सीढ़ियाँ उतरते हुए ४५ वर्ष पीछे की ओर अग्रसर होता है जब मैं मुरादाबाद के स्कूल में शिक्षा प्राप्त करता था। उस समय के विद्यार्थियों का दृष्टिकोण उच्च शिक्षा के प्रति संकुचित होता था। अधिकांश विद्यार्थियों की शिक्षा स्कूल तक ही सीमित रहती थी, अतः कालेज के विषय में चर्चा भी यदा-कदा ही होती थी। स्वभावतः ही कालेज के विषय में और कालेज के प्रोफेसरों के विषय में हम लोगों के बहुत ही ऊँचे अनुमान थे। मेरे भाई ने, जिन्होंने उसी वर्ष कानपुर के डी० ए० वी० कालेज में प्रवेश लिया था, मुझे बताया कि उनके एक प्रोफेसर खन्ना जी हैं जो उनके शुभचिन्तक हैं और उन पर बड़ी कृपा-दृष्टि रखते हैं। दिल में बड़ी उत्सुकता हुई उनसे मिलने की। सौभाग्यवश सन् १९२३ में हाई स्कूल परीक्षा पास करने के पश्चात् मुझे डी० ए० वी० कालेज में प्रवेश मिल गया। प्रवेश मिलते ही सर्वप्रथम मेरी इच्छा श्री खन्ना से मिलने की हुई और प्रथम मिलन में ही दिल ने जो अपनापन उनमें पाया वह आज तक और किसी में न पा सका। सबसे अधिक तो मैं उनकी सरलता और साधारण वेशभूषा से प्रभावित हुआ। कुर्ता, धोती और पगड़ी धारण किए हुए किसी व्यक्ति का इतना महान व्यक्तित्व होगा यह तो मुझे बाद में पता चला। शनैः-शनैः उनसे मेरी घनिष्ठता बढ़ती ही गई और कुछ समय में ही यह सम्बन्ध पिता-पुत्र का सम्बन्ध हो गया। अतः इन पंक्तियों के पीछे निहित है भक्त की भावना, शिष्य का आदर, पुत्र का वात्सल्य और चालीस वर्षों से ऊपर का अटूट सम्बन्ध।

(२)

लाला हीरालाल खन्ना का जन्म रियासत रीवाँ के एक संभ्रान्त घराने में सन् १८८९ के नवम्बर मास में हुआ था। आपके पिता लाला ठाकुर दास की आय मामूली थी, अतः इनकी शिक्षा-दीक्षा का भार इनकी माता जी पर आ पड़ा। लखनऊ आकर इनकी माता जी कसीदा काढ़ कर अपना और इनका पालन-पोषण करती थीं।

बाल्यकाल में खन्ना जी बड़े 'शरीर' थे। पढ़ने-लिखने के प्रति तो इनकी रुचि थी ही नहीं। प्रायः माँ द्वारा पेट काटकर जमा किए गए पैसे फीस में न

जमा कर के उनसे चौक में चाट खा आया करते थे। इनकी शरारतों और ऊधमों से तंग आकर माँ ने इनको नाना जी के साथ रीवाँ भेज दिया। परन्तु वहाँ भी गृह-कलह के कारण इनकी शिक्षा न हो सकी। घर में प्रति-दिन ही डाट और फटकार सुनते-सुनते तंग आकर एक दिन चुपके से यह बम्बई चले गये। वहाँ पहुँच कर कुलियों का कार्य करने लगे। लगभग पन्द्रह दिनों तक कुलीगीरी करने के पश्चात् ही आप अस्वस्थ हो गए। आपकी अस्वस्थता का पता एक मारवाड़ी सेठ को चला, जो इनके पिता जी के मित्र थे। वह इन्हें अपने घर ले आए। वहाँ से सेठ जी ने आपको अम्बाले भेज दिया, जहाँ आपके बड़े भाई किसी सरकारी पद पर नियुक्त थे।

अम्बाले में आपने हाई स्कूल परीक्षा पास की। घर की आर्थिक स्थिति के कारण आपकी उच्च शिक्षा में बाधा पड़ी। उन्हीं दिनों देश के एक कोने में अकाल पड़ा और स्वर्गीय पं० मदन मोहन मालवीय ने सहायता कार्य का संघटन किया। बस, खन्ना जी भी इस संघटन में सम्मिलित हो गये। मालवीय जी आपके अकाल सम्बन्धी कार्य से बहुत से ही प्रभावित हुए। उन्होंने सोचकर कि आर्थिक कठिनाई के कारण एक प्रतिभाशाली युवक की विद्या अधूरी रह जायगी, इनके लिये एक छात्रवृत्ति का प्रबन्ध कर दिया। आपने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अपना प्रवेश करा लिया।

छात्रावास में रहकर ये ट्यूशन करके अपना काम चलाते थे। ट्यूशन के अतिरिक्त अखबार की एजेन्टी से लेकर सम्वाददाता तक का कार्य भी आपने किया। खन्ना जी ने अपने जीवन में गरीबी देखी है—परन्तु हमेशा ही उस पर विजय प्राप्त की है। अपना खर्च चलाने के लिए आपको इतने अधिक कार्य करने पड़ते थे कि पढ़ने का अवकाश ही नहीं मिल पाता था। आपका विवाह जिस समय हुआ, उस समय आप एम० एससी० के विद्यार्थी थे। परीक्षा समीप थी परन्तु पढ़ने का समय बहुत कम मिलता था। किसी प्रकार परीक्षा में सम्मिलित हुए और आशा के विपरीत उत्तीर्ण भी हो गये।

खन्ना जी की इज़्ज़त पूरा होस्टल करता था, इसलिए नहीं कि वह बहुत चमत्कारपूर्ण विद्यार्थी थे बल्कि उनके चरित्र, स्वावलंबन और व्यक्तिगत गंभीरता के कारण। वह बहुत ही दयालु और मिलनसार प्रकृति के थे।

(३)

खन्ना जी सज्जनता और उदारता का परिचय तो निम्नलिखित घटना से ही मिल जाता है। सन् १९१२ में, एम० एस सी० पास करने के बाद, इलाहाबाद के ही एक स्कूल में आप अध्यापक नियुक्त हो गए। इसी बीच आगरे के सेन्ट जान्स कालेज में गणित के प्रोफेसर का पद रिक्त हुआ। आपने भी प्रार्थनापत्र भेज दिया। परन्तु कुछ ही दिनों पश्चात् पता चला कि इनके एक मित्र भी, जो बेकार हैं, उक्त पद के प्रत्याशी हैं। इन्होंने तुरंत ही प्रिंसपल के नाम एक पत्र लिखा कि "मैं अपने उक्त मित्र के पक्ष में अपना प्रार्थनापत्र वापस लेता हूँ।" कालेज के प्रिंसिपल पर आपके पत्र का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। उसने उत्तर में लिखा कि "आपके मित्र की नियुक्ति की कोई आशा नहीं है, अत: आपकी अनुमति पर वह स्थान आपको मिल सकता है।" इस प्रकार आप सेन्ट जान्स कालेज, आगरा में नियुक्त हुए। वहाँ पर लगभग ५ वर्ष रहे। वहीं पर आपको एक पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई। सन् १९१९ ई० में डी० ए० वी० कॉलेज की स्थापना हुई। आप उसमें प्रोफेसर के पद पर सुशोभित हुए। सन् १९२० में आपकी अर्धांगिणी ने एक कन्या को जन्म दिया, किन्तु वह कन्या रूपी मणि चंचला लक्ष्मी की भाँति स्वयं तो लुप्त हो ही गई, साथ में अपनी जननी को भी लेती गई। इस प्रकार ३१ वर्ष की अवस्था में ही आप विधुर हो गए। आपकी गृहस्थी के नाम पर आपका ३ वर्ष का पुत्र था। मित्रों के सतत् अनुरोध पर भी आप अपने आदर्श पर दृढ़ रहे और पुर्नविवाह नहीं किया। पुत्र को लालन-पालन के लिए उसके मामा दिल्ली ले गए, अत: आपका सारा समय शिक्षा संबंधी कार्यों में ही लगने लगा।

(४)

सन् १९२७ में एक और परिवर्तन हुआ आपके पद में। बी० एन० एस० डी० कालेज की स्थापना हुई और आप उसके प्रिंसपल नियुक्त हुए और अवकाश प्राप्ति तक आप इसी पद को सुशोभित करते रहे। इस कालेज को उन्नति के शिखर पर पहुँचाने का श्रेय खन्ना जी को ही है। अपने सतत् परिश्रम, संचालन-क्षमता और बुद्धिमत्ता के कारण ही अपनी इस संस्था को प्रथम श्रेणी की संस्थाओं के शिखर पर पहुँचा दिया। सारे प्रान्तों में खन्ना जी और बी० एन० एस० डी० कालेज एक दूसरे से अभिन्न समझे जाते थे, यदि कोई पूछता "कौन सा बी० एन० एस० डी० कालेज" तो उत्तर मिलता "प्रिंसपल हीरालाल खन्ना वाला" और यदि कोई यह पूछता कि "कौन प्रिंसपल हीरालाल खन्ना" तो तुरंत उत्तर मिलता "बी० एन० एस० डी० कालेज वाले।"

(५)

खन्ना जी हिन्दी के प्रेमी थे। लेकिन उनका हिन्दी प्रेम कभी भी उर्दू विरोध या आंग्ल भाषा विरोध का रूप नहीं ले सका। वह उर्दू और हिन्दी में परस्पर विरोध नहीं मानते थे। उनका हिन्दी प्रेम इसलिए था कि अधिक से अधिक संख्या में जनता को उच्च और सजीव विचार मिलें। खन्ना जी का सम्बन्ध कभी भी किसी राजनैतिक पार्टी या दल से नहीं रहा। परन्तु उनका देश-प्रेम असाधारण था। हर पार्टी के लोग उनका सम्मान करते थे। साम्प्रदायिकता और संकीर्णता तो उनमें छू नहीं गई थी।

खन्ना जी की सरलता सहज ही लोगों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती थी। कभी-कभी उनकी यह सरलता आलोचना का विषय भी बन जाती थी। कुछ लोग इन्हीं तिकड़मी बताते थे। किन्तु इसमें तनिक भी तथ्य नहीं है। वह नासमझ नहीं थे। उन्हें धोखा देना भी सरल नहीं था। न तो उन्होंने कभी किसी को हानि पहुँचाई और न ही अपने लाभ के लिए चालबाजी या हथकंडे से काम लिया। छल-कपट तो कभी सीखा ही नहीं। उनके विरोधी जब हार जाते थे तो यह कह कर अपने को सांत्वना दे लिया करते थे कि खन्ना जी तिकड़मी हैं।

खन्ना जी के संयम की जितनी भी प्रशंसा की जाय, थोड़ी ही है। इसी संयम के कारण आप बिना थके प्रातः से सायं तक कार्य में रत रहते थे। आपकी कार्य क्षमता देखकर, मैं तो स्तब्ध रह जाता था। आज के युवकों को दो-चार घंटे कार्य करने के पश्चात् चाय-पान और विश्राम चाहिए, परन्तु खन्ना जी के जीवन में इनका कोई स्थान ही नहीं था। कुछ समय तक आप केवल दुग्धाहार ही करते थे। इसी प्रसंग में जिज्ञासावश मैंने पूछा "आप केवल दूध ही क्यों लेते हैं, पूरा भोजन क्यों नहीं लेते ?" आपका उत्तर था "दूध के सेवन में सबसे कम समय लगता है।" सचमुच वह समय का मूल्य समझते थे।

खन्ना जी में साहस, स्वावलंबन और स्वाभिमान का संगम था। इसके अतिरिक्त संघर्षमय जीवन में आप सदैव ही संघर्ष-प्रिय रहे। जो उनके अति निकट थे वे उनकी कोमलता और उच्चता की प्रशंसा तो करते ही थे, साथ ही साथ उनको "हीरालाल जी संघर्षी" की संज्ञा देते थे।

आपकी सरलता की ही भाँति थी आपकी व्यावहारिकता। आप सदा ही कहते थे कि "आजकल के युवकों में व्यवहार-बुद्धि की कमी होती है", जो प्रायः सत्य ही है। मैंने कई बार आपको स्वेच्छा के साथ छोटे-मोटे कार्य करते देखा है। उनकी व्यवहार कुशलता ही उनकी लोकप्रियता का एक अंग है। अपने से छोटों के साथ भी वह इतना सहज व्यवहार करते थे कि उनसे एक बार मिलने पर ही उनकी प्रशंसा किए बिना नहीं रहा जाता था।

आपकी समय-बुद्धि भी बड़ी तीव्र थी। सच ही कहा गया है 'जिसने समय का मूल्य जाना वही इस संसार में उन्नति कर सकता है।' संभवतः, इसीलिए खन्ना जी अपने नित्य के कार्य तो समाप्त कर ही लेते थे, बल्कि यथासंभव आगे के कार्य भी कर लिया करते थे। आज-कल के युवकों को उनसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। जो आज का काम कल पर छोड़ता है, वह सदैव पिछड़ा

रहता है। जिनमें समय बुद्धि की कमी रहती है, वे ही समय का पूर्ण रूप से उपयोग नहीं कर पाते। समय के सर्वोत्तम उपयोग का जीता-जागता उदाहरण है खन्ना जी का जीवन।

खन्ना जी के गुणों में एक गुण परोपकार भी था। गरीब विद्यार्थियों की सहायता, और असहाय विद्यार्थियों की सेवा तो वह अपना कर्तव्य समझते थे। आप अपने सहयोगियों और शिष्यों के शुभचिंतक थे। ऐसे प्रत्येक व्यक्ति की सहायता और उपकार आप बड़े खुले दिल से किया करते थे, जो उनके संपर्क में आ जाता था।

खन्ना जी में एक विशेष गुण और था। यह गुण है दूसरों से कार्य करा लेना। स्वयं काम करना उतना कठिन नहीं है जितना दूसरों से काम करा लेना। जो स्वयं आलसी होते हैं—वे दूसरों से कार्य ले ही नहीं सकते परन्तु जो व्यक्ति स्वयं दिन-रात कार्य में रत रहें, वही दूसरों से कार्य ले सकता है। यही कारण है कि खन्ना जी सफल शिक्षक के साथ ही साथ सफल और लोकप्रिय प्रशासक भी सिद्ध हुए।

आज भी उनकी याद आते ही उनके प्रति श्रद्धा और भक्ति से शीश झुक जाता है। परमपिता परमेश्वर से यही प्रार्थना है कि उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

स्वर्गीय हीरालाल जी खन्ना

डा० सन्तप्रसाद टण्डन, प्राध्यापक, रसायन विभाग, प्रयाग वि० वि०

सन् १९१४-१५ की बात है। मेरे सबसे बड़े भाई तीव्र मियादी ज्वर में लगभग १५ दिनों से पड़े थे। ज्वर की तीव्रता में बीच-बीच में अर्द्ध-अचेतन अवस्था हो जाती थी। मेरे पिताजी तथा मेरे प्रपितामह (पिताजी के चाचा) जो स्वयं एक अच्छे चिकित्सक थे बहुत चिन्तित थे। सब प्रकार का उपचार किया जा रहा था किंतु ज्वर की तीव्रता कम नहीं हो रही थी। एक दिन इसी ज्वर की तीव्रता में मेरे बड़े भाई अर्द्ध-अचेतन अवस्था में चिल्लाने लगे "हमारे मास्टर जी को बुलाओ।" जब हमारे भाई कई बार अर्द्ध-अचेतन अवस्था में यही दुहराते रहे कि "हमारे मास्टर जी को बुलाओ" तब घर के सब लोगों को ऐसा अनुमान हुआ कि हमारे भाई को पढ़ाने वाले कोई मास्टर स्कूल में हैं जिनका स्मरण उन्हें हो रहा है। मेरे भाई सी० ए० वी० स्कूल में उन दिनों आठवीं कक्षा में पढ़ते थे। इस स्कूल के प्रधानाचार्य हम लोगों के घर के पास ही अहियापुर मोहल्ले में रहते थे। तुरन्त उनके पास सन्देशा भेजा गया। उन्होंने पता लगा कर बतलाया कि स्कूल में एक नये मास्टर श्री हीरा लाल खन्ना रक्खे गये थे जो आठवीं कक्षा को पढ़ाते थे जिनका बच्चों से घनिष्ठ संपर्क था। यह ज्ञात होते ही श्री खन्ना जी को सूचना भेजी गई और घर में मेरे भाई को देखने के लिए आने के लिए कहा गया। श्री खन्ना जी को जैसे ही सब समाचार मिला वे हमारे घर पर आये। घर आते ही खन्ना जी ने हमारे भाई को कितना स्नेह किया और उनके गालों पर अपने हाथ रखे यह आज भी मुझे स्मरण है। खन्ना जी का हमारे घर में यह प्रथम प्रवेश था। इसके बाद जब तक हमारे भाई रोग से ग्रस्त रहे, प्रतिदिन ही खन्नाजी हमारे भाई को देखने घर आते रहे। मेरी अवस्था उस समय लगभग ५ वर्ष की थी। आज भी मुझे स्मरण है श्री खन्ना जी जब हमारे घर आते थे, तो वे घर के हम सब बच्चों से बहुत स्नेह से मिलते थे और हम सब भी शीघ्र ही उनसे हिलमिल गये थे। खन्ना जी का स्वभाव इतना स्नेहमय था कि छोटा या बड़ा जो भी उनसे एक बार मिलता था वह उन्हें अपना समझने लगता था।

जिन दिनों खन्ना जी सी० ए० वी० स्कूल में अध्यापन का कार्य करते थे वे म्योर कालेज में एम० ए० के विद्यार्थी थे और हिन्दू बोर्डिंग हाउस में रहते थे। सी० ए० वी० स्कूल में वे केवल कुछ समय के लिए ही प्रतिदिन अध्यापन करने जाते थे और इस प्रकार वे अपनी पढ़ाई का खर्च स्वयं अध्यापन कर पूरा करते थे। खन्ना जी ने ही स्वयं मुझे यह बतलाया था कि उनके पिता की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी और जब वे प्रयाग म्योर कालेज में पढ़ने आये तो उन्हें स्वयं काम कर अपनी पढ़ाई के व्यय के लिए धन-अर्जन करना पड़ा। इन्हीं दिनों कुछ समय तक उन्होंने लीडर प्रेस में भी अपनी कालेज कक्षाओं के बाद संध्या समय संपादन विभाग में कार्य किया था। वहाँ वे लीडर के संपादक श्री सी० वाई० चिन्तामणि के सम्पर्क में आये। इस प्रकार खन्ना जी ने बचपन से ही स्वावलम्बन का पाठ सीखा और इसने उनके व्यक्तित्व में एक निखार उत्पन्न किया।

खन्ना जी का मेरे भाई की बीमारी के द्वारा मेरे पिता जी से परिचय होने के बाद से उनका सम्पर्क हमारे घर से धीरे-धीरे बढ़ने लगा। मेरे पिता जी सामाजिक तथा राजनैतिक क्षेत्र में पं० मदन मोहन मालवीय के साथ उन दिनों कार्य किया करते थे। उन्हीं दिनों प्रयाग नगर तथा जिले में एक भयंकर रोग का

प्रकोप हुआ (संभवतः प्लेग) जिसमें आस-पास के गाँवों तथा नगर के लोग बहुत संख्या में मरने लगे। इस अवसर पर मालवीय जी के निर्देशन में सेवा का कार्य करने के लिए बहुत से युवक वालंटियर के रूप में आगे आये। खन्ना जी भी ने वालंटियर के रूप में इस अवसर पर कार्य किया। मेरे पिता जी के सिपुर्द इस सेवा का कार्य मालवीय जी ने कर रक्खा था और खन्ना जी इस सेवा के कार्य के कारण मेरे पिता जी के अधिक घनिष्ट सम्पर्क में आये। खन्ना जी की सेवा वृत्ति, लगन तथा कार्य-[illegible] ने मेरे पिता जी तथा मालवीय जी दोनों को ही बहुत प्रभावित किया। इसके बाद से खन्ना जी का संपर्क हमारे परिवार से इतना घनिष्ठ हो गया कि हम सब उन्हें अपने घर का ही एक व्यक्ति समझने लगे। मेरे पिता जी भी उन्हें अपने एक छोटे भाई की तरह मानने लगे। मेरे पिता जी का उन पर बहुत विश्वास था और अपने विभिन्न सार्वजनिक कार्यों में और विशेषकर शिक्षा से संबंधित कार्यों में वह खन्ना जी से परामर्श लेते थे और उन्हें साथ रखते थे।

खन्ना जी मेरे लिये पिता के तुल्य थे और मुझे उनका विशेष स्नेह प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मेरे जीवन को बनाने में उनका विशेष हाथ था। सन् १९२० के असहयोग आन्दोलन में मैंने अपने सब भाइयों के साथ स्कूल छोड़ कर कांग्रेस में कार्य करना आरंभ किया था। उन दिनों मैं छठी कक्षा का विद्यार्थी था। जब आन्दोलन समाप्त हो गया तब यह विचार किया जाने लगा कि मैं पुनः स्कूल में भर्ती हो जाऊँ। किन्तु इस बीच छठी कक्षा के बाद कोई विशेष पढ़ाई नहीं हुई थी। और पुनः कई वर्षों के बाद मेरा छठी कक्षा में भर्ती होना घर में किसी को भी रुचिकर नहीं था। मेरी अवस्था भी लगभग १४-१५ की हो गई थी। मेरे पिता जी ने यह प्रस्ताव रखा कि मैं घर पर ही पढ़कर दसवीं कक्षा की परीक्षा प्राइवेट रूप में दूँ। इसी बीच सन् १९२५ में अप्रैल में मेरे पिता जी को लाला लाजपत राय जी ने लाहौर में पंजाब नेशनल बैंक के वैतनिक मंत्री के रूप में नियुक्त कराकर बुला लिया। मैं भी उनके साथ लाहौर गया। यह निश्चय हुआ कि १९२६ की मैट्रिक की परीक्षा में पंजाब विश्वविद्यालय में मैं सम्मिलित होऊँ। एक वर्ष के भीतर मैट्रिक के सब विषयों की तैयारी करना मेरे लिए असंभव-सा कार्य लगा क्योंकि छठी कक्षा के बाद से स्कूल के सभी विषयों से मैं अनभिज्ञ था। केवल इस बीच में हिन्दी का थोड़ा अध्ययन अवश्य किया था। खन्ना जी को जब यह ज्ञात हुआ कि सन् १९२६ में मुझे मैट्रिक की परीक्षा में सम्मिलित कराने का निश्चय हमारे पिता जी ने किया है और मुझे इतने समय में इसकी तैयारी करना असंभव सा लग रहा है तो तुरन्त उन्होंने मुझे कानपुर अपने पास बुला लिया। उन दिनों कानपुर में खन्ना जी मनीराम की बगिया में एक मकान के ऊपर के हिस्से में रहते थे। उनके पुत्र श्री नन्द लाल उस समय लगभग ६-७ वर्ष के रहे होंगे। खन्ना जी की पत्नी का देहान्त कुछ वर्ष पूर्व हो चुका था। मैं १९२५ दिसम्बर में उनके पास पहुँचा। उन्होंने मुझसे पढ़ाई के सम्बन्ध में सब बातें पूँछ कर तुरन्त यह अनुमान लगा लिया कि मेरी कितनी क्षमता है और मेरा कितना अध्ययन है। उसके बाद उन्होंने मेरी पढ़ाई का विभिन्न अनुभवी अध्यापकों तथा अपने कुछ योग्य विद्यार्थियों के साथ ऐसा अच्छा प्रबन्ध कर दिया कि जो कार्य मुझे असंभव सा लग रहा था वह थोड़े ही दिनों की पढ़ाई के बाद वैसा असम्भव नहीं लगा। खन्ना जी ने स्वयं भी अंग्रेजी तथा गणित पढ़ाई। वह बाद में प्रायः कहा करते थे कि उन्होंने अंग्रेजी अपने जीवन में केवल मुझे छोड़ कर कभी किसी को नहीं पढ़ाई। गणित की मेरी पढ़ाई अच्छी हो सके इसके लिए उन्होंने अपने प्रिय विद्यार्थी डा० व्रज मोहन को भी घर बुला लिया जो मुझे गणित के अध्ययन में सहायता देने लगे। उन दिनों डा० व्रज मोहन डी० ए० वी० कालेज में बी० ए० प्रथम वर्ष के छात्र थे और खन्ना जी के प्रिय तथा श्रेष्ठ शिष्य

संभवतः १९०८ का अकाल था—सम्पादक

थे। खन्ना जी डी० ए० वी० कालेज में ही उन दिनों गणित विभाग के अध्यक्ष थे। खन्ना जी के साथ मैं लगभग तीन महीने रहा और उनकी देख-रेख में मैंने इन दिनों जो अध्ययन किया उसी के फलस्वरूप मैं मैट्रिक की परीक्षा में उत्तीर्ण हो सका।

इन तीन महीनों के बीच में खन्ना जी के आदर्शमय जीवन को बहुत निकट से देखने का मुझे अवसर मिला। उनके स्वभाव में जहाँ एक ओर मृदुता थी वहीं दूसरी ओर अनुशासन तथा नियम के सम्बन्ध में उतना ही कड़ापन था। अपने सिद्धान्त के पालन में वह बहुत दृढ़ थे। उन्हें बड़े से बड़ा व्यक्ति भी उनके सिद्धान्त से नहीं डिगा सकता था। मेरे पिता जी के लिए उनके हृदय में बड़ी श्रद्धा थी और वे उनका बड़ा आदर करते थे। सामान्य सभी बातों में वे मेरे पिता जी का आदेश मान लेते थे किन्तु जब कोई सिद्धान्त का ऐसा प्रश्न उपस्थित होता था जिसमें उनका पिता जी से मत भेद होता था तो वह बिना हिचक के अपना मत प्रकट कर देते थे और उस पर दृढ़ रहते थे।

निर्धन विद्यार्थियों के लिये उनमें बड़ी सहानुभूति थी। कितने ही निर्धन छात्रों को वे अपने पास से आर्थिक सहायता गुप्त रूप से दिया करते थे। यह कम लोगों को ज्ञात है। वे स्वयं कभी इसका प्रचार नहीं करते थे कि उन्होंने किनको और क्या सहायता की। मुझे भी अपरोक्ष रूप से ही यह सब उस समय ज्ञात हुआ था जब मैं उनके साथ रहता था। कितने ही विद्यार्थियों के जीवन को बनाने तथा ऊँचा उठाने में उनका हाथ था। उनमें एक अपूर्व शक्ति थी जिसके द्वारा वे किसी भी विद्यार्थी से थोड़ी देर बात कर यह जान लेते थे कि उस विद्यार्थी में कितनी योग्यता और क्षमता है, और विद्यार्थियों की इस सुप्त क्षमता को जाग्रत करने का मंत्र उन्हें ज्ञात था। खन्ना जी ने अपने ऐसे कई विद्यार्थियों की बातें मुझे बतलायी थीं जिनमें वे विद्यार्थी पहले अपनी कक्षाओं में बहुत साधारण थे और जब खन्ना जी ने उनकी क्षमता पहचान कर उनका मार्ग-प्रदर्शन किया तो वे अपनी परीक्षाओं में उच्च श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। इस प्रकार की शक्ति मुझे किसी अन्य व्यक्ति में देखने को नहीं मिली।

खन्ना जी में एक बड़ा गुण यह था कि जो भी उनके संपर्क में आता था उसमें वे आत्मविश्वास की भावना भर देते थे। उनकी यह धारणा थी कि अधिकांश व्यक्ति जो जीवन में सफल नहीं होते उनमें अपने प्रति आत्मविश्वास नहीं होता। इस गुण पर वे बहुत बल देते थे और सदा अपने विद्यार्थियों को प्रेरणा देते थे कि अपनी क्षमता और शक्ति पर विश्वास रखें और मन में कभी हीन भावना उत्पन्न न होने दें।

खन्ना जी में उच्च कोटि की संगठन शक्ति और कार्य-कुशलता थी। लोगों से कार्य लेना वे जानते थे। उनके संपर्क में आकर कोई भी व्यक्ति अपने काम में ढिलाई करने अथवा अपने कर्तव्य-पालन करने से विमुख होने का साहस नहीं कर सकता था। उनका इस प्रकार का प्रभाव उनके विद्यार्थियों तथा अन्य लोगों पर कोई भय के कारण नहीं था। यह उनके स्नेहमय व्यवहार का फल था। अपने विद्यार्थियों तथा सहयोगियों के साथ उनका जो स्नेहमय व्यवहार का रहता था उसके कारण सभी उनका इतना आदर करते थे कि उनकी कोई भी बात अथवा आदेश के विरुद्ध काम करने की उनमें प्रवृत्ति ही नहीं होती थी। अपने इसी गुण के कारण सभी संस्थाओं में जहाँ वे रहे उनका अनुशासन बहुत उत्तम रहा।

संगठन शक्ति के साथ-साथ उनमें बड़ी लगन थी। वे जो भी कार्य अपने हाथ में लेते थे उसे बड़ी लगन से करते थे। उनके सुपुर्द हुआ कोई कार्य असफल हो जाय ऐसा कभी हो नहीं सकता था। कानपुर का विश्वम्भरनाथ सनातन धर्म कालेज उनकी इस लगन का उदाहरण है। इस कालेज की स्थापना के समय से ही वह इसके अध्यक्ष थे। उन्होंने थोड़े ही वर्षों में अपनी परिश्रम और लगन से इस कालेज की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाया और साथ ही प्रदेश में शिक्षा के क्षेत्र में इसे एक ऊँचे स्थान पर पहुँचाया। जब तक खन्ना जी इस कालेज के अध्यक्ष रहे प्रत्येक वर्ष इसके विद्यार्थी परीक्षाओं में ऊँचा स्थान पाते रहे। उनके

कालेज की उनके समय में बहुत ऊँची प्रतिष्ठा थी। कानपुर में शिक्षा के प्रसार और उन्नति में खन्ना जी ने जो योग दिया है वह अमूल्य है। कानपुर की बहुत सी शिक्षा संस्थाओं के वे सक्रिय सदस्य थे और उन सभी संस्थाओं को बनाने में उनका बड़ा हाथ रहा है।

खन्ना जी की भारतीय संस्कृति में बड़ी आस्था थी। अपनी संस्कृति के व्यापक रूप में ही उनका विश्वास था। संकुचित भावनाओं तथा अन्धविश्वासों से वे परे थे। भारतीय संस्कृति के अनुकूल ही उनका जीवन सदा त्यागमय रहा। वे एक-पत्नीव्रत रहे। विवाह से ४-५ वर्ष बाद ही उनकी पत्नी का देहान्त हो गया था किन्तु उन्होंने अपने परिवार के लोगों के बहुत आग्रह करने पर भी पुनः विवाह करने का भी विचार नहीं किया। अपना समस्त जीवन देश और समाज की सेवा में लगाया।

उनका स्वयं का जीवन बहुत सादगी का था। उनकी अपनी आवश्यकतायें बहुत न्यून थीं, किंतु दूसरों की सहायता करने में तथा आदर-सत्कार करने में वे बहुत उदार थे। स्वयं तो केवल फल, दूध और सब्जी खाते थे किंतु अपने अतिथियों को बड़े आग्रह और प्रेम से मिष्टान्न तथा अच्छे व्यंजन खिलाते थे।

खन्ना जी यद्यपि राष्ट्रीय आन्दोलनों में कभी सक्रिय भाग नहीं लिया था पर उनके विचार बड़े राष्ट्रीय थे। वे स्वयं उर्दू के विद्यार्थी रहे थे किंतु राष्ट्र की एकता और अभिन्नता के लिए वे हिन्दी को राष्ट्र भाषा के रूप में मान्यता दिलाने के बड़े समर्थक थे। इधर बहुत वर्षों से वे अपना सब काम हिन्दी में ही करते थे।

विज्ञान परिषद् की खन्ना जी ने बड़ी ठोस सेवा की है। परिषद् का वर्त्तमान भवन उन्हीं के प्रयत्नों का फल है। विज्ञान परिषद् के वर्तमान भवन के बनने में खन्ना जी को आचार्य नरेन्द्रदेव जी से बड़ी सहायता मिली थी अतः उनकी यह कामना थी की परिषद् के भवन में एक बड़ा सभाकक्ष 'आचार्य नरेन्द्र देव'' की स्मृति बनाया जाय। इधर कई वर्षों से उनका स्वास्थ्य शिथिल हो गया था जिसके कारण वे इस कार्य को सम्पन्न कराने में बहुत प्रयत्न नहीं कर सके और उनकी यह इच्छा पूरी नहीं हो पायी। विज्ञान परिषद् का यह कर्त्तव्य है कि खन्ना जी की इस इच्छा को पूरी करे। यही खन्ना जी के प्रति सबसे पवित्र श्रद्धांजलि होगी।

श्री हीरालाल खन्ना के प्रति श्रद्धांजलि

फूलदेव सहाय वर्मा, सम्पादक, हिन्दी विश्वकोष, वाराणसी

किसी ने कहा है जीवन और मरण के बीच जो खाईं है उसको पाटने वाली दो शिलाएँ, कृति और स्मृति हैं। इन दोनों खंभों पर वह स्वर्ण-सेतु बनाता है जिसके द्वारा यशोधन सुकृतीजन कीर्ति रथ पर चढ़ कर इस पार से उस पार तक आते-जाते रहते हैं। कृति वह विभूति है जो व्यापक, सर्वजनीन होती है। स्मृति में अपनापन है, गहरापन है। किसी बिछुड़े हुए की स्मृति-माला गूँथने में मन को बड़ी तसल्ली मिलती है।

किसी अध्यापक की सफलता या असफलता इसी से जानी जाती है कि उस अध्यापक के प्रति उसके छात्रों का कैसा भाव है। इस दृष्टि से विचार करने पर इसमें जरा भी सन्देह नहीं रह जाता कि स्वर्गीय श्री हीरालाल खन्ना बड़े सफल अध्यापक थे। उनके अनेक छात्र हिंदू विश्वविद्यालय में आते रहते थे और वे सब ही खन्ना जी का नाम बड़े आदर-सत्कार और श्रद्धा से लेते थे और उनके व्यवहार, अध्यापन और विद्वता की भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे। खन्ना जी के नाम से तो मैं बहुत दिनों से परिचित था पर उनसे साक्षात्कार का अवसर विज्ञान परिषद् के ही किसी अधिवेशन में हुआ था। कब साक्षात्कार हुआ यह स्मरण नहीं है। उनसे साक्षात्कार होने पर उनके प्रति मेरी श्रद्धा बहुत बढ़ गई और उनके व्यक्तित्व से मैं बहुत प्रभावित हुआ। इस प्रकार वे हमारे अन्यन्य मित्र बन गये और जीवन पर्यंत बने रहे।

उनके निधन का समाचार पाकर हमें मर्माहत दुःख हुआ। हिंदी और विज्ञान परिषद् के प्रति उनकी श्रद्धा अटूट थी और वे पूर्णरूप से विश्वास करते थे कि विज्ञान के प्रसार से ही देश का कल्याण हो सकता है और जनता के बीच विज्ञान के प्रसार का एक मात्र साधन हिंदी के माध्यम द्वारा है। इसीलिये विज्ञान परिषद् की प्रगति में वे सदा तत्पर रहे और जीवनपर्यंत उसमें योग देते रहे। उनके अथक परिश्रम के फलस्वरूप ही विज्ञान परिषद् का अपने भवन का निर्माण हो सका और उसकी बहुत अधिक प्रगति हो सकी। उनके निधन से यह स्पष्ट है कि विज्ञान परिषद् की बड़ी क्षति हुई है और निकट भविष्य में उसकी पूर्ति का होना कठिन मालूम पड़ता है।

उनको श्रद्धांजलि अर्पित करने की सबसे अधिक महत्व का तरीका यही है कि जिस काममें वे दत्त-चित्त रहते थे उसके बढ़ावा देने में हम लोग अपना योग प्रदान करें। मुझे पूरी आशा है कि इससे उनकी आत्मा को सबसे अधिक शांति मिलेगी और सर्व-साधारण में वैज्ञानिक विषयों के प्रसार में सहायता मिलेगी। देश और समाज के उत्थान के लिये यह बहुत आवश्यक है कि विज्ञान का प्रसार जल्द से जल्द हो और यह काम हिंदी के माध्यम से ही हो सकता है।

खन्ना जी, मैं तथा विज्ञान परिषद् भवन

रामदास तिवारी, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

खन्ना जी से पहली बार मिलने का सौभाग्य मुझे जून १६३३ में प्राप्त हुआ जा जब मैं हाई स्कूल परीक्षा पास करने के बाद इण्टरमीडिएट में पढ़ना चाहता था और खन्ना जी बी० एन० एस० डी० कालेज कानपुर के प्रधानाचार्य थे। मुख्य प्रश्न आर्थिक सहायता का था परन्तु खन्ना जी से एक बार मिल लेने के पश्चात् तो किसी प्रकार की समस्या ही न रह गई। उनमे प्रथम बार ही मिलने पर मैं उनकी सादगी, प्रेम-भाव तथा दूसरों में अपनापन पैदा कर देने वाली शक्ति को देख कर दंग रह गया। इसके बाद मैं उनके यहाँ आने-जाने लगा तथा उनसे निकट का सम्बन्ध हो गया और उनकी ओर मेरी श्रद्धा दिनों-दिन बढ़ती ही गई।

जुलाई १६३५ में मैं प्रयाग आ गया और तबसे यहीं हूँ परन्तु दो वर्ष खन्ना जी के साथ रह कर वह स्नेह हो गया कि जब कभी भी खन्ना जी प्रयाग आते थे तो मुझे दर्शन देने की कृपा अवश्य करते थे। यह था मेरे ऊपर उनका प्रेम। मैं जब भी कानपुर जाता था उनका दर्शन अवश्य करता था और यदि किसी कारण से न पहुँच पाता था तो खन्ना जी इसकी बड़ी शिकायत करते थे।

वैसे तो विज्ञान परिषद् से खन्ना जी का सम्बन्ध इसके संस्थापन काल से ही रहा है। सन् १६५१ में मैं परिषद् का प्रधान मंत्री था और हम लोगों के सामने एक विशेप समस्या भवन की थी। मेरा पूर्णविश्वास था कि खन्ना जी ही एक व्यक्ति हैं जो हम लोगों के विज्ञान भवन निर्माण के स्वप्न को साकार कर सकते हैं। हम लोगों ने उनसे प्रार्थना की कि वे परिषद् के सभापति हो जावें। बड़ी कठिनता से वे तैय्यार हुये। यह उन्हीं का प्रयत्न था कि विश्वविद्यालय के अधिकारियों से सम्पर्क स्थापित करके भवन निर्माण के लिए भूमि ले सके तथा अनेक दान-दाताओं से भारत सरकार से तथा उत्तर प्रदेश सरकार से धन इकट्ठा करके भवन निर्माण कार्य का प्रारंभ करा सके। इसके शिलान्यास के लिए जवाहर लाल जी को लाने का श्रेय भी उन्हीं को है।

हमारे भवन का मुख्य भाग तो तैयार हो गया है, हाल की दीवारें भी १२-१३ फीट नींव से ऊपर जा चुकी हैं परन्तु हाल अधूरा पड़ा है। खन्ना जी अपने अंतिम दिन तक इसे पूरा कराने में प्रयत्नशील रहे तथा लोगों से मिलते रहे पर हमें महान दुख है कि यह उनके जीवनकाल में न पूरा हो सका। लगभग पचास हजार रुपये का खर्च है इसे पूरा करने में।

आज खन्ना जी नहीं हैं। हम सब का कर्तव्य हो जाता है कि हम उनके छोड़े हुये उस अधूरे काम को पूरा करने में प्रयत्नशील हों। यही खन्ना जी के लिये हम लोगों की सबसे बड़ी श्रद्धांजलि होगी और इसमे उनकी आत्मा को शान्ति मिलेगी। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह हम सब को प्रेरणा दे कि हम लोग इस कार्य को पूरा करने में समर्थ हो सकें।

श्रद्धा के सुमन

डा० शिवगोपाल मिश्र

स्वर्गीय खन्ना जी से मेरा परिचय विज्ञान परिषद् में मेरे प्रवेश करने के साथ-साथ हुआ। यह सन् १९५७-५८ था।

श्री खन्ना जी स्वर्गीय पं० जवाहर लाल नेहरू के करकमलों द्वारा विज्ञान परिषद् भवन का औपचारिक शिलान्यास इससे एक वर्ष पूर्व करा चुके थे। भवन पूर्णतः तैयार हो चुका था। मुझसे "विज्ञान" और "अनुसन्धान पत्रिका" की प्रकाशन व्यवस्था के सम्बन्ध में कहा गया था। मैं उसी के पालन के उद्देश्य से परिषद् भवन आता जाता था।

मुझे पूर्णतः स्मरण है गौर वर्ण के उस पुरुष की जिसके बाल ही नहीं वरन् आँख की बरौनियाँ भी श्वेत हो चुकी थीं। पगड़ी बाँधे, हाथ में बेंत लिए, आँखों में चश्मा लगाये। जेब घड़ी का काला फीता कुर्ते के ऊपर लटक रहा था। एक छोटे सा परिचय देने के बाद मैं अपनी कुर्सी से हट कर खड़ा हो गया। खन्ना जी कुछ लोच के साथ बोले जा रहे थे—"तुम लोग कुछ भी तो नहीं करते हो। चलो मेरे साथ। अभी आचार्य नरेन्द्र देव हाल बनना है। अकेले मैंने तमाम धन एकत्र किया। प्रयाग वाले हैं कि वादा देकर चन्दा नहीं देते।...अमुक-अमुक से...इतना इतना चाहिए।"

शायद मैं उनकी इन बातों से उतना प्रभावित नहीं हुआ जितना यह समझ लेने में कि आखिर परिषद् के प्रति इनमें अभिरुचि कैसी जगी होगी!! मैं एक लम्बे अर्से तक यह नहीं जान पाया कि खन्ना जी गणित के अध्यापक थे और उनका सम्पर्क पं० मदनमोहन मालवीय, आचार्य नरेन्द्र देव तथा राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन जैसी विभूतियों से था। किन्तु भीतर ही भीतर उनकी समय की पाबन्दी तथा कार्यतत्परता से प्रभावित होता रहा।

बाद में मैं देखता रहा कि श्री खन्ना जी परिषद् के उपाध्यक्ष के रूप में समय निकालकर परिषद् की बैठकों में सम्मिलित होने के लिए कानपुर से अपनी मोटर में आते। जितनी भी देर तक बैठक चलती, वे बड़े मनोयोग से परिषद् की विभिन्न समस्याओं को सुनते। कई बार उन्होंने चन्दा इकट्ठा करके परिषद् भवन के अधूरे हाल को पूरा करने के लिए तत्परता दिखाई किन्तु ईश्वरीय विधान, कि दिन प्रति दिन वे परिषद् से दूर होते गये। जब प्रदेश के मुख्यमन्त्री श्री चन्द्रभानु गुप्त परिषद् के वार्षिक उत्सव में विशेष अतिथि के रूप में बुलाये गये तो खन्ना जी ने ही उनसे परिषद् भवन की पूर्ति के लिए २० हजार रुपये की माँग प्रस्तुत की थी जिसे गुप्त जी ने सहर्ष स्वीकार किया था।

इधर तीन-चार वर्षों में खन्ना जी का परिषद् में आना बहुत कम हो पाया था किन्तु जब-जब परिषद् के समक्ष आर्थिक कठिनाइयाँ आईं तो उन्होंने केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकार के पास प्रतिनिधि मंडल ले जाने की सलाह दी और कई बार स्वयं भी अधिकारियों से मिले।

खन्ना जी की प्रबल इच्छा थी कि विज्ञान परिषद् में लोकोपयोगी विज्ञान सम्बन्धी सभायें एवं वक्तृतायें आयोजित हों। परिषद् के प्रकाशनों की व्यवस्था के सम्बन्ध में भी उनके सुझाव लाभदायक सिद्ध हुए।

वे जिस अपनत्व एवं आदेश के स्वर में अपने विचार प्रकट करते थे वह प्रिय न लगने वाला होकर भी गहराई लिए होता था। वे सभी बातें अत्यन्त व्यावहारिक दृष्टि से करते थे। बात के लिए शायद ही कभी बात किये हों। छड़ी हिलाकर और अँगुली दिखलाकर उनकी बात करने की शैली अनूठी थी।

अन्य कार्यों में व्यस्त रहने, प्रयाग से दूर होने तथा परिषद् के लिए बनाये गये स्वप्नों को पूरा न होते देखकर ही खन्ना जी अपने अन्तिम दिनों में हम सबों के साथ उतनी तन्मयता का अनुभव नहीं कर पाते थे। मैं तो कुछ मुँह-लगे स्वर में उन्हें विश्वास दिलाता था, "आपका भय वृथा है, हम लोग अपनी बुद्धि द्वारा परिषद् की यथा शक्ति सेवा करते रहेंगे। हाँ आर्थिक मामलों का भार आप गुरुजनों पर है। आप नवयुवकों से निराश न हों।" उनकी मन्द-मन्द हँसी ओठों के बीच में ही रह जाती थी। ●●

कर्मनिष्ठ श्री हीरालाल खन्ना जी और परिषद् भवन

डा० सत्य प्रकाश

अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में श्री हीरालाल खन्ना जी ने मृत्यु से होड़ ली। आश्चर्य यह है कि विषम रोगों के घोर आक्रमण के अनन्तर वे इतने दिनों किस प्रकार संघर्ष कर सके। वे आशावादी थे, संयमी थे, भीरुता से बिल्कुल परे, और परम कर्मठ और उनकी कर्मनिष्ठा ही उनके जर्जर शरीर में युवकों की सी स्फूर्ति ला देती थी। मेरी और उनकी आयु में १२ वर्ष के लगभग का अन्तर रहा। मैं उनसे छोटा और वे मुझसे बड़े, किन्तु जिस तत्परता से वह चलते-फिरते और छोटे-बड़ों के साथ शिष्टाचार बर्तते थे, वह उनकी निजी विशेषता थी। प्रत्येक नगर में न जाने कितने परिवार होंगे जिन्होंने उनकी आत्मीयता का स्नेह प्राप्त किया, और मैं भी अपने को उनके उसी स्नेहमय परिवार का अंग समझता रहा हूँ। परिवार के छोटे से छोटे बच्चे के प्रति भी उनका बच्चों का सा स्नेह भाव, परिवार की पतोहुओं और वधुओं के प्रति भी उनका अपनापन, और उसी परिवार के वृद्ध अग्रणियों के प्रति उनका शिष्ट आदरपूर्ण आचरण ये सब ऐसी बातें थीं, जो खन्ना जी के निधन के बाद पावन स्मृतियाँ रह गयी हैं।

मैं नहीं कह सकता कि खन्ना जी से मेरा पहला सम्पर्क कब कैसे कहाँ हुआ, और न मैं यह कह सकता हूँ, कि यह स्नेह कब घनिष्टता में परिणत हो गया। वे आयु में मेरे और मेरे पिता जी के बीच में थे। मेरे पिता जी श्रद्धेय टण्डन जी से एक वर्ष बड़े हैं। शिक्षा संस्थाओं में मेरे पिता जी ने भी कार्य किया। सम्भव है, इस सम्बन्ध में मेरा प्रथम परिचय खन्ना जी से हुआ हो। श्रद्धेय टंडन जी का परिवार तो एक प्रकार से खन्ना जी का ही परिवार रहा है, और इस परिवार का भी स्नेह मैंने पाया, और बहुत सम्भव है, कि मेरा सम्पर्क खन्ना जी से इसी परिवार के साथ हुआ हो। हिन्दी साहित्य सम्मेलन और प्रयाग विश्वविद्यालय इन संस्थाओं में भी मेरी और खन्ना जी की घनिष्ठता बढ़ी, और विज्ञान परिषद् के क्षेत्र में तो मैं खन्ना जी के कार्य करने की अद्भुत पद्धति से परिचित हो गया।

कार्य्य-पद्धति की दृष्टि से खन्ना जी मालवीय जी और टण्डन जी की परम्परा के व्यक्ति थे। मालवीय जी की परम्परा में उन्होंने यह बात सीखी कि प्रत्येक कार्य को विशाल रूप से हाथ में लेना, और इस बात की तनिक भी चिन्ता न करना कि रुपया आवेगा कहाँ से। दो दो-चार चार रुपये इकट्ठा करके झोली भरना उनकी शैली में कोई अर्थ न रखता था। लोगों के जेबों से १०१), ५०१) या १००१) निकलवा लेना उनकी कला थी। यही कारण है कि वे अपने छोटे से कार्य्य-काल में इतनी संस्थाओं को खड़ा कर पाये। उन्होंने अपने छात्रों और शिष्यों को स्नेह ही नहीं किया, न जाने कितने दीन अर्थपीड़ित शिष्यों के जीवन में वे वरदान बन गए, और उनकी सहज प्रेरणा से वे आगे चलकर सम्पन्न गृहस्थ बन सके। मैंने देखा कि ये शिष्य खन्ना जी का कितना आदर करते रहे, और खन्ना जी के सार्वजनिक कार्य्यों में इन शिष्यों ने खन्ना जी के कहने को कभी टाला नहीं। इन शिष्यों की जाल के समान बिखरी हुई शृंखला ने खन्ना जी की आयोजनाओं में अच्छी सहायता पहुँचायी।

खन्ना जी ने कानपुर की कई संस्थाओं में कार्य किया, और मुझे तो उनके कार्य्य कौशल का परिचय तब हुआ जब उन्होंने विज्ञान परिषद् भवन की आयोजना अपने हाथ में ली। आज से लगभग चालीस वर्ष पूर्व विज्ञान परिषद् ने एक छोटी सी जमीन अपने भवन के लिए थोड़े से मूल्य पर क्रास्थवेट रोड पर हिन्दी साहित्य

सम्मेलन भवन के निकट ली थी, और पीछे की ओर दो छोटे से कमरे प्रकाशित पुस्तकों और "विज्ञान" की फाइलों को रखने के लिए बनवाये थे। श्री प्रो० सालिगराम भार्गव और प्रो० ब्रजराज के निवास-स्थान इस स्थली के निकट थे, और ये दोनों सज्जन परिषद् का कार्य संभालते थे। मेरे पिता जी ने भी इसी के निकट अपना घर बनवाया था। बाद को प्रो० सालिगराम भार्गव ने अपना मकान प्रयाग स्टेशन के निकट बनवा लिया, डा० गोरख प्रसाद जी ने बेली रोड पर मकान बनवाया और वे परिषद् के प्रधान मंत्री बन गए। मैंने भी अपना मकान बेली रोड पर बनाया, और परिषद् का कार्य्य धीरे-धीरे मेरे और डा० गोरख प्रसाद जी के हाथों में आ गया। स्पष्ट है कि क्रास्थवेट रोड वाले मकान में परिषद् का कार्य्यालय रखने में बड़ी असुविधाएँ थीं। परिषद् के कार्यकर्त्ता तो विशेषतया यूनिवर्सिटी के विज्ञान-विभागों में कार्य करने वाले अध्यापक थे। अत: सब की इच्छा थी कि प्रयाग विश्वविद्यालय के निकट परिषद् का कोई भवन हो जाय। क्रास्थवेट रोड वाली जमीन और कमरे हम लोगों ने बेच दिए और उससे सात-आठ हजार जो रुपया मिला उसे स्थायी निधि के रूप में बैंक में जमा कर दिया। श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव सरकारी नौकरी से अवकाश ग्रहण कर चुके थे, वे परिषद् के प्रधान मंत्री बने। उन्होंने टैगोर टाउन में अपना मकान बनवा लिया था, और उनके मकान के एक कमरे में ही परिषद् की सम्पत्ति रख दी गयी। स्पष्ट है कि इस प्रबन्ध से कुछ दिनों के लिए परिषद् ला-मकाँ हो गया। जिन दिनों क्रास्थवेट रोड की जमीन पर अपने कमरे थे, उन दिनों भी परिषद् का वास्तविक कार्यालय डा० गोरख प्रसाद का निजी घर बन गया था। वहीं पुस्तकों का छोटा सा स्टॉक रखते और वहीं से विज्ञान-पत्रिका डिस्पैच होती। अब यह कार्य श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव के घर से होने लगा।

इन दीन परिस्थितियों में हम लोगों ने खन्ना जी का सहयोग प्राप्त किया। खन्ना जी उन पुराने व्यक्तियों में से थे, जिन्होंने परिषद् के प्रारम्भिक दिनों से ही इस संस्था के कामों में थोड़ी-बहुत रुचि ली। खन्ना जी गणित में एम० एस-सी० थे, जस्टिस हरिश्चन्द्र जी के सहपाठी। कानपुर में डी० ए० वी० कालेज में उन्होंने गणित पढ़ायी, और गणित के विद्यार्थी होने के नाते विज्ञान में उनकी रुचि थी। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने जब अपने वार्षिक समारोहों का कार्य विभिन्न गोष्ठियों में (परिषदों में) बाँटने की परम्परा का आरम्भ किया, तो पहली विज्ञान-परिषद् के अध्यक्ष हीरालाल खन्ना जी ही थे और उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में वैज्ञानिक साहित्य के प्रवर्धन की ओर अच्छा संकेत किया था। अस्तु, परिषद् भाग्यशाली रहा, कि उसे खन्ना जी का सहयोग प्राप्त हो गया। हम लोग इससे पूर्व इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट और नगरपालिका से अनुरोध कर रहे थे, कि हमें परिषद् भवन के लिए यूनिवर्सिटी के निकट नया कटरा, ममफोर्डगंज कहीं भी कोई छोटी सी ज़मीन मिल जाय जहाँ छोटा-सा हम मकान बनवा लें। मेरे मित्र श्री विश्वम्भरनाथ पांडे जी इन दिनों इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट में अधिकारी थे और वस्तुत: उनकी कृपा से कोई एक भूमि हमारे लिए अंकित भी हो गयी। किन्तु खन्ना जी के आते ही, यह कार्य नये ढंग से आरम्भ हुआ। खन्ना जी प्रयाग विश्वविद्यालय की कुछ समितियों के सदस्य थे। यहाँ के रजिस्ट्रार श्री कन्हैया लाल गोविल से उनकी आत्मीयता थी। प्रो० ए० सी० बनर्जी उन दिनों विश्वविद्यालय के वाइसचैन्सलर हो गए थे, और वे हमारी सहायता के लिए तैयार थे, अगर कोई वैधानिक स्वरूप इस कार्य के निमित्त निकल सके। प्रयाग हाईकोर्ट के जस्टिस विन्ध्यवासिनी प्रसाद जी यूनिवर्सिटी की प्रबन्ध-कर्तृणी सभा के सदस्य थे। खन्ना जी ने बड़ी कुशलता से इन सब लोगों का सहयोग प्राप्त किया। विज्ञान-परिषद् प्रयाग अखिल भारतीय सार्वजनिक संस्था है। विश्वविद्यालय किन शर्तों पर इस भवन बनाने के लिए अपनी भूमि देवे, यह प्रश्न था। मैंने यूनिवर्सिटी को लिखा कि जिस प्रकार हिन्दी भवन विश्वविद्यालय की भूमि पर बन रहा है, उसी प्रकार वैज्ञानिक साहित्य के सृजन के लिए विश्वविद्यालय म्योर कालेज की भूमि पर कोई भवन बनावे, तो उसके निमित्त मैं १०००) दूँगा। विश्वविद्या-

लय की प्रबन्धकर्तृणी सभा के सामने ये सब बातें आयीं और खन्ना जी के अथक प्रयास और जस्टिस श्री विन्ध्य वासिनी प्रसाद जी की सूझ-बूझ से मार्ग निकाला गया, और विश्वविद्यालय और परिषद् के बीच में एक स्वीकृति पत्र बना, जिसके अनुसार परिषद् को वह भूमि मिल सकी, जिस पर हमारा भव्यभवन इस समय खड़ा हुआ है।

भूमि तो मिल गयी, अब भवन बनाने की बात आयी। हम छोटे लोग तो स्वप्न भी छोटा सा ही देखते हैं। पूँजी हमारे पास न थी। मेरी कल्पना तो छोटा सा भवन बना लेने की थी, पर खन्ना जी बड़े व्यक्तियों में से थे, और उनके मन में जो स्वप्न था, वह था परिषद् के भव्य भवन का। वे परिषद् के अध्यक्ष इन दिनों थे, और जब तक परिषद् का भवन ऊपर न आ जावे, हम लोग उनको छोड़ने वाले भी न थे। परिषद् के संविधान में हम किसी को लगातार तीन वर्ष से अधिक अध्यक्षीय पद पर नहीं रख सकते पर खन्ना जी के सम्बन्ध में संविधान को मूक रह जाना पड़ा। वे सन् १९५१ से १९५६ तक परिषद् के अध्यक्ष रहे।

परिषद्-भवन के निर्माण के लिए रुपया कहाँ से आवे, भवन किस प्रकार से बने, यह सब विस्तार खन्ना जी के ऊपर छोड़ दिए गए। उत्तर प्रदेश के रिटायर्ड चीफ इंजीनियर श्री कुँवर बलवीर सिंह जी जो प्रयाग के रहने लगे थे, खन्ना जी ने इनका सहयोग प्राप्त किया। कुँवर बलवीर सिंह जी का देहावसान अभी थोड़े दिनों हुए अकस्मात् हो गया। परिषद् उनका बहुत ही ऋणी है। उनके निरीक्षण में जो भवन ७०-८० हजार रुपये में बना, अन्यथा लाख-सवा लाख रुपये से कम में न बन पाता। खन्ना जी को इनके कौशल-परामर्श पर पूरा भरोसा था। कुँवर बलवीर सिंह और उनकी सहकारिता में श्री सन्तोष कुमार मुकर्जी इंजीनियर—इन दोनों का भवन-निर्माण में परिषद् ऋणी है।

खन्ना जी ने परिषद्-निर्माण के सम्बन्ध में देश में एक वातावरण तैयार किया। देश के प्रमुख गण्यमान प्रतिष्ठित व्यक्तियों से परिषद् की अपील पर हस्ताक्षर कराये। सबसे पहला अनुदान हमें केन्द्रीय शासन के शिक्षा विभाग से मिला। खन्ना जी ने कहाँ-कहाँ से रुपया प्राप्त किया, यह गिनाने की आवश्यकता क्या! उत्तर प्रदेशीय शासन ने, जब आदरणीय श्री चन्द्रभानु गुप्त जी मुख्य मंत्री थे, भी हमारी अच्छी आर्थिक सहायता की।

प्रयाग विश्वविद्यालय की भूमि पर भवन बनने का कार्य आरम्भ हो गया। इन दिनों परिषद् का कार्यालय स्व० श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव के घर से हटा कर हम लोग विश्वविद्यालय के रसायन विभाग के एक नवनिर्मित कमरे में ले आये थे। इच्छा थी कि शीघ्रता से भवन तैयार हो जाय, तो हमारा काम चले। भूमि पर पीछे की ओर नौकरों के रहने के कमरे और मोटर-गराज तैयार हुआ। पर खन्ना जी का स्वप्न तो विशाल भवन खड़ा करने का था, और कार्य का आरम्भ "पाताल खण्ड" (विशद तहखाने) से हुआ।

खन्ना जी के परम मित्रों में से आचार्य नरेन्द्र देव जी थे। मैं जानता हूँ कि अनेक परिवारों का सम्बन्ध खन्ना जी से आत्मीयों की भाँति था। आचार्य नरेन्द्र देव जी और श्री केसकर जी इन्हीं में से थे। आचार्य नरेन्द्रदेव जी के प्रति आदर और स्नेह की भावना देश के सभी लोगों की रही, चाहे वे किसी भी दल के सदस्य क्यों न हों। उनकी विद्वत्ता, चरित्रनिष्ठा और तपस्या अनुकरणीय थी। आचार्य देव जी परिषद् के कार्यों से परिचित थे, और वे चाहते थे कि परिषद् के सदुद्देश्यों की पूर्ति हो। खन्ना जी ने आचार्य नरेन्द्र देव जी का सहारा लिया। आचार्य जी ने परिषद के कार्यों की ओर श्री जवाहर लाल नेहरू जी का ध्यान आकर्षित किया, और उनसे उन्होंने वचन ले लिया कि परिषद् भवन के शिलान्यास की औपचारिकता वे पूरी करेंगे। नेहरू जी का कहना था कि जब तक भवन निर्माण कुछ संपन्न न हो जाय, आधार शिला की औपचारिकता से कुछ लाभ नहीं, क्योंकि न जाने कितनी आधार शिलाएँ उनसे ऐसी रखवा दी जा चुकीं, जहाँ

भवन बने ही नहीं। अस्तु, भवन-निर्माण का कार्य आगे चलने लगा, और नेहरू जी को शिलान्यास की औपचारिकता के लिए आग्रह भी जारी रहा। इसी बीच आचार्य नरेन्द्र देव जी की सहसा मृत्यु हो गयी। जिसका हम लोगों ने नेहरू जी को लाने का सहारा ढूँढा था, वही न रहा, तो कुछ निराशा सी हुई। खन्ना जी ने नेहरू जी को समयानुसार स्मरण दिलाया। नेहरू जी का यह बड़प्पन था, कि उन्होंने कहा, "मैंने नरेन्द्रदेव जी को वचन दिया था, मुझे याद है, और उनकी बात मैं टाल नहीं सकता। मैं अवश्य परिषद् के शिलान्यास का काम पूरा करूँगा।" श्री लाल बहादुर जी आज हमारे बीच नहीं हैं, तो क्या! उनके सतत सहयोग से हमें वह दिन देखने को मिला जब नेहरू जी ने प्रयाग नगरी में विज्ञान परिषद् भवन के शिलान्यास की औपचारिकता को ४ अप्रैल सन् १६५६ को पूरा किया। प्रयाग विश्वविद्यालय की भूमि पर जे० के० ट्रस्ट (कानपुर के जुग्गीलाल कमलापति ट्रस्ट) की ओर से उद्योग भौतिकी की प्रयोगशाला का उद्घाटन भी नेहरू जी ने इसी दिन किया था। दोनों औपचारिकताएँ एक साथ एक शामियाने में की गयी थीं, और खन्ना जी को इस बात का सदा गर्व रहा कि नेहरू जी ने परिषद् के शिलान्यास को अपने भाषण में अधिक महत्ता दी।

परिषद् के भवन निर्माण की यह छोटी सी कहानी है। भवन हमारा अब भी पूर्ण नहीं है। श्री लाल बहादुर शास्त्री का स्नेह हमें प्राप्त हुआ था, और उन्होंने हमें आश्वासन दिया था, कि इसके लिए हमें केन्द्रीय शासन से सहायता मिल जायगी। इस वर्ष हमें सहायता अवश्य मिल जाती, किन्तु पाकिस्तान का युद्ध छिड़ गया। और अब तो श्री लाल बहादुर जी भी हमें छोड़ गए। आगे क्या होगा! न खन्ना जी हैं, न आचार्य नरेन्द्र देव जी, न नेहरू जी और न लाल बहादुर जी। इनके वरद आशीर्वचन हमारे सहायक हैं, और हमें भरोसा है ईश्वर का। इन सबकी याद हमें रह-रहकर आती है। ईश्वर सब का मंगल करे। इनके दुःखी परिवारों को आश्वस्त करे।

●●
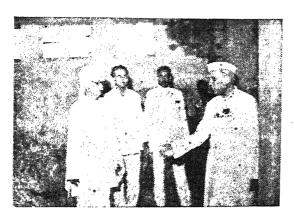
नेहरू जी को परिषद् का तहखाना दिखाते
हुए खन्ना जी

खन्ना जी, परिषद् भवन के शिलान्यास के
अवसर पर स्वागत भाषण पढ़ते हुए

विज्ञान परिषद भवन का शिलान्यास ४-४-१९६५
(खन्ना जी पं० जवाहरलाल नेहरू के साथ)

जीवन-मधु

संकलित

●हिन्दी साहित्य सम्मेलन के संस्थापक राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन सम्मेलन के शिक्षा-संस्कार विषयक कार्य में खन्ना जी को सदैव अपना दाहिना हाथ मानते रहे। सन् १९१० के प्रथम सम्मेलन से लेकर लगभग १९४०-४२ तक आचार्य खन्ना जी का किसी न किसी रूप में हिन्दी साहित्य सम्मेलन से बराबर सम्बन्ध रहा। सम्मेलन की विज्ञान-परिषद् के एक या दो बार सभापति भी हुए।

● ●शिक्षण-संस्थाओं और पुस्तकालयों के द्वारा शिक्षा-प्रचार और ज्ञान वृद्धि—बस यही खन्ना जी के जीवन का व्रत रहा।

● ● ●केवल अध्ययन और अध्यापन के ही रूप में नहीं, सैकड़ों संस्थाओं में शिक्षा और संस्कार का प्राण फूँकना खन्ना जी के जीवन का व्रत रहा है।

●आचार्य खन्ना जी को अपना मिशन प्यारा था। वही उनका भगवान था और उसी के वे भक्त थे। उसी में उनको भगवान दीखता था।

● ●मनुष्य-प्रकृति की अच्छी परख थी। जो मनुष्य जिस तरह से माने उसे उसी तरह से मनाओ और अपना उद्दिष्ट कार्य निकालो।

● ● ●आचार्य खन्ना कभी किसी प्रकार की गुटबन्दी में नहीं पड़े। आपके विचारों से जिसको फायदा हो वह उठा लेवे। हाँ शर्त यह थी कि कमेटी के कार्य और आपके शिक्षा-संस्कार व्रत को हानि न हो।

●चंदा माँगने में वे कभी चूकते न थे। यहाँ तक कि अपने पुत्र से भी चंदा माँगते थे।

माँगने की कला में वे निपुण थे।

● ●संस्था प्रधान और व्यक्ति गौण है—यह उनकी शासन-पद्धति थी। उन्होंने व्यक्ति की ओर कम और संस्था की ओर अधिक देखा। इससे उनके शत्रु बढ़े। निकट से निकट व्यक्ति का साहस न होता था कि उनके समक्ष संस्था के आदर्श को ढीली करनेवाली कार्यसाधना का कोई प्रस्ताव रख सके।

● ● ●खन्ना जी अंतरात्मा से देशसेवक एवं राष्ट्र भक्त थे। उन्होंने कई महीनों तक चंद्रशेखर आजाद को गुप्त रूप से कानपुर स्थित अपने घर में रखा था। सन् १९४२ के आन्दोलन में भी उन्होंने उल्लेखनीय कार्य किये थे। स्कूल और कालेज के प्रत्येक छात्र को व्यक्तिगत रूप से जानना खन्ना जी की विशेषता था। वे उनसे सहानुभूतिपूर्ण वर्ताव और उसके प्रति वात्सल्य प्रेम रखते थे। अनुशासन उनके हृदयों पर रहता था। वह कृत्रिम नहीं होता था।

● ● ●खन्ना जी के कालेज का परीक्षाफल सूबे भर में उत्तम रहता था। इसका कारण यह था कि वे हर छात्र की पढ़ाई और अन्य सुविधाओं का ध्यान रखते थे। वे पढ़ाई पर अत्यधिक बल देते थे।

●खन्ना जी अपने जीवन में शायद ही कभी बीमार रहे हों। वे तो कहा करते थे "मुझे बीमार पड़ने की फुरसत कहाँ ? मैं एड़ियाँ रगड़-रगड़ कर मरना नहीं चाहता।"

खन्ना जी की हिन्दी सेवा

यद्यपि खन्ना जी ने फारसी और उर्दू में शिक्षा प्राप्त की थी किन्तु उन्हे हिन्दी से अनुराग था।

जब वे सन् १६१८-१६ में सेंट जान्स कालेज आगरा में प्रोफेसर थे तो अपने मित्र जसपतराय कपूर के साथ, जो नागरी प्रचारिणी सभा आगरा के मन्त्री थे, पुस्तकालय के लिए पुस्तकें तथा सभा के लिए चन्दा माँगा करते थे।

बाद में खन्ना जी बी० एन० एस० डी० कालेज कानपुर चले गये।

वे कालेज की हिन्दी प्रचारिणी सभा द्वारा विद्यार्थियों को हिन्दी प्रचार के लिए प्रोत्साहित करते रहते थे।

हिन्दी प्रचार का काम वे बराबर करते रहे। अदालतों में हिन्दी में मुहर्रिरी का काम करने के वे समर्थक रहे हैं।

स्वर्गीय डा० गोरखप्रसाद को 'विज्ञान' का सम्पादक बनाने में खन्ना जी की हिन्दी सेवा की भावना ही कार्य कर रही थी।

खन्ना जी के प्रयत्न से इंटरमीडिएट बोर्ड में यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ कि हाई स्कूल तक परीक्षाओं का माध्यम अनिवार्य रूप से हिन्दी हो और इन्टरमीडिएट में परीक्षार्थी की इच्छानुसार।

खन्ना जी हिन्दुस्तानी एकेडमी के भी सदस्य रहे।

जिस समय कानपुर में नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई उस समय खन्ना जी कर्मठ सदस्य थे।

सम्मेलन की स्थापना के पूर्व प्रयाग में १६०८-६ में एक हिन्दी प्रचारिणी सभा थी जिसके खन्ना जी कर्मठ सदस्य थे। हास्य रस के मर्मज्ञ श्री बाल कृष्ण जी भट्ट ने एक मंडली कायम की थी जिसका नाम था "खर मंडली"। खन्ना जी इसके भी सदस्य थे।

सन् १६१२ मे जब हिन्दी प्रेम की हवा चली तो स्वर्गीय डा० गंगानाथ झा की प्रेरणा से विज्ञान परिषद्द की स्थापना की योजना बनी। खन्ना जी उस समय सी० ए० वी० हाई स्कूल इलाहाबाद में विज्ञान के अध्यापक नियुक्त हुए थे। उन्होंने भी इस पुण्य कार्य में हाथ बढ़ाया और १६१३ ई० में विज्ञान परिषद्द की स्थापना हो गई। "विज्ञान" नामक मासिक पत्र का प्रकाशन भार खन्ना जी के ऊपर आ पड़ा जिसे वे सहर्ष करते रहे।

दूसरों की दृष्टि में

अध्यापन के कार्य में खन्ना जी ने ऊँचे कर्त्तव्य का मार्ग दिखाया है। अपने छात्रों के जीवन में, पढ़ाने लिखाने के अतिरिक्त बड़े भाई या पिता की भाँति रुचि रखना और उनकी वैयक्तिक कठिनाइयों को अपनी सहायता तथा अपने उपदेश से दूर करने का यत्न करना, यह खन्ना जी की विशेषता है। मैंने बहुत कम ऐसे अध्यापक देखे हैं जो बालकों के जीवन में इतने स्नेह और इतनी सहानुभूति से प्रवेश करने का यत्न करते हों।

—स्वर्गीय पुरुषोत्तमदास टंडन

खन्ना जी ने शिक्षा का कार्य चुना और अपने क्षेत्र में वह यशस्वी हुए हैं। आरम्भ से ही वे स्वावलम्बी थे। पत्रिकाओं और पुस्तकों के प्रूफ देखकर वह कुछ कमा लेते थे। इसलिए निर्धन विद्यार्थियों से उनकी सदा से सहानुभुति रही है।

खन्ना जी का दूसरा गुण उनका स्वाभिमान है। जो लोग स्वावलम्बन का जीवन विद्यार्थी अवस्था में व्यतीत कर चुके होते हैं उनमें यह गुण और होना स्वाभाविक है। अपने ऊँचे चरित्र के कारण भी वह अपने सहयोगियों के प्रियपात्र थे। उनके जीवन में सदा से सादगी रही और वह सदा आदर्श-भक्त रहे हैं।

बिरले ही प्रिंसिपल होंगे जो अपने सब विद्यार्थियों को जानते हों और उनमें दिलचस्पी लेते हों। खन्ना जी अपने विद्यार्थियों के अभिभावकों को भी जानते थे और विद्यार्थियों की हर तरह से सहायता करते थे।

यद्यपि उनका अनुशासन कड़ा होता तथापि वह विद्यार्थियों को इसलिए न अखरता क्योंकि वह जानते थे कि खन्ना जी उनसे स्नेह करते हैं और उनके शुभ-चिन्तक हैं।

—स्वर्गीय आचार्य नरेन्द्र देव

खन्ना जी का रहन-सहन सादा था। कुर्ता और उसके ऊपर बंद कालर का कोट जिसके बटन प्रायः खुले रहते थे। एक खास ढंग का बँधा सफेद साफा और बिना मोजे का शू। इस रहन-सहन में ३६ वर्षों में (१९१४ से लेकर) मैंने कोई परिवर्तन नहीं देखा !

उनकी प्रकृति भी बराबर एकरस रही—हँसमुख, मिठास भरी, उत्साह पूर्ण। खन्ना जी स्वदेशी कपड़े पहनते थे।

वे सैकड़ों कमेटियों के सदस्य रहे और प्रत्येक में नियम से पहुँचना और उसके कार्य में पूरी दिलचस्पी लेने में उन्होंने कभी-कभी नहीं होने दी।

हिन्दी का भी विशेष अनुराग खन्ना जी को प्रारम्भ से ही था और सम्मेलन तथा सभा आदि के सम्पर्क में आप निरन्तर बने रहे। हिन्दी के क्षेत्र में काम करने वालों को आप बराबर प्रोत्साहित करते रहे।

—धीरेन्द्र वर्मा

पुण्य और महान आत्माओं से प्रभावित तथा प्रेरित होते हुए भी मुझे ऐसा लगा है खन्ना जी की जीवन-कला किसी परम्परागत परिपाटी या रूढ़ि का अनुसरण नहीं करती। वह मौलिक है। वह किसी पूर्ववर्ती आदर्श की अपेक्षित न होकर स्वयं आदर्श प्रस्तुत करती है ईश्वर में आस्था रखते हुए भी वे किसी विशेष वाद या 'मत' के दास नहीं थे। उन्हें किसी मत के खंडन-मंडन से प्रयोजन नहीं था। हाँ, वे प्रकृति के अटूट कड़े नियमों को समझते थे, संसार-व्यापार जानते थे और कर्मयोग का पाठ कर्मस्थली में प्रयोगात्मक रूप से सीखा था। उनकी जीवन कला में संशय, सन्देह और अनिश्चितता नहीं थे। आप ठोस धरती पर रहते थे, काल्पनिक जगत में नहीं। उनका जीवन और उनकी कला निर्मल तथा सरल थी।

—बलवन्त सिंह स्याल

जीवन वृत्त

जन्म : सम्वत् १९४६ तदनुसार नवम्बर सन् १८८९।

शिक्षा—मिडिल स्कूल तक बहराइच में अपने ज्येष्ठ भ्राता बाबू बालमुकुन्द लाल के पास रह कर प्राप्त की जो सेटलमेंट क्लर्क थे।

नवीं कक्षा तक अपने नाना श्री गंगा प्रसाद जी के साथ रीवाँ में रहकर शिक्षा प्राप्त की।

बी० एस-सी० म्योर कालेज इलाहाबाद से

अध्यापन—बी० एस-सी० उत्तीर्ण करने के पश्चात् सी० ए० वी० हाई स्कूल इलाहाबाद में ८०) मासिक वेतन पर विज्ञान के शिक्षक नियुक्त हुए। इसी पद पर काम करते हुए इलाहाबाद विश्वविद्यालय से गणित में एम० एस-सी० उत्तीर्ण किया।

कुछ दिन तक सेंट जान्स कालेज आगरा में गणित विभाग के अध्यक्ष रहे (सन् १९१५)।

१९१९ ई० में कानपुर में डी० ए० वी० कालेज खुला तो गणित विभाग में नियुक्त हुए। १९२७ ई० तक यहीं रहे।

१९२७ ई० में कानपुर में बी० एन० एस० डी० कालेज खुला तो उसमें प्रिंसिपल के पद पर नियुक्त हुए और १९५० तक इस पद पर सुशोभित रहे।

विवाह—२६ वर्ष की अवस्था में विवाह हुआ जब वे सी० ए० वी० हाई स्कूल में शिक्षक थे। ५ वर्ष के बाद पत्नी का देहान्त हो गया। दूसरा विवाह नहीं किया। इनको पत्नी से एक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई।

उपलब्धियाँ—१९०८ में प्रयाग में कायस्थ कांफ्रेंस हुई तो स्वयंसेवक का कार्य किया। इसी वर्ष उत्तर प्रदेश में अकाल पड़ा तो स्वयं सेवक के रूप में बाँदा गये। इसी समय पं० मदनमोहन मालवीय तथा आचार्य नरेन्द्र देव से इनका सम्पर्क हुआ। १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् इलाहाबाद की स्थापना में हाथ बटाया।

२९ नवम्बर १९२६ को विज्ञान परिषद् के आजीवन सदस्य चुने गये।

१९३१ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के झाँसी अधिवेशन पर विज्ञान परिषद् के सभापति रहे।

सन् १९५१ ई० में विज्ञान परिषद् के सभापति चुने गये।

१९५६ ई० में विज्ञान परिषद् भवन का शिलान्यास भारत के प्रधानमन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू के कर कमलों द्वारा सम्पन्न कराया।

विज्ञान परिषद् के भवन निर्माण के लिए धन संग्रह किया।

नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, हिन्दुस्तानी एकेडमी के सक्रिय आजीवन सदस्य रहे।

साइंटिफिकि इन्स्ट्रुमेंट कम्पनी इलाहाबाद की संचालन समिति के सदस्य रहे।

१९ दिसम्बर सन् १९५७ ई० में दिल्ली में संसद भवन के भीतर महामना पं० मदनमोहन मालवीय के चित्र का अनावरण समारोह आयोजित किया।

१९५० में "हीरालाल खन्ना अभिनन्दन ग्रंथ" प्रकाशित हुआ।

मृत्यु—कानपुर में २९ सितम्बर १९६५ को ९ बजे रात्रि में अल्पकालीन बीमारी के पश्चात् देहान्त हो गया।

कृतित्व

झाँसी हिन्दी साहित्य सम्मेलन १६३१ ई० के अवसर पर होने वाले विज्ञान परिषद् के सभापति के स्थान से

श्री खन्ना जी का सम्भाषण

उचित शब्दों के अभाव से मैं आप महानुभावों के प्रति यथेष्ट कृतज्ञता प्रकट करने में असमर्थ हूँ। अपनी वास्तविक दशा का अनुभव कर मैं भयभीत हो रहा हूँ। आपने तो अपने प्रेम से मुझे यहाँ ला बिठाला, किन्तु अपनी सामर्थ्यहीनता और अनभिज्ञता का ध्यान कर मैं घबड़ा रहा हूँ और आपकी रक्षा का इच्छुक हूँ। यदि किसी क्रियाशील अनुभवी सज्जन ने इस आसन को सुशोभित किया होता तो विज्ञान-परिषद के इस प्रथम अधिवेशन का कहीं अधिक गौरव होता। वैज्ञानिक साहित्य के नभोमण्डल में प्रज्वलित और कान्तिमय ताराओं के समक्ष एक टिम-टिमाते हुए चिराग का आगे बढ़ने का साहस नहीं पड़ता। इस आसन के योग्य सबसे पहला नाम मुझे श्री रामदास जी गौड़ का याद आता है। वैज्ञानिक क्षेत्र में जो सेवाएँ गौड़ जी ने की हैं वे अनुपम और अद्वितीय हैं। विज्ञान परिषद् प्रयाग के वह केवल संस्थापकों में ही से नहीं हैं वरन् आदि-आदि काल में उसके संचालन और विज्ञान पत्रिका के सम्पादन का पूरा भार आप ही पर था। आपकी पुस्तकों और लेखों के पढ़ने से अथक परिश्रम का पता चल सकता है। सरल भाषा में सुबोध ढङ्ग से लिखकर आपने भावी लेखकों को एक अनुकरणीय परिपाटी विज्ञान के प्रचार के लिये दिखा दी है। ऐसे योग्य व्यक्ति का इस समय इस आसन पर होना उचित ही नहीं, आवश्यक भी था।

डा० गणेशप्रसाद जी भी एक प्रख्यात गणितज्ञ और हिन्दी प्रेमी हैं। उच्चकोटि के गणित पर लार्ड मेस्टन के सभापतित्व में हिन्दी में एक सुन्दर भाषण देकर, आपने यह सिद्ध किया था कि मातृभाषा द्वारा हर प्रकार की वैज्ञानिक खोज का काम सुगमता से किया जा सकता है। डा० साहब का आदर करके यह सभा उनके हिन्दी प्रेम को और भी अग्रसर कर सकती थी। श्रीयुत शालिगराम जी भार्गव, श्री ब्रजराज जी, बाबू गोपाल स्वरूप जी भार्गव, डा० निहालकरण जी सेठी अथवा बाबू महावीर प्रसाद जी श्रीवास्तव आदि विज्ञान सेवियों में से कोई भी एक सज्जन आज के सभापति का आसन कहीं अधिक गौरवपूर्वक ग्रहण कर सकते थे। मेरा तो सारा विज्ञान-ज्ञान एक साधारण गणित का शिक्षक होना है और सारी हिन्दी सेवा केवल इतनी है कि मैं साहित्य सम्मेलन और विज्ञान परिषद् प्रयाग के संचालन में आदि से एक सिपाही का काम करता रहा हूँ। ऐसी अवस्था में मेरी अपील आप ही से है कि आप मुझको दया का पात्र समझकर रक्षा कीजिये।

हमारा शरीर निरन्तर बनता-बिगड़ता रहता है। जब उसका बनना रुक जाता है, उसी समय से वह नष्ट होने लगता है। हम लोगों की भाषा की स्थिति भी हमारे ही समान है। उसके साहित्य में भी नित्य बनने और बिगड़ने का तार लगा रहता है। जैसे मनुष्य अपने शरीर के अंगों को व्यायाम से पुष्ट करता है और बनाता है वैसे भाषा के अंगों को भी बलवान और पुष्ट रखने के लिए आवश्यकता होती है।

समयानुसार हिन्दी के जिस अंग की जितनी उन्नति चाहिये थी बराबर उसके हितैषी स्वभावत: उसकी ओर दत्तचित रहे। पर खेद की बात है कि और अंगों की अपेक्षा हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक

अंग अत्यन्त बलहीन और अपूर्ण है। इस अपूर्णता की कीर्ति के लिये ही इस विज्ञान परिषद् का आज आयोजन हुआ है।

विज्ञान क्या है? वैज्ञानिक साहित्य के और विज्ञान-ज्ञान के अभाव से हमारी क्या हानि है? इन प्रश्नों का उत्तर मैं अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार इस स्थान से देने की चेष्टा करता हूँ।

सृष्टि के आदि काल से मनुष्य का यह प्रयत्न रहा है कि वह अपने चारों ओर की वस्तुओं को समझे और उनसे लाभ उठावे। जैसे-जैसे उसको नये अनुभव होते गये उसका ज्ञान बढ़ता गया। प्रकृति की नवीन और बड़ी वस्तुओं से परिचय होने ही से मनुष्य की मस्तिष्क-शक्ति बढ़ती है। इस प्रकार प्रयोग, विधान, जाँच पड़ताल, देख-भाल तथा गणित बल से अपना ज्ञान बढ़ाना ही विज्ञान का मूल कारण हुआ।

विज्ञान हमें बताता है कि प्रकृति अपने कार्यों में सर्वव्यापकता का लिहाज रखती है और किसी एक व्यक्ति की कुछ रियायत नहीं करती वरन् उन व्यक्तियों को अपने कार्य साधन का मार्ग बनाती है। प्रत्येक वस्तु अचल अवस्था में है, बिगड़ने के बाद फिर बनती है और बनने के बाद बिगड़ती है। ऐसी दुनिया में जहाँ प्रत्येक वस्तु मरती है, प्रत्येक के लिए शोक करना व्यर्थ है। जैसे एक जल-प्रपात साल दर साल अपना एक ही सा रूप रखता है यद्यपि उसका जल सदैव बदला करता है वैसे ही प्राकृतिक संसार में पदार्थों के बहाव के सिवाय कुछ नहीं है। प्राकृतिक वस्तुओं के जो रूप हम देखते हैं वे क्षणिक हैं और मिट जाने वाले हैं।

एक वैज्ञानिक अपने समय के विचारों का व्यर्थ खण्डन-मण्डन नहीं करता। वह केवल इतना जान लेता है कि संसार में एक सर्वमान्य शक्ति तो है, पर सर्वोच्च व्यक्ति नहीं है। यही एक अदृष्ट सिद्धान्त के लिए यह धारणा करना कि उसका रूप, विचार और मनोभाव आदमियों के से हैं एक संकुचित दृष्टिकोण का परिचय देता है। जिसको मनुष्य दैवयोग कहते हैं, यह केवल अज्ञात कारण का प्रतिफल है, जिसको खोज निकालना ही विज्ञान का लक्ष्य है। प्रकृति अरोक नियमों के साथ आगे बढ़ती है। उस जीवन शक्ति को जो संसार में फैली है, लोग ईश्वर कहते हैं। मनुष्य की जीवात्मा एक सजीव ज्वाला, अर्थात् उस जीवन सिद्धान्त की एक चिनगारी मात्र है। शक्ति (energy) के समान वह एक से दूसरे में जाती है और अन्त में उसी सर्वव्यापी वस्तु में मिल जाती है, जिससे वह निकली थी। हिन्दू संस्कृति का यही आवागमन का सिद्धान्त है। इसलिये हमें विनाश का डर न होना चाहिये वरन् उसी ज्योति में मिल जाने की शुभ अभिलाषा होनी चाहिये।

यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जावे तो धर्म और व्यावहारिक विज्ञान के लक्षण में कोई अन्तर नहीं है, केवल विचारधारा की विधि में भेद है। धार्मिक प्रथा सर्वव्यापी वस्तुओं से प्रारम्भ होती है और इन सर्वव्यापी वस्तुओं का अस्तित्व एक विश्वास की बाढ़ है। इनसे उतर कर वह प्रथा विशेष-विशेष और छोटी-छोटी वस्तुओं पर जाती है। इसके प्रतिकूल विज्ञान, अनुमान और अनुसन्धान की सहायता से बढ़ता हुआ छोटी-छोटी वस्तुओं से सर्वव्यापी वस्तुओं तक पहुँचा है। धर्म कल्पना शक्ति का भरोसा करता है, विज्ञान बुद्धि, प्रयोग और खोज का आसरा ढूँढ़ता है। धर्म प्राथमिक विचार के विच्छेदन से उतरता हुआ विशेष वस्तुओं तक आया है और विज्ञान विशेष वस्तुओं का समूह जमा करके सर्वव्यापी विचार बनाता है।

घटनाओं के इकट्ठा करने में अनन्त परिश्रम दिखाई देता है, देखने-भालने अनुभव करने और प्रमाण के लगाने में बड़ी थकावट जान पड़ती है। इसलिये वैज्ञानिक मार्ग बहुत मन्दगामी है परन्तु है बहुत दृढ़ मूलक।

इतिहासज्ञों से यह बात छिपी नहीं है कि पूर्व काल में इस देश का विज्ञान भण्डार परिपूर्ण था, भाँति-भाँति की कला-कौशल एवं शिल्प का प्रचार था। किन्तु समय सब का समान नहीं जाता।

भारतीय अपने बड़प्पन के मद में समय के साथ चलना भूल गये। भीतरी झगड़ों में व्यस्त होकर संसार की गति से बेसुध हो गये। जो पीछे थे आगे हो गये और भारत अपनी प्रगाढ़ निद्रा में पड़ा रहा। परिणाम रूप में विज्ञान के अभाव से गत पन्द्रह सौ वर्षों में हम कहाँ से कहाँ पहुँच गये। इसी विज्ञान के बल से पश्चिमी देशों ने धीरे-धीरे हमारे हाथ से एक एक कर के सारी कारीगरी छीन ली। जिसे हम हाथ से वर्षों में बनाते थे, मिनटों में बना कर रख दिया। जिस भारत से कपड़े बनवा कर, छीटें छप कर अन्य देश अपना तन ढँकते थे आज उसी भारत को अपने लिये कपड़ा बाहर से मँगवाना पड़ता है। नमक, शकर आदि खाने की चीजों तक के लिए आज कल-वल के न होने से भारत और देशों का मुँह ताकता है। सुई और डोरे तक के लिए हमें जापान जाना पड़ता है। हमारे यहाँ से नील संसार भर लेता था। विज्ञान के बल से जर्मनी ने नकली रंग बना कौड़ियों के मोल बेच कर नील की खेती को तहस-नहस कर डाला। विज्ञान की ओर हमारी निगाह न होने से जो जो दुर्दशा हमारी हुई वह संसार को आँखें उघार-उघार कर देखने से जान पड़ती है। जिस विज्ञान की अवहेलना से हम इस अधोगति को प्राप्त हुये, उसी विज्ञान को बलिवेदी पर अपने सपूतों को न्यौछावर कर देने की तत्परता ने पश्चिम को पश्चिम बना रक्खा है। इसी विज्ञान के लिये सुकरात विष देकर मारा गया, इसी विज्ञान के लिये ब्रूनो जीता जला दिया गया, इसी विज्ञान के लिये गेलिलिओ का देश निकाला हुआ, इसी के लिये यूरोप के अनेक विद्वानों को भाँति भाँति के कष्ट, तरह तरह की यातनायें दी गईं। यही विज्ञान जिसके लिये इसके इतने भक्त बलि हुए, अपनी जीवन प्रदान की भूमि यूरोप में गत सौ वर्षों से ऐसा फैला, जो अकथनीय है। इसके प्रसाद रूप में जिधर देखिये उधर आश्चर्य ही आश्चर्य दिखलाई पड़ते हैं। जहाँ पर पहले बबूल के काँटे और करील के फल लगते थे, जहाँ पर कटैया के जंगलों के अतिरिक्त कुछ दिखलाई न देता था, वहाँ आज पके फलों से लदे हुए लहलहाते उद्यान नन्दन बन को मात कर रहे हैं। जिन देशों में दुर्गम मार्गों और अन्य कठिनाइयों के कारण जाना दुष्कर था वे ही स्थान आज साधारण जन-समुदाय के क्रीड़ास्थल हो रहे हैं। हिमालय की ऊँची-ऊँची चोटी पर अपनी पताका फहराने को वैज्ञानिक धर्मराज युधिष्ठिर से बाजी बद रहा है। अफ्रीका के विकट जङ्गलों में, आस्ट्रेलिया के निर्जन वनों में वह आनन्द मना रहा है। सभ्य संसार की तो उसने काया-पलट ही कर रक्खी है। समस्त संसार अधिक संघटित होता है जा रहा है। एक देश के एक कोने में ही बैठ कर सारे संसार की घटनाएँ सहज ही में मालूम होती हैं। यान्त्रिक बल से एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने में कुछ कठिनाई नहीं होती। समुद्र और पहाड़ों के भौतिक प्रबन्ध टूटते जा रहे हैं और सारा संसार एक विशाल नगर में परिणत हो रहा है। संगठन और सहकारिता के कारण ज्ञान की सीमा भी दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती जा रही है।

हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य निर्माण की आवश्यकता इसलिये और भी है कि साधारण जन-समुदाय में वैज्ञानिक विचारों का प्रचार भली भाँति हो सके। हमारे मामूली कारीगर भी वैज्ञानिक सिद्धान्तों को समझ कर उनके द्वारा अपने अपने कार्य में विशेष कुशलता प्राप्त कर सकें।

वर्तमान वैज्ञानिक साहित्य की जो स्थिति है, थोड़े शब्दों में उसका दिग्दर्शन करा देना आवश्यक प्रतीत होता है। प्राचीन विज्ञान पर हमारी भाषा में पुस्तकों की कमी नहीं है। संस्कृत के ज्योतिष ग्रन्थों के सिवा हिन्दी में दो एक स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं। इनमें सबसे उत्तम मनोरञ्जन पुस्तकमाला की 'ज्योति-विनोद' नामक पुस्तक है। फलित ज्योतिष से सर्वसाधारण को विशेष रुचि नहीं है। गणितमय ज्योतिष ग्रन्थ तो तभी उपयोगी हो सकते हैं जब 'मान-मन्दिर' के यन्त्रों के आधार पर वह लिखे जावें और हमारे ज्योतिषी स्वयं ही दृढ़ गणित से काम लें।

अंग्रेजी के माध्यम होने पर भी प्रारम्भिक शिक्षा

में देशी भाषाओं का रक्खा जाना अनिवार्य था। आवश्यकतानुसार छोटी छोटी सुबोध पुस्तकें बनने लगीं। १८६० ई० में पहिली पुस्तक 'सरल विज्ञान विटप' के नाम से प्रकाशित हुई। उसी समय काशी के पण्डित मथुरा प्रसाद जी मिश्र ने कई एक छोटी-छोटी आधुनिक विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकें लिखीं। १८८३ ई० में मुंशी नवल किशोर ने एक रसायन सम्बन्धी ग्रन्थ अपने प्रेस से प्रकाशित किया। पण्डित लक्ष्मीशङ्कर मिश्र ने त्रिकोणमिति पर एक सुन्दर ग्रन्थ लिखा। इन्होंने 'काशी पत्रिका'' भी निकाली जिसमें कई वर्षों तक साहित्य और विज्ञान विषयों पर उत्तम लेख निकलते रहे।

गणित, भौतिक, रसायन तथा जीव-विज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना होने लगी। पं० बापूदेव शास्त्री ने बीजगणित पर एक पुस्तक लिखी। पं० सुधाकर जी ने "चलन कलन" और "चल-राशि कलन" नामक दो ग्रन्थ उच्च गणित पर लिख कर एक बड़ी कमी की पूर्ति की। समीकरण मीमांसा पर भी एक पुस्तक निकली है। गुरुकुल कांगड़ी से महात्मा मुंशीराम जी की अध्यक्षता में कई ग्रन्थ निकले, जिनमें से अधिकांश के लेखक श्री महेशचरण सिंह हैं। काशी-नागरी प्रचारिणी सभा ने वैज्ञानिक कोष का निर्माण कर पारिभाषिक शब्दों को नियमबद्ध करने की चेष्टा की। इस सम्बन्ध में सबसे अधिक कार्य प्रयाग का विज्ञान परिषद् कर रहा है। भौतिक तथा रसायनिक विज्ञान पर अच्छे ग्रन्थों की रचना कराई है। 'विज्ञान' नामक मासिक पत्र पिछले १६ वर्षों से बराबर निकल रहा है। इसमें विज्ञान के सभी विषयों के अनेक लेख निकल चुके हैं। परिषद् ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। हिन्दी हितैषियों को उचित है कि उसे अपनायें और उसके कार्यकर्त्ताओं के उत्साह को बढ़ाते रहें।

हाल ही में डा० गोरख प्रसाद का "फोटोग्राफी" नामक ग्रंथ "इण्डियन प्रेस" प्रयाग ने प्रकाशित किया है। यह अपने विषय का एक ही ग्रन्थ है। अंग्रेजी भाषा में भी इससे अच्छी सर्वांगपूर्ण पुस्तक मिलना कठिन है। उन्हीं का रचा हुआ "हिन्दुस्तानी एकेडमी" ने "सौर परिवार' नामक एक वृहत ग्रन्थ निकाला है, जिसके लिये लेखक और प्रकाशक दोनों हमारी बधाई के पात्र हैं। दानवीर बिड़ला जी को सहायता से हिन्दू विश्वविद्यालय भी इस ओर ध्यान दे रहा है। इन सब सद-चेष्टाओं के फलस्वरूप आशा है कि हिन्दी में भी समय पा कर यथेष्ट वैज्ञानिक-साहित्य प्राप्त होगा।

यह सब होते हुये भी यदि हम इन प्रयत्नों की तुलना पाश्चात्य विज्ञान की सामयिक दशा और प्रगति से करते हैं तो उनको 'नहीं' के समान पाते हैं। जो कुछ परिश्रम हो रहा है वह पर्याप्त नहीं कहा जा सकता।

वर्तमान आवश्यकताओं पर विचार करते हुए, वैज्ञानिक साहित्य के निर्माण और विज्ञान के प्रचार के निमित्त निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है:—

(१) वैज्ञानिक पुस्तकों की भाषा।

(२) परिभाषाषिक शब्दों का अभाव एवं अनिश्चयता।

(३) सहकारिता और सहयोगिता।

इन सब बातों के प्रत्येक अंग पर विचार कर, मुझे विश्वास है कि हिन्दी संसार के लिये इस परिषद् द्वारा कोई उचित मार्ग निर्धारित कर दिया जायगा। इस सम्बन्ध में मेरा जो निजी मत है वह मैं आपके सामने रखने की धृष्टता करता हूँ।

वैज्ञानिक पुस्तकों की भाषा सरल एवं सुबोध होनी चाहिये, विशेष करके फलित विज्ञान सम्बन्धी, जिससे कि सर्वसाधारण जटिल सिद्धान्तों के वास्तविक मर्म को समझ कर उनको अपने नित्य के व्यवहार में ला सके। अध्यापक रामदास जी गौड़ अपनी पुस्तकों-लेखों में प्रायः बोलचाल की भाषा काम में लाते हैं। उनके समझने में कोई कठिनाई नहीं पड़ती। यदि हमारे अन्य लेखक उनके प्रदर्शित मार्ग पर चलें तो विज्ञान-ज्ञान के प्रचार में बड़ी सहायता मिले। उच्च साहित्य की दृष्टि से क्लिष्ट भाषा का स्वागत किया जा

सकता है किन्तु उससे आम लोग फायदा नहीं उठा सकते।

आजकल अनेक नये ग्रन्थ लिखे जा रहे हैं और उसके साथ ही भिन्न-भिन्न नये पारिभाषिक शब्दों का भी निर्माण हो रहा है। ऐसी अवस्था में परमावश्यक है कि निर्माण-पद्धति पर उचित रूप से विचार कर समस्त हिन्दी के लेखकों के लिये एक मार्ग निर्धारित कर दिया जावे, नहीं तो "अपनी-अपनी डफली और अपना-अपना राग" होने से लाभ होने के स्थान पर अधिक हानि होने की सम्भावना है।

अब यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि शब्द कैसे होने चाहिये ? उनका आकार क्या होना चाहिये ?

'शब्द' से अर्थ के संकेत का काम लिया जाता है। कुछ संकेत मनुष्येच्छा से किसी विशेष सुभीते के लिये बनाये जाते हैं और फिर उसी अर्थ में व्यवहृत होने लगते हैं। ऐसे आधुनिक संकेतों को 'परिभाषा' कहते हैं। पारिभाषिक शब्दों की उत्पत्ति ज्ञान रूप से आवश्यकता पड़ने पर होती है। कभी प्रचलित शब्दों को ही पारिभाषिक अर्थ दे दिया जाता है और कभी आवश्यकतानुसार बिलकुल नये शब्द गढ़ लिये जाते हैं। जो शब्द रोज़मर्रा की बोलचाल में आ गये हैं, चाहे वह कहीं से भी आये हों, उनको तो वैसा ही व्यवहार में ले जाना चाहिये। उनके स्थान पर संस्कृत अथवा फारसी से, कठिन शब्दों को लाना न केवल भेदभाव को बढ़ाना है वरन् भाषा को दूषित करना है। मुझे विश्वास है कि कोई भी हिन्दी या उर्दू का लेखक थरमामीटर के स्थान में तापमापक यंत्र अथवा मिकपातुल हरारत को काम में न लायेगा। मुझे याद है कि एक लेखक ने एक छोटी सी पुस्तक में 'रेल' शब्द का अर्थ 'वाष्पलढ़िया' से और 'टेलीग्राफ अथवा तार' का अर्थ "तड़ित समाचार" से करके अपनी हँसी आप उड़ाई थी। जहाँ तक प्रचलित शब्दों का सम्बन्ध है, कोई मतभेद होने की सम्भावना नहीं है।

जिन वैज्ञानिक भावों को प्रकट करने के लिये हमारे यहाँ कोई प्रचलित संकेत नहीं उनके लिये नए-नए शब्द गढ़ने की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में आधुनिक हिन्दी लेखकों में तीव्र मतभेद है। एक ओर हमारे उत्साही नवयुवक, 'विज्ञान' के सम्पादक श्री सत्यप्रकाश जी का यह मत है कि नवीन वैज्ञानिक शब्दों का निर्माण संस्कृत की संज्ञा और क्रियाओं के आधार पर होना चाहिये, दूसरी ओर मेरे परम मित्र डा० निहालकरण सेठी के विचार में 'वैज्ञानिक सिद्धान्तों और आविष्कारों को व्यक्त करने वाले पारिभाषिक शब्द के लिये तो यह और भी आवश्यक जान पड़ता है कि वे शब्द ज्यों के त्यों हिन्दी भाषा में सम्मिलित कर लिये जावें। इसका एक विशेष कारण है। ये किसी खास भाषा के शब्द नहीं। इन पर किसी भी जाति का कोई विशेष अधिकार नहीं है। इङ्गलैण्ड, फ्रांस जर्मनी, अमेरिका और यहाँ तक कि जापान में भी इन्हीं शब्दों का प्रयोग होता है। ये शब्द अन्तर्जातीय हैं। इनके प्रयोग से किसी भाषा का अपमान नहीं समझा जाता और न किसी के स्वाभिमान में किसी प्रकार का फर्क आता है।"

विद्वानों का जो कुछ निर्णय हो वह सबको मान्य होना चाहिये। इस सम्बन्ध में उनके सम्मुख मैं दो बात रखना चाहता हूँ। वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों का निर्माण राष्ट्रीय दृष्टि से होना चाहिये। विविध प्रान्तों और भिन्न-भिन्न संस्थाओं को सहकारिता के बिना राष्ट्रीय विज्ञान का आदर्श स्थापित और पूर्ण होना कठिन है। संसार के सब देशों में सहकारिता से ही ज्ञान की वृद्धि हुई है और हमारे देश में भी इसके बिना काम न चलेगा। वैज्ञानिक भाषा का मुख्य भाग पारिभाषिक शब्दों का ही होता है। अतएव राष्ट्रीय दृष्टि से यह परमावश्यक है कि प्रांतीय भाषाओं के वैज्ञानिक शब्द एक से हों। पारिभाषिक शब्दों की एकता के कारण समस्त देशीय भाषाओं में वैज्ञानिक पुस्तकों का समझना और अनुवाद करना बड़ा सरल काम हो जावेगा। अभी तक किसी भी भारतीय भाषा का वैज्ञानिक साहित्य प्रौढ़ता को प्राप्त नहीं हुआ है इसलिये ऐसी अवस्था में पारिभाषिक शब्दों को एक-सा बनाने का प्रयत्न करना उचित ही प्रतीत होता है।

इस सम्बन्ध में पहिले अंग्रेजी, फ्रैंच और जर्मन भाषाओं के विविध वैज्ञानिक शब्दों की एक सूची तैयार

होनी चाहिये और साथ ही संस्कृत फारसी और अरबी तथा हिन्दी, उर्दू, बंगला, गुजराती, मराठी आदि अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य में पाये जाने वाले वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों की सूची बननी चाहिये। जो दोनों सूचियों में हों उनके सम्बन्ध में कुछ कहना ही नहीं है। अब बचे हुये, अंग्रेजी, फ्रेञ्च और जर्मन भाषाओं के शब्दों का प्रश्न रहा। इनके स्थान पर पारिभाषिक शब्दों का निर्माण किस रीति से किया जावे। डा० सेठी के मतानुसार तो विदेशी अर्न्तजातीय वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों को किसी प्रकार से भी रूपान्तर न करके उनको अपने असली रूप में ही मिला लेना चाहिये। इसमें एक बात विचारणीय है। शब्दों का उच्चारण देश के जलवायु, प्राकृतिक अवस्था एवं मनुष्य के शरीर संगठन पर आश्रित है। अतएव अपने स्वभाव से उनका रूपान्तर किया जाना आवश्यक है। दूसरे प्रत्येक वस्तु को अपना स्वरूप दे देने से उसके ऊपर न केवल प्रेम बढ़ जाता है वरन् उसके द्वारा बोध भी अधिक होने लगता है। अत: यदि हम विदेशी शब्दों को अपनी भाषाओं में व्यवहार भी करें तो उन पर अपने स्वभाव और सुभीते के अनुकूल अपनी जातीय छाप अवश्य लगा दें।

इसके प्रतिकूल मतानुसार संस्कृत को आधार मान कर, उसके धातुओं से नये यौगिक शब्द गढ़े जाना चाहिये। भारत की अधिकांश प्रान्तीय भाषायें इसके आश्रित हैं। यह पूर्णरूप से वैज्ञानिक होने के साथ ही, भारत के अधिकांश निवासियों की धार्मिक भाषा है। यदि हम नवीन वैज्ञानिक शब्द संस्कृत धातुओं की सहायता से बनायेंगे तो फारसी और अरबी के प्रेमी यह आक्षेप कर सकते हैं कि इन भाषाओं से नये शब्द क्यों न बनाये जायें। अरबी और फारसी ने हमारे जातीय जीवन पर भारी प्रभाव डाला है।

चाहे जिस साधन का भी अवलम्बन किया जावे किन्तु यह बात को सदा ध्यान में रखनी आवश्यक है कि वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली देशव्यापक और सर्वमान्य होनी चाहिये, नहीं तो एक शिक्षक के रूप में मुझे डर है कि कम से कम संयुक्त-प्रान्त के स्कूलों में भाषा द्वारा वैज्ञानिक शिक्षा देना बड़ा कठिन हो जावेगा।

यदि हिन्दी और उर्दू में पारिभाषिक शब्द भिन्न-भिन्न हुये तो एक ही स्कूल में भौतिक और रासायनिक विज्ञान, गणित और ज्यामिति, भूगोल और खगोल आदि विषय उर्दू और हिन्दी में पृथक् पृथक् पढ़ाने पढ़ेंगे। ऐसी स्थिति का अनुमान कर भी मेरा हृदय काँप उठता है। यह विषय बहुत समस्यापूर्ण है और इसलिये इसमें बड़ी सावधानी और विचार से काम लेना चाहिये।

अपना कथन समाप्त करने के पूर्व मैं एक बार और आपके अनुग्रह के लिये आपको हृदय से धन्यवाद देता हूँ और यह आराधना करता हूँ कि जगदीश हमारे जगदीश का विज्ञान भंडार अधिक पूर्ण और संकुल करें; रामानुज भगवान रामचन्द्र अनुज के नाईं भारतीय नन्दन बन में तपस्या कर गणित बल से शक्ति का संचय करें, प्रफुल्ल चन्द का चन्द्र और विकसित एवं उज्ज्वल हो, गणेशप्रसाद वेदव्यास के प्रसाद से सुन्दर वैज्ञानिक ग्रन्थों की रचना करें। रमण की तितिक्षा एवं स्पृहा प्रत्येक नवयुवक हृदय-पथ, और मेघनाथ, इन्द्र के समान मेघों के नाथ तड़ित् की वर्षा द्वारा भारत को एक सुन्दर उद्यान बनाने में सफलीभूत हों। हमारे विश्वविद्यालयों से भास्कराचार्य और आर्यभट्ट समान नररत्न और लीलावती सी विदुषियाँ उत्पन्न हों। यदि प्रत्येक गृहस्थी में एक मोटर हो जाये, यदि प्रत्येक नवयुक एक वायुयान रख सके, यदि प्रत्येक पुरुष की दीवाली प्रतिदिन विद्युत से सजे तो भी हमारे देश में विज्ञान-ज्ञान की खोज का अंत न हो। विज्ञान के व्यवहार के दूषित परिणाम से यहाँ के लोग बालबाल बचते रहे हैं। हमारा अतीत साक्षी है कि हममें विज्ञान ने कभी भी पौरुषहीनता, अलसता एवं विलासता उत्पन्न नहीं की, और न आध्यात्मिक उत्कर्ष से ही हमें उसने वंचित रक्खा। उच्च विचार और सरल जीवन भारत का निजी है। विज्ञान के ध्वंसकारी व्यवहार पाश्चात्य देशों तक ही सीमित रहें। घात-प्रतिघात के दाँव-पेंच में उलझा हुआ जीवन अशान्ति से परिणत व्यक्तियों के लिये चरम

उत्कर्ष हो सकता है। हमारे आदर्श व्यक्तियों का सम्पूर्ण समाहार इसका ज्वलन्त उदाहरण है कि भारत के लिये विज्ञान-ज्ञान शारीरिक उपभोग की वस्तु कभी नहीं रहा।

भारद्वाज मुनि के सूक्ष्म विज्ञान-तत्व के व्यवहारिक चमत्कार के इन्द्रजाल में आमंत्रित भरत जी की क्या दशा थी इसकी स्वयं कवि सम्राट् गोस्वामी तुलसीदास जी के मुख से सुनिये।

संपति चकई भरत चक,
मुनि आयसु खिलवार।
तेहि निशि आश्रम पींजरा,
राखे भा भिनुसार॥

भरत भारत के अभिधान प्रेरक ही नहीं, आदर्श की प्रेरणा भी हैं।

[विज्ञान, मार्च १९३२ से साभार उद्धृत]

खन्ना जी द्वारा परिषद् भवन के शिलान्यास के अवसर पर दिया गया स्वागत भाषण

पंडित जी,

विज्ञान-परिषद् के लिए यह खुशी का दिन है कि आपने आज इस भवन के शिलान्यास करने की कृपा की। आरम्भ से ही हमारा यह विचार था कि इस कार्य के लिए हम आप से कहते। इस सम्बन्ध में हमने जब आचार्य श्री नरेन्द्रदेव जी से सलाह ली तो उन्होंने हमारा उत्साह और भी अधिक बढ़ाया। कितना अच्छा होता यदि वे आज इस समारोह में सम्मिलित हो पाते। जहाँ हमें आपका स्वागत करते हुए खुशी हो रही है, वहाँ उनकी याद नहीं भूलती। उन्होंने कहा था कि जिस दिन आप इस काम के लिए आयेंगे अगर वह स्वस्थ रह सके, तो वे भी अवश्य आयेंगे। पर ईश्वर की इच्छा कुछ और ही थी।

हमारा विचार इस भवन का बुनियादी पत्थर आप से रखवाने का था। पर जैसी आप ने सलाह दी हमने भवन का काम आरम्भ कर दिया और, जैसा कि आप देख रहे हैं, इमारत बहुत कुछ बन कर खड़ी हो गई है। इस समय तक हमारा "अन्डर-ग्राउन्ड सेलार" तैयार हो गया है, उसके ऊपर के दो बड़े कमरे खड़े हो गये हैं, पीछे हाल की बुनियाद भी भरी जा चुकी है और सागरपेशा भी तैयार हो गया है। अगर हमें लोहा और सीमेन्ट ठीक से मिल गया होता तो हमारी यह इमारत और भी आगे बढ़ गई होती।

विज्ञान-परिषद् सन् १६१३ में इसी म्योर कालेज के कुछ अध्यापकों द्वारा स्थापित हुआ था। इसके संस्थापकों में श्री महामहोपाध्याय पंडित गंगानाथ झा, प्रोफेसर रामदास गौड़, प्रोफेसर सालिग्राम भार्गव और प्रोफेसर हमीदुद्दीन थे। आज इनमें से कोई भी जीवित नहीं है। मेरा भी सम्बन्ध इस परिषद् से आरम्भ से ही रहा है और मुझे बड़ा संतोष है कि मैं आज भवन के उत्सव में आपको आमन्त्रित कर सका। परिषद् के सभापतियों और उप-सभापतियों में पंडित मदनमोहन मालवीय, श्रीमती एनीबीसेन्ट, सर सी० वाई० चिन्तामणि, सर सुन्दरलाल, डा० गंगानाथ झा, डा० गणेशप्रसाद आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। सर जगदीशचन्द्र बोस, आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय, डा० मेघनाथ साहा, डाक्टर के० एस० कृष्णन् इस परिषद के सदस्य रह चुके हैं। सन् १६३६ में बाबू सम्पूर्णानन्द के सभापत्वि में इसकी रजत जयन्ती मनाई गई थी।

यह परिषद् अखिल भारतीय संस्था है और लगभग सभी प्रदेशों में हमारे सदस्य हैं। परिषद् ने सन् १६१३ से ही वैज्ञानिक विषयों की पुस्तकें हिन्दी में निकालना प्रारम्भ किया। इन पुस्तकों में कुछ के उर्दू अनुवाद भी करवाये। इन उर्दू अनुवादों के प्रकाशन में इसी प्रयाग के प्रमुख प्रकाशक लाला रामनारायणलाल का हमें सहयोग मिला, परिषद् ने अब तक पैंसठ छोटी और बड़ी किताबें वैज्ञानिक विषयों की प्रकाशित की हैं। पिछले बयालिस वर्षों से यह एक मासिक पत्रिका 'विज्ञान' भी निकालती रही है जिसने बीस हजार पृष्ठों का वैज्ञानिक साहित्य हिन्दी भाषा को दिया है। परिषद् ने यह सब काम उस समय आरम्भ किया था जब स्कूलों में छोटे दर्जों की पढ़ाई भी अँग्रेजी द्वारा होती थी। आज तो देश स्वतन्त्र हो गया है और आपके नेतृत्व में देश का नये ढंग पर निर्माण हो रहा है। आपने देश को बहुत सी "रिसर्च लेबोरेटरीज" दीं और बहुत से कारखाने और कारोबारों को प्रोत्साहन दिया। यह ठीक ही है कि अब देशी भाषाओं में ऊँचे दर्जे के वैज्ञानिक साहित्य की भी हमें जरूरत

होगीं और आम जनता के पढ़ने लायक साहित्य भी हमें तैयार करना होगा। हमें विश्वास है कि आपके आदेशानुसार विज्ञान परिषद् भी देश की कुछ न कुछ सेवा कर सकेगी।

विज्ञान परिषद् का भवन आपके आनन्द भवन के पड़ोस में ही है और पड़ोसी के नाते हमें और भी अधिक प्रसन्नता है कि आज हम यह शिलान्यास आपके कर कमलों से करवा रहे हैं। हम प्रयाग विश्वविद्यालय के अधिकारियों के अत्यन्त कृतज्ञ हैं जिन्होंने "म्योर कालेज" भूमि में ही हमें यह स्थान दिया है।

हीरालाल खन्ना
सभापति
विज्ञान परिषद्

इलाहाबाद
४-४-५६

विज्ञान परिषद् और उसका भविष्य

प्रिंसिपल हीरालाल खन्ना, सभापति, विज्ञान परिषद्

यह वैज्ञानिक युग है। इससे हमारे दैनिक जीवन में विज्ञान की साधारण जानकारी एक बहुत आवश्यक वस्तु है। संसार के उन्नत देशों में विज्ञान की उन्नति और खोज में बड़े-बड़े वैज्ञानिक रात-दिन लगे हुए हैं जिनकी जनसाधारण को भी जानकारी कराने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। वास्तव में विज्ञान की शिक्षा तो देश के प्रत्येक युवक के लिए आवश्यक मानी जानी चाहिए। सर रिचर्ड ग्रिगेरी का यह कथन सब देशों के लिए सत्य माना जाता है :—

'यह आज समझने का समय है कि कोई भी व्यक्ति उस समय तक पूर्ण शिक्षित नहीं माना जा सकता जब तक कि उसे विज्ञान के सिद्धान्तों से कुछ परिचय न प्राप्त हो चुका हो। जो शिक्षण केवल साहित्यिक संसार में विज्ञान के बिना ही समाप्त होता है, वह उसी प्रकार अधूरा होता है जिस प्रकार वह कोरा वैज्ञानिक है, जिसमें स्पष्ट अभिव्यक्ति की शक्ति न हो।'

विज्ञान के इस सार्वभौम प्रभाव को जहाँ अन्य देशों के विद्वानों ने समझा है वहाँ हमारे देश के विद्वानों, साहित्यिकों और महान् राजनीतिक नेताओं ने भी इसकी महत्ता कम नहीं समझी। इन्हीं भावनाओं से प्रेरित होकर एक ओर जहाँ हम विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर को 'विश्व परिचय' की रचना कर युवकों और साधारण जनता में विज्ञान के प्रचार के लिए उत्सुक देखते हैं, वहाँ अपने देश के महान् राजनीतिक नेता श्री नेहरू जी को अपनी पुत्री के बहाने लिखे गए भारत के सभी युवकों और भावी नागरिकों के लिए भूगर्भ विज्ञान सरीखा दुरूह विषय अत्यन्त ही मनोरंजक और सरल रूप में 'पिता के पत्र पुत्री के नाम' में लिखा देखते हैं।

महात्मा गाँधी ने भी राजनीतिक गुत्थियों के सुलझाने में निरन्तर संलग्न रहते हुए भी स्वास्थ्य के वैज्ञानिक सिद्धान्तों को अपने 'आरोग्य-साधन' नामक पुस्तक में लिखकर प्रचारित किया था।

प्रयाग की विज्ञान परिषद् भी गत ४३ वर्षों से देश के भावी नागरिकों तथा जनता को विज्ञान के सिद्धान्तों का सरल रूप में ज्ञान कराने के उद्देश्य से वही काम करती आ रही है।

आज हम यह कहने की आवश्यकता नहीं समझते कि आज से ४३ वर्ष पूर्व किस प्रकार की कठिनाइयों में साधनों का बिल्कुल अभाव होते हुए भी हम लोगों ने देशी भाषा में विज्ञान का साहित्य प्रचारित करने के लिए यह संस्था स्थापित की। उन दिनों अंग्रेजी की शिक्षा थोड़े लोग ही प्राप्त करते थे। उनमें भी विज्ञान का शिक्षण पाने वालों की संख्या और भी थोड़ी होती थी। शासन के ऊँचे पदों पर विदेशी शासक तो थे ही, शिक्षण संस्थाओं में भी ऊँचे पदों पर अंग्रेज लोग ही रहते थे। फिर भी हममें से कुछ लोगों ने हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य निकालने और भाषण दिलाने के लिए यह संस्था खड़ी की। 'विज्ञान' पत्र निकालने का विचार करने वाली समिति में मैं भी एक सदस्य था। कितनी हिचकिचाहट से हम लोगों ने इसके निकालने का निश्चय किया, उसका आज के समय से अनुमान नहीं लगाया जा सकता। तब से अब तक अनेक कठिनाइयों को झेलते हुए किसी प्रकार हमारा 'विज्ञान' पत्र जीवित है और संस्था भी खड़ी है, यह हम सब के लिए बड़े संतोष की बात है। इतने समय में जो विज्ञान सम्बन्धी साहित्य 'विज्ञान' पत्र ने अपनी संस्था द्वारा प्रकाशित पुस्तकों के माध्यम से प्रस्तुत किया है, वह सबके सामने है। हमने तो उर्दू में भी मासिक पत्र निकालने का साहस किया

था, परन्तु ग्राहकों का बहुत अधिक अभाव मिला। फिर भी उर्दू में दो या तीन पुस्तकें अनुवादित कर प्रकाशित कराई गयीं।

हमारी परिषद् ने वैज्ञानिक विषयों पर सरल रूप में जनता के सम्मुख अनेक विद्वानों के भाषण कराने का क्रम भी बहुत दिनों तक जारी रक्खा। जनता को याद होगा कि माननीय मालवीय जी के सभापतित्व में प्रोफेसर शालिग्राम भार्गव ने अर्कमीडीस के सिद्धान्त पर भाषण किया। एक बार लार्ड मेस्टीन ने डा० गणेश प्रसाद का भाषण 'गणित की खोज' विषयक को सुन कर यह कहा कि उन्हें आशा नहीं थी कि हिन्दी में इतना सुन्दर लेख हो सकता है। इसी प्रकार बहुत से लोग भाषण किया करते थे।

हमको भी रायल इंस्टिट्यूशन के अनुसार काम करना है। समय-समय पर हमारे यहाँ के कार्य-कर्त्ताओं को सरकार के साथ सहयोग करना चाहिए और वैज्ञानिक सिद्धान्त का प्रचार करना चाहिए। सब को यह मालूम है कि डा० कोठारी, डा० निहालकरण सेठी, डा० गोरखप्रसाद, डा० ब्रजमोहन, डा० सत्यप्रकाश आदि विद्वान् सरकार से सहयोग करते हैं। लेकिन हम लोगों की धारणा है कि वे कार्याधिकारी के रूप में आगे आयें। हम लोग यह निश्चय करें कि हमारी शाखायें हर एक युनिवर्सिटी टाउन में हों। नगर में भाषण हों और वैज्ञानिक सिद्धान्तों के लिए जनता में रुचि उत्पन्न की जाय। प्रत्येक बड़े महाविद्यालय, विश्वविद्यालय या विज्ञानपीठ में हम स्वतन्त्र रूप की विज्ञान परिषद् स्थापित करें। हम केन्द्रीय रूप में संगठन कर एक स्थान के किसी विषय के विशेषज्ञ और उत्साही वैज्ञानिक को दूसरी संस्थाओं में भाषण देने के लिए निमंत्रित कर विज्ञान का प्रचार करने में विशेष सफल हो सकते हैं। अनेक विज्ञान-प्रेमी जहाँ विषयों का सरल रूप में प्रतिपादन करने वाले लेख, भाषण या ग्रंथ पढ़ने अथवा सुनने के लिए उत्सुक हो सकते हैं, वहाँ बहुत से वैज्ञानिक जनता में विज्ञान प्रचार की उत्सुकता रखते हुए भी हिचक के मारे निष्क्रिय रह सकते हैं। उन सबको हम विज्ञान-सेवा का प्रचुर अवसर दे सकते हैं।

इस प्रकार सरल वैज्ञानिक साहित्य का निर्माण और प्रकाशन भी सबके सहयोग से संभव हो सकता है। हम विज्ञान के अधिकारी विद्वानों को जहाँ साहित्य-निर्माण के लिए प्रेरित कर सकते हैं, वहाँ अन्य प्रकाशकों को भी ऐसा साहित्य प्रकाशन के लिए सहज में तैयार कर सकते हैं।

—मई १९५६

विज्ञान खण्ड

[खन्ना स्मृति अंक के लिए प्राप्त वैज्ञानिक लेखों का संग्रह]

भारतीय दर्शन में 'द्रव्य' की संकल्पना

डा० सिद्धेश्वर वर्मा, होशियारपुर

१. प्रारम्भिका

समग्र विज्ञान तथा दर्शन में सरलीकरण की प्रवृत्ति युगों से चली आई है। संसार में अनन्त रूप तथा घटनाएँ प्रतीत होती हैं परन्तु मूलतः कुछ थोड़े से तत्वों के विकार हैं। इस पर अधिक लिखना बेकार होगा। यह मूलतत्व क्या है इस महाप्रश्न पर सदा से विचार होता आया है। इन मूल तत्वों में एक तत्व 'द्रव्य' है जिस पर भारत तथा अन्य देशों के दार्शनिक प्रचुर विचार करते आये हैं। इस लेख में भारतीय दर्शन में द्रव्य की विशेषताओं पर विचार किया जा रहा है।

२. द्रव्य शब्द की आधारभूत संकलपना

संस्कृत साहित्य में 'द्रव्य' शब्द पहले-पहले कठ उपनिषद् २-१० में प्रयुक्त हुआ है। इस स्थल में इस शब्द का प्रयोग दार्शनिक दृष्टि से नहीं हुआ। सामान्य साहित्य प्रयुक्त 'पदार्थ' के अर्थ में इस स्थल में आया है :—'मैं अनित्य पदार्थों (द्रव्यैः) से नित्य को प्राप्त हुआ हूँ' 'अनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम्'। परन्तु यह साहित्यिक शब्द भी बतलाता है कि 'द्रव्य' की संकल्पना में कुछ दृढ़ता है, नित्यता है, स्थिरता है। आचार्य पाणिनि ने द्रव्य शब्द की व्युत्पत्ति 'द्रु' से की है, बताया है कि 'धन' के अर्थ में प्रयुक्त द्रव्य शब्द-यत् प्रत्यय लगा कर (द्रु) से बना है (५-३-१०४ द्रव्यं च भव्ये)। यह-यत् प्रत्यय सदृशता के अभिप्राय में प्रयुक्त हुआ है। द्रु- का क्या अर्थ है। प्रसिद्ध संस्कृत-जर्मन महाकोश से पता लगा है कि द्रु- का अर्थ लकड़ी है, जिसका विस्तृत रूप संस्कृत 'द्रुम' वृक्ष है और इस कोश में ऋग्वेद ५-८६-३ से एक वाक्यांश दिया गया है, जिसका अर्थ है कि मुझे लकड़ी (अर्थात् लकड़ी से निर्मित नाव) से नदी को पार करने के समान दुखों से निर्मुक्त करो (द्रुणा न पारमीरय नदीनाम्)। इस 'लकड़ी' की संकल्पना में एक स्थिरता है।

३. द्रव्य का 'सामान्य' में अन्तर्भाव

न्याय-वैशेषिक दर्शन ने द्रव्य को 'सामान्य' का एक पक्ष बताया है। पृथ्वी आदि सब द्रव्यों में सामान्य-व्यापक है, अर्थात् यह सारे द्रव्य सामान्य में आ जाते हैं, परन्तु सामान्य इतना विस्तृत है कि इसमें अधिकतर व्यापक 'सत्ता' का भी निवेश हो जाता है (देखिये सिद्धान्त मुक्तावली १६०५, पृष्ठ ६६)। इसलिए द्रव्य को तो निम्नसामान्य (अपर सामान्य) और सत्ता को उत्तम सामान्य (पर सामान्य) कहा है। सामान्य की विशेषताएँ तीन हैं, और वह यह हैं :—

(क) स्थिरता। यह कल्पना आगमापायी गुणों (जैसे संयोग आदि) के बहिष्करण करने के लिए की गई है।

(ख) बहुत्व। सामान्य अनेक पदार्थों में रहता है। कहा गया है कि सामान्य नित्य भी है और अनेक पदार्थों में सदा तल्लीन रहता है। (नित्यत्वे सत्यनेक संवेत-त्वम्)।

(ग) समवाय। अटूट सम्बन्ध को समवाय कहते हैं। सामान्य और द्रव्य का अटूट सम्बन्ध है। वैशेषिक सूत्र १.१५ में द्रव्य का लक्षण ही यह किया गया है कि क्रिया और गुण का समवायिकरण—यही लक्षण द्रव्य का है (क्रिया गुणवत् समवायिकरणमिति द्रव्य-लक्षणम्)। कोई क्रिया नहीं जिसका किसी द्रव्य के साथ सम्बन्ध न हो और न ही कोई गुण ही है जो किसी द्रव्य के साथ असम्बन्धित हो। यदि द्रव्य हो तो क्रिया भी होगी, यदि द्रव्य हो तो गुण भी होगा। इस अनुमान से द्रव्य को गुण और कर्म का समवायिकारण

बनाया गया है। एक स्थल में यह भी कहा गया है कि द्रव्य पहले निर्गुण तथा निष्क्रिय उत्पन्न होता है तदनन्तर गुण और क्रिया उत्पन्न होती है। संभव है कि द्रव्य की निर्विशिष्ट अवस्था को मन में रख कर इस प्रकार का निरूपण किया गया हो (देखिए न्यायकोश 'द्रव्यम्' पृष्ठ ३६६)।

४. द्रव्य की बौद्धिक संकल्पना

उत्तरोक्त सामग्री से स्पष्ट हो जाएगा कि भारतीय 'द्रव्य' की संकल्पना सर्वथा बौद्धिक थी, केवल अनुमान द्वारा कल्पना की गई थी कि गुण आदि की स्थिति किसी सामान्य पदार्थ की विद्यमानता पर ही संभव है। परन्तु आश्चर्य है कि यूरोप में द्रव्य की बौद्धिक संकल्पना १७ वीं शताब्दी में लाक और ह्यूम द्वारा प्रतिपादित की गई (देखिए एनसाक्लोपीडिया ब्रिटानिका १४ संस्करण, लेख सबस्टेन्स, पृष्ठ ५०१)।

प्रसिद्ध ग्रीक दार्शनिक अरस्तू के मत में कोई भी पदार्थ द्रव्य कहा जा सकता है यदि उसकी एकता स्वाभाविक हो अर्थात् उसका कोई भाग न हो सके। (देखिए दी ग्रेट बुक्स आव दी वेस्टर्न वर्ल्ड, भाग ३, पृ० २८१)। स्पष्ट है कि इस प्रकार का द्रव्य जिसका भाग न हो सके सर्वथा अनुभवातीत है और अग्राह्य है, बौद्धिकता पर आश्रित प्रामाण्यवाद से दूर है।

नव्य न्याय ने द्रव्य की धारणा को इतना व्यापक बना दिया कि समग्र विश्व के पदार्थ यथा ईश्वर, जीव, प्रकृति, देह, इन्द्रिय आदि सबका इस द्रव्य में अन्तर्भाव हो गया। पाणिनि के युग में तो द्रव्य का अर्थ केवल धन ही रहा, परन्तु न्याय की बौद्धिक कल्पना ने द्रव्य को बड़े सूक्ष्म स्तरों पर पहुँचा दिया।

५. उपसंहार

वर्तमान दर्शन-शास्त्र की प्रवृत्ति अधिकतर ज्ञान के सूक्ष्म लक्षणों और हेतुओं के निर्धारण की ओर अधिक जा रही है। इस दर्शन-विभाग का नाम एपिस्टिमोलोजी है, जिसे हमारे आचार्य 'प्रामाण्यवाद' कहते थे। इस प्रामाण्यवाद पर अनेक आचार्यों ने बहुत विमर्श किया, जिनमें गंगेश विशेष उल्लेखनीय है।

यह समुचित प्रतीत होता है कि इन दार्शनिक प्रसंगों का तुलनात्मक दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाए। तुलनात्मक दृष्टिकोण के बिना बौद्धिक जीवन अन्धकारमय है।

●●

जीवत और अजीवत के बीच की कड़ी

कौशलेन्द्र मोहन तिवारी

"विश्व में जीव हैं और अजीव हैं। परन्तु जीवों और अजीवों का समिश्रण नहीं है।" प्रायः यही समझा जाता है। यह किसी सीमा तक सत्य भी है किन्तु २०वीं शताब्दी के वैज्ञानिकों और वैज्ञानिक यन्त्रों ने इस सत्य को असत्य में परिणत कर दिया है। हमारे आसपास ऐसे भी जीव हैं जो न जन्तु हैं और न वनस्पति ही। यही नहीं, वे न तो जीवों में सम्मिलित हैं और न अजीवों में ही।

अभी तक प्राणि शास्त्र में वैक्टीरिया को सूक्ष्मतम प्राणी माना जाता था किन्तु अब यह निश्चित हो चुका है कि बैक्टीरिया से भी सूक्ष्म प्राणांश-जैसी वस्तुयें इस पृथ्वी पर हैं। इन्हें विषाणु या वाइरस कहते हैं।

विषाणु कितने छोटे होते हैं ?

शाकाणु माइक्रान में नापे जाते हैं और विषाणु या वाइरस मिलीमाइक्रान में। यों समझिये :—"सेंटीमीटर का दसवाँ भाग होता है एक मिलीमीटर। एक मिलीमीटर का हजारवाँ भाग होता है एक माइक्रान और ऐसे एक माइक्रान का हजारवाँ भाग होता है मिलीमाइक्रान। इन्हीं मिलीमाइक्रानों में नापे जाते हैं ये विषाणु या वाइरस।" इनका आकार विभिन्न स्पीसीज़ में भिन्न-भिन्न होता है। कुछ में ये शलाकावत् होते हैं और कुछ में गोल शलाकावत्। विषाणु भी कभी लम्बे और कभी छोटे होते हैं। अल्फाल्फ नामक औषधोपयोगी पौधे में रोग उत्पन्न करने वाले विषाणु गोल होते हैं। इसी प्रकार तम्बाकू के बिन्दु रोग (टोबैको मोजैक) के विषाणु लम्बे होते हैं। इनका व्यास १७ मिलीमाइक्रान और लम्बाई ५०० मिलीमाइक्रान होती है। सबसे बड़ा विषाणु अभी तक प्राप्त सबसे छोटे बैक्टीरियम से भी छोटा होता है और सबसे छोटा वाइरस भी प्रोटीन के छोटे से छोटे अणु से छोटा होता है। अब आप स्वयं ही सोच सकते हैं कि कितने छोटे होते हैं ये विषाणु या वाइरस। फिर भी सन् १८८७ में इनकी झलक मिल गयी थी। सर्व प्रथम डाक्टर जान ब्राउन ने इनकी उपस्थिति की सम्भावना व्यक्त की थी। आजकल "इलेक्ट्रान माइक्रोस्कोप" की सहायता से इनका निरीक्षण किया जाता है परन्तु वास्तविकता यह है कि आतिथेय पर अपने प्रभाव से इनकी उपस्थिति की जानकारी होती है।

विषाणुओं की प्रकृति

यह एक रहस्य है। कुछ विषाणु-विज्ञों का कहना है कि ये जीवित हैं और कुछ के विचार से ये मृत या अजीवित हैं। कुछ वैज्ञानिकों का मत तो यह है कि विषाणु अवस्था एक ऐसी अवस्था है जो न जीवित ही कही जा सकती है और न अजीवित ही वरन् यदि यह कहा जाय कि विषाणु जीवित और अजीवित के बीच की स्थित है, तो अनुचित न होगा। कुछ अन्य वैज्ञानिकों के मतानुसार विषाणु जीवित होते हुए भी कुछ मृत गुण प्रदर्शित करते हैं। यही नहीं, कुछ विशेषज्ञों ने इन्हें "अल्ट्रावैक्टीरिया" या "टाक्सिक पदार्थ" माना है।

विषाणु जीवित हैं

जो विषाणु-विज्ञ इन्हें जीवांश मानते हैं, उनका कहना है कि जीवित होने की पहिचान है उत्पादन और बृद्धि। ये दोनों ही गुण विषाणुओं में पाये जाते हैं। एक रूसी विद्वान ने विन्दुरोग से पीड़ित तम्बाकू की पत्ती को मसल डाला, रस को बहुत बारीक पोर्सेलीन फिल्टर से छाना। बैक्टीरिया तो छन्ने के ऊपर ही रह गये परन्तु

वाइरस छने हुए तरल में आ गये। छने हुए विषाणु-युक्त रस को स्वस्थ पत्ती में प्रविष्ट कराया गया। उस पत्ती में भी उपर्युक्त रोग हो गया। इससे सिद्ध होता है कि विषाणु जीवित हैं।

विषाणु मृत हैं

जिनके अनुसार विषाणु अजीवित हैं, उन विशेषज्ञों ने बहुत से रोगी तन्तुओं से प्राप्त विषाणुओं का निरीक्षण किया। ये बिल्कुल रवों जैसे थे। ये रवे पुनः नये पौधों को रोगी बना देने की क्षमता रखते पाये गये। इस प्रकार उनके मत से रवों की रचना के जीव होना सम्भव नहीं है।

विषाणु : एक मिश्रण

कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि वाइरस न तो पूर्णरूपेण जीवित हैं और न अजीवित। वाइरस अधिक अणुभार वाले प्रोटीन के कण हैं। प्रोटीन और न्यूक्लिक अम्ल इनके मुख्य अवयव हैं। अतः यदि इन्हें न्यूक्लियोप्रोटीन की प्रकृति का कहा जाय तो अनुचित न होगा।

विषाणु और बीमारियाँ

ये परजीवी हैं अर्थात् ये अपना भोजन नहीं बनाते हैं। दूसरों से ही बना बनाया भोजन प्राप्त करते हैं। मनुष्यों, जानवरों और पेड़-पौधों सभी में ये रोग उत्पन्न करते हैं। मनुष्यों में ये छोटी चेचक, खसरा, कनमूर, इन्फ्लुएन्जा, स्कारलेट फीवर, एलो फीवर, लकवा और जुकाम आदि रोगों के जनक हैं।

जानवरों में विषाणु जनित प्रमुख रोग हैं—गाय को होने वाली चेचक तथा फुट एण्ड माउथ।

आलू, तम्बाकू, गन्ना, सेम आदि में भी तरह-तरह के रोग इनके द्वारा उत्पन्न होते हैं।

वाइरस हमें लाभ भी पहुँचाते हैं

बात आश्चर्यजनक तो अवश्य है, परन्तु है सत्य। विभिन्न मानव मात्र को हानि पहुँचाने वाले बैक्टीरिया को विषाणु खा जाते हैं। होते तो बैक्टीरिया से छोटे हैं परन्तु उन्हें खाते बड़े चाव से हैं। इसीलिये कुछ विशेष तरह के विषाणु **"बैक्टीरियोफेज"** कहलाते हैं। इस प्रकार एक हानिकारक तत्व दूसरे से लड़कर हमारी रक्षा करते हैं।

गंगाजल पवित्र क्यों

कुछ विषाणु-विज्ञों का कहना है कि बहुत से प्राकृतिक जलों और विशेष कर गंगाजल इन्हीं विषाणुओं की उपस्थिति के कारण हमें लाभ पहुँचाता है। शरीर के हानिकारक बैक्टीरिया के लिये विषाणु, जो जल में उपस्थित होते हैं, 'विषकन्या' का कार्य करते हैं। इस प्रकार हम बिना औषधि का सेवन किये ही रोग जनक बैक्टीरिया पर विजय प्राप्त कर लेते है।

संक्रमण की क्रिया विधि

किस प्रकार एक जीव से दूसरे जीव तक ये पहुँच कर उसमें रोग उत्पन्न करते हैं और किस प्रकार शरीर के क्षय पहुँचाने में सफल होते हैं, यह क्रिया भी बड़ी विचित्र हैं।

सच पूछिये तो बिना आतिथेय की हार्दिक सहायता के न तो विषाणुओं में गुणन ही सम्भव है और न ही वे रोग उत्पन्न कर सकते हैं।

यद्यपि प्रारम्भ में जब विषाणु जीवित कोशिका के सम्पर्क में आता है, तब कोशिका इससे सम्बन्ध को पसन्द नहीं करती है परन्तु एक बार सम्पर्क में आने पर कोशिका, विषाणु को वह प्रत्येक वस्तु देती है जो वह चाहता है। इस सम्बन्ध में यह जान लेना आवश्यक है कि विषाणु कभी भी पूरे शरीर पर एकाएक आक्रमण नहीं करते हैं। एक कोशिका से प्रारम्भ करके धीरे-धीरे पूरे शरीर पर बढ़ते हैं। अभी तक के ज्ञान के आधार पर सर्प वर्ग विषाणुओं की क्रियाओं से मुक्त हैं।

●●

दिव्य दृष्टिधारी 'रडार'

रामेश्वर दयाल शर्मा, नई दिल्ली

दिन प्रति दिन की मौसम सम्बन्धी सूचनाएँ आप रेडियो पर सुनते होंगे कि आज मौसम सुहावना रहेगा या हवा के साथ निम्न स्थानों पर छींटे पड़ेंगे। कभी-कभी किसी भारी तूफान की भी सूचना मिलती है। आप सोचते होंगे कि आखिर इन सूचनाओं का ज्ञान होता कहाँ से है ? क्या यह ज्योतिष का चमत्कार है या किसी भविष्यवक्ता का ? लेकिन नहीं, यह सब देन है आधुनिक विज्ञान के अनुपम उपकरण 'रडार' की।

यद्यपि 'रडार' के मूलभूत सिद्धान्त का आविष्कार १९३० के आस-पास हो चुका था लेकिन इसको सामरिक अस्त्र बनाने का श्रेय एक अंग्रेज वैज्ञानिक वाटसन वाट को ही है। १९३५ की गर्मियों में अंग्रेज वैज्ञानिकों ने पूर्वीय एकान्त प्रयोगशाला के अन्दर एक प्रकाश-रेखा की जाँच की जो कैथोड रे ट्यूब पर बनी। धीरे-धीरे एक वी (V) के आकार की आकृति उस रेखा के साथ-साथ चलती नजर आयी और ट्यूब के दूसरे सिरे पर जाकर लुप्त हो गयी। यह प्रयोग बाद में हवाई जहाज पहिचानने तथा उनकी स्थिति, गति और दिशा जानने में बड़ा ही उपयोगी सिद्ध हुआ तथा बाद में रडार के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसका पहला प्रयोगात्मक स्टेशन इंगलैण्ड में १९३५ में बना तथा द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान तो इंगलैण्ड के चारों ओर लगभग ४० रडार स्टेशन थे। दूसरे महायुद्ध में जर्मन हवाई हमलों में इंगलैण्ड की आशातीत क्षति न होने का कारण 'रडार' ही था। इसी यंत्र की सहायता से वहाँ के सैनिक अधिकारियों को जर्मन हवाई जहाजों की पूर्व सूचना मिल जाती थी जिससे वे जनता को हवाई हमले से सतर्क कर देते थे। हाल ही में हुए भारत-पाक संघर्ष में रडारों ने बेजोड़ कमाल दिखाया था। हमारी सीमा के साथ-साथ कई स्थानों पर रडार-सेट सज्जित थे जिनकी सहायता से दुश्मन के भारी से भारी हवाई हमले विफल कर दिये गये। गुजरात के मुख्यमंत्री के विमान को मार गिराने के बारे में आप सभी ने पढ़ा होगा। इस दुर्घटना की छान-बीन के पश्चात् यही अनुमान लगाया गया, जो
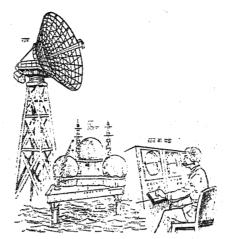
सत्य भी था, कि गुजरात की सीमा पर दुश्मन का कोई रडार स्टेशन होगा जिसकी सहायता से इस विमान का पता लगा होगा और विमान को अकेला देख कर उसका पीछा किया और मार गिराया। इस घटना के दूसरे दिन ही हमारी वायुसेना के कुशल विमान चालकों ने उस स्टेशन को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

रडार शब्द का अर्थ है रेडियो-तरंगों से स्थिति ज्ञात करना। यह Radio Angle Direction And Range वाक्यांश के शब्दों के पहले अक्षरों से बना है। 'रडार' को चाहे सीधे पढ़ें या उलट कर, दोनों ही प्रकार से 'रडार' बनता है।

विधाता ने भी मानव का निर्माण करते समय उसके साथ साथ एक कमी छोड़ दी। वह कमी है मनुष्य का अँधेरे में कुछ न देख सकना क्योंकि हमारी आँखें उसी वस्तु को देख सकती हैं जिससे टकरा कर परावर्तित प्रकाश हमारी आँख तक पहुँच जाये। अँधेरे में परावर्तित

किरणें आँख तक नहीं पहुँच पातीं इसीलिए अँधेरे की प्रत्येक वस्तु हमारे लिए अदृश्य होती हैं। इस प्राकृतिक कमी को पूरा करने में मनुष्य पूर्णतः सफल रहा है। रडार एक ऐसी आँख है जिसमें वस्तु को प्रकाशमान बनाने तथा देखने की दोनों ही क्षमतायें साथ-साथ होती हैं। इसलिए रडार में सर्चलाइट तथा आँख दोनों की व्यवस्था होती है।

रडार के एन्टेना में वस्तु को प्रकाशमान बनाने की टार्च का काम ट्रांसमीटर करता है तथा आँख का काम रिसीवर। इसके शक्तिशाली रेडियो ट्रांसमीटर से प्रकाश तरंगें नहीं निकलती हैं और उसका संवेदनशील रिसीवर भी परावर्तित रेडियों तरंगें ही ग्रहण करता है। रडार का ट्रांसमीटर लगातार तीव्र तरंगें न भेज कर बीच में थोड़ा रुक-रुक कर रेडियो तरंगें भेजता है क्योंकि असावधानी बरतने से तथा लगातार तीक्ष्ण तरंगें भेजने से रडार का रिसीवर चौंधिया जाता है। इसके अन्दर इस प्रकार की व्यवस्था होती है कि तरंग भेजते समय केवल ट्रांसमीटर ही एन्टेना से सम्बन्धित रहता है तथा गूँज ग्रहण करते समय रिसीवर। रडार के ट्रांसमीटर द्वारा तरंगें भेजने की अवधि छोटी होती है तथा अवकाश की अवधि बड़ी और इस अवकाश की अवधि में रिसीवर वस्तु से परावर्तित होने वाली गूँज को ग्रहण करता है तथा इसी बीच उस वस्तु का चित्र 'रडार के पर्दे' पर बन जाता है जिससे वस्तु के आकार तथा दिशा का ज्ञान होता है।

ट्रांसमीटर द्वारा भेजी गयी रेडियो तरंगों में से उनका कुछ भाग वस्तु से टकरा कर परावर्तित हो जाता है जिससे रिसीवर द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है। इन तरंगों के भेजे जाने तथा लौट कर आने के बीच के समय के अन्तर एवं तरीकों से वस्तु की स्थिति, दूरी तथा गति के बारे में ज्ञान हो जाता है। रेडियो तरंगों की गति प्रकाश की गति के बराबर होती है इसलिए रेडियो तरंगों को किसी वस्तु तक पहुँचने तथा उससे टकराकर परावर्तित होने में बहुत ही अल्प समय लगता है। इसके लिए रेज़ोनेन्ट ट्रांसफार्मर, इमीडेन्स, इन्वर्टर और स्पार्क गैसों के एक संयोजक का जिसे ड्यूप्लीक्सर कहते हैं उपयोग किया जाता है।

इसके अन्दर एक कैथोड-रे ट्यूब होती है जो कि विद्युत् प्रवाह में होने वाली घट-बढ़ को ग्राफ के रूप में दर्शाने वाली एक इलैक्ट्रानिक युक्ति है। तरंगों द्वारा लघु लहरों को भेजने वाला रडार अति सुग्राही होता है क्योंकि लघु-तरंगों द्वारा छोटी से छोटी वस्तु की दूरी तथा आकार का ठीक-ठीक पता लग जाता है। कैथोड-रे ट्यूब के अन्दर एक इलैक्ट्रान समूह स्क्रीन पर चिन्ह अंकित करता है। इस समूह द्वारा स्क्रीन पर सबसे पहले एक आड़ी सरल रेखा जिसे रेन्जर लाइन कहते हैं खींच लेते हैं। ट्रांसमीटर जैसे-जैसे तरंगें प्रसारित करता है इलैक्ट्रान समूह बायीं ओर से रेन्ज लाइन खींचना शुरू करता है तथा जब परावर्तित गूँज रिसीवर द्वारा ग्रहण की जाती है तो इलैक्ट्रान समूह इस रेन्जर लाइन पर खड़े निशान बनाता है जिन्हे 'पिप्स' कहते हैं। वस्तु रडार से जितनी दूरी पर होगी पिप्स स्क्रीन के उतने ही दाहिनी तरफ दिखायी देगें क्योंकि जितना अधिक समय तरंगों के जाने तथा वस्तु से टकरा कर लौटने में लगेगा उतने ही पिप्स हटे हुए नजर आयेंगे। इस प्रकार की व्यवस्था को ए-स्कोप कहते हैं जिसके द्वारा वस्तुओं की दूरी का ठीक-ठीक पता लगाया जाता है।

रडार के अन्दर रेडियो तरंगें प्रयोग में आतीं हैं
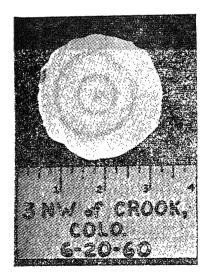
इसीलिए यह अँधेरे, कुहरे और धुँए एवं बादलों के भी पार देखने में समर्थ होता है। मौसम विज्ञान के बारे में अग्रसूचक रडार ही है। यह तूफान, आँधी, वर्षा इत्यादि की जानकारी पहले ही करा देता है। इसीलिए इसका सबसे महत्वपूर्ण उपयोग हवाई तथा समुद्री यातायात में किया जा रहा है। जिस बादल को हम रडार द्वारा देख सकते हैं उसे रडार मेघ कहते हैं। मेघ की जानकारी के लिए एन्टेना के ट्रांसमीटर से रेडियो-तरंगें निकल कर वायुमंडल में विद्यमान पानी के कणों से टकरा कर चारों ओर बिखर जाती हैं। इनमें से कुछ विक्षेपित किरणें रडार के रिसीवर तक लौट कर सूचक पर्दे पर प्रतिबिम्बित हो जाती हैं। बादलों में स्थित पानी की परावर्तकता काफी होती है इसलिए पर्दे पर उनका चित्र भी स्पष्ट बनता है। रडार द्वारा लगभग ३५० से ४०० मील दूर तक के बादलों के आयतन, दूरी एवं गति के बारे में ठीक-ठीक अनुमान लगाया जा सकता है। मौसम विज्ञान के क्षेत्र में रडार के प्रयोग होने के काफी समय पश्चात् तक वैज्ञानिकों के सामने आने वाले तूफान तथा केवल वर्षा वाले तूफान को पहचानने की समस्या बराबर बनी रही क्योंकि रडार के पर्दे पर दोनों तरह के तूफानों की गूँज का चित्र लगभग एक-सा ही बनता था। इस समस्या का समाधान एक अमेरिकन वैज्ञानिक प्रो० आर० गूहार्ट ने १९६० के लगभग अपने प्रयोगात्मक अनुसंधानों के आधार पर किया। उनके मतानुसार सिर्फ वर्षा वाले तूफान का चित्र 'ए-स्कोप' पर हल्का-सा प्रदर्शित होता है, जबकि ओले वाले तूफान का चित्र गहरी वक्रीय रेखाओं द्वारा चित्रित होता है।

बहुउपयोगी पौलीथीन

धर्मनारायण लड्ढा, राजस्थान

बहुलक वह पदार्थ है जिसका अणुभार अति उच्च होता है। यह अणुभार यौगिकों के अणुभार से उच्चतर होता है। प्राय: बहुलकों का अणुभार १००० से ऊपर होता है। व्यापारिक दृष्टि से उपयोगी बहुलकों का अणुभार १०,००० से ५०,००० तक होता है यद्यपि इससे भी उच्च अणुभारीय बहुलक उपलब्ध हुए हैं।

निम्नअणुभारीय यौगिकों के अणुओं का परस्पर संयोग होने पर एक उच्च अणुभारीय पदार्थ प्राप्त होता है जिसे बहुलक कहते हैं। इस अभिक्रिया को बहुलीकरण कहा जाता है। यौगिक जो बहुलक में परिवर्तित होने की सामर्थ्य रखता है एकलक कहलाता है। कैरोथर (Carother १९३०) के शब्दों में **"बहुलीकरण एक अन्तरणु सम्मिलन है जिसमें एक अटूट श्रृंखला का निर्माण होता है।"**

बहुलकों से अत्यन्त उपयोगी पदार्थ एवं वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। रुई और ऊन प्राकृतिक बहुलक हैं। औद्योगिकोपयोगी बहुलक अधिकांशत: कृत्रिम हैं, यथा **बैकलाइट, मीलमेक** (Melmac), **डैक्रोन, नायलॉन, सिलिकोनस, लूसाइट** (Lucite) **सीलेंस, ओरलॉन, स्टाइरान, टेफलॉन, परसपेक्स, पौलीप्रीन, पौलीस्टर, तंतु आदि। पौलीथीन** एक ऐसा ही बहुलक जिसकी उपादेयता अत्यधिक है।

पौलीएथिलीन या पौलीथीन

एथिलीन के अणु परस्पर संयोग कर पौलीएथिलीन नामक बहुलक बनाते हैं। यह क्रिया आक्सिजन की उपस्थिति में होती है जो उत्प्रेरक का कार्य करती है।

$$(n+२)\ CH_२=CH_२ \xrightarrow[\text{उत्प्रेरक}]{O_२} CH_३\,CH_२\,(CH_२.\,CH_२)n\,CH=CH_२ ......(१)$$

इस बहुलक का अणुभार १००० से ऊपर होता है।

एथिलीन को आक्सिजन या बेंजाइलपरॉक्साइड उत्प्रेरक के साथ उच्च दाब पर गर्म किया जाता है। अन्तरणु अभिक्रिया का आविर्भाव होता है, परिणाम स्वरूप असंतृप्त हाइड्रोकार्बन, पौलीथलीन या पौलीथीन नामक बहुलक में परिवर्तित हो जाता है। इस विधि से प्राप्त हुआ बहुलक उच्च अणुभारीय हाइड्रोकार्बनों का सम्मिश्रण होता है जिसमें युग्मबंध का ध्यान न रखने से पौलीएल्केन (Polyalkanes) भी कहा जाने लगा है। n का मान अस्थिर है। वैज्ञानिकों के कथानुसार एक प्रयोग में विभिन्न दशाओं के अन्तर्गत n का मान ५० से ७०० तक न्यूनाधिक किया जा सकता है जब कि औसत मान ५०० रहता है। इस बहुलक के अधिकतम पुनरावृत्ति मूलक ($-CH_२$-$CH_२-$) २८ होते हैं। अतएव इस बहुलक का औसत अणुभार १४,००० होता है। उच्च अणुभार ही बहुलक एवं यौगिकों के बीच विशिष्ट अंतर लाता है। बहुत से बहुलकों या उनसे प्राप्त सुघट्यों में एक यौगिक ही नहीं होता है अपितु अनेक यौगिकों के संयोग से बने जटिल मिश्रण होते हैं जिनके उच्च अणुभारों का तो कहना ही क्या?

जैसा कि बताया जा चुका है आक्सीजन या बेंजाइलपराक्साइड उत्प्रेरक की उपस्थिति में एथिलीन का बहुलीकरण होता है। इस अभिक्रिया की वैज्ञानिकों ने निम्न प्रक्रमों के आधार पर व्याख्या की है।

१—बेंजाइल पराक्साइड उत्प्रेरक होने पर एथिलीन मुक्तमूलक प्रक्रम से बहुलीकृत होता है।

२—बोरॉनट्राइफ्लोराइड उत्प्रेरक होने पर आयनिक प्रक्रम से बहुलक बनता है।

मुक्त मूलक प्रक्रम की मुख्य शर्तें हैं – उत्प्रेरक, उच्चदाब, एवं ऊष्मा। बहुलीकरण में प्रयुक्त उत्प्रेरकों में बेंजाइल परावसाइड प्रमुख है। गर्म करने पर इसका मुक्त मूलकों में विखंडन हो जाता है और कार्बन डाइ आक्साइड गैस निकलती है।

$$C_६H_५C(=O)—O—O—C(=O)C_६H_५ \rightarrow २ C_६H_५ + २ CO_२\uparrow \quad (२)$$

उपर्युक्त बने मुक्त मूलक निम्न प्रकार से बहुलीकरण क्रिया का समारम्भ करते हैं—

श्रृङ्खला का सूत्रपात—यह क्रिया मन्द है क्योंकि मुक्त मूलक धीरे-धीरे बनते हैं किन्तु बनने के पश्चात् तुरन्त एथिलीन से संयोग करते हैं—

$$C_६H_५ + CH_२ = CH_२ \rightarrow C_६H_५CH_२CH_२ \quad (३) \longrightarrow$$

श्रृङ्खला वृद्धि—बहुलक कड़ी बनने के बाद शीघ्र वृद्धि करती है।

यह अगणित अणुओं के साथ सम्मिलित होकर एक अटूट श्रृङ्खला का निर्माण करती है—

$$C_६H_५CH_२CH_२ + (n+1)\ CH_२ = CH_२ \rightarrow C_६H_५CH_२CH_२(CH_२CH_२)n\ CH_२CH_२ \quad (४)$$

जैसा कि उल्लेख किया गया है, n का मान बहुत उच्च है तथा साधारणतया ५० से ऊपर होता है।

श्रृङ्खला का अन्त—श्रृङ्खला वृद्धि में समीकरण (४) में प्रदर्शित कड़ी जब इसी प्रकार की दूसरी कड़ी से परस्पर संयोग करती है तो उनके स्वतन्त्र मूलक सिरे सहसंयोजक बंध बनाकर मिल जाते हैं। फलस्वरूप श्रृङ्खला वृद्धि समाप्त हो जाती है :—

$$C_६H_५CH_२CH_२(CH_२CH_२)n\ CH_२CH_२ + CH_२CH_२(CH_२CH_२)n\ CH_२CH_२C_६H_५ \rightarrow$$

$$C_६H_६(CH_२)_२(CH_२CH_२)n(CH_२)_४(CH_२CH_२)n(CH_२)_२C_६H_५ \quad (५)$$

आयनिक प्रक्रम एथिलिनिक यौगिकों के बहुलीकरण के लिये उपयुक्त है। बोरॉनट्राइफ्लोराइड की उपस्थिति में कम ताप पर (O°c से भी कम) उच्च बहुलक प्राप्त होते हैं। आइसोब्यूटिलीन का बहुलीकरण एक ज्वलन्त दृष्टान्त है जिससे रबर की तरह का बहुलक प्राप्त होता है।

गुण एवं उपयोग

पौलीथीन एलकेन्स की भाँति व्यवहार करता है। इसमें वे सब गुण पाये जाते हैं जो संतृप्त हाइड्रोकार्बन के होते हैं अर्थात् अम्ल, क्षार (सान्द्र व तनु), लवण एवं अन्य कार्बनिक रसायनों के प्रति यह बिलकुल निष्क्रिय है किंतु परक्लोरिक अम्ल से पौलीथीन अभिक्रिया करता है। कार्बन डाइ सल्फाइड तथा कुछ हाइड्रोकार्बन अवकलज आदि भी पौलीथीन से अभिक्रिया कर उसे नष्ट कर देते हैं, कभी-कभी दरारें भी पड़ जाती हैं। वाष्पशील कार्बनिक विलायक, यथा एसीटोन, ईथर आदि पौलीथीन पात्रों के लिए अनुपयुक्त हैं क्योंकि ये पौलीथीन के रासायनिक अवयवों से अभिक्रिया कर पौलीथीन के प्लास्टिक स्वभाव को नष्ट कर देते हैं।

पौलीथीन उद्योगों में सुघट्य के रूप में काम आता है क्योंकि यह ताप द्वारा सुनम्य है। ताप से प्रभावित होने पर यह लचीला और तरल बन जाता है तथा बहने लगता है। पौलीथीन ११५° ताप तक सुघट्य रूप में रहता है। इसमें ताप सुघट्य बहुलकों का झिल्ली बनाने का गुण भी है। यह सुगमता से पतली झिल्लियों तथा चादरों में परिणत हो जाता है। पौलीथीन के ये दोनों गुण—ताप सुघट्यता एवं कुट्टयता बहुत ही महत्वपूर्ण

हैं जिसके कारण कई प्रकार की उपयोगी वस्तुएँ बनाई जाती हैं। बरसाती कोट, टेबलक्लाथ, शावरपर्दा, कई प्रकार के रंग आदि दैनिक जीवन की अनेक वस्तुएँ इस चमत्कारी बहुलक से बनने लगी है।

परीक्षणार्थ उपकरण भिन्न-भिन्न घनत्व के पौलीथीन के बने होते हैं। निम्नघनत्व पौलीथीन (घ० = ०·६२) से निपीड़न किस्म के उपकरण यथा बिंदुस्यन्दक बोतल, धावन बोतल, पतली नलियाँ, अपकेन्द्रित नलियाँ तथा पात्र आदि बनाए जाते हैं जबकि उच्च घनत्व पोलीथीन (घ० = ०·६५) अधिक दृढ़ एवं टिकाऊ होने के कारण चौड़े मुँह की बोतलों, निस्यंदन फ्लास्क, निस्यंदन कीप, बुकनर कीप, बीकर, अंशांकित सिलिंडर, बड़े-बड़े टब आदि बनाने में काम आता है। निम्न घनत्व पौलीथीन के बने उपकरण ६० – ७०° ताप को सहन कर सकते हैं किंतु उच्च घनत्व पौलीथीन से ६० – १००° ताप में भी कार्य किया जा सकता है। इस तरह के नाना भाँति के दृढ़ एवं दीर्घजीवी उपकरणों को बनाने में पौलीथीन बहुत उपयोगी सिद्ध हो रहा है। इस प्रकार प्रयोगशाला में प्रयुक्त होने वाले अनेकानेक उपकरण पौलीथीन के उपलब्ध हैं। ये पात्र हल्के, मजबूत एवं पकड़ने में आसान होते हैं। काँच के बर्तनों जैसी क्षणिक भंगुरता इनमें नहीं होती है अतः इनके साथ प्रयोग करने में वह भय नही रहता है जो शीशे के उपकरणों को प्रयुक्त करने पर होता है। पौलीथीन के बने उपकरणों की उपादेयता के कारण उन्हें औषधालयों में एवं औषधियों के लिए भी इस्तेमाल किया जाने लगा है। मूल्यवान् एवं संजीवन औषधियाँ पौलीथीन की आकर्षक बोतलों एवं हल्के संदूकों में सुगमता से रखी जाती हैं।

पौलीथीन विद्युत् का सुचालक नहीं अतः इसका उपयोग विद्युत् प्रवाह को अवरुद्ध करने में भी किया जाता है।

क्वांटम --३

महेन्द्र, प्रयाग विश्वविद्यालय

अनिश्चितता का सिद्धान्त

आधुनिक भौतिक विज्ञान के नियमानुसार घटनाएं परमाणु सतह पर निश्चितता से व्यक्त नहीं की जा सकती हैं। इस असंगत व्याख्या को-किसी समय तो कणिकाएँ तरंगों का आचरण करती हैं तथा किसी समय तरंगें कणिकाओं की प्रकार व्यहार करती हैं, स्पष्ट किया गया है।

सन्दिग्धता का विचार विज्ञान का नियम होने के कारण वास्तव में बीसवीं सदी के दार्शनिकों को असमंजस में डाले रहा। लेकिन 'अनिश्चितता के सिद्धान्त" ने उस जटिल समस्या का समाधान कर दिया—जो कि आधुनिक भौतिक विज्ञान के लिये एक मुख्य समस्या बनी हुई थी।

प्रारम्भ में वस्तु की गति की चिर-प्रतिष्ठित धारणा को लेकर हम यह कल्पना करेंगे कि गतिमान वस्तुओं के चक्राकार पथ की धारणा उतनी ही प्राचीन है, जितना कि मानवीय मस्तिष्क। प्राचीन आदि वासी (गुफाओं के मानव) जो अपने शिकार के ऊपर पत्थर या बरछा फेंकते थे, वे उसके पथ का मस्तिष्क में स्पष्ट चित्र रखते थे। उन्होंने यह बतलाया कि अगर वस्तु को ठीक दिशा तथा उचित गति से फेंका जाये तो वस्तु अपने लक्ष्य पर गिरेगी। इस प्रकार मनुष्य के मस्तिष्क में सर्वप्रथम गति की प्रकृति के विषय में गतिमान वस्तु के पथ की मूल धारणा का प्रदुर्भाव हुआ तथा १८वीं एवं १९वीं सदी में गणितज्ञों को इस सिद्धान्त के आधार पर ग्रहों की गतियों की ठीक-ठीक गणना करने की क्षमता प्राप्त हुई। परन्तु २०वीं सदी के प्रदुर्भाव होते ही भौतिक विज्ञान में जिस मूल क्रान्ति ने प्रवेश किया वह थी कि मानव ने चिर प्रतिठिष्त यांत्रिकी के नियमों एवं ऊर्जा के नियमों को खोज निकाला। अलबर्ट आइन्स्टाइन ने नवीन आपेक्षिकता दिक काल एवं गति की धारणा को व्यक्त किया जबकि दूसरी ओर परमाणु का स्पष्टीकरण "क्वान्टम सिद्धान्त" के आधार पर सम्भव हो सका।

पारमाणविक क्षेत्र में दो अन्वेषण विशेषत: रुचिकर थे—'सामान्य ज्ञान एवं सामान्य अनुभव—एक उस सत्य का आचरण करता था जिसमें आइंस्टाइन एवं प्लैंक के कार्य के परिणाम निहित थे, दूसरे मनुष्यों द्वारा उनसे तथ्यों पर यह धारणा स्थापित की गई कि प्रकाश ऊर्जा की विभिन्न गड्डियों द्वारा बना हुआ हैं, जिन्हें फोटान कहा गया। फोटान की ऊर्जाप्रकाश की आवृति (या तरंग दैर्घ्य) के साथ बढ़ती है। इसको hv व्यंजक से ठीक प्रकार व्यक्त किया जा सकता है जहाँ h प्लैंक का नियतांक तथा v (न्यू) तरंग की आवृति है। द्रव्य केवल कुछ निश्चित क्वान्टा (फोटानों) का ही उत्संजन या शोषण करते हैं। यह हमें विदित ही है कि धुँधले प्रकाश में भी करोड़ों फोटान होते हैं। हम उसके दानेदार रूप का पता नहीं लगा सकते हैं। फिर भी फोटानों की सत्ता तथा साथ ही साथ उनके नियम के पालन करने का ज्ञान—कि उनकी ऊर्जा आवृति पर निर्भर होती है—आइन्स्टाइन के विशलेषण द्वारा "प्रकाश-वैद्युत प्रभाव" (प्रकाश द्वारा द्रव्य की सतह से इलैक्ट्रानों का उत्सर्जन) तथा ए० एच० 'काम्पटन प्रभाव' एक्स-किरणों की आवृति में परिवर्तन जब कि इलैक्ट्रानों के साथ संघट में ऊर्जा का क्षय होना)।

तरंग या कणिकाएँ

फोटानों की सत्ता की सिद्धि प्रकाश के चिर प्रतिष्ठित सिद्धान्त को जाग्रत अवस्था में लायी। तब यह कल्पना की गई कि प्रकाश तरंगों से बना है। परन्तु

प्रकाश के व्यतिकरण एवं विवर्तन के गुणधर्मों ने दिखाया कि प्रकाश तरंग की भाँति आचरण नहीं करता है अपितु कणिकाओं की भाँति व्यवहार करता है। इस विवाद को स्पष्ट करने के लिये भौतिकज्ञों ने पागल कल्पना को स्वीकार किया कि प्रकाश की प्रकृति एक या उसी समय पर दोनों—तरंगों की, तथा कणिकाओं—की होती है। उन्होंने फोटानों को धारा की भाँति चित्रित करने का प्रयत्न किया तथा उसी प्रकार के मार्ग दर्शक 'क्षेत्र' द्वारा तरंग गति प्रदर्शित की गई। यद्यपि वह चित्र असन्तोष-जनक था, फिर भी जितना हो सकता था अच्छा ही था।

अगर हम सामान्यतः विचार करें तो यह पुनः हम को इस धारणा की ओर उन्मुख करता है कि कणिकाओं द्वारा तरंगों को व्यक्त किया जा सकता है। जैसा कि हमने परमाणु सिद्धान्त में देखा कि नील्स बोह्र के विख्यात परमाणु के प्रतिरूप में यह व्यग्रता उठ खड़ी हुई थी इसपर उसने इलैक्ट्रानों को नाभिक के चारों ओर कथित कक्षों में परिक्रमा करते हुये चित्रित किया। इसका यह कारण था कि उन्होंने केवल यांत्रिक ऊर्जा के क्वान्टम को व्यक्त करने की स्वीकृति दी जब कि इलैक्ट्रान एक कक्षा से दूसरी कक्षा में गिरता है—तो ऊर्जा का क्वान्टम प्रकाश की अवस्था में सतह से विलग हो जाता है, वह है फोटान।

यह स्पष्ट नहीं था कि इलैक्ट्रान कक्षों में क्यों और कैसे घेरे हुये थे—लेकिन फ्रांस के लाईस दी ब्रोगली इस प्रश्न के उत्तर के साथ वैज्ञानिक क्षेत्र में आये, तथा उन्होंने यह प्रस्ताव रक्खा कि इलेक्ट्रानों का तरंग द्वारा नियंत्रण होता है जो अपनी गतियों के साथ थे। इन तरंगों की प्रकृति वास्तव में गूढ़ार्थ थी लेकिन दी-ब्रोगली ने अपने विचार को गणितीय आधार पर सिद्ध किया। बोह्र ने इस पर यह मत प्रस्तुत किया कि अगर उसका प्रतिरूप सही था—तो क्रमबद्ध इलेक्ट्रान कक्षों की दूरियाँ परमाणु के नाभिक से समस्त संख्याओं के वर्गों के अनुपात के तुल्य होनी चाहिए जैसे १, ४, ९, १६ इत्यादि। यह वृत्तीय कक्ष की आपेक्षिक लम्बाइयों को तरंगों में प्रकट करती थी। अगर इलेक्ट्रानों की गतियाँ तरंगों द्वारा नियन्त्रित की गई होतीं तो स्पष्टतः प्रत्येक कक्ष में तरंगों की लम्बाई इस प्रकार होती कि कुछ समस्त तरंगों की संख्या कक्ष की लम्बाई में पूर्णरूपेण ठीक बैठती। साधारण स्थिति में हाइड्रोजन परमाणु को लीजिए—दी ब्रोगली ने मार्ग दर्शक तरंगों की गणना की तथा यह पाया कि यह बोह्र के कक्षों में ठीक बैठती है यदि प्रत्येक स्थिति में प्रकाश की तरंग उचित रीति से प्लैंक के नियंताक को द्रव्यमान एवं इलेक्ट्रान के वेग (उस कक्ष में) से विभाजित करने पर प्राप्त मान के तुल्य हो।

दी-ब्रोगली के इस विचार को इरविन स्क्रोडिन्जर ने आगे बढ़ाया तथा वैज्ञानिक क्षेत्र को "तरंग यांत्रिकी" का नाम दिया। यही शक्ति शाली सैद्धान्तिक अस्त्र था। जिसने परमाणु की गतिविज्ञान सम्वन्धी सभी व्याख्याओं का स्पष्टीकरण किया। सी० जे० डेवीसन तथा एल० एच० गर्मर ने अपने ऐतिहासिक प्रयोगों को बेल टेलीफोन प्रयोगशालाओं में किया जिसमें यह देखा गया कि इलेक्ट्रानों का किरण पुंज क्रिस्टल से परावर्तित होकर विवर्तन पट्का पैदा करता है। तरंग गति का अम्ल परीक्षण एवं इलेक्ट्रानों की 'तरंग-दैर्घ्य' दी-ब्रोगली के सूत्र के साथ ठीक-ठीक मेल खाती है।

इस प्रकार तरंगों एवं कणिकाओं के मध्य जो भेद-भाव था वह समाप्त हो गया तथा यह व्याख्या प्रस्तुत की गई कि प्रकाश तरंगें कणिकाओं की भाँति आचरण करती हैं तथा कणिकाओं का आचरण तरंगों जैसा है। परन्तु चिर प्रतिष्ठित रूपरेखा इस प्रकार के सन्देह वाली बात से सन्तुष्ट नहीं हो सकी। हाइजनबर्ग ने इसी समय 'सामान्य ज्ञान' के क्षेत्र में प्रवेश किया। इस समस्या का समाधान ही उसका "अनिश्चितता का सिद्धान्त' था।

एक अनुमान प्रयोग

हाइजनबर्ग समस्या के समाधान करने के लिये उसकी जड़ तक वापस गया। उसके प्रयत्न यह थे कि किस प्रकार साधारण उपाय से नियमों एवं परीक्षण विधियों की घटनाओं को पारमाणविक पैमाने पर अंकित किया जाये। अगर हम बाथ-ट्यूब थर्मामीटर की सहायता से दूध का ताप मापने का प्रयत्न करते हैं, तो उपकरण दूध से इतनी अधिक उष्मा का शोषण कर

लेगा कि वस्तुत: दूध के ताप में परिवर्तन आ गया; लेकिन जब हम इस ताप को छोटे रासायनिक तापमापी से मापें तो हम ठीक रूप से पाठ्यांक ज्ञात कर सकते हैं। इस प्रकार हम वस्तु के कम से कम ताप, जैसे जीव जन्तु का ताप भी बड़ी सुगमता से अति सुग्राही थर्मो-युग्म की सहायता से माप सकते हैं, जो प्राय: उपेक्षा करने योग्य ताप की धारिता रखता है। लेकिन इस पारमाणविक दुनिया में नापने वाले उपकरणों को वैज्ञानिक क्षेत्र से अदृष्ट नहीं कर सकते हैं। ऊर्जाएँ इस पैमाने पर इतनी छोटी हैं कि अधिक सूक्ष्मता से किये गये परीक्षण भी वस्तुत: निरीक्षण के समय की घटना का फल हो सकता है, तथा हम वास्तव में परीक्षणों के परिणामों का वर्णन किसी प्रतिभू पर नहीं कर सकते हैं क्योंकि प्रेक्षक तथा उसका उपकरण अन्वेषण के समय की घटना का सम्पूर्ण अंश हो गया।

हाइजनबर्ग ने इस समस्या पर विस्तृत विचार करने के उपरान्त द्रव्य कणिका की गति के पथ की व्याख्या प्रस्तुत की। हाइजनबर्ग ने इलैक्ट्रान की उड़ान का परीक्षण करने के लिये स्वयं आदर्श उपकरण सम्बन्धी सभी वस्तुओं को बनाया। उसने एक वायुरहित कमरे में इलैक्ट्रानिक बन्दूक की कल्पना की जो अकेले ही इलैक्ट्रान को छोड़ सकती थी। कमरे में इलैक्ट्रान की गति को देखने के लिये सूक्ष्मदर्शी की सहायता ली।

इलैक्ट्रान का भ्रमण

देखें अब क्या होता है? जब इलैक्ट्रान गोली को उस कमरे में चलाया गया है तो उसका पथ एक परवलय हो गया। लेकिन वास्तव में जब फोटान के संघट के क्षण इलैक्ट्रान पीछे हटेगा, उसके वेग में परिवर्तन हो जायेगा। कणिका की गति को क्रमबद्ध बिन्दुओं पर निरीक्षण किया जाये तो हम फोटानों के संघट के कारण टेढ़ी लकीर की दिशा लेंगे। हम एक आदर्श चलायमान उपकरण की कल्पना करते हैं जो फोटान की ऊर्जा को कम करके उनके संघटों को कम कर देता है जिसको कि हम प्रकाश की कम आवृति के उपयोग के द्वारा कर सकते हैं। वास्तव में अगर हम कम आवृति की अनन्त सीमा की ओर बढ़ें जो कि हमारे उपकरण के लिये सम्भव है तो इस प्रकार हम इलैक्ट्रानों की गति के विघ्नों को अपनी इच्छानुसार जितना छोटा चाहें उतना कर सकते हैं। ऐसा करने पर नई समस्या सामने आई। वह यह थी कि जितनी प्रकाश की तरंग-दैर्घ्य होगी वस्तु की स्थिति की उतनी ठीक गणना नहीं हो पायेगी। यह विवर्तन प्रभाव के कारण उत्पन्न होता है इसलिये हम किसी निश्चित समय पर इलैक्ट्रान की ठीक-ठीक स्थिति का अनुमान नहीं कर सकते हैं। हाइजनबर्ग ने यह धारणा व्यक्त की कि वेग तथा स्थिति में इन दो अनिश्चितताओं का गुणनफल प्लैंक नियतांक को कणिका के द्रव्यमान से भाग देने पर प्राप्त मान से कभी भी छोटा नहीं हो सकता।

इसलिये बहुत छोटी तरंगों के द्वारा हम गतिमान कणिका की स्थिति की गणना कर सकते हैं। लेकिन उसके वेग के साथ विशाल व्यक्तिकरण होगा। अधिक लम्बी तरंगों के साथ हम अविघ्न वेग की गणना कर सकते हैं लेकिन उसकी वास्तविक स्थितियों के विषय में हम अनिश्चित हैं। अब हम इन दोनों अनिश्चितताओं के मध्य-क्षेत्र को चुन सकते हैं और अगर हम मध्यवर्ती किसी भी तरंग-दैर्घ्य का उपयोग करें तो हम कणिका के चक्राकार पथ में परिमित रूप से विघ्न डाल देगें। इसका फल यह होगा कि अब हम उसके पथ की गणना कर सकते हैं। निरीक्षित पथ अगर चिर-प्रतिष्ठित दशा में व्यक्त किया जाये तो यह एक तेज रेखा नहीं होगा लेकिन फिर भी बन्ध पथ में व्यक्त होगा। इस प्रकार से इलैक्ट्रान के चक्राकार पथ की गणना करने में हमें कोई भी कठिनाई प्रतीत नहीं होगी। उस स्थिति में जहाँ कि टैलीविजन चित्र नलिका के द्वारा बनी इलैक्ट्रान के पथ की मोटाई पर्दे की अपेक्षा उस धब्बा के व्यास से अति छोटी है जो इलैक्ट्रानों के किरणपुंज द्वारा पर्दे पर बनता है वहाँ हम इलैक्ट्रान के चक्राकार पथ को रेखा द्वारा व्यक्त करेंगे। परन्तु इस स्थिति में परमाणु के अन्दर इलैक्ट्रान की कक्ष का वर्णन नहीं कर सकते हैं।

८

मान लिया कि हमने प्रकाश के साथ गतिमान कणिका के पथ-चिह्न का अनुसरण करने का प्रयत्न त्याग दिया, इसके अतिरिक्त 'क्लाउड चैम्बर' विधि अपनाई, हमने परिकल्पित कार्य गृह में ऐसे आदर्श 'क्लाउड चैम्बर' का निर्माण किया जो पूर्णरूपेण द्रव्य कणिका से रहित था लेकिन अति सूक्ष्म कल्पित सूचकों के साथ भर दिया गया था जो क्रियात्मक हो गये। जब कभी एक इलैक्ट्रान पास से गुजरता है, तब क्रियामक सूचकों द्वारा गतिमान कणिका के पथ-चिह्न के अनुसार उसी प्रकार देखा जा सकता है, जिस प्रकार कि पानी की छोटी-छोटी बूँदें 'क्लाउड चैम्बर' में होती हैं। चिर-प्रतिष्ठित-यांत्रिकी के अनुसार सूचक को पर्याप्त छोटा माना जा सकता है इसलिये कि वे गतिमान कणिका से कोई भी चरितार्थ मूल्य की ऊर्जा न ले पाये तथा हम किसी सूक्ष्म मान तक उसके चक्राकार पथ का निरीक्षण कर सकें। लेकिन क्वान्टम-यांत्रिकी इस विधि को वर्जित करती है। उसका यह भी नियम है कि छोटे संस्थान में विशाल ऊर्जा के क्वान्टम की उपस्थिति को अगर हम इस प्रकार सूचकों की आवृत्ति को कम कर दें (इलैक्ट्रानों की स्थिति के अधिक सूक्ष्म परीक्षणों के लिये) तो वे गुजरती हुई कणिकाओं से अधिक ऊर्जा ले सकेंगे। यह स्थिति आपत्तिपूर्ण है कि इस प्रयत्न में कि कणिका का पथ-चिन्ह का अनुसरण प्रकाश की सहायता से किया जाये और हम पुनः अनिश्चितताओं के लिये उसी सम्बन्ध तक पहुँचें।

तरंगों द्वारा कणिकाओं का मार्ग दर्शन

हाइजनबर्ग ने यह गणना की कि पारमाणविक सतह पर हमें वस्तु के चक्राकार पथ की कल्पना को त्यागना चाहिये—जैसे अगर गणितीय आधार पर यह मत पर्याप्त सही था जब कि हम साधारण अनुभव से इस घटना का विवेचन करते हैं। हम गतिमान वस्तु को उसके मार्ग के साथ विचार करें, जिस प्रकार कि रेलवे मार्ग पर रेलगाड़ी अपने पथ चिह्न का अनुसरण करती है। लेकिन फोटानों तथा परमाणु की छोटी दुनिया में अकेले गतियों एवं घटनाओं को इतनी दृढ़ता से पहले से निर्णय नहीं किया जा सकता है जिस प्रकार फोटानों एवं द्रव्य कणिकाएँ इलैक्ट्रान तरंगों के नियन्त्रण में सीमा के ऊपर गतिमान रहती हैं। मुख्य बात यह है कि मार्ग-दर्शन विधि सम्भावना में बनायी जाती है। वस्तुतः दृढ़ता से गणना विधि की अपेक्षा यहाँ हम केवल **'सम्भावना'** को ही माप सकते हैं, कि फोटान पर्दे पर किसी दिये हुये बिन्दु पर टकरायेगा तथा या द्रव्य कणिका किसी स्थान में किसी समय पर पायी जायेगी।

'सम्भावना' शब्द का व्यवहार वस्तुतः एक भिन्न विचार के लिये हुआ। चिर-प्रतिष्ठित भौतिकी में एवं प्रतिदिन के जीवन में प्रायः समझा जा सकता है किन्तु हमें इस शब्द 'सम्भावना' का स्पष्टीकरण होना चाहिये। कल्पना करिये कि समस्त कणिकाओं के वेग एवं उनकी स्थितियाँ ज्ञात हैं। हम पूर्णविस्तार में गैस के अन्दर भविष्य में होने वाली घटनाएँ जान सकते हैं। परन्तु अनिश्चितता का सिद्धान्त इस ढंग की उपेक्षा करता है। हम अकेले कणिकाओं की गतियों की गणना नहीं कर सकते हैं क्योंकि हम निश्चित रूप से प्रथम स्थान में कभी भी आदि स्थितियों को नहीं जान सकते। सिद्धान्ततः कणिका की स्थिति एवं वेग को इन दोनों परमाणविक सतह पर पाना असम्भव है।

अगर हाइजनबर्ग के सूत्र पर अनिश्चितता की गणना के लिए एक दृष्टि डाली जाये तो अनिश्चितता, जैसा कि अभी हमने प्रदर्शित किया, प्लैंक के नियतांक को कणिका के द्रव्यमान से भाग देने से प्राप्त फल के तुल्य होती है। प्लैंक का नियतांक अति ही छोटी संख्या है जिसका सांख्यिकीय मूल्य केवल १०२७ से० मी० ग्राम सैकण्ड इकाईयों में व्यक्त होता है। अनिश्चित के सिद्धान्त ने यह दिखाया कि तरंग एवं कणिका के विचार परस्पर पूरक विधियों की प्रकृति का वर्णन करते हैं।

इस वाद-विवाद में जहाँ बोह्र भी उपस्थित थे, आइन्स्टाइन महान ने "अनुमान प्रयोग को यह बतलाते हुये प्रस्तुत किया कि समय दिक् काल का चतुर्थ तंत्र है, तथा यह ऊर्जा संवेग की चतुर्थ अंगभूत थी, उसने बतलाया कि हाइजनबर्ग के अनिश्चितता की

समीक्षा ने यह प्रदर्शित किया कि समय में अनिश्चितता ऊर्जा की अनिश्चितता से सम्बन्ध रखती है। इन दोनों का गुणनफल कम से कम प्लैंक के नियंताक के तुल्य होगा।

उसने कहा कि एक आदर्श बक्स की कल्पना कीजिये जो पूर्ण दर्पण से सुसज्जित हो तथा जो विकिरित ऊर्जा को बिना सीमा के ठहरा सकता हो, बक्स को तौलिए तथा कुछ समय पश्चात् संकलित घड़ी तथा एक आदर्श शटर को एक ही फोटान के छोड़ने की अनुमति दे। अब पुनः बक्स का भार ज्ञात कीजिये। द्रव्यमान में परिवर्तन उत्सर्जित फोटान की ऊर्जा को बतलाता है। आइन्स्टाइन महान ने कहा कि इस प्रकार उत्सर्जित ऊर्जा एवं काल की गणना कर सकता था जिस समय अल्प काल के लिये छोड़ा गया था।

दूसरे ही दिन बोह्र ने आइन्स्टाइन को अप्रमाणित घोषित करके अपने नवीन उपकरण के साथ विपरीत "अनुमान प्रयोग" प्रस्तुत किये। बोह्र ने आइन्स्टाइन के बक्स के तौलने की रीति पर विचार किया, उसकी धारणा यह थी कि एक स्प्रिंग पैमाना सूचक के साथ सुसज्जित हो जो भार को अंकित लम्बरूप स्तम्भ के सटे-सटे रहती होकर करती हो, अब जन की बक्स के भार में परिवर्तन के साथ लम्बरूप गतिमान होना चाहिये। वहाँ उसके लम्बरूप वेग में अनिश्चितता होगी तथा इसलिये मेज के ऊपर की ऊँचाई अनिश्चितता होगी। बोह्र ने पुनः आगे की ओर यह संकेत किया कि अनिश्चितता अपने उन्नतांश के विषय में पृथ्वी सतह के ऊपर घड़ी की गति में अनिश्चितता का परिणाम होगी। सापेक्षवाद के सिद्धान्त के अनुसार यह गति घड़ी की आपेक्षिक स्थिति पर निर्भर होती है।

आइन्स्टाइन ने स्वयं अपने तर्क के द्वारा हार मान ली कि हर्जबर्ग का मत आन्तरिक विपरीतताओं से मुक्त था लेकिन अपने जीवन के अन्तिम दिनों में उसने अनिश्चितता के सिद्धान्त को अस्वीकार किया और इस आशा में रहा कि एक दिन भौतिक विज्ञान में निश्चित गणना की दृष्टि अवश्य आवेगी।

भारत में गिरे उल्का-पिण्ड की कहानी

(संकलित)

बिहार राज्य के बहरामपुर नगर में, १० अप्रैल, १९६४ का तीसरा पहर समाप्त हो रहा था। गर्मी तेज थी, और व्यापारी अब अपना माल-असबाब गिन कर अगले दिन के व्यवसाय की योजना में संलग्न थे। अचानक, आसमान में भयंकर गर्जना के साथ एक विद्युत-ज्वाल कौंध गया और भूमि पर टकरा कर विस्फोट कर उठा।

यह कोई विमान नहीं था, जो नियन्त्रण के बाहर हो कर इधर-कहीं भी उड़ता जा रहा हो। वह तो प्रकृति की सबसे असामान्य और आश्चर्यजनक घटनाओं में से एक-एक उल्का-खण्ड के टकराने और विस्फोटित होने की-घटना थी। बहरामपुर का नगर मुजफ्फरपुर के निकट स्थित है। वहाँ के नगरवासियों को दो उल्का-खण्ड मिले, जिन्हें संयुक्त रूप से 'मुजफ्फरपुर उल्का-खण्ड' की संज्ञा दी गई। साधारण जन के लिये तो लोहे और गिलट के मिश्रण वाली भद्दी और भूरी धातु के उन टुकड़ों का कोई विशेष प्रयोजन प्रतीत नहीं हुआ। किन्तु, भारत और अमेरिका के वैज्ञानिकों की उत्सुकता बढ़ गयी। सृष्टि के आदि काल से लेकर अब तक इस तरह के केवल ४० लौह उल्का-खण्ड ही ऐसे स्थानों पर गिरते देखे जा सके हैं, जहाँ घटनास्थल पर उन्हें उठा लेने के लिए मनुष्य उपस्थित थे।

लेकिन, वैज्ञानिकों की दृष्टि में इन उल्काखण्डों की एक अलग ही कहानी है—यह कहानी लाखों वर्ष पूर्व अन्तरिक्ष में प्रारम्भ होती है। ये विज्ञान को ज्ञात प्राचीनतम पदार्थों में हैं और यहाँ तक कि इनका उपयोग सूर्य की आयु का अनुमान लगाने के लिए किया जाता है। लेकिन यह उसे अभी हाल में ज्ञात हुआ है कि इस कहानी की गुत्थी को किस प्रकार सुलझाया जाए।

जब मुजफ्फरपुर उल्का-खण्ड गिरा था 'यू० एस० कोस्ट एण्ड जियोडेटिक सर्वे का जलयान' 'पायोनियर' हिन्द महासागर में था। इस जलयान पर डा० रावर्ट एस० डिट्ज भी थे। जब उन्हें इस उल्का-खण्ड के गिरने की जानकारी हुई तो उन्होंने भारत के भूगर्भ सर्वे विभाग के अधिकारियों से सम्पर्क स्थापित कर यह व्यवस्था कर ली कि उल्का-खण्ड का ५ इंच लम्बा और ३ इंच चौड़ा एक छोटा सा टुकड़ा अविलम्ब अध्ययन हेतु हवाई जहाज द्वारा अमेरिका भेज दिया जाये।

वाशिंगटन डी० सी० स्थित स्मिथसोनियन इन्स्टि-ट्यूट के भूगर्भ-विज्ञानवेत्ता डा० ई० पी० हैण्डरसन ने इस नमूने को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना क्योंकि उल्का-खण्ड के पृथ्वी पर गिरने के तुरन्त बाद लिए जाने के कारण यह बिल्कुल 'ताजा' नमूना था। उल्का-खण्डों के अंक में जो कहानी निहित है, उसका कुछ अंश उनके पृथ्वी पर गिरने के बाद समय व्यतीत होने के साथ शीघ्र ही मिट जाता है, अतएव भारत में गिरे उल्का-खण्ड के उक्त नमूने को विशेष महत्व दिया गया।

बिना किसी विलम्ब के उसका एक छोटा सा टुकड़ा लौंग आइलैण्ड, न्यूयार्क स्थित ब्रुक हैवन परीक्षणशाला के डा० औलिवर ए० शैफर को भेज दिया गया, जहाँ उसकी परीक्षा अत्यधिक शक्ति वाले अणुभंजक यन्त्र 'कोस्मेक्ट्रोन' के द्वारा की गई। अन्तरिक्ष में गतिशील रहते हुए उक्त उल्का-खण्ड ने अत्यन्त अल्प मात्रा में जिस दुर्लभ गैस का निस्सरण किया था, उसकी तथा उसमें निहित रेडियो-सक्रियता की अत्यन्त संवेदनशील यन्त्रों द्वारा माप की गई।

उल्का-खण्ड और विशेष रूप मे मुजफ्फरपुर से प्राप्त नमूने जैसे उल्का-खण्ड, विशेष महत्व रखते हैं क्योंकि वे उस बाह्य अन्तरिक्ष से आते हैं जहाँ वे लाखों

वर्षों से अत्यधिक शक्तिशाली कणों के प्रहार सह रहे होते हैं। इस प्रकार उनसे मानव को ब्रह्माण्ड किरणों से सम्बन्धित अपनी जानकारी में वृद्धि करने में मदद मिलती है। मानव निर्मित अन्तरिक्ष वाहनों, राकेटों और अन्तरिक्षयानों के इस युग के पूर्व पृथ्वी के वायुमण्डल से बाहर विद्यमान परिस्थितियों की जानकारी प्राप्त करने का एकमात्र साधन या तो उल्का-खण्ड होते थे अथवा अत्यधिक ऊँचाई पर उड़ने वाले गुब्बारे।

उल्का-खण्ड आकाश में सामान्यतः दृष्टिगोचर होते रहते हैं क्योंकि रात्रि काल में निरभ्र आकाश का अवलोकन करने वालों को बहुधा ये उल्का-खण्ड आकाश से पृथ्वी की ओर आते हुए दिखाई पड़ जाते हैं। लोग इन्हें 'शूटिंग स्टार' अथवा 'गिरते हुए तारे' कह कर पुकारते हैं। लेकिन, ये नेत्रों से दृष्टिगोचर होते हैं, इनमें चमक होती है क्योंकि पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रवेश करते ही ये दृष्टिगोचर हो जाते हैं।

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि प्रतिदिन लगभग २० करोड़ ज्योतिर्मय उल्का-खण्ड पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रवेश करते हैं जिनका कुल भार १ हजार टन से भी अधिक होता है। लेकिन, यह अन्तरिक्ष में बिखरे हुए उस अदृश्य मलवे का एक अत्यन्त न्यून अंश है, जो बाह्य अन्तरिक्ष में विभिन्न कक्षाओं में गतिशील है।

जब कभी उनकी कक्षा पृथ्वी की कक्षा से मेल खाती है, इन गतिशील पदार्थों में से कुछ पृथ्वी के वायुमण्डल में पहुँच जाते हैं और पृथ्वी के वायुमण्डल में उत्पन्न प्रचण्ड घर्षण के कारण जल कर नष्ट हो जाते हैं। और इनमें से केवल कुछेक ही, मुजफ्फरपुर में पाए गए उल्का-खण्ड जैसे, घर्षण द्वारा उत्पन्न प्रचण्ड ताप को सहारते हुए पृथ्वी की सतह तक सकुशल पहुँच पाने में समर्थ होते हैं।

उल्का-खण्ड दो प्रकार के होते हैं: **पत्थरयुक्त उल्का-खण्ड** जिनका निर्माण विभिन्न खनिज तत्वों के संयोग से होता है और इनमें बहुधा लौह तत्व का न्यूनाधिक मात्रा में समावेश रहता है। इसके अतिरिक्त एक और प्रकार के उल्का-खण्ड होते हैं जिन्हें **लौह-उल्का-खण्ड** कहते हैं। इन में अधिकांश तत्व लौह का होता है तथा निकेल, कोबाल्ट, फास्फोरस, कार्बन और गंधक भी अल्प मात्रा में रहते हैं। मुजफ्फरपुर में जो उल्का-खण्ड पाया गया वह दूसरी कोटि का था और उसमें निकेल पर्याप्त परिमाण में विद्यमान था।

स्मिथसोनियन संस्थान के डा० हेण्डरसन ने मुजफ़्फ़रपुर में गिरे उल्का-खण्ड का जो इतिहास तैयार किया है वह कुछ इस प्रकार है:

'मुजफ्फरपुर के निकट जो उल्का-खण्ड गिरा था वह उस सौर-मण्डल का ही एक पदार्थ है जिसमें कि हमारी पृथ्वी सम्मिलित है। सम्भव है कि यह पदार्थ किसी पुच्छल तारे अथवा किसी ग्रह से लाखों वर्ष पूर्व टूट कर अलग हुआ हो और तब सूर्य की ठण्डी परिक्रमा कर रहा हो।

"सम्भव है कि इसी अवधि में वह अन्तरिक्ष में गतिशील किसी अन्य उल्का-खण्ड से टकराया हो जिससे उसका आकार और छोटा हो गया हो। इस पर ब्रह्माण्ड किरणों का अनवरत प्रहार होता रहा है तथा इसने ब्रह्माण्ड किरणों की कुछ मात्रा शोषित कर ली है। हम इसे मापने में समर्थ रहे हैं।

"अत्यन्त प्रचण्ड गति से यात्रा करता हुआ—यह गति ३० मील प्रति सेकण्ड तक हो सकती है—यह उल्का-खण्ड अचानक ही पृथ्वी के वायुमण्डल में आ पहुँचा और वहाँ घर्षण के फलस्वरूप उसकी गति ठीक उसी प्रकार काफी धीमी पड़ गई जिस प्रकार पृथ्वी की परिक्रमा करते हुए अन्तरिक्षयान की गति पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रवेश करते ही मन्द पड़ने लगती है।"

"अधिकांश मामलों में इस घर्षण के फलस्वरूप उल्का-खण्ड जल कर राख हो जाते हैं और हमारे अन्तरिक्षयानों का भी यही हाल होता यदि उस पर प्लास्टिक और विशेष प्रकार की ताप-निरोधक मिश्रित धातु से तैयार की गई ताप-रक्षक खोल न चढ़ी होती।

जब मुजफ्फरपुर में गिरे उल्का-खण्ड को उठाया गया तो इस बात के पर्याप्त प्रमाण मिले कि पृथ्वी के वायुमण्डल से गुजरते हुए इसका ऊपरी भाग काफी

गरम हो गया था परन्तु भीतरी भाग बराबर ठण्डा बना रहा। पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रवेश करने और पृथ्वी की सतह से टकराने के बीच का समय इतना कम था कि उल्का-खण्ड की ऊपरी सतह लगभग उबल उठी।"

अमेरिकी अणुशक्ति कमिशन के डा० जोन एच० पोमरौय ने मुजफ्फरपुर में गिरे उल्का-खण्ड की उत्पत्ति की एक और ही नई कहानी प्रस्तुत की है जो इस प्रकार है :

"यह ऐसे किसी प्राचीन ग्रह का अंश हो सकता है जो मंगल और वृहस्पति ग्रहों के मध्य सूर्य से २५ करोड़ मील की दूरी पर किसी समय सूर्य की परिक्रमा कर रहा था।

"अब इस ग्रह का अस्तित्व नहीं रहा; आज अन्तरिक्ष का यह क्षेत्र, हजारों पुच्छल तारे उस भयानक दुर्घटना के मौन गवाह हैं जो लाखों वर्ष पूर्व उस समय घटी थी जब उक्त ग्रह या तो स्वयं फट गया था अथवा अन्तरिक्ष में ही गतिशील किसी अन्य पदार्थ से टकरा गया था। मुजफ्फरपुर में पाया गया उल्का-खण्ड इसी विस्फोट से छितराया गया एक टुकड़ा हो सकता है।"

पृथ्वी पर प्राप्त होने वाले उल्का-खण्ड क्यों महत्व-पूर्ण माने जाते हैं ?

वैज्ञानिक विश्लेषण के अनुसार इन खण्डों से ब्रह्माण्ड किरणों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। मानव को बाह्य अन्तरिक्ष में भेजने से पूर्व इन किरणों के बारे में जानकारी प्राप्त होना आवश्यक है। उदाहरणार्थ, पृथ्वी के वायुमण्डल को छोड़ कर धीरे-धीरे बाह्य अन्तरिक्ष में स्थित लक्ष्य की ओर अग्रसर होने वाले अन्तरिक्ष यात्रियों को किस प्रकार की ब्रह्माण्डीय परिस्थितियों का सामना करना पड़ेगा ? डा० पोमरौय का कहना है कि प्राप्त होने वाले उल्का-खण्डों से इसका कुछ-कुछ पता लगता है।

भारत से भेजे गए उल्का-खण्ड के उक्त टुकड़े को लेकर ब्रुकहैवन प्रयोगशाला के डा० शैफर ने एक अन्य ही सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। अब तक वैज्ञानिकों का निष्कर्ष यह रहा है कि अन्तरिक्ष में ब्रह्माण्ड किरणों का निर्बाध अस्तित्व है—इसी मान्यता पर उनकी अन्य वैज्ञानिक धारणाएँ आधारित रही हैं।

लेकिन, डा० शैफर की अब यह मान्यता है कि ब्रह्माण्ड किरणों की उत्पत्ति सूर्य से नहीं होती। डा० शैफर का कथन है कि उनका अन्तरिक्ष में निर्बाध अस्तित्व नहीं है तथा सूर्य से अधिक दूरी पर उनमें अधिक प्रचण्डता पाई जाती है। सम्भवतः ये किरणें सुदूरवर्ती अन्तरिक्ष में जन्म लेने वाले नक्षत्रों और आकाश गंगाओं से निःसृत होती हैं।

भारत का यह प्रसिद्ध उल्का-खण्ड अब भारत में वापस आ गया है तथा भारत सरकार के कलकत्ता स्थित भूगर्भ-सर्वे विभाग के डा० एम० वी० एन० मूर्ति अपने सहयोगी वरिष्ठ भूगर्भ-विज्ञानवेत्ता श्री एस० एन० पी० श्रीवास्तव तथा सहायक भूगर्भशास्त्री श्री आन्दा दुबे के साथ मिल कर 'भारत में पाए गए उल्का-खण्डों का एक नया सूचीपत्र तैयार कर रहे हैं।

इस प्रकार, निकेल तत्व से युक्त उस उल्का खण्ड ने, जिसे देख कर बहरामपुर ग्राम के निवासी चकित रह गए थे असीम अन्तरिक्ष के बारे में ज्ञान को बढ़ाने में उल्लेखनीय योग दिया है।

पौधों का मुख्य भोजन "गंधक"

डा० रमेश चन्द्र तिवारी

विभिन्न जाति के पौधों के रासायनिक विश्लेषण से यह पता चला है कि उनकी राख में कुल ३५ भिन्न-भिन्न खनिज तत्व पाये जते हैं। प्रश्न यह उठता है कि क्या ये सभी भोज तत्व पौधों के जीवन के लिए आवश्यक है ? इसी प्रश्न का उत्तर पाने के उद्देश्य से बनस्पति शास्त्रियों तथा भूमि एवं कृषि वैज्ञानिकों ने संसार के विभिन्न भागों में प्रचुर शोध कार्य किए हैं। जिससे यह पता चला है कि पौधों की वृद्धि तथा उनके जीवन-चक्र को पूरा करने के लिए इन ३५ तत्वों में से केवल १६ तत्व ही आवश्यक हैं। यदि इन १६ तत्वों में से किसी भी तत्व का अभाव हुआ तो पौधों में "न्यूनता रोग" (Deficiency disease) का प्रकोप हो जायेगा, उनकी वृद्धि रुक जयेगी, पौधा कमजोर हो जायेगा तथा शारीरिक क्रियाओं के अनियमित हो जाने से उनका जीवन-चक्र अधूरा हो जायेगा।

पौधों द्वारा अवशोषित भोज्य तत्वों के आधार पर इन १६ आवश्यक तत्वों को दो वर्गों में विभक्त किया गया है :—
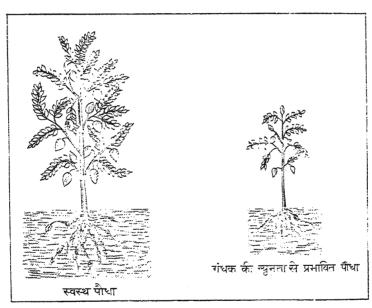
चित्र १ : गंधक न्यूनता का पौधे की वृद्धि पर प्रभाव

प्रथम वर्ग

इसमें कुल ऐसे ६ भोज्य तत्व रक्खे गये हैं जिनकी प्रचुर मात्रायें पौधों के लिए आवश्यक होती हैं। इनको स्थूल भोज्य तत्व या मैक्रोन्यूट्रियेन्ट्स (मैक्रो = स्थूल, न्यूट्रियेन्ट्स = भोज्य तत्व) कहते हैं। इस समूह में आने वाले भोज्य तत्व हैं नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटास, गंधक (सल्फर), कैलसियम (चूना), मैगनीसियम, कार्बन, हाइड्रोजन, तथा आक्सीजन। इनमें से कार्बन तथा

आक्सीजन की पूर्ति मुख्यतया वायुमंडल से होती है किन्तु शेष भोज्य तत्वों को पौधे अपनी जड़ों द्वारा भूमि से अवशोषित करते हैं।

द्वितीय वर्ग

इस समूह में ऐसे भोज्य तत्व आते हैं जिनकी अत्यन्त सूक्ष्म मात्रायें ही पौधों के लिए पर्याप्त होती हैं। इन तत्वों की एक विशिष्ट आवश्यक मात्रा से अधिक मात्रा हो जाने पर पौधों में विषालुता हो जाती है परन्तु आवश्यक मात्रा से कम उपलब्धि होने पर पौधों पर "न्यूनता रोगों" का प्रकोप हो जाता है। कापर (ताम्र), जिंक, मैंगनीज़, कोबाल्ट, मालिब्डिनम, बोरन तथा लोहा इस समूह के सदस्य हैं। इन्हें "लेश तत्व" या 'सूक्ष्म भोज्य तत्व' (माइक्रोन्यूट्रियेन्ट्स या ट्रेस एलीमेंट्स) के नाम से पुकारा जाता है।

उपर्युक्त विभाजन से यह स्पष्ट है कि **गंधक** ऐसा तत्व है जिसकी प्रचुर मात्रा पौधों के लिए आवश्यक होती है। आवश्यकता की दृष्टि से भोज्य तत्वों में **इसका चौथा स्थान** आता है। अभी तक नाइट्रोजन, फास्फोरस, तथा पोटास ही पौधों का मुख्य भोजन माना जाता था और इन्हीं भोज्य तत्वों की पूर्ति के लिए उर्वरकों का प्रयोग किया जाता था। किन्तु आधुनिक अनुसंधानों से यह सिद्ध हो चुका है कि भूमि में गंधक की कमी की पूर्ति अत्यन्त आवश्यक है। विदेशों में किये गये प्रयोगों से यह पता चला है कि एक एकड़ भूमि में उगाई गई गेहूँ, **मक्का, फलीदार फसलें, घासें, फूलगोभी, प्याज, तथा शलजम आदि फसलें भूमि से क्रमशः, ६-१२, ८-१०, १५-२५ ८-१० १६-३८, १८-२०, तथा २५-३५ पौ० गंधक ग्रहण करती हैं।**
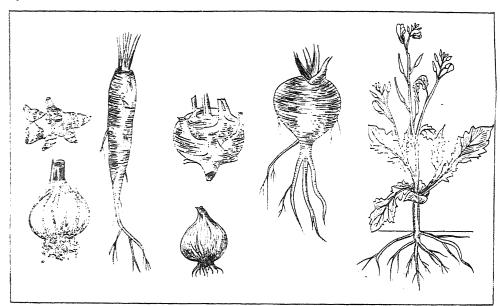
चित्र २ : गंधक धारी पौदों के विभिन्न अंग

उपर्युक्त आँकड़ों से यह पता चलता है कि अन्य भोज्य तत्वों की भाँति पौधे गंधक की पर्याप्त मात्रा ग्रहण करते हैं। और यदि मिट्टी में गंधक का अभाव रहा तो पौधों में तमाम तरह की व्याधियाँ लग जाती हैं तथा वे कमजोर हो जाते हैं।

पौधों में गंधक की कमी के लक्षण

गंधक की न्यूनता से प्रभावित फसल अथवा पौधों को निम्नलिखित दृश्य लक्षणों के आधार पर पहचाना जा सकता है :—

(क) पौधों की हरिमाहिन वृद्धि होना (क्लोराटिक) तथा उनका बौना रह जाना।

(ख) पौधों की जड़ें निर्बल, पतली तथा लम्बी हो जाती हैं।

(ग) तने छोटे, शाखाहीन, पतले तथा काष्ठयुक्त हो जाते हैं।

(घ) पौधों की नवविकसित पत्तियाँ या सम्पूर्ण पौधा पीला पड़ जाता है।

(च) नाइट्रोजन का अवशोषण कम हो जाने से पौधों की वृद्धि रुक जाती है।

(छ) फलीदार फसलों की जड़ों पर पाई जाने वाली महत्वपूर्ण ग्रन्थियों की संख्या तथा उनके भार में कमी आ जाती है।

(ज) कुछ पौधे तो अंकुरण के बाद ही पूर्णतया सूख जाते हैं।

(झ) पौधों में एन्थोसायनिन वर्णकता का विकास होने लगता है।

(ट) यद्यपि पौधों के हरितपदार्थ (क्लोरोफिल) के संगठन में गंधक नहीं होता फिर भी इसकी कमी से पौधों के हरित पदार्थ में ४० प्रतिशत तक कमी हो जाती है।

पौधों की शारीरिक क्रिया में गंधक का महत्व—

क्या आपने कभी यह भी सोचा है कि पौधों में (काम आने वाले भागों में) गंध तथा कडुआपन कहाँ से आ जाता है? प्याज, लहसुन, मूली, सरसों के तेल, शलजम तथा गाँठगोभी इत्यादि की तीक्ष्ण गंध तथा विचित्र स्वाद का कारण "गंधक" की उपस्थिति ही तो है। गंधक पौधों के संगठन का एक मुख्य अंश है। पौधों से प्राप्त प्रोटीन में गंधक की प्रचुर मात्रा पाई जाती है। विभिन्न पौधों की गंध गंधक के तमाम अस्थाई यौगिकों के कारण ही होती है। यह गंध अपने आप उड़कर समाप्त हो सकती है। पौधों के गंधकधारी यौगिक निम्नलिखित हैं।

एमिनो अम्ल:
- **मेथियोनिन**—इसमें लगभग २१% गंधक होती है तथा यह पशु-पोषण के लिए आवश्यक पदार्थ है।
- **सिस्टिन**—इसमें लगभग २७% गंधक होती है परन्तु यह पशु पोषण के लिये आवश्यक नहीं होता।

वृद्धि नियंत्रक पदार्थ:
- थायमिन
- बायोटिन

पौधों की वृद्धि को नियमित रखने वाले इन यौगिकों में गंधक की काफी मात्रा पाई जाती है।

तेल-ग्लाइकोसाइड्स—ये पौधों से प्राप्त तेलों में पाये जाते हैं।

ग्लूटामिन—आक्सीकरण-अपचयन की तमाम शारीरिक क्रियाओं में सहायक होता है।

गंधक पौधों के शारीरिक क्रिया में तथा तमाम संश्लेषणों में काम आता है। इसके अतिरिक्त गंधक की पूर्ति होने पर पौधों के तन्तुओं में घुलनशील नाइट्रोजन की मात्रा में वृद्धि होती है, शर्करा की मात्रा घट जाती है, स्टार्च तथा हेमीसेल्यूलोज की प्रतिशत मात्रा में वृद्धि होती है तथा पौधों के **विटामिन बी** की प्रतिशत मात्रा में बढ़ोतरी हो जाती है। इन तमाम पौध यौगिकों के संश्लेषण में मुख्य स्थान होने **के कारण ही गंधक पौधों का मुख्य भोज्य** पदार्थ कहा जाता है, जिसकी कमी से पौधों की अधूरी शारीरिक क्रियाओं के फलस्वरूप उनका जीवन चक्र अपूर्ण रह जाता है तथा उनकी मृत्यु भी हो जाती है।

गंधक किस रूप में ग्रहीत है?

गंधक भूमि तथा वायुमंडल में तमाम घुलनशील, जटिल, अघुलनशील एवं अनुपलब्ध अवस्थाओं में पाया जाता है। पौधे इन सभी अवस्थाओं में गंधक का उप-

योग करने में असमर्थ रहते हैं। वे केवल घुलनशील तथा गैस रूप में उपलब्ध गंधक का प्रयोग करते हैं परन्तु हाइड्रोजन सल्फाइड इनके लिये विषालु होता है। पौधों द्वारा प्रयुक्त गंधक की मुख्य दो अवस्थायें हैं :—

(१) सल्फर डाइ आक्साइड (SO_2)

यह गैस रूप में, वायुमंडल में विद्यमान रहती है तथा पौधों की पत्तियों के छिद्रों (स्टोमैटा) द्वारा अवशोषित होती है।

(२) सल्फेट आयन (SO_4)

पौधों को गंधक के सल्फेट अवस्था की प्राप्ति तमाम लवणों तथा जल आदि में विद्यमान सल्फेट से ही होती है। इस अवस्था का गंधक पौधों की जड़ों द्वारा अवशोषित किया जाता है।
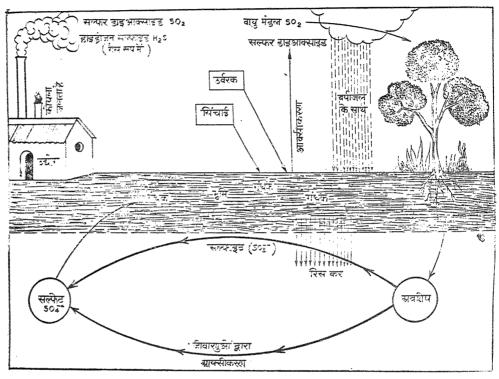
चित्र ३ : गंधक-चक्र

गंधक कहाँ से मिलती है ?

पौधों के लिए आवश्यक गंधक की सल्फर डाइआक्साइड तथा सल्फेट अवस्थायें निम्नलिखित साधनों से प्राप्त होती हैं :—

भूमि से : भूमि में गंधक कैलसियम तथा मैगनीसियम के सल्फेट लवण के रूप में तथा कार्बनिक यौगिकों के रूप में विद्यमान रहता है। मिट्टी में उपस्थित पाइराइट, जिप्सम, तथा एनहाइड्राइट शैल एवं खनिजों में गंधक की काफी मात्रा पाई जाती है। भूमि में उपस्थित गंधक की मात्रा ०.००८ प्रतिशत से ०.१३६ प्रतिशत (ऊपरी सतह के ०"— ६ इन्च गहराई तक) तक पाई गई है। खनिजों में संगठित अघुलनशील गंधक रासायनिक क्रियाओं द्वारा तथा तात्विक एवं कार्बनिक गंधक, गंधक जीवाणुओं के विघटन क्रिया द्वारा घुलनशील अवस्था

(सोडियम सल्फेट तथा सल्फ्युरिक अम्ल) में परिवर्तित होकर, पौधों को उपलब्ध हो जाता है।

उर्वरकों से : नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटास की पूर्ति के लिए खेतों में प्रयोग किये जाने वाले उर्वरकों में गंधक की काफी मात्रा पाई जाती है। उदाहरण के लिए सुपरफास्फेट में १२ प्रतिशत तथा मिश्रित उर्वरकों में ७-१२ प्रतिशत गंधक मिला रहता है जबकि नाइट्रोजन तथा पोटास तत्वों की पूर्ति के लिए अमोनियम तथा पोटास के सल्फेट लवणों का प्रयोग ही किया जाता है। अतः पौधों को उर्वरकों द्वारा भी गंधक मिल जाता है।

वर्षा तथा सिंचाई से जल से : वायुमंडल में उपस्थित गंधक (सल्फर डाइआक्साइड) वर्षा के जल के साथ पौधों की पत्तियों के सम्पर्क में आ जाता है या भूमि में पहुँचकर जड़ों द्वारा पौधों को उपलब्ध हो जाता है। वायुमंडल में गंधक की गैस उद्योगों में प्रयुक्त कोयले के जलने से बनती है। ऐसा अनुमान है कि वर्षा जल के साथ प्रतिवर्ष प्रति एकड़ भूमि में ५-२० पौंड गंधक पहुँचता है।

इसके अतिरिक्त नहरों तथा कुओं के प्रति एकड़ फुट जल में २५ से ७०० पौं० गंधक पाया गया है जो खेत में उगे पौधों को लाभ पहुँचाता है। भूमि, वायुमंडल, उर्वरक, तथा जल के अतिरिक्त, फसलों के रोग तथा कीड़ों की रोकथाम के लिए खेत में डाला जाने वाला गंधक-धारी रोग तथा कीटनाशी दवाओं में भी तमाम गंधक रहता है। इन रोग तथा कीटनाशकों से बहुमुखी लाभ हो जाता है

साधारणतया गंधक की कमी की पूर्ति के लिए उपर्युक्त साधन पर्याप्त होते हैं परन्तु कुछ भूमियाँ ऐसी हैं जिनमें गंधक की अनुपलब्धि देखी जाती है। इससे फसल को भारी नुकसान पहुँचता है। अतः चतुर्थ स्थान धारण करने वाले गंधक की भूमि में मात्रा का ज्ञान करके उसकी पूर्ति करना कृषि का एक मुख्य कार्य हो जाना चाहिए। गंधक-न्यून भूमियों की पहचान करके उनमें गंधक की पूर्ति करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है।

नीरस बालू से सरस जीवन की उत्पत्ति

डा० शिवगोपाल मिश्र

कार्बन तथा सिलिकान ऐसे दो तत्व हैं जो अनेक बातों में प्रचुर साम्य रखते हैं। किन्तु फिर भी यह कम आश्चर्य की बात नहीं है कि कार्बन अल्प मात्रा में होने पर भी जीवन के लिए जितना ही अधिक उपयोगी है सिलिकान बड़ी मात्रा में पृथ्वी में विद्यमान होकर भी जीवन के लिए उतना ही कम महत्वपूर्ण। यद्यपि ओपैरिन ने यह स्वीकार किया है कि जीवन के उद्भव में कार्बनिक यौगिकों के साथ-साथ अकार्बनिक कोलायडों का भी योगदान रहा होगा किन्तु बर्नाल ही इस निश्चित मत पर पहुँचे हैं कि सरल कार्बनिक अणुओं से जटिल अणुओं का विकास कोलायडीय सिलिकेटों द्वारा हुआ होगा। उनकी मान्यता है कि जीवन के उदय के पूर्व प्रारम्भिक वायुमण्डल में मिथेन, अमोनिया, हाइड्रोजन सल्फाइड तथा जल वाष्प जैसे हाइड्राइड वर्तमान रहे होंगे। विद्युत् विसर्जन के फलस्वरूप इन्हीं यौगिकों से अमीनो अम्लों की उत्पत्ति सम्भव हो सकी। फिर क्या था, सरल कार्बनिक यौगिकों का सान्द्रण जलाशयों की तली एवं भू पृष्ठ पर कोलायडीय मृदाओं की अनन्त विस्तीर्ण सतहों पर प्रारम्भ हुआ। किन्तु क्या यही जीवन के विकास का प्रारम्भ था? यह कहना कठिन है कि 'जीवित' प्राणी उपर्युक्त प्रकार से उत्पन्न हुआ किन्तु इतना स्वीकार किया जा सकता है कि यह उन अनेक सम्भावनाओं में से एक है जिनके द्वारा जीवन का विकास हो सकता है। इस सम्बन्ध में कुछ अधिक कहना वैसे ही है जैसे यह मानना कि खान से लौह अयस्क की खुदाई के साथ ही इंजिन निर्माण प्रारम्भ हुआ।

यह सत्य है कि जीवन के प्रारम्भ में कोलायडीय सिलिकेट की आवश्यकता हुई किन्तु ज्योंही उच्चतर क्रमबद्ध "जीवित" कार्बनिक पदार्थ का विकास सम्भव हो सका, सिलिकेट की आवश्यकता मिट गई। किन्तु यदि तथ्य ऐसा ही है तो यह मानना न्यायसंगत होगा कि प्रारम्भिक स्थिति की जीवित पदार्थ की संरचना पर अवश्य ही कोई ऐसी छाप पड़ी होगी जो अब भी विद्यमान होगी। क्या मृदाओं में पाई जाने वाली परमाणुक दूरी प्रोटीन जैसे पदार्थों की सुसम्बद्ध योजना की परिचायक नहीं हो सकती?

जीवित प्राणियों के लिये सिलिकेट आवश्यक थे, इसका सबसे बड़ा प्रमाण है कतिपय प्राचीन प्राणियों द्वारा सिलिका का शरीर निर्माण में उपयोग। उदाहरणार्थ समुद्री जीव, डायटम, अपने निर्माण के लिए सिलिकान डाइ आक्साइड (सिलिका) को काम में लाता है। यही नहीं, कुछ वनस्पतियाँ भी ऐसी हैं जिनमें सिलिका की प्रचुर मात्रा पाई जाती है। अधिक विकसित उच्च प्राणियों में सिलिका के महत्व को अधिकांश लोग अस्वीकार करते हैं किन्तु होल्जैफेल नामक महिला वैज्ञानिक इस पक्ष की हैं कि समस्त पशु-ऊतकों में सिलिका की उपस्थिति पाई गई है अतः सिलिकान एक आवश्यक तत्व है।

सिलिका का सबसे महत्वपूर्ण गुणधर्म है जल तथा कतिपय शर्कराओं में इसकी विलेयता। अतः इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि जीवित प्राणियों में सिलिकान की कुछ-न-कुछ मात्रा पाई जाय। किन्तु प्राणियों में यह कैसे प्रवेश पाता है यह अब भी रहस्यमय घटना है।

चट्टानों के ऊपर सर्वप्रथम अनेक प्रकार के शैवालों अथवा काइयों ने अपना अड्डा जमाया। ऐसा अनुमान है कि ये चट्टानों के अपक्षय द्वारा सिलिका उत्पन्न करते हैं। ऐल्गी में भी यही गुण है अतः उनके साथ पाये जाने वाले डायटम उनके द्वारा मुक्त की गई सिलिका का उपयोग अपने शरीर निर्माण के लिए करते हैं।

निम्न प्राणियों में सिलिका

दो प्रकार के उल्लेखनीय प्राणी, जो सिलिका का उपयोग करते हैं वे हैं **डायटम** तथा कतिपय **स्पंज**।

ऐसा अनुमान है कि मीठे तथा खारी जलों में मिलाकर डायटम की कुल १० हजार से अधिक किस्में पाई जाती हैं। इनकी शरीर-भित्तियों में सिलिका पाया जाता है। डायटम अत्यन्त सूक्ष्म पौदे हैं जो बैसिलैरिया अथवा डायटमेसी के नाम से विख्यात हैं। ये पौदे एककोशीय प्राणी हैं जिनमें दो खण्ड होते हैं जो एक दूसरे के ऊपर फिट हो जाते हैं। बालुकामय वाह्य खोल के साथ-साथ उस पर कुछ बूँदे पाई जाती हैं। ऐसा अनुमान है कि इन्हीं से पेट्रोलियम की उत्पत्ति हुई है। अफ्रीका के तट पर ४०० मील लम्बी तथा १०० मील चौड़ी पंक राशि पाई गई है जिसमें डायटम हैं। ऐसा विचार है कि इन्हीं प्राणियों के मृत शरीर से समुद्र की पेंदी में पेट्रोलियम के बड़े-बड़े निक्षेप उत्पन्न हुए होंगे। समुद्री जल में २००० से १४००० माइक्रोग्राम सिलिका प्रति लिटर पाया जाता है और यही कारण है कि ये डायटम समुद्रों में वृद्धि करते हैं।

कुछ समुद्री स्पंजों में भी सिलिका संचित करने का गुण पाया जाता है। कुछ स्पंज काँचीय स्पंज कहे जाते हैं। वे जलों से सिलिका का अवशोषण करके उनमें सिलिका की मात्रा को अत्यन्त न्यून बना देते हैं। इनमें शुष्क कार्बनिक पदार्थ का ३०% सिलिका पाया जाता है।

पौदों में सिलिका

पौदों की राख में सिलिका की उपस्थिति इसका प्रमाण है कि यह पौदों के लिए आवश्यक तत्व है। सिलिका द्वारा पौदों की वृद्धि देखी गई है। ऐसा विश्वास है कि सिलिका का प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से फासफेट की उपलब्धि बढ़ाकर पौदे की वृद्धि करने में है। फिर भी पौदों के लिए इस तत्व की आवश्यकता के सम्बन्ध में मतभेद है। ओकावा ने धान तथा जौ में इसकी शरीरक्रियात्मक महत्ता को स्वीकार किया है। बाल आने के लिए सिलिका अत्यन्त आवश्यक है। यह भी सिद्ध किया जा चुका है कि यदि उगते जौ के पौदों को कोलायडीय सिलिका प्रदान किया जाय तो वे पाले के प्रभाव से बच जाते हैं। सूर्यमुखी के बीजों के लिए सिलिका अत्यन्त उपयोगी है।

यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से सिलिका की उपादेयता पौधों के लिये द्विधामूलक हो सकती है किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से वह अत्यन्त उपयोगी है। जिन मिट्टियों में फासफेट की न्यूनता होती है उनमें सिलिका उसकी अधिकाधिक उपलब्धि में प्रचुर सहायक होता है। यह सिलिका की अधिशोषण शक्ति द्वारा सम्भव है।

यही नहीं, सिलिका की उपस्थिति से अनेक पौदो में फफूँद रोगों के प्रति रोधकता बढ़ती है। आवश्यक भोज्य तत्व न होने पर भी पौदों द्वारा ग्रहीत होकर यह एपिडर्मिस में एकत्र होकर गेरुई आदि रोगों के आक्रमण से रक्षा करता है। मिट्टी में नाइट्रोजन की न्यूनता तथा पोटाश की अधिकता होने से पौदों में सिलिका संचयन की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है।

जिन पौदों में सिलिका विशेष रूप से संचित होता है उनमें घास एवं अन्नों के तने, कतिपय बाँस, कुछ किस्म के काष्ठ प्रमुख हैं। कभी-कभी बाँस के पोले भाग में सिलिका की वृहद मात्रा पाई जाती है। यह कार्बनिक पदार्थ के साथ संयोग करके एक श्लेष्मीय पदार्थ "तबासीर" बनाता है जिसका उपयोग औषधि के रूप में होता रहा है। मीठा होने के कारण इसे बाँस शर्करा के नाम से भी पुकारा जाता है। तबासीर के गुणों का यथेष्ठ अध्ययन किया जा चुका है।

एक अन्य वृक्ष है हार्सटेल (अश्वपुच्छ) जिसमें कोशा की भित्तियों के सेल्यूलोज के साथ सिलिका संयुक्त रहता है और यदि सेल्यूलोज को विलयित कर दिया जाय तो सिलिका बच रहता है। इस सिलिका के कारण इस वृक्ष में कठोरता पाई जाती है जिसके कारण शताब्दियों से इस वृक्ष की छाल घर्षक के रूप में प्रयुक्त होती रही है।

कुछ ऐसे भी वृक्ष हैं जिनमें से सिलिका गोंद के रूप में बाहर फूट-फूट कर निकलता है।

एक अन्य वृक्ष है 'जाब के अश्रु'। इसके बीज मनकों की भाँति प्रयुक्त किये जाते हैं।

हमारे देश में भोज पत्र का प्रयोग लिखने के लिये अत्यन्त प्राचीन काल से होता रहा है। इन पत्रों में प्रचुर सिलिका रहता है।

अनेक घासों तथा नरकटों में भी सिलिका पाया जाता है। धान की भूसी में भी सिलिका रहता है। गेहूँ के दाने, भूसे दोनों में सिलिका पाया जाता है। भूसे में लगभग २-३% सिलिका रहता है। आश्चर्य की बात है कि डंठलों के ऊपरी भागों में निचले भागों की अपेक्षा दुगुना सिलिका रहता है।

उष्ण कटिबन्ध की जंगली लकड़ियों में काफी सिलिका प्रविष्ट रहता है जिससे आरा चलाने पर कुंद हो जाता है। कुछ किस्म के काष्ठों में ३ प्रतिशत सिलिका पाया गया तो कुछ में ०·५% तथा शेष कुछेक में बिल्कुल नहीं। जिन काष्ठों में सिलिका की मात्रा अधिक रहती है उनमें काष्ठ-छेदकों का आक्रमण नहीं हो पाता। आस्ट्रेलिया में तारपीन के काष्ठ में छेदकों का आक्रमण इसीलिये कम होता है कि वहाँ काष्ठ में सिलिका की मात्रा अधिक होती है जब कि हवाई द्वीप में कम सिलिका होने के कारण छेदकों का उत्पात अधिक होता है।

सिलिका-उपस्थिति का उत्कृष्ठ उदाहरण है वनस्पतियों के फासिल। ध्यानपूर्वक देखने पर पत्तियों तथा अन्य भागों के चिन्ह उनके भीतर सिलिका की उपस्थिति के कारण ही जान पड़ेंगे। वास्तव में पौदों द्वारा जल के साथ विलेय सिलिका अन्दर प्रविष्ट करता है किन्तु पत्तियों की सतह पर या अन्य भागों में कार्बन डाई आक्साइड के विलग होने से विलय सिलिका अविलेय बनता रहता है। यह अत्यन्त विचित्र घटना है कि कार्बनिक अंश के स्थान पर धीरे-धीरे सिलिका अपना स्थान ग्रहण कर लेता है।

पशुओं में सिलिका

पौदों की भाँति पशु भी जल के माध्यम से काफी सिलिका ग्रहण करते रहते हैं किन्तु साथ ही उसका उत्सर्जन भी होता रहता है। इससे शरीर के भीतर सिलिका का संचय नहीं हो पाता। खरगोशों को २ मास तक लगातार प्रतिदिन २ ग्राम सिलिका जेल देने पर उन पर कोई बुरा प्रभाव नहीं देखा गया। तबासीर (जो सिलिका है) का उपयोग श्वास एवं यक्ष्मा रोगों में औषधि के रूप में होता रहा है। अनेक पशुओं के ऊतकों में सिलिका की उपस्थिति देखी गई है। यक्ष्मा होने पर पित्ताशय में सिलिका की मात्रा कम हो जाती है जब कि कैंसर में इसके विपरीत होता है। गिनी सुअरों में यक्ष्मा का उपचार उन्हें सिलिसिक अम्ल खिला कर किया जाता है।

यदि धातु आयन उपस्थित हों तो सिलिका की विलेयता घट जाती है। सिलिका मनुष्यों तथा पशुओं के वसा के साथ संयोग करता है। पशु ऊतकों में प्राप्य सिलिका की मात्रा निम्न प्रकार है—

मनुष्य का रक्त	२-४ मिग्रा०/१०० ग्रा०
,, सिरम	०·८ मिग्रा० १०० ग्राम
,, मूत्र	३·६ मिग्रा० १०० ग्राम
,, पेशी	६० मिग्रा० १०० ग्राम
बैल का रक्त	५.६ मिग्रा० १०० ग्राम
मुर्गी के पंखे	१८७० मिग्रा० १०० ग्राम

सत्यं-शिवं सुन्दरम्

रामलखन सिंह, प्रयाग

आपको यदि कभी मेरे मकान पर आने का सौभाग्य मिला होता तो अवश्य ही आपने ठीक सामने वाला लाल मकान भी देखा होता और उस छोटे से मकान में निपट अकेले रहने वाले उस अद्भुत प्रकृति वाले व्यक्ति को भी देखा होता। फिर भी यदि आपने इनमें से कुछ भी नहीं देखा तो मैं बताये देता हूँ 'वह लाल मकान वैसे तो पूरे दस प्राणियों के परिवार को समा लेने की क्षमता वाला है परन्तु उसमें रहता है एक मात्र एक व्यक्ति। आप सुनकर चौंकेंगे कि आज तक कभी भी, कोई भी, कहीं से भी, नहीं आया उस व्यक्ति से मिलने। ना ही मोहल्ले के किसी व्यक्ति को उनका परिचित होने का दावा है। मेरी पड़ोस की चाची बताती हैं कि आज से पाँच वर्ष पहले इस व्यक्ति ने इसे खरीदा था और तब से वह एक दिन भी बाहर नहीं गया इस मकान को छोड़ कर। हाँ शाम को ठीक सात बजे वह निकलता है। सर झुकाये ही गैरेज से कार निकालता है और तेज रफ्तार से चला जाता है 'सिविल लाइन्स' की ओर और ठीक आठ बजे लोग उसे मकान का ताला खोलते हुए पुनः देखते हैं। एक झटके के साथ दरवाजा खुलता है और तुरन्त ही बन्द हो जाता है और पुनः दूसरे दिन सात बजे ही उसे देखा जा सकता है।' इतना कुछ सुन लेने के बाद अवश्य ही उत्सुक हो उठे होंगे कुछ और जानने को। परन्तु विश्वास मानिये मुझे इससे अधिक कुछ भी नहीं ज्ञात है इस विचित्र-प्रकृति के व्यक्ति के विषय में।

ठीक आप की तरह मैं भी एक इन्सान हूँ और यदि आप अज्ञात के प्रति उत्सुकता का गुण मेरी भी प्रकृति मानते हैं तो आपको यह भी मानना पड़ेगा कि अपने ही मकान के समक्ष रहने वाले इस अद्भुत व्यक्ति के विषय में मुझमें भी कुछ कम उत्सुकता नहीं होगी। इतने बड़े संसार से पूर्णतय: उदासीन रहकर चौबीस घंटे लम्बे दिनों को अकेले बिता देने वाला यह व्यक्ति मुझे अपने आप में रहस्य का समन्दर सा छिपाये लगता है। लाख सोचता हूँ कि कुछ जानूँ इसके विषय में पर कोई सूत्र ही हाथ नहीं आता।

उस दिन मैं निश्चय करके कि 'आज जब यह लौटेगा तो अवश्य ही आठ बजे उससे बातें करूँगा' आठ बजने के दस मिनट पहले ही जमकर बैठ गया था। अन्त में आठ बजे उसकी कार की घरघराहट भी निकट आती सी लगी। मैं उठकर उसके गैरेज के पास ही टहलने लगा। अन्त में कार इतनी निकट आयी कि उसके प्रकाश में मैं स्पष्ट सा हो उठा। अपने गैरेज के पास किसी छाया को देखकर उसकी आँखों में कौतूहल मिश्रित क्रोध उभर आया। परन्तु फिर भी प्रत्यक्ष में अप्रतिक्रिय सा रहकर उसने गैरेज में कार पिन्हाई और ताला डालकर दरवाजे की ओर मुड़ा। तभी मैंने सारा साहस सँजोकर कह ही दिया—"नमस्कार...।" इतनी सी बात उसे चौंका देने को पर्याप्त थी। एकाएक पलटकर उसने ऐसे देखा जैसे पहली बार इन्सान नाम के चौपाये को देखा हो। पुनः एक उचटती सी दृष्टि फेरता मुड़ पड़ा। दरवाजे में ताली लगाते हुए बोला—"क्या आपको पूरा विश्वास है कि मैं आपका परिचित हूँ...।"

"परिचय तो बनाने से बनता है महाशय !..." मैंने पास जाने का बहाना पाया। "परन्तु मेरे पास उसका समय नहीं है..." वही भावहीन स्वर। "ऐसी

भी क्या व्यस्तता हो सकती है कि आप अपने पड़ोसी को देखने तक का समय न निकाल पाये...।" अब तक द्वार खुल चुका था और अन्दर होते हुए उसने "इस समय मुझे एक आवश्यक कार्य है..." कह कर बन्द कर लिया।

उस दिन इतनी ही बात हो सकी थी। परन्तु इससे जिज्ञासा शान्त होने के बदले और भी उग्र हो उठी थी। दूसरे दिन पुनः मैंने उसी समय उसी तरह नमस्कार किया। उत्तर तो उसने उस दिन भी नहीं दिया था परन्तु क्रोधित भी नहीं हुआ था। मुझे लगा कि वह कुछ नम्र मुद्रा में है इसीलिये मैंने पुनः बात चलायी थी—"क्या आज भी आपको आवश्यक कार्य है।' कुछ एक क्षणों तक मौन रहने के बाद "नहीं। आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तुम चाहो तो अन्दर आ सकते हो..." कहते मुझे राह दिया था। 'अंधा क्या चाहे? दों आँखे...' वाली बात चरितार्थ हो उठी थी उस क्षण। मैं प्रसन्नता का भाव दर्शाते उसके साथ ही अन्दर हो लिया। द्वार बन्द करने के बाद वह मुझे छोटे से जिस कमरे में ले गया वहाँ मात्र दो कुर्सियों और एक छोटी मेज के कुछ भी नहीं था। एक पर स्वयं बैठता हुआ उसने दूसरी की ओर मुझे संकेत किया और मैं वैठूँ इसके पहले ही बोल पड़ा - "मैं आज अत्यंत प्रसन्न हूँ। होऊँ क्यों न...? वर्षों के अनवरत संघर्ष के बाद सफलता एक-एक झलक देखने को मिली है। तुम्हीं बताओ क्या मुझे प्रसन्न नहीं होना चाहिये...?" और एक प्रश्न सूचक दृष्टि मेरे ऊपर जमा दिया। विचित्रताओं की श्रृंखला में एक कड़ी और जुटी। मात्र उलझे रह जाने के उत्तर देना संभव न हो सका था मेरे लिए। कई क्षणों तक अपनी खुशी को आत्मसात करने का संघर्ष करने के बाद भी असफल रह जाने पर वह पुनः फूट पड़ा—"अब देखता हूँ दुनिया कैसे आती है मेरे आँड़े। यह अदृश्य शून्य मेरी यात्रा का पथ बनेगा। अंधों की तरह आँखे झपकाने के सिवा क्या कुछ कर पायेंगे दुनिया वाले मेरा।... और पुनः अट्टहास कर उठा था। मैं डर सा उठा था उसके इस रहस्य भरे आचरण को देख कर। कौतूहल की जो आकांक्षा मुझे कक्ष तक लायी थी अब उसके स्थान पर भय छाता जा रहा था। और वह था कि मेरी उपस्थिति से पूर्णतयः उदासीन अपने आप से उलझा रहा—"अब देखूँगा कि दुनिया की प्रथाओं में कितनी दम है। नैतिकता की मान्यताओं की ताकत आजमाऊँगा अब। इस दुनिया वालों ने सोचा था कि मैं कायरों की तरह सर झुका कर अपनी जिन्दगी तवाह होते देखूँगा। परन्तु अब मैं इस दुनिया को दिखा दूँगा कि मुझमें भी कुछ कर सकने की दम है। मैं...मैं...हऽ...हऽ...''पुनः वही अट्टहास। अब तो मेरा रहा सहा साहस भी जाता रहा। उसके पागल होने में मुझे कुछ भी संदेह नहीं रहा। वहाँ से जल्दी से जल्दी भाग निकलने में ही अपना कल्याण समझ कर मैं कुर्सी छोड़कर उठ खड़ा हुआ—"अच्छा, अब मैं चलूँगा—।" मेरे इतना कहते ही वह उठ पड़ा। झुँझलाहट भरे भावों में "तो तुम्हें मेरी बातों पर विश्वास नहीं है..." कहता मेरी ओर बढ़कर उसने मेरी बाँह थाम ली—"आओ मेरे साथ मैं तुम्हें दिखाऊँ अपने प्रयोग की सफलता। उसे देखते ही तुम्हारा अविश्वास मिट जायेगा..." कह कर मुझे घसीटता सा जिस बड़े हाल में ले गया वहाँ का दृश्य देखकर मैं और उलझ गया।

सारे हाल में वैज्ञानिक यंत्र भरेपड़े थे। बिजली के तारों का जाल फैला हुआ था। एक कोने में एक छोटा बन्दर बँधा था जो हम दोनों को देखते ही चीखने लगा था। मुझे एक बड़े से विचित्र प्रकार के यंत्र के पास ले जाकर वह ठहरा—"इसे देखो। इसके अन्दर निर्मित सूक्ष्म कणों की ऊर्जा इतनी अधिक है कि वे जिस भी पदार्थ के अणुओं से टकरायेंगे उसे सीधा ऊर्जा किरणों में परिवर्तित कर देंगे। तुम्हें यह बात असम्भव सी लग रही होगी। परन्तु नहीं यह सम्भव है। प्रत्येक पदार्थ सूक्ष्म कणों का बना होता है। उन कणों को परमाणु कहते हैं। यह परमाणु स्वयं अन्य छोटे छोटे मूलभूत कणों के बने होते हैं। उन मूलकणों को प्रोटान, न्यूट्रान, इलेक्ट्रान आदि कहते हैं। परन्तु यह मत समझो कि यह मूलभूत कण स्वयं में अमर हैं। ये परिवर्तित

होते हैं। इनमें से प्रत्येक का प्रतिद्वन्दी कण भी अस्तित्व में पाया जाता है। जैसे प्रति प्रोटान (ऐन्टी प्रोटान), पोजीट्रान (ऐन्टी इलेक्ट्रान), प्रतिन्यूट्रान आदि। इनकी मात्रायें समान होती हैं तथा आवेश विपरीत होते हैं। इस समय तुम्हारे मन में प्रश्न उठ रहा होगा कि न्यूट्रान में तो आवेश होता ही नहीं तब ऐन्टी न्यूट्रान की क्या विशेषता होगी ? परन्तु नहीं—उसकी अपनी विशेषता होती है। न्यूट्रान में यंत्रीय और चुम्बकीय घूर्ण एक दिशा में कार्य करते हैं तथा ऐन्टी न्यूट्रान में इन दोनों घूर्णों की कार्य दिशायें विपरीत होती हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि उन चन्द मूलभूत कणों (जिनके विभिन्न अनुपातों में समायोजन से समस्त ब्रह्मांड का निर्माण हुआ है) के भी अमरत्व का गुण स्थायी नहीं होता। वे अपने प्रति-कणों से मिल कर ऊर्जा किरणों में परिवर्तित हो सकते हैं। यथा—

इलेक्ट्रान + पोजीट्रान = २ (ऊर्जा किरणों की इकाई)

अर्थात् पदार्थ के मूलभूत कणों को ऊर्जा किरणों में परिवर्तित किया जा सकता है। इसी सिद्धांत पर आधारित यह यंत्र स्वनिर्मित तीव्र कणों की वर्षा करके दूर रखे किसी भी पदार्थ को ऊर्जा किरणों में परिवर्तित कर देगा। स्पष्ट रहे कि वे ऊर्जा किरणें अदृश्य रहेंगी और वायुमंडल में भटकती रहेंगी। अब यदि इन पर संयमित विद्युत् बल लगाया जाय तो उन्हें दिशा विशेष में प्रवाहित करके स्थान विशेष पर केन्द्रित किया जा सकता है...'' कहता वह मुझे घसीट कर दूसरे यंत्र पर ले गया —'यह है उन्हीं किरणों को संतुलित करके केन्द्रित करने का यंत्र। इससे उत्पन्न विद्युतीय क्षेत्र दूर निर्मित ऊर्जा किरणों को बहकने से बचाता है और उन्हें मनोवांच्छित दिशा में प्रवाहित होने को बाध्य कर देता है। साथ ही इसमें लगा पर्दा उनकी गति की दिशा का चित्र भी उपस्थित करता है। इसकी सहायता से मैं उन किरणों को केन्द्रित करके इस यंत्र में इकट्ठा करता हूँ...'' कहता वह मुझे कोने में रखे उस विशालकाय यंत्र के पास ले गया जो अपने आप में अत्यंत ही विचित्र प्रकार का था। उसके एक पेंच को घुमाते ही ऊपर के एक कोने की दीवाल खिसक सी गयी और उसके हट जाने से अन्दर का जो कक्ष दिखा उसे दिखाते हुए वह पुनः बोला यह है वह कक्ष जिसमें वे ऊर्जा किरणें एकत्र होती हैं। उन ऊर्जा किरणों को पुनः पदार्थ का स्वरूप देने का कार्य करता है यह यंत्र। यह बात तुम्हें चौंका देने को पर्याप्त है, परन्तु है यह पूर्णतयः सत्य। ऊर्जा किरणों के संयोग से पदार्थ के वही मूलभूत कण पुनः प्राप्त किये जा सकते हैं...' कहते हुए उसने मेज पर रखी पेन्सिल से सफेद पुती दीवाल पर एक चित्र बना डाला और पुनः कहता रहा—'यहाँ पर यह मत सोचो कि यह प्राप्त मूलकण स्वयं माध्यमीय परमाणु के हैं। यह तो स्वयं उन ऊर्जा किरणों के प्रतिरूप हैं। हाँ उन ऊर्जा किरणों से मूलभूत कणों का रूप पाने की क्रिया में माध्यम के रूप में परमाणु नाभि की उपस्थित आवश्यक सी है। ठीक पहले के विपरीत होती है यह क्रिया। यथा—

(ऊर्जा किरण की इकाई)=इलेक्ट्रान + पोजीट्रान

और इस प्रकार इन ऊर्जा किरणों को मूलभूत कणों के रूप में परिवर्तित करके पुनः उनके संयोजन से उस पदार्थ का रूप लाने का कार्य करता है यह यंत्र...।''

और पुनः उसी पहले वाले यंत्र पर ले जाकर खड़ा कर दिया मुझे—''देखो अब मैं इसकी सहायता से कोने में बँधे उस बन्दर का शरीर ऊर्जा किरणों के रूप में परिवर्तित करूँगा...'' और मुझे वहीं छोड़कर स्वयं सामने लगी विद्युत् संचालिका को घुमाने के लिए दीवाल तक गया। लौट कर यंत्र के पेचों को विभिन्न दिशाओं में घुमाया। देखते ही देखते अदृश्य कणों की बौछार ने बन्दर का शरीर घोल दिया। तेजी से मुझे घसीट कर दूसरे यंत्र पर ले जाकर बोला—'इधर देखो, उसके शरीर के परमाणुओं की मूलभूत इकाइयों के स्थान पर प्राप्त यह ऊर्जा किरणें कमरे में भटक रही हैं। मैं इसके द्वारा विद्युतीय क्षेत्र के प्रभाव से उन्हें दूर रखी उस यंत्रिका के 'संग्रह कक्ष' में एकत्रित करूँगा...' कहकर उसने पेंचों से खेलना प्रारम्भ कर दिया। वास्तव में यंत्र के पर्दे पर संयमित रेखीय चिन्ह उभरने लगे थे। पर्दे पर देखने से ऐसा लग रहा था

जैसे सभी किरणें तेजी से उस यंत्र की ओर भागी जा रही हों। यह क्रम थोड़ी देर में ही समाप्त हो गया। ऐसा लग रहा था जैसे वे सभी उस यंत्र में सिमट चुकी हों।

अब उसने यंत्र के पेचों को ढीला छोड़ दिया। मुझे साथ लेकर कोने के तीसरे यंत्र पर जा पहुँचा—"इस यंत्र में ही वे ऊर्जा किरणें एकत्रित हैं। मैं अब पुनः पदार्थ का निर्माण करूँगा जो बन्दर के रूप में होगा।... इतना कह कर उसने उसके सिरे को उस नुकीले से पेंच को घुमाया जो कि घूमते ही यंत्र को चालू कर उठा। साँय-साँय की घुटती सी ध्वनि करते यंत्र के अंग-प्रत्यंग गति में आ गये। और देखते ही देखते उसके पिछले हिस्से से बन्दर की चीखें आने लगीं। सच में ज्यों का त्यो बन्दर बन चुका था।

मैं आंखें फाड़े मात्र देखते रह जाने के कुछ भी न बोल पा रहा था। अपने प्रकार का यह अनोखा करिश्मा था। मेरी जड़ता पर और अपनी विजय पर वह अजीबो-गरीब व्यक्ति हँसे जा रहा था अट्टहास लगा रहा था मैं कब तक चित्र लिखा सा वैसा ही खड़ा रह जाता कहा नहीं जा सकता यदि उसने मुझे झकझोर कर चौंका न दिया होता—"देखा तुमने। क्या मैं सच नहीं कहता था कि दुनिया मात्र पलकें झपकाने के और कुछ नहीं कर पायेगी मेरा...।" मैं अब भी कुछ सोचने की स्थित में नहीं आ पाया था। थोड़ी देर शान्त रहने के बाद ही बोल पाया था—"परन्तु तुम इस सबसे करना क्या चाहते हो !..."

"मैं इस दुनिया से बदला लेना चाहता हूँ—जिसने मुझे जन्म तो दिया पर मेरे नाम पर स्नेह की, अपनत्व की एक बूँद न छिड़की : मुझको एक वर्ष का छोड़कर मरने वाली मेरी माँ और उसके मरने के दूसरे ही वर्ष एक वर्ष नई शादी करके घर बसा लेने वाले बाप ने कितना अभागा बना दिया मुझे, इसे मैं ही जानता हूँ। नयी माँ के जाल में फँसे मेरे पिता ने मुझे बचपन से ही होस्टल में रखकर पढ़ाया। माँ का प्यार, पिता का स्नेह, भाई का दुलार, बहन की शैतानी भरी छेड़—सभी से अनजान रहकर काटा था मैंने अपना बचपन। सयाने होने पर चाहा था कि कोई हमारा भी अपना बने, मैं भी किसी का अपना बनूँ; परन्तु नहीं, इस संग-दिल दुनिया के पास मेरी झोली में डालने के लिये एक भी पुष्प न निकला। उफ—सोचता हूँ तो सीना फट जाता है अपनी बदनसीबी याद करके। कहाँ नहीं गया ? किसके द्वार पर नहीं गया ? स्नेह की, अपनत्व की भीख माँगने। मैं पूछता हूँ कि क्या मेरे सीने में एक इंसान का हृदय नहीं ? क्या माँ के सीने से चिपट कर चुहुँक-चुहुँक कर दूध पीते बच्चे को देखकर मेरे सीने में तमन्ना नहीं उठती कि मेरी भी अपनी माँ हो —मैं भी उसकी गोद में सिमटकर सारी चिन्ता में भूल जाऊँ। क्या बहन के हाथों राखी बँधाने भाई की किस्मत देखकर मेरी भी कोई बहन हो ? क्या पत्नी की लजायी मुस्कान पर निहाल हो उठते पति को देखकर मैं भी नहीं चाहता कि मेरी भी कोई पत्नी हो ? मेरा भी कोई हमराह हो।

परन्तु नहीं दुनिया वालों ने कब सोचा है मेरी तमन्नाओं के विषय में। उसे तो मात्र आग लगाना आता है। लाख मनौतियों के बाद एक हमराह का साया पड़ा था मेरी जिन्दगी पर और तब मैंने तिनका तिनका बीन कर एक घोंसला बनाना चाहा था। उस पर इस दुनिया के रस्मो-रिवाज चीखे थे—'तुम दोनों की जात अलग है। यह पाप है। यह अनैतिक है।' और मेरे लाख न चाहने पर भी पाप-पुण्य के ठेकेदारों ने उसे दूसरे के साथ बाँध दिया था। उस दिन मैंने सोचा था कि मैं इस समाज से बदला लूँगा। रात-दिन एक करने के बाद आज मैं इस योग्य हुआ हूँ कि अपना बदला ले सकूँ। अब मेरे अरमानों का हर रूप किरणें बन कर मेरी प्रयोगशाला तक आयेगा और यहाँ उसे किरणों से अजीब आकृति बनाकर सदियों की प्यासी तमन्नायें ठंढी करूँगा। दुनिया वाले सिवा चीखने के क्या कुछ कर पायेंगे मेरा। और तब मैं इस दुनिया की बेबसी पर हसूँगा ठीक उसी तरह जैसे एक दिन यह हँसी थी मुझ पर..." कह कर पुनः उसने ठहाका लगाया।

उसकी इस भयानक योजना पर सिहरन सी हो उठी थी मुझे। अब मेरे लिए शान्त रह पाना सम्भव न

था। बोलना हीं पड़ा—"मेरे दोस्त! मैं यह मानता हूँ कि यह सत्य है कि दुनिया के अन्य लोगों की तरह तुम्हें भी प्यार, स्नेह, शांति पाने का हक है। उसे अपनी ताकत के बूते पर प्राप्त कर लेने की शिवं की यह प्रवृत्ति भी स्वीकारता हूँ। परन्तु क्या यह दर भी है? क्या यह उचित भी है?..."

"परन्तु क्या और लोगों ने भी उचित-अनुचित का विचार किया था?..."

"माना कि उन्होंने नहीं किया था। परन्तु उसी अनौचित्य को दुहरा कर क्या तुम स्वयं नीच नहीं बनोगे। यह मत भूलो कि व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। उसे यदि व्यक्तिगत स्तर पर सोचने का हक है तो उसे समाज की, राष्ट्र की, विश्व की और समूचे ब्रह्मांड की मान्यताओं का भी विचार करना चाहिए। हमें व्यक्तिगत स्तर से ऊपर उठकर देखना चाहिए कि समय की माँग क्या है। तुमने जीवन की जिस रस-हीनता से ऊब यह विद्रोही स्वरूप अपनाया है वह समय की माँग नहीं है। तुमसे भी दुखी और असहाय लोग हैं। एक दो नहीं, लाखों करोड़ो हैं। फुटपाथों पर बस्तियाँ बसी हैं। इज्जत के दामों रोटी खरीदनी पड़ती है उनको और यदि सभी तुम्हारी तरह उचित-अनुचित का विचार छोड़ कर नग्न सत्य को शिव का जामा पहना कर निकल पड़ें तो जानते हो क्या होगा...? उस समय तुम्हारे इस मकान को आग लगा दी जायेगी; तुम्हारी कार के टुकड़े उड़ जायेंगे और तुम्हारी रोटी छिन जायेगी।..."

"तुम मुझे यह सब क्यों सुना रहे हो...?" वह उलझ सा उठा।

"इसलिए कि सुनने के बाद तुम समझो कि तुम्हारा यह स्वरूप समाज के लिए घातक है। तुम वैज्ञानिक हो तो इसलिए नहीं कि बेगुनाह इंसानों को हवा में घोल कर रख दो। समाज के प्रति निष्ठावान बनो। तुम्हारे ही जैसे सर-फिरे इंसानों ने आज मानवता के ऊपर ऐटम बमों का पहरा बिठा रखा है। हिरोशिमा और नागाशाकी को हँसते चमनों से बीरान श्मशान बना देने वाले तुम्हारे जैसे अहंकारी वैज्ञानिकों को मैं चुनौती देता हूँ कि यदि उनके विज्ञान में दम है तो उसी स्तर का निर्माण करके दिखायें...।"

"है क्यों नहीं। विज्ञान सब कुछ कर सकता है..." वह इस बार तड़प सा उठा।

"खाक है दम और यदि है तो कर नहीं सकता..." मुझे भी कहना ही पड़ा।

"क्यों नहीं कर सकता...?" इस बार उसके स्वर में और तेजी आ गयी थी।

"इसलिए कि आज का वैज्ञानिक विनाश के पथ पर चल निकला है। तुम जैसे होनहार वैज्ञानिक अपने व्यक्तिगत दुखों का दुखड़ा रोने में पड़े हैं। मैं पूछता हूँ कि क्या तुम मात्र अपने लिए जन्मे हो? क्या तुम्हें भूखी, नंगी मानवता दिखती नहीं जो बेबस सी खड़ी तुम वैज्ञानिकों से दाना, कपड़ा, जीवन माँग रही है? यदि तुम्हें अपने विज्ञान पर घमंड है तो बनाओ उसके लिए दाना, कपड़ा, घर अपनी उन प्रयोगशालाओं में जहाँ ऐटमबम बनाते हो, क्षेपकास्त्र बनाते हो, जहाँ अपनी हैवानी तमन्नाओं को पूरा करने के लिए शरीर घोलने वाले यंत्र बनाते हो...।"

"यू...शट अप..." कहता वह बौखलाया सा उठ खड़ा हुआ "तुम मुझे चुनौती देते हो...।"

"हाँ-हाँ मैं चुनौती देता हूँ। यदि तुममें साहस है तो स्वीकारो इस चुनौती को; आग लगा दो इन यंत्रों को जो मानवता के नाम पर मात्र कलंक हैं और रात दिन जुट कर कुछ सकारात्मक निर्माण करो।..."

"तो तुम सोचते हो कि मैं बुजदिल हूँ..." कहता वह उठ खड़ा हुआ। तेजी से पुनः प्रयोगशाला में घुसकर जाने कौन से पेंच घुमाये कि देखते-देखते बिजली के तार टकराये और एक चमक उठी जिसने उन यंत्रों को भस्म करके रख दिया। उसी मुद्रा में मेरी ओर पलटा—"अब तुम देखोगे कि मैं ऐसे यंत्र बनाऊँगा, ऐसी खोजें करूँगा जो मानव के लिए वरदान सिद्ध होंगी..." इस बार उसके स्वर में ठहराव था, संयम था और था एक आत्मबल। "और तभी हमारी 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' की कल्पना साकार होगी..." कह कर मैंने बाँहों में ले लिया। स्नेह के प्यासे को स्नेह मिला। आदर्श के प्यासे को आदर्श। ●●

विज्ञान परिषद् के सभापति का निधन

विज्ञान परिषद्, प्रयाग की साधारण सभा के सदस्य परिषद् के सभापति डा० बी० एन० प्रसाद के आकस्मिक निधन (१८ जनवरी, १९६६) पर हार्दिक शोक प्रकट करते हैं।

डा० प्रसाद देश के ऊँचे गणितज्ञ थे। उनकी ख्याति देश-विदेश में थी। उन्होंने अपने देश में विज्ञान के शिक्षण तथा अन्वेषण की दिशा में सक्रिय योग दिया। वह भारतीय विज्ञान कांग्रेस के इस वर्ष के सभापति थे और देश तथा विदेश की अनेक वैज्ञानिक संस्थाओं से सम्बन्धित थे। उनकी सेवाओं के उपलक्ष्य में राष्ट्रपति ने उन्हें पद्म-भूषण उपाधि से विभूषित किया था।

डा० प्रसाद विज्ञान परिषद् के एक स्तम्भ थे। उनके निधन से परिषद् को महान् क्षति हुई है। भगवान से यह प्रार्थना है कि उनकी आत्मा को सद्गति दे और उनके परिवार के सदस्यों को इस शोक को सहन करने का बल दे।

भारत के मूर्द्धन्य भौतिकज्ञ की मृत्यु

परमाणु ऊर्जा आयोग के चेयरमैन डा० एच० जे० भाभा की मृत्यु २४ जनवरी १९६६ को वायुयान-दुर्घटना के कारण हो गई। वे जेनेवा में होने वाली कांफ्रेंस में भाग लेने के लिए वायुयान द्वारा यात्रा कर कर रहे थे।

डा० भाभा की मृत्यु हमारे देश के लिए अत्यन्त हृदय विदारक है। उनके शतत् प्रयासों के फलस्वरूप ही परमाणु ऊर्जा-उत्पादन एवं समुन्नति के क्षेत्र में भारत ने प्रगति दिखाई।

विज्ञान परिवार की ओर से हम इस दिवंगत महानतम वैज्ञानिक के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि उनके संतप्त परिवार को धैर्य प्रदान करे।

शोक-प्रस्ताव

भारत के प्रधान मन्त्री की मृत्यु पर

अपने देश के प्रधान मन्त्री, श्री लाल बहादुर शास्त्री के ताशकन्त में (११ जनवरी १९६६) प्रातः १.३० बजे देहावसान का दुखद समाचार पाकर समस्त देश शोकग्रस्त हो गया। शास्त्री जी ने अपने कुछ महीनों के प्रधान मंत्रित्व काल में देश की जो ठोस सेवा की है वह अमूल्य है। देशवासियों में उन्होंने अपनी शक्ति और क्षमता के प्रति एक विश्वास जाग्रत किया।

विज्ञान परिषद् से उनका बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और वे सदा इसके कार्य को प्रगति देने में सहायक रहे हैं। विज्ञान परिषद् के हम सब सदस्य उनके इस आकस्मिक निधन से दुखी हैं और उनकी माता तथा पत्नी और उनके परिवार के सब सदस्यों के प्रति अपनी हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं। ईश्वर से हम सबकी प्रार्थना है कि वह दिवंगत आत्मा को सद्गति प्रदान करे।

स्वर्गीय हीरालाल खन्ना की स्मृति में 'विज्ञान' के विशेषांक की तैयारी हो रही थी कि पहले भारत के प्रधान मन्त्री श्री लाल बहादुर जी शास्त्री और फिर परिषद् के सभापति डा० बी० एन० प्रसाद के निधन क्रमशः हुए। इसके बाद ही भारत के महान वैज्ञानिक डा० भाभा की मृत्यु हुई।

हम इन तीनों विभूतियों के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

खन्ना जी ने विज्ञान परिषद् की अथवा अन्य क्षेत्रों में जो सेवायें की हैं वे उनके जीवनी खंड से स्पष्ट हो जाती हैं।

आशा है विज्ञान के पाठक खन्ना जी स्मृति अंक के द्वारा जीवत आदर्शों को ऊपर उठा सकेंगे।

भाग १०२

संख्या ६

मार्च १९६६

वार्षिक ४·००

एक प्रति ४० पैसे

सम्पादक—डा० [illegible] मिश्र

विषय-सूची

विज्ञान परिषद् के दिवंगत सभापति

स्वर्गीय डा० बी० एन० प्रसाद

[जन्म १२-१-१८९९—मृत्यु १८-१-१९६६]

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुखपत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति। विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ० ३।५।

भाग १०२ | फाल्गुन २०२२ विक्र०, १८८७ शक मार्च १९६६ | संख्या ६

भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध गणितज्ञ—डा० बी० एन० प्रसाद

डा० श्रीराम सिन्हा

१८ जनवरी १९६६ की तिथि भारतीय विज्ञान के क्षेत्र में अत्यन्त शोक के साथ चिरस्मरणीय रहेगी। इस दिन हमारे जगत्प्रसिद्ध गणितज्ञ, लब्ध प्रतिष्ठ वैज्ञानिक एवं भारतीय विज्ञान कांग्रेस के इस वर्ष के अध्यक्ष पद्मभूषण डा० बी० एन० प्रसाद का, लगभग ४५ वर्षों तक देश में विज्ञान एवं गणित के क्षेत्रों में अनुसंधान की प्रगति के लिये क्रियाशील रह कर, अचानक देहावसान हो गया। इसके ठीक १५ दिन पूर्व ३ जनवरी को चण्डीगढ़ में पंजाब विश्वविद्यालय के तत्वावधान में आयोजित भारतीय विज्ञान कांग्रेस के ५३वें अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए अपने भाषण में उन्होंने देश के वैज्ञानिकों एवं शासकों से बड़े प्रभावशाली शब्दों में अनुरोध किया था कि वे भारतीय छात्रों को अधिक से अधिक संख्या में विदेश जाने से निरुत्साहित करें और उन्हें अपने विषयों में उच्च अनुसंधानों के लिये देश में ही समुचित सुविधायें देने का प्रबन्ध करें। इसके लिये उन्होंने कुछ सुझाव भी दिये थे जिनमें मुख्य यह था कि देश के विभिन्न भागों में उच्चस्तर की शोध संस्थायें स्थापित की जायँ और वहाँ विदेशों से प्रसिद्ध विद्वानों को इसलिये बुलाया जाय कि वे विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में गवेषणा करने वाले हमारे छात्रों को सहायता दें। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि उनका यह मौलिक सुझाव देश के लिये हितकारी होगा।

भारतवर्ष में समय-समय पर बहुत से धुरन्धर विद्वान हुए हैं और हैं, किन्तु एक ही व्यक्ति में अनेक प्रकार के सर्वोत्कृष्ट गुणों, जैसे अलौकिक प्रतिभा, मानसिक तीक्ष्णता, अनुसंधान कुशलता, कार्यतन्मयता आदि के साथ-साथ संयम, स्नेह एवं दया की भावनाओं का परिपूर्ण समावेश होने के दृष्टिकोण से मेरे स्वर्गीय गुरु डा० बी० एन० प्रसाद (अपने मित्रों के लिये डा० बद्रीनाथ प्रसाद) अपने ही नहीं हमारे समय के भी संसार-प्रसिद्ध गणितज्ञों में रहे हैं।

डाक्टर साहब (जैसा कि हम सब उन्हें सम्बोधित करते थे) का जन्म १२ जनवरी १८९९ को उत्तर प्रदेश के मुहम्मदाबाद गोहना (जिला आजमगढ़) में हुआ था। उनके पिता श्री रामलाल जी समृद्ध वैद्य

थे। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा हुई थी मुहम्मदाबाद गोहना, इलाहाबाद तथा सारन (बिहार) में। १९१९ में पटना विश्वविद्यालय से उच्च अंकों के साथ बी० एस्-सी० की परीक्षा उत्तीर्ण करके १९२१ में उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से गणित में एम० एस्-सी० की उपाधि प्राप्त की। उस वर्ष उन्होंने गणित में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण एम० ए० तथा एम० एस्-सी० की परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने वाले छात्रों से अधिक अंक प्राप्त किये थे। उन्होंने लिवरपूल विश्वविद्यालय में गणित के धुरन्धर आचार्य स्वर्गीय प्रो० ई० सी० टिट्समार्श, एफ० आर० एस० की पथप्रदर्शकता में अनुसंधान कार्य किया और १९३१ में केवल १½ वर्षों में ही पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की (जिसके लिये साधारणतया ३ वर्षों का समय निश्चित था)। १९३२ में पेरिस विश्वविद्यालय ने उन्हें अपनी सर्वोच्च श्रेणी की 'स्टेट डी० एस्-सी० की उपाधि से विभूषित किया, जहाँ कि उन्होंने प्रोफेसर ए० दाँ जुआ के संरक्षण में काम किया—जो संसार के वही प्रसिद्ध गणितज्ञ हैं जिनके नाम से अनुकलन का उनका आधुनिकतम सिद्धान्त विख्यात है।

डाक्टर साहब को गणित के क्षेत्र में गवेषणायें करने को प्रवृत्त करने का श्रेय प्राप्त था उनके स्वर्गीय गुरु स्वनामधन्य डा० गणेशप्रसाद को जिनकी सलाह मानकर, अधिक वेतन वाले पदों की ओर ध्यान न देकर प्रो० प्रसाद ने गणित के क्षेत्र में --वास्तविक चरवाले फलनों के सिद्धान्तों तथा श्रेणियों की, विशेषतया फोरियर श्रेणियों तथा उनसे सम्बद्ध अन्य श्रेणियों की, आकलनीयता पर गवेषणायें प्रारम्भ कीं। इंगलैण्ड के प्रो० जे० एम० ह्विटाकर के साथ उन्हें आकलनीयता की एक विधि विशेष —आबेल आकलनीयता की निरपेक्ष विधि—ज्ञात करने तथा उपयोग करने का सम्मान बँटाने का श्रेय प्राप्त था। उनकी इस मौलिक गवेषणा ने शीघ्र ही सारे संसार के प्रतिभाशाली गणितज्ञों का ध्यान आकृष्ट किया और तब से प्रायः निरन्तर इस विषय पर संसार के विभिन्न गवेषणा केन्द्रों से शोधपत्र प्रकाशित हो रहे हैं। इसी विषय पर उन्होंने अपना विज्ञान काँग्रेस का अध्यक्षपदीय भाषण भी दिया था जिसमें ३०० से अधिक संसार के गणितज्ञों के कार्य का उल्लेख है।

प्रो० प्रसाद ने गणित के असिस्टेन्ट प्रोफेसर के पद पर दो वर्षों तक (१९२२-२४) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की सेवा की। फिर जुलाई १९२४ से जनवरी १९६१ तक उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में लेक्चरर, रीडर एवं प्रोफेसर तथा अध्यक्ष के पद पर गणित विभाग में कार्य किया। इस अवधि में प्रायः दो वर्षों के लिये (मार्च १९४९—जनवरी १९५१) वह पटना के साइंस कालेज में गणित विभाग के प्रोफेसर तथा अध्यक्ष होकर गये थे, परन्तु इलाहाबाद के इस महान् विद्या केन्द्र के प्रति अपने आकर्षण के कारण तथा यहाँ एक गवेषणा केन्द्र बनाने की अपनी इच्छा के कारण वह पुनः इलाहाबाद विश्वविद्यालय लौट आये। इसी इच्छा से उन्होंने विदेशयात्रा से लौटने पर १९३२ से ही योग्य विद्यार्थियों को गणित में गवेषणायें करने के लिये प्रोत्साहित करना प्रारम्भ किया था। तब से लेकर आज तक इस दिशा में बहुत कार्य किया प्रो० प्रसाद और उनके शिष्यों ने, जो देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में सम्मानित पद ग्रहण किये हुए हैं। प्रो० प्रसाद के निरीक्षण में इतने दिनों में १४ थीसिसें—४ डी० एस्-सी० तथा १० डी० फिल्० के लिये तैयार हुई थीं। जो १६० से भी अधिक मौलिक शोधपत्र उन्होंने तथा उनके शिष्यों ने समय-समय पर तैयार किये वे संसार की प्रसिद्ध शोधपत्रिकाओं में छपे हैं। इन पत्रों में सिद्ध किये हुए प्रमेयों का आश्रय इस विषय पर कार्य करने वाले लोग बराबर ले रहे हैं। एक ही स्थान पर इतना अधिक शोध कार्य होने तथा होते रहने के कारण भारतीय गणितज्ञ इस बात का अनुभव करने लगे थे कि प्रो० प्रसाद की पथप्रदर्शकता में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में एक गवेषणाकेन्द्र बन गया है और नाम बी० एन० प्रसाद के साथ गणित की आधुनिक विश्लेषण-परम्परा का—जिसमें श्रेणियों की आकलनीयता की विभिन्न शाखायें भी सम्मिलित थीं—एक बिस्तृत क्षेत्र स्वतः जुड़ गया था।

स्वयं उच्चतम योग्यता के गवेषक एवं गवेषणा के क्षेत्र में सफल पथ-प्रदर्शक होने के साथ-साथ डाक्टर साहब सफल तथा लब्धप्रतिष्ठ शिक्षक भी थे। अपने विषयों में उनका ज्ञान गहन तथा उनकी अध्यापन रीति विलक्षण थी, जिनके कारण उनके विद्यार्थी सर्वदा उन्हें सम्मान तथा प्रेम की दृष्टि से देखते थे। उन्होंने भारतवर्ष में, व्यापकरूप से, विज्ञान तथा शिक्षा के विस्तार के लिये, तथा विशेष रूप से गणित की शिक्षा तथा तत्सम्बन्धी गवेषणाओं की उन्नति एवं विकास के लिये, अपना जीवन समर्पित कर रखा था। देश तथा विदेश की विभिन्न वैज्ञानिक संस्थाओं, विश्वविद्यालयों, गणित के गवेषणा केन्द्रों तथा गणित समितियों के सदस्य रह कर उन्होंने विज्ञान तथा गणित की अपूर्व सेवा की।

देश में विज्ञान के नैशनल इंस्टिट्यूट के वह सबसे पुराने वर्ग के फेलो थे तथा उसकी विभिन्न समितियों के सदस्य एवं उपप्रधान भी रहे। विज्ञान की नैशनल एकेडेमी के भी वह बहुत पुराने फेलो थे, १९६० में उसके भौतिक विज्ञानों के विभाग के अध्यक्ष रहे तथा मृत्यु के समय तो वह एकेडेमी के प्रधान अध्यक्ष थे। इन्डियन मैथेमेटिकल सोसायटी (१९६१) तथा विज्ञान परिषद् (१९६५-६६) के भी अध्यक्ष होने का श्रेय उन्हें प्राप्त था।

भारतीय विज्ञान कांग्रेस के साथ तो उनका बड़ा पुराना तथा घनिष्ठ सम्बन्ध था। गत २५ वर्षों से भी अधिक समय से वह उसके सक्रिय एवं उत्साही कार्यकर्ता थे। बहुत दिनों तक वह इसकी कौंसिल एवं कार्यकारिणी के सदस्य रहे। सन् १९४५ में उन्होंने इसके गणित तथा सांख्यिकी वर्ग की अध्यक्षता की। दो बार (१९५२-५५ तथा १९५८-६१) वह इसके जनरल सेक्रेटरी निर्वाचित हुये थे। अपने वैज्ञानिक जीवन का सर्वोच्च सम्मान उन्हें तब प्राप्त हुआ, जब कि उन्हें भारतीय विज्ञान कांग्रेस के ५३वें अधिवेशन का प्रधान अध्यक्ष निर्वाचित किया गया। किसी भी भारतीय वैज्ञानिक के लिये यह सम्मान निश्चय ही उसकी ख्याति की उच्चता तथा विस्तृतता का द्योतक है, फिर डाक्टर साहब तो भारतवर्ष के सर्वप्रथम गणितज्ञ थे जिन्हें विज्ञान कांग्रेस ने अपने ५३ वर्षों के कार्यकाल में यह सम्मान प्रदान किया। इसी उच्चतम आसन पर आसीन रहते हुये ही उन्होंने अपना शरीरत्याग किया।

डा० प्रसाद की प्रतिभा एवं विद्वता का सम्मान समय समय पर भारत सरकार तथा भारत के राष्ट्रपति ने भी किया। १९५४ में उन्हें यूनेस्को की आठवीं जनरल कान्फरेंस में भाग लेने के लिये जो शिष्टमण्डल भारत सरकार ने दक्षिण अमेरिका भेजा था उसमें वैज्ञानिक सदस्य डाक्टर साहब ही थे। इस शिष्टमण्डल का नेतृत्व किया था हमारे वर्तमान राष्ट्रपति (जो उस समय उपराष्ट्रपति थे) डा० राधाकृष्णन् ने। इसी प्रकार १९५८ तथा १९६५ में उन्हें भारतवर्ष एवं भारतीय विज्ञान कांग्रेस का प्रतिनिधित्व करने के लिये "ब्रिटिश एसोसियेशन फ़ार ऐडवान्समेन्ट आफ़ साइन्स" के १२० वें तथा १२७वें अधिवेशनों में इंगलैन्ड भेजा गया था। १९५१ में पान-इन्डियन ओशन साइंस कांग्रेस एसोसियेशन के पहिले अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन में भी उन्होंने गणित विषय में भारत का प्रतिनिधित्व किया था।

गणित, विज्ञान एवं शिक्षा के क्षेत्रों में उनकी अमूल्य सेवाओं का उल्लेख करते हुये १७ अप्रैल १९६३ को भारत के राष्ट्रपति ने डाक्टर साहब को 'पद्मभूषण' की उपाधि से विभूषित किया और एक ही वर्ष बाद १ अप्रैल १९६४ से उन्हें देश की सर्वोच्च संसद-राज्य-सभा का सदस्य भी मनोनीत किया। डाक्टर साहब प्रायः पौने दो वर्षों तक राज्य-सभा के एक सक्रिय सदस्य रहे तथा समय-समय पर अपने सारगर्भित भाषणों द्वारा देश की समस्याओं पर प्रकाश डालते रहे। उनके सहयोगियों को इस क्षेत्र में भी उनसे बड़ी आशायें थीं। विश्वविद्यालय अनुदान कमीशन द्वारा नियुक्त "गणित रिव्यू कमेटी" के सदस्य के रूप में देश में गणित के अध्यापन तथा गवेषणा कार्य की वृद्धि तथा उन्नति के लिये उपाय तथा साधन ज्ञात करने में भारत सरकार की सहायता करने का श्रेय भी उन्हें प्राप्त था।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के गणित विभाग की अपनी अध्यक्षता के थोड़े से ही काल में पुस्तकालय में

बहुत सी नई पुस्तकें तथा अनुसन्धान पत्रिकायें मँगाकर, पाठ्यक्रम में विशिष्ट नये विषयों की पढ़ाई आरम्भ करा कर, इन्डियन मैथेमेटिकल सोसायटी का २५वाँ अधिवेशन अपने विश्वविद्यालय में पहली बार आयोजित करा कर, गणित विभाग के लिये अत्यन्त आवश्यक एक नये भवन का शिलान्यास कराकर तथा 'इलाहाबाद मैथेमेटिकल सोसायटी' नामक एक ऐसी संस्था की—जिसका उद्देश्य है गणित में उच्चस्तरीय अध्ययन तथा अनुसंधान कार्य को बढ़ाना तथा "इन्डियन जर्नल आफ मैथेमेटिक्स" नाम से एक अन्तर्राष्ट्रीय अनुसन्धान पत्रिका का प्रकाशन स्थापना करके उन्होंने गणित विभाग का यश एवं उसकी प्रतिष्ठा बनाने के लिये कठिन तथा सफल परिश्रम किया था।

डाक्टर साहब में कार्यकुशलता, अध्यवसाय, संगठन शक्ति इत्यादि गुण विलक्षण मात्रा में थे। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में १९५९ में हुये इन्डियन मैथेमेटिकल सोसायटी के २५वें अधिवेशन तथा चंडीगढ़ में जनवरी १९६६ में आयोजित भारतीय विज्ञान कांग्रेस के ५३वें अधिवेशन का प्रबन्ध, संचालन एवं निर्वाह जितने सुचारु रूप से हुआ वह उन्हीं की क्षमता एवं कार्यकुशलता का परिचायक था।

डा० प्रसाद ने अपनी कई बार की विदेश यात्रा के अवसरों से लाभ उठाकर इंगलैन्ड, स्काटलैन्ड, आयरलैंन्ड, वेल्स, फ्रान्स, जर्मनी, इटली, स्विट्ज़रलैन्ड, बेल्जियम, हालैन्ड, डेन्मार्क, नार्वे, स्वीडन, आस्ट्रिया, इजिप्ट, संयुक्तराष्ट्र अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका के कुछ देश तथा नेपाल का भ्रमण किया, उनके वैज्ञानिकों विश्वविद्यालयों तथा उच्चतम वैज्ञानिक संस्थाओं से सम्पर्क स्थापित किया एवं उनमें से कुछ संस्थाओं के सम्मुख उन्होंने अपने गवेषणा सम्बन्धी तथा अन्य विषयों पर व्याख्या भी दिये।

डाक्टर साहब एक आदर्श भारतीय गुरु थे—अपने विद्यार्थियों की सहायता के लिए सदा प्रस्तुत। परिश्रम-पूर्वककाम कराने वाले, दृढ़ अनुशासन प्रिय तथा सत्य एवं न्यायप्रियता के पोषक, डा० प्रसाद ने अपने निकटतम तथा प्रियजनों के लिये भी इन गुणों का कभी परित्याग नहीं किया। उनका निष्कपट व्यवहार, प्रत्येक समस्या के सम्बन्ध में गणितीय यथार्थता से ठीक-ठीक सोचने की उनकी शैली, अपने विभाग की सर्वतोमुखी उन्नति देखने की इच्छा तथा इस दिशा में किये हुये उनके प्रयत्न, और सबसे ऊपर उनके चरित्र की उच्चता, ये सभी ऐसी बातें हैं जो किसी भी व्यक्ति को जिसे उनके निकट सम्पर्क में आने की इच्छा रही तथा उसका अवसर मिला, प्रभावित किये बिना नहीं रह सकीं।

प्रो० प्रसाद का जीवन एक समर्पण का जीवन था। उन्होंने अच्छे तथा बुरे दोनों ही प्रकार के दिन देखे थे। कभी-कभी तो उन्हें गम्भीरतम परिस्थितियों का सामना करना पड़ा किन्तु किसी भी अवसर पर उन्होंने संसार के सामने अपने सिद्धान्तों के ध्वज को झुकने नहीं दिया। इस समय जब कि अपने दृढ़-संकल्प, लगन एवं अथक परिश्रम के फलस्वरूप वह अपनी ख्याति की चरम सीमा पर पहुँच चुके थे, जब कि सारा वैज्ञानिक जगत् उनकी ओर आशापूर्ण दृष्टि लगाये हुये था और अपना देश भी उनसे बड़ी-बड़ी आशायें कर रहा था, उस समय अचानक उनके निधन से उनके मित्रों, प्रशंसकों एवं शिष्यों को जितना शोक हुआ वह वर्णन से परे है। हमारे श्रद्धेय गुरु डा० प्रसाद अब हमारे बीच नहीं रहे परन्तु गणित में सत्य की खोज करनेवाले हम जैसे उनके शिष्यों की दृष्टि में तो उनका स्थान उन लोगों के बीच रहेगा जिन्होंने मनुष्य की उस आत्मा को ऊँचे उठाया, जो दुर्भाग्य से भी टक्कर ले लेती है परन्तु झुकने को प्रस्तुत नहीं होती। हमें विश्वास है कि अब तक उनसे प्राप्त उनका स्नेह एवं उनकी पावन स्मृति भविष्य में भी हमारा मार्गदर्शन करेंगे।

डा० बद्रीनाथ प्रसाद और डा० होमी जहाँगीर भाभा

डा० सत्यप्रकाश

हमारा १९६६ का वर्ष कई दुःखद घटनाओं से आरम्भ हुआ। देश से बाहर ताशकन्द में अपने प्रिय प्रधान मन्त्री श्री लाल बहादुर जी के निधन ने हमें शोकातुर किया ही था, कि हमें भारत के दो प्रमुख वैज्ञानिकों के निधन का भी समाचार मिला। १८ जनवरी के सायंकाल को प्रयाग विश्वविद्यालय के भूतपूर्व प्राध्यापक और प्रसिद्ध गणितज्ञ डा० बद्री नाथ प्रसाद जी का देहावसान हृदयगति-अवरोध के कारण सहसा हो गया। इस वर्ष के पहले सप्ताह में हम सब लोग चण्डीगढ़ की इण्डियन साइंस कांग्रेस में साथ साथ थे, और कांग्रेस के इस अधिवेशन के प्रमुख अध्यक्ष डा० बद्रीनाथ प्रसाद जी थे और राष्ट्रपति जी ने इस अधिवेशन के सत्र का उद्घाटन किया था। डा० बद्रीनाथ प्रसाद विज्ञान परिषद् प्रयाग के भी आजकल अध्यक्ष थे और नेशनल एकेडमी आव् साइंसेज के भी। विज्ञान परिषद् की ओर से चण्डीगढ़ में हिन्दी माध्यम से गोष्ठी हुई और इसमें देश के विख्यात वनस्पति शास्त्र वेत्ता डा० पंचानन माहेश्वरी का भाषण हुआ। इस अधिवेशन की भी अध्यक्षता डा० प्रसाद ने की थी, और सर्वेण्ट आव पीपल सोसायटी जिसके संस्थापक पंजाब-केशरी लाला लाजपत राय थे उसके तत्वाधान में "विज्ञान और जनसेवा" नाम की जो विचार गोष्ठी हुई उसमें अपने वक्तव्य में डा० प्रसाद ने कहा कि आधुनिक युग में विज्ञान का उपयोग शिशु-जन्म से लेकर मृत्यु के दाहकर्म संस्कार तक में होता है।

डा० प्रसाद के कुशल और कर्मठ जीवन की ये सब बातें अब केवल स्मृतियाँ रह गयी हैं। डा० प्रसाद ने गणित के क्षेत्र में अनुसंधान के कार्य को प्रोत्साहन दिया, और उनके अनेक विद्यार्थियों ने बड़ी प्रतिभा से गणित की अच्छी सेवा की है। डा० प्रसाद स्वर्गीय डा० गणेशप्रसाद के प्रिय शिष्यों में थे, और डा० गणेश प्रसाद ऐसे सुविख्यात गणितज्ञ ने देश में गणित के क्षेत्र में जिस परम्परा की नींव डाली, डा० बद्री नाथ प्रसाद जी ने उसे पुष्ट किया। उनका निधन देश के लिये एक बड़ी क्षति है।

एक और हृदय विदारक घटना इसी बीच घटी। वह है डा० होमी जे० भाभा का विषम परिस्थितियों में देहावसान। यह देश की महान् संकटपूर्ण दुःखद घटना है। डा० भाभा अपने क्षेत्र में संसार के मूर्धन्य वैज्ञानिकों में से थे। उन्होंने रविवार २३ जनवरी के प्लेन में जैनेवा जाने के लिये टिकट ले रखी थी, पर अकस्मात् उन्होंने उस प्लेन से जाने का विचार स्थगित कर दिया, और अगले दिन सोमवार को जाने वाले प्लेन "कञ्चनजंगा" से यात्रा आरंभ की। प्लेन आल्प्स के हिमाच्छादित शिखर के ऊपर पहुँचा, और नीचे आते समय विलुप्त हो गया। स्पष्ट था कि अवश्य कोई दुर्घटना हो गयी है। निश्चय था कि यह प्लेन किसी संकट में फँस गया। आल्प्स के मौण्ट ब्लैंक की चोटियों से इसकी टक्कर लगी, और प्लेन के समस्त प्राणी काल-कवलित हो गये। देश ने २४ जनवरी की सायं-काल को यह संवाद सुना। डा० भाभा ऐसे मूर्धन्य वैज्ञानिक के मृत्यु संवाद ने वैज्ञानिक जगत् को शोकातुर कर दिया। कौन कह सकता था कि नियति डा० भाभा को देश से बाहर इस दुर्घटना के भोगने के लिये ले जा रही है। जो होना था सो हो गया। देश ने भाभा की मृत्यु से एक रत्न खो दिया।

गत २० वर्षों का इतिहास भारतीय वैज्ञानिकों

की दृष्टि से नवीनतम आयोजनाओं के विकास का इतिहास रहा है। गत यूरोपीय महायुद्ध का जिस ढंग से समापन हुआ, उससे स्पष्ट हो गया कि देशों की भावी सम्पन्नता परमाणु-ऊर्जा या नाभि ऊर्जा के सम्पादन पर निर्भर है। एक पुराना युग था, जब हम पशुओं और श्रमिकों के बल पर समाज के दुरूह कार्यों को चलाते थे। पशु हमारे यानों को खींचते थे। फिर भाप और बिजली का युग आया। फिर पेट्रोल का युग आया। पेट्रोल और कोयले का संसार में जिस तेजी से खर्चा उत्तरोत्तर बढ़ा है, उससे स्पष्ट हो गया कि लगभग २ शतियों में ही हमारी पेट्रोल और कोयले की खानें समाप्त हो जायँगी, और तब कैसे हमारे हवाई जहाज और मोटर चलेंगे? कृत्रिम विधि से भी पेट्रोल तैयार किया गया और जल प्रपातों से बिजली प्राप्त की गई। पर इन साधनों की भी एक सीमा है और नये मशीन युग में शक्ति, बल और ऊर्जा बहुत ही अधिक चाहिये। स्पष्ट है, कि इस संकट से हम तभी बच सकते हैं, जब हम परमाणुओं के विघटन से ऊर्जा प्राप्त कर सकें।

हमारे देश का ध्यान इस प्रश्न की ओर स्वातंत्र्य-प्राप्ति के आरंभ में ही गया। डा० भाभा इस क्षेत्र में हमारे अग्रणी थे। डा० भाभा ने अपने वैज्ञानिक जीवन के प्रारम्भ में कॉस्मिक-रे अर्थात् अन्तरिक्ष किरणों के सम्बन्ध में अच्छा कार्य किया था, और उनका सोपानी बौछार या कैस्केड शॉवर (cascade Shower) सम्बन्धी सिद्धांत उनके यश का विशेष कारण बना। अन्तरिक्ष किरणों या उनके फोटॉन परमाणुओं से संघर्ष करके नये इलेक्ट्रान और नये पोजिट्रान बनाते हैं। ये दोनों कण लगभग ३०० मीटर चलने पर फिर फोटान बनाते हैं, ये फोटान आगे फिर परमाणुओं से संघर्ष करके नये इलेक्ट्रान और पोजिट्रान देते हैं, इनसे फिर फोटान बनते हैं, और यह क्रम उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। इस प्रकार अंत में इस सोपानी पद्धति द्वारा इलेक्ट्रान और पॉजिट्रान की झड़ी सी लग जाती है। डा० भाभा के इस कार्य ने उन्हें अच्छा यश दिया और वे विश्वविख्यात रायल सोसायटी के फेलो अपनी छोटी सी ही आयु में बना दिये गये। भूतपूर्व प्रधान मंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू जी डा० भाभा की प्रतिभा से विशेष प्रभावित थे, और उन्होंने अपने मंत्रित्व काल के प्रथम वर्षों में ही डा० भाभा को परमाणु ऊर्जा सम्बन्धी कार्यों की आयोजना सौंप दी। डा० भाभा पारसी परिवार के थे, और टाटा ने तात्विक भौतिकी का जो अनुसंधान संस्थान बंबई में स्थापित किया, डा० भाभा को उसका अध्यक्ष बनाया। डा० भाभा ने संसार की प्रमुख न्यूक्लियर कान्फ्रेंसों में न केवल भारत का प्रतिनिधित्व किया, कई अन्तरराष्ट्रीय गोष्ठियों के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष भी रहे, और उन्होंने शान्तिमय कार्यों के लिए नाभिकीय ऊर्जा के प्रयोग पर बराबर बल दिया। मैंने स्वयं डा० भाभा के कई भाषण सुने हैं, जिनमें उन्होंने यह स्पष्ट बताया था कि नाभिकीय ऊर्जा या न्यूक्लियर इनर्जी किस प्रकार कोयले और बिजली वाली ऊर्जा से सस्ती पड़ सकती है और इसका उपयोग भी सुलभ और सरल हो सकता है।

ट्राम्बे में एटामिक इनर्जी अर्थात् परमाणु ऊर्जा संबन्धी विशालकाय संस्थान है। उसकी विशुद्धता का अनुमान उसकी प्रयोगशालाओं और उसके कारखानों को देख कर ही हो सकता है। इस विशाल संस्थान की पृष्ठिभूमि में हम डा० भाभा की व्यावहारिक कुशलता का अनुमान कर सकते हैं। देश के कई सहस्र प्रतिभाशाली तरुणों ने एटामिक इनर्जी से सम्बन्ध रखने वाले विभिन्न क्षेत्रों में इतनी शीघ्रता से कितना प्रशिक्षण प्राप्त कर लिया है, यह सब सुचारु प्रबन्ध का उदाहरण है, और इस सब का श्रेय डा० भाभा को है।

डा० भाभा की इच्छा थी कि देशभर में न्यूक्लियर सांइस या नाभिक विज्ञान के कार्य के लिये अनुकूल वातावरण बने, और इसलिये देश के सभी विश्वविद्यालयों के तरुणों को उन्होंने प्रोत्साहन दिया। प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को यूनिवर्सिटी के कार्य-काल से आर्थिक सहायता दी जाने लगी, जिससे उदीयमान युवक इस क्षेत्र में कुशल कार्य कर सकें। मेरे अनेक विद्यार्थी विश्व-विद्यालय में रसायन की शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करके डा० भाभा की प्रयोगशालाओं में गये और वे वहाँ बहुत अच्छा कार्य कर रहे हैं।

डा० भाभा के प्रोत्साहन से अनेक विश्वविद्यालयों

में विकिरण विज्ञान के प्रारम्भिक अध्ययन-अध्यापन का प्रबन्ध हो गया है, और उनमें एटामिक इनर्जी इस्टैब्लिश-मेण्ट के कारखानों में इस कार्य के निमित्त बहुत से सूक्ष्म यंत्रों का भी निर्माण हुआ। इस प्रकार उन अनेक यंत्रों का बनना अपने देश में सुलभ हो गया जिनके लिये इससे पूर्व हमें विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता था। रेडियोऐक्टिविटी के कार्य के लिए ट्राम्बे ने अपने अप्सरा नामक रिएक्टर से अनेक रेडियो आइसोटोप अर्थात् रेडियोसमस्थानिक बनाये, और ये रेडियोसमस्थानिक प्रयोगशालाओं और औषधालयों के लिये हमें सस्ते मूल्यों पर प्राप्त होने लगे हैं। रेडियो ऐक्टिव समस्थानिकों के प्रयोग अनेक अनुसंधान कार्यों में आज हो रहे हैं। पुरातत्व प्रयोगशाला हो, चाहे कृषि-सम्बन्धी और चाहे शरीर-क्रिया विज्ञान सम्बन्धी, सभी जगह रेडियतत्वों से प्रकृति के रहस्य समझने में सहायता मिली है।

डा० भाभा का एक यशस्वी कार्य मीजानों (meson) पर भी है। पर सन् १९३५ में जापान में एक प्रसिद्ध भौतिक शास्त्री युकावा (Yukawa) ने मीजानों के अस्तित्व की सम्भावना प्रतिपादित की थी। मीजान साधारणतया इलेक्ट्रान के समान गुण-धर्म के हैं पर वे उनसे १००-२०० गुना अधिक भारी हैं। प्रोटान इलेक्ट्रान की अपेक्षा १८०० गुना भारी हैं, और मीज़ानों को हम इलेक्ट्रान और प्रोटानों के बीच का द्रव्य कण मान सकते हैं। डा० भाभा ने प्रदर्शित किया कि मीज़ान भी कई प्रकार के होते हैं। कुछ के ऊपर धनात्मक आवेश होता है, कुछ पर ऋणात्मक और कुछ तो उदासीन शून्य आवेश के हैं। आज तो हम कई प्रकार के मीजानों से परिचित हैं। पाई (π)-मीजान, म्यू (μ) मीजान आदि इनके नाम हैं।

आज जब देश के समक्ष नाभिकीय ऊर्जा के उत्पादन की इतनी समस्यायें थीं, जब हमारे समक्ष यह प्रश्न बराबर उठता था कि युद्ध और शान्ति के समय देश परमाणु शक्ति का कितना उपार्जन कर सकेगा, तो हम डा० भाभा की ओर उन्मुख होते थे। उनकी मृत्यु से हमारी अकल्पनीय क्षति हुई है और तरुण प्रतिभाशाली वैज्ञानिकों के समक्ष एक चुनौती है कि वे डा० भाभा द्वारा आयोजित कृत्यों की पूर्ति किस प्रकार करेंगे।

(आकाशवाणी के सौजन्य से)

●●

इसमें हस्तक्षेप कहाँ ?

यह प्रकृति का अपना चमत्कारपूर्ण रहस्य है, जिसे हमारा वैज्ञानिक समझ ले, यही बहुत है; हस्तक्षेप की कोई गुंजाइश नहीं। पक्षियों का परिव्रजन, दूर-सुदूर की यात्राएँ और वापसी; कुछेक मछलियों का भी हजारों मील का विदेशगमन और पुनरागमन, पेड़-पौधों का शयन और जागरण, तथा कलियों, पुष्पों का खिलना, मुँदना और परागण के लिए मित्रों-कीटों को आमन्त्रित करना यह सब कुछ समय के इतने चुस्त पालन से चलता है कि हम दाँतों तले अंगुली दबा जाएँ, हमारी घड़ियाँ शरमा कर रह जाएँ। इन कार्यों और कैसे के समाधान में वैज्ञानिक केवल इतना समझ पाए हैं कि वनस्पति तथा प्राणी-जगत की विशिष्ट जातियों में उनकी जीव-कोशिकाएँ समय की अचूक अनुभूति से अनुप्राणित रहती है, सम्पन्न रहती हैं।

भारत के औषधीय जलस्रोत

दिनेश मोहन श्रीवास्तव

हमारे देश में काफी संख्या में ऐसे जलस्रोत पाये जाते हैं जिनका जल विभिन्न रोगों के उपचार में सहायक होता है। इन विभिन्न स्रोतों में खनिज का अधिक अंश उपस्थित होने के कारण इन्हें खनिज स्रोत (मिनरल स्प्रिंग्स) भी कहते हैं। कुछ खनिज स्रोतों का जल उष्ण होता है और कुछ का शीतल। अपनी औषधीय उपयोगिता के कारण इनमें से कई स्रोतों के सम्बन्ध में दन्त कथाएँ प्रचलित हैं और कुछ की उत्पत्ति तो दैवी बतायी जाती है। इनमें से अधिकांश स्रोतों के नाम भी देवी-देवताओं के नाम पर रखे गये हैं। परन्तु इन्हें धार्मिक रूप देने का एक दुष्परिणाम यह हुआ है कि जब कि विदेशों में ऐसे अधिकांश स्रोतों का व्यापारीकरण हो चुका है और 'स्पा विश्रामस्थलों' तथा औषधीय जल के रूप में वे पर्याप्त देशी तथा विदेशी मुद्रा अर्जित कर रहे हैं, धार्मिक बखेड़ों तथा निजी स्वायत्व के झगड़ों के कारण हमारे देश के अधिकांश खनिज स्रोत जीर्ण तथा उपेक्षित अवस्था में पड़े हुए हैं। क्या ही अच्छा होता यदि इनका शीघ्र ही व्यापारीकरण किया जा सकता !!

अपने देश के विभिन्न भागों में पाने जाने वाले ऐसे जलस्रोतों तथा उनकी औषधीय उपयोगिता का वर्णन नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है :—

● **आन्ध्र प्रदेश**—गोदावरी जिले में गोंडाला नामक स्थान पर एक उष्ण स्रोत (ताप ६०°) पाया जाता है। इसके अतिरिक्त कुर्नूल जिले में लाज बन्दा, महानदी तथा कलवा के समीप कई खनिज स्रोत पाये जाते हैं। गुलबर्ग जिले में बुजल तथा मुदामूर नामक स्थानों पर निरन्तर प्रवहमान स्रोत प्राप्त होते हैं। वारंगल जिले में ४०' × ३०' × ५' के आकार का एक आयताकार जलकुंड बैयोरा नामक स्थान पर प्राप्त होता है। इन स्रोतों से सोडियम सल्फाइड, सोडियम क्लोराइड तथा कैल्शियम क्लोराइड नामक खनिज पदार्थ प्राप्त होते हैं तथा इनका जल त्वचा रोगों के उपचार में सहायक होता है।

● **असम**—असम प्रदेश के काचर जिले में कोपिली तथा शिवसागर जिले के नम्बूर नामक स्थानों पर ऊष्ण स्रोत (ताप ५५°) पाये जाते हैं। परन्तु इनके जल का औषधीय दृष्टि से कोई विशेष महत्व नहीं है। सामान्य त्वचा रोगों के लिये यह जल लाभदायक है।

● **बिहार**—बिहार के मनभूम जिले में चरक, झरबेरी तथा शिवपुर नामक स्थानों पर उष्ण गंधक स्रोत पाये जाते हैं। बीरभूम जिले के बकरेश्वर स्रोत, अग्निकुण्ड, ब्रह्मकुण्ठ तथा हजारीबाग जिले के कावा गंधवानी, दुआरी तथा सूरजकुण्ड स्रोतों का जल त्वचा रोगों, पाचन विकारों और बातरोग के उपचार के लिए लाभदायक है। इसके पानी को पीने से भूख अधिक लगती है। दूसरे शब्दों में यह बुभुक्षक (एपेटाइज़र) की भाँति भी क्रिया करता है। उपर्युक्त खनिज स्रोतों के अतिरिक्त मनभूम जिले में तटलोई (सं० १), उसीर और हजारी बाग जिले में हटकोना, पातालसुर तथा परेशनाथ नामक स्रोत भी हैं, पर औषधीय दृष्टि से इनका कोई महत्व नहीं है।

बिहार के मोंघयार जिले में खड़गपुर पहाड़ियों के अनुदिश ३० मील की दूरी तक कुछ उष्ण स्रोत फैले हुए हैं। इनमें उपस्थित खनिज का अंश कम होने के कारण इन्हें साधारण अथवा उदासीन स्रोत भी कहते हैं। मोंघयार जिले के भीमबन्ध, भोवड़ा (पूर्व तथा

पश्चिम), लक्ष्मीश्वरकुण्ड, फिलिप्सकुण्ड, रामेश्वरकुण्ड, ऋषिकुण्ड स्रोत तथा शृंगीरिख, सीताकुण्ड और पालामऊ जिले के झारुम नामक स्रोतों का जल त्वचा रोगों, गठिया, वातरोग के उपचार में उपयोगी है। यह उपचाय विकारों (मेटाबोलिक डिसआर्डर्स) की चिकित्सा में भी लाभदायक सिद्ध होता है।

उपर्युक्त खनिज स्रोतों के अतिरिक्त बिहार के संथाल परगना में बारहमसिया, झारीपानी, कालदम (बड़ा), रामपुर (जियाजोरी के पश्चिम में), तांतेश्वरी, तंतलोई तथा त्रिकुट पहाड़ नामक स्रोत भी पाये जाते हैं। पर औषधीय दृष्टि से इनमें से केवल तांतेश्वरी पथा तंतलोई नामक स्रोत उपयोगी हैं। इनका जल त्वचा रोगों के लिये लाभप्रद है और बुभुक्षक की भाँति क्रिया करता है।

पटना तथा गया जिलों में स्थित राजगीर कुण्ड रेलवे स्टेशन से लगभग एक मील की दूरी पर २०० फीट की ऊँचाई पर वैभरगिरि तथा बिपुलगिरि पहाड़ियों के पदों की ओर, वैतरिणी नदी के किनारे ऐसे एक दर्जन से अधिक स्रोत हैं। इनमें से मखदुमकुन्ड, चन्द्रमकुण्ड, सूरजकुण्ड, व्यासकुंड, तथा विश्वामित्रकुंड का जल त्वचा रोग, वात-रोग, फालिज, तथा अग्निमांद्य (डायसपेप्सिया) और मधुमेह नामक रोगों के रोगियों के लिये उपयोगी है। इसी श्रेणी के गंगाकुण्ड, जमुना कुण्ड, मार्कण्डेयकुण्ड, रामकुण्ड (उष्ण तथा शीतल दोनों), सीताकुण्ड तथा गणेशकुंड का जल भी मधुमेह तथा फालिज को छोड़कर शेष सभी रोगों में उपयोगी सिद्ध हुआ है। राजगीर स्रोतों के दक्षिण-पश्चिम की दिशा में तपोवन स्रोत पाये जाते हैं। ये लगभग ३०० फीट की ऊँचाई पर स्थित हैं। इनका जल भी त्वचा रोगों के उपचार में सहायक है।

●गुजरात तथा महाराष्ट्र :—थाना जिले में भिवान्दी तालुक के उत्तर-पश्चिमी भाग में तन्सा नदी के मुख्य प्रवाह से ३ मील की दूरी पर नदी संस्तर में तथा उसके किनारे खनिज स्रोतों का एक समूह प्राप्त होता है जिसे सामूहिक रूप से 'बज्रेश्वरी स्रोत' का नाम दिया गया है। इसके अतिरिक्त थाना जिले में लक्ष्मीकुण्ड, चन्द्रकुंड, गंगाकुंड, सूरजकुण्ड, भीमेश्वरकुण्ड तथा अनुसैचीकुण्ड पाये जाते हैं। इन सभी स्रोतों का जल त्वचा रोगों, वात-रोगों, गठिया, फालिज, स्थूलता तथा हाथी पांव रोग के रोगियों के लिये अत्यन्त लाभप्रद है। इनका जल बुभुक्षक रूप में भी क्रिया करता है।

●मध्य प्रदेश :—मध्य प्रदेश में मटकुली नामक स्थान से ८ मील की दूरी पर बर्रा अनहोनी में एक उष्ण स्रोत पाया गया है। होशंगाबाद जिले में भी अनहोनी गाँव के पास एक दूसरा उष्ण स्रोत पाया गया है इनमें से पहला स्रोत बड़ा अनहोनी तथा दूसरा छोटा अनहोनी के नाम से प्रसिद्ध है। रासायनिक संरचना में पहला स्रोत जर्मनी के ट्रिक्वेले-गाइल्डबाड नामक स्रोत से तथा दूसरा स्रोत (छोटा अनहोनी) फ्रांस के विची नामक स्रोत के समान है। इनमें से छोटा अनहोनी का जल केवल त्वचा रोगों के उपचार के लिये लाभदायक है जबकि बर्रा अनहोनी का जल वात-रोग की शिकायतों के लिए भी उपयोगी है और बुभुक्षक की भाँति क्रिया करता है।

●मैसूर :—मैसूर प्रदेश में बंगलौर कैन्टूनमेंट में खारे जल से युक्त कुआँ है। इसके अतिरिक्त बेलारी जिले में रामन्द्रग नामक स्थान पर भी औषधीय गुण युक्त एक जल स्रोत पाया गया है।

●पंजाब :—दिल्ली से ३४ मील दूर पंजाब के गुरगाँव जिले में सोहना गाँव में एक उष्ण स्रोत पाया गया है। यह देश के उन गिने-चुने स्रोतों में से है जिनका आंशिक रूप से व्यापारीकरण हो चुका है। निजी रूप से यहाँ स्नानग्रहों का प्रतिवर्ष नीलाम किया जाता है। इसका जल कुष्ट रोग तथा अन्य त्वचा प्रभावों, गण्डमाला (घेंघा), वात-रोग तथा जिगर की शिकायत के रोगियों के लिये आश्चर्यजनक रूप से उपयोगी सिद्ध हुआ है। ज्वालामुखी नामक स्थान पर भी ६ खनिज स्रोत पाये गये हैं। इन स्रोतों में आयोडीन की पर्याप्त मात्रा उपस्थित है और यह घेंघा रोग के उपचार में विशेष उपयोगी सिद्ध हुए हैं। लासा, तटबारी,

टिवा, वशिष्ठ, मोनाली, मनई करन तथा पिंजारो आदि स्थानों पर भी खारे तथा गन्धकीय खनिज स्रोत होने की सूचना मिली है।

● राजस्थान :—उदयपुर में बालुकाश्म (सैंड स्टोन) चट्टानों में से एक स्रोत उदित होता है। इसका जल हल्का खारा तथा गंधक युक्त है। यह त्वचा रोगों के उपचार में लाभदायक सिद्ध हुआ है।

● उत्तर-प्रदेश :—वाराणसी नगर में बृल्दकल और गैवी नामक दो कूप हैं जिनका जल खारी है। इनमें जल की सतह ४० फीट पर स्थिर रहती है। इनका जल, पंजाब के सोहना-स्रोत की भाँति कुष्ठ-रोग तथा अन्य त्वचा प्रभावों, गण्डमाला (घेंघा) वात-रोग तथा यकृत की शिकायतों के उपचार में सहायक है।

देहरादून जिले में मसूरी के समीप चूर्णप्रस्तर युक्त प्रदेश में शीतल खनिज स्रोतों का एक समूह पाया जाता है। इनमें से मासी झरने का जल फ्रांस के इवियन स्रोतों के समान पाया जाता है। देहरादून के उत्तर-पश्चिम तथा राजपुर के दक्षिण-पश्चिम में ७ मील की दूरी पर सहस्राधार नामक एक गंधकीय स्रोत मिला है। इस स्रोत का जल त्वचा रोगों तथा पाचन-विकारों के उपचार में लाभदायक सिद्ध हुआ है।

तीव्रतम विष साइनाइड-उत्पादक बैक्टीरिया

आग का शिकार रोगी, इलाज चलते-चलते भी कभी-कभी एकाएक ही क्यों जीवन से हाथ धो बैठता है, इसका एक बड़ा कारण नया ही ज्ञात हुआ है। 'सूडोमोना' (Pseudmona) नामक बैक्टीरिया जली हुई निर्जीव त्वचा पर अपना अधिकार जमा लेता है और उसी पर तेजी से बढ़ता-फैलता है। इसकी क्रियाशीलता के फलस्वरूप गुर्दे अपना कार्य भूल जाते हैं और हरे रंग का साइनाइड युक्त तीव्र विष स्रावित करने लगते हैं। वही हरा रंग ज्योंही मूत्र के साथ बाहर आने लगता है, चिकित्सक भी समझ लेता है कि मृत्यु-आगमन के लिए हरी झण्डी हो चुकी।

सुदूर-ब्रह्माण्ड से प्रसारित रेडियो-तरंगें

श्याम मनोहर व्यास

आप तालाब में या नदी में पत्थर फेंकते हैं जो पानी में विचित्र हलचल उत्पन्न होती है। यह हलचल थोड़ी देर में चारों ओर फैल जाती हैं। यदि पानी में एक कागज अथवा कार्क का टुकड़ा डाल दें तो वह टुकड़ा एक स्थान पर ऊपर नीचे होगा परन्तु आगे की ओर नहीं चलेगा।

यद्यपि हमें विदित ऐसा होता है कि पानी आगे बढ़ रहा है पर वास्तव में ऐसा नहीं है।

प्रत्येक स्थान पर पानी केवल ऊपर उठता है और गिरता है। केवल लहरें ही हलचल के साथ आगे बढ़ती हैं। अतएव इस प्रकार की गति को जिसमें माध्यम का कोई कण एक स्थान से दुसरे स्थान को स्थानान्तरित नहीं होता हो वरन् हलचल एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचती हो उसे तरंग कहते हैं।

इस प्रकार की तरंग गति में माध्यम का प्रत्येक कण अपनी साम्यावस्था (Equilibrium) में इधर-उधर कम्पन करता है और हलचल माध्यम के कण-प्रति-कण द्वारा आगे की ओर प्रसारित होती रहती है।

पानी की तरह वायु भी माध्यम है। जब हम किसी शब्द का उच्चारण करते हैं तो स्वर-तरंगें उत्पन्न होकर चारों ओर वायु में फैल जाती हैं।

आप हजारों मील दूर बैठे रेडियो स्टेशन पर प्रसारित कार्यक्रम को सुन लेते हैं। इसका कारण रेडियो चुम्बकीय तरंगों का प्रसारण है।

रेडियो स्टेशन विद्युत् चुम्बकीय तरंगें प्रसारित करता है जो आपके रेडियों रिसीवर में इलेक्ट्रान संचालन पैदा कर देती है। विद्युत् चुम्बकीय तरंगें १८६००० मील प्रति सेकण्ड की गति से चलती हैं। रेडियो स्टेशन पर माइकोफोन ध्वनि को विद्युत् तरंगो में परिवर्तित कर देता है।

इन रेडियो तरंगों को रेडियो सेट पुनः ध्वनि में बदल देता है। रेडियो सेट की विस्तृत कार्य-प्रणाली को लिखना इस लेख का उद्देश्य नहीं है। आप रेडियो सेट द्वारा अधिक से अधिक ५-६ हजार मील दूर से प्रसारित हुये समाचार सुन सकते हैं। अपने अच्छे रेडियो सेट द्वारा आप पृथ्वी के किसी रेडियो-स्टेशन से प्रसारित कार्य-क्रम सुन सकते हैं।

यदि आप से कोई पूछे कि क्या आप सुदूर अन्तरिक्ष से प्रसारित सन्देशों को भी सुन सकते हैं? आप कहेंगे नहीं। क्योंकि आपका रेडियो सेट उन रेडियो तरंगों को पकड़ने में असमर्थ है।

पर आप विश्वास कीजिये वैज्ञानिकों के पास ऐसा भी यन्त्र है जो सुदूर ब्रह्माण्ड से प्रसारित रेडियो तरंगों को भी ग्रहण कर लेता है।

इस यन्त्र को रेडियो टेलिस्कोप (Radio Telescope) कहते हैं।

यह रेडियो टेलिस्कोप अरबों-खरबों मील दूर सितारों एवं नीहारिकाओं से प्रसारित रेडियो संगीत को ग्रहण कर लेता है और उसे हमें सुनाता है। सुदूर ब्रह्माण्ड के इन रेडियो स्टेशनों से प्रसारित रेडियो तरंगों की लम्बाई भिन्न-भिन्न होती हैं। अन्तरिक्ष में स्थित इन अकाशीय पिण्डों का संगीत मनुष्य निर्मित्त न होकर प्रकृति रचित महान्-अनूठा और अलौकिक संगीत है।

ये प्रकृति निर्मित्त रेडियो स्टेशन कई तो इतने दूर हैं कि रेडियो तरंगों को पृथ्वी तक पहुँचने में वर्षों लग जाते हैं।

विश्व में लगभग तीस रेडियो टेलिस्कोप हैं। ब्रिटेन के जोड्रेल बैंक प्रयोग संस्थान में वैज्ञानिक रेडियो टेलिस्कोप के द्वारा अनन्त ब्रह्माण्ड के रहस्यों को जानने में लगे हैं।

रूसी वैज्ञानिकों ने रेडियो टेलिस्कोप की सहायता से एक खोये हुये कृत्रिम उपग्रह का भी पता लगाया था। रेडियो टेलिस्कोप का ऐंटेना (विद्युत ग्राहक) जिस पर अन्तरिक्ष से आने वाली रेडियो-तरंगें टकराती हैं क्षेत्रफल में हजारों वर्ग फुट होता है छोटे से छोटे टेलिस्कोप के ऐंटेना का भी व्यास पचास फुट होता है। सबसे बड़ा

टेलिस्कोप ब्रिटेन में मैंचेस्टर के पास जोड्रेल बैंक में है जिसके ऐन्टेना का व्यास २५० फुट है।

वैज्ञानिक रेडियो-टेलिस्कोप के द्वारा सितारों से प्रसारित ध्वनि को सुनते हैं और फिर उन रेडियो चुम्बकीय तरंगों को लेखाचित्र पर अंकित करते हैं। इसके द्वारा ग्रह-उपग्रह और सितारों के बारे में नई-नई जानकारी प्राप्त होती है। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् रेडियो-टेलिस्कोप का महत्त्व और भी बढ़ गया था। इसने खगोल-विज्ञान में एक अभूतपूर्व परिवर्तन ला दिया है। सूर्य के बारे में भी काफी जानकारी रेडियो टेलिस्कोप की सहायता से मिली है। इसके द्वारा पता चला कि सूर्य आकार में बहुत बड़ा है। सूर्यमण्डल का कोई स्पष्ट किनारा नहीं है बल्कि उसका बाहरी भाग एक तीव्र तेज-पुंज (कोरोना) के रूप में क्रमशः पतला होता गया है।

कोरोना से निकलने वाली प्रकाश किरणें काफी हल्की होती हैं पर उससे निकलने वाली रेडियो चुम्बकीय तरंगें काफी शक्तिशाली होती हैं।

कोरोना का जो भाग सूर्य से जितना बाहर है वहाँ से उतनी ही अधिक लम्बी रेडियो तरंगें निकलती हैं। कोरोना के विभिन्न स्थानों से निकलने वाली रेडियो-तरंगों की लम्बाई भिन्न-भिन्न होती हैं।

रेडियो टेलिस्कोप की सहायता से सूर्य-कलंक के बारे में भी विस्तृत जानकारी प्राप्त हुई है। सूर्य में उठने वाले विद्युत् चुम्बकीय तूफानों की जानकारी भी इससे प्राप्त हुई है। रेडियो टेलिस्कोप द्वारा अन्तरिक्ष में स्थित कई अज्ञात रेडियो-स्रोतों का पता लगा है। इनसे लगातार प्रकाश किरणें भी निकल रही हैं पर पृथ्वी तक नहीं पहुँच पातीं क्योंकि मार्ग में धूल के बड़े-बड़े बादल उसे सोख लेते हैं पर रेडियो तरंगें बिना रुकावट के पृथ्वी तक पहुँच जाती हैं।

यह हम जानते हैं कि आकाशीय पिण्डों का जन्म गैस के बड़े-बड़े बादलों से हुआ है जिनका मुख्य तत्व हाइड्रोजन (H_2) है।

द्रवित हाइड्रोजन के बादलों के रेडियो तरंगें प्रसारित होती रहती हैं। रेडियो टेलिस्कोप की सहायता से आकाश गंगा के दूसरी ओर एक लाख प्रकाश वर्ष दूर अन्तरिक्ष में उपस्थित हाइड्रोजन का पता लगाया जा सकता है।

एक प्रकाश वर्ष ६.०×१०^{१२} मील के बराबर होता है। हाइड्रोजन से आने वाली रेडियो तरंगों की लम्बाई २१.००२ से. मी. (आवृत्ति १४२० मैगा साइकल) होती है। इसलिये रेडियो टेलिस्कोप को २१.००२ से. मी. (१४२० मैं साइकल) पर ट्यून कर और विद्युत् ग्राही को विभिन्न दिशाओं में घुमा कर ज्ञात किया जा सकता है कि अन्तरिक्ष में हाइड्रोजन कहाँ-कहाँ पर उपस्थित हैं। इसके अतिरिक्त रेडियो टेलिस्कोप द्वारा वैज्ञानिक अन्य ग्रहों में होने वाले परिवर्त्तनों के बारे में भी जानकारी प्राप्त कर रहे हैं।

शुक्रग्रह में घने बादल क्यों आच्छादित हैं? उसका वायुमण्डल कैसा है? बृहस्पति ग्रह के बर्फीले तूफानों के पीछे क्या रहस्य है? चन्द्रमा में क्या-क्या परिवर्तन हो रहे हैं? मंगलग्रह पर जीवधारी हैं या नहीं इत्यादि अनेक रहस्यमय प्रश्नों का हल ढूँढ़ने में वैज्ञानिकों को रेडियो टेलिस्कोप से बहुत सहायता मिलेगी। इसके द्वारा स्पुतनिक एवं कृत्रिम उपग्रह से आने वाली रेडियो-तरंगों को भी ग्रहण किया जाता है। तदनन्तर उनकी स्थिति और वेग का पूरा-पूरा पता लगाया जाता है।

रेडियो टेलिस्कोप विभिन्न प्रकार की रेडियो तरंगें पृथक्-पृथक् दिशाओं में भी भेज सकता है।

इसके द्वारा भेजी गई रेडियो तरंगों से स्पुतनिक की दिशा भी बदली जा सकती है।

इसका असली उपयोग ग्रह-उपग्रहों के सन्देश प्राप्त करना है। अन्य ग्रह-उपग्रहों पर यदि मनुष्य के समान ही प्राणी विद्यमान हैं तो उसके बारे में हमें रेडियो टेलिस्कोप द्वारा विशेष जानकारी प्राप्त होगी।

इसमें सन्देह नहीं है कि रेडियो टेलिस्कोप भविष्य में वैज्ञानिकों को अनन्त ब्रह्माण्ड के रहस्यों को खोजने में महत्त्वपूर्ण सहायता देगा।

१. सिंचाई की नई विधि का विकास

कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए सिंचाई की एक उपयुक्त विधि का विकास करना तथा उसका प्रयोग करना कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के सिंचाई विभाग के वैज्ञानिकों का मुख्य लक्ष्य है।

कुछ समय पूर्व तक, बहुत से वैज्ञानिकों का यह विश्वास था कि लम्बे समय तक सिंचाई किये जाने के कारण कृषि-भूमि की उत्पादन-क्षमता नष्ट हो जाता है और इसके परिणामस्वरूप खाद्य वस्तुओं के उत्पादन में भारी कमी हो जाती है। इस सम्बन्ध में एशिया के बेकार पड़े हुए नमकयुक्त विशाल भूमि खण्ड उल्लेखनीय उदाहरण हैं।

वैज्ञानिकों का कथन है कि सिंचाई के जल में अनेक प्रकार के लवण होते हैं और लवणों के एकत्र हो जाने से अन्ततोगत्वा उत्तम से उत्तम भूमि नष्ट हो जाती है। किन्तु, यू० सी० एक्स्टेन्शन के सिंचाई सम्बन्धी इंजिनियर क्लाइड हौस्टन का कथन है कि कृषि भूमि को सिंचाई के कारण बेकार होने से बचाया जा सकता है। उनका कथन है कि हाल में किये गये अनुसन्धानों के परिणामस्वरूप अब अच्छे जल से सिंचाई की व्यवस्था करना सम्भव हो गया है और शीघ्र ही नई सफलताओं की सहायता से सिंचाई द्वारा खेती-बाड़ी करके कृषि-भूमि की उत्पादन-क्षमता को स्थिर रखा जा सकेगा।

कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के सिंचाई के सम्बन्ध में अनुसन्धान करने वाले वैज्ञानिक आजकल सिंचाई के विषय में निम्न कार्य कर रहे हैं : (१) एक ऐसे उपकरण के सम्बन्ध में अध्ययन किया जा रहा है जिसे किसी वृक्ष में घोंप कर यह पता लगाया जा सकता है कि उसके लिए कितनी सिंचाई किये जाने की आवश्यकता है; (२) जल के प्रवाह को जारी रखते हुए ऐसी भूमि में खेती किये जाने की विधियों का अध्ययन किया जा रहा है, जहाँ से जल बहता रहता हो; (३) पारी-पारी के नमक हटाये जाने की विधि का अध्ययन किया जा रहा है, जो पहले की तुलना में बहुत कम जल का प्रयोग करके मिट्टी से लवण अलग करने की विधि है; तथा (४) प्लास्टिक एण्टी ट्रांसपाइरेण्ट के सम्बन्ध में अध्ययन किया जा रहा है, जिन्हें भविष्य में वृक्षों और पौधों के जल की क्षति को रोकने के लिए निरापद रूप से उनके ऊपर छिड़का जा सकता है।

२. हृदय की शल्य-चिकित्सा सम्बन्धी नई विधि

स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय के स्कूल ऑव् मेडिसिन के डा० रिचर्ड लोवर ने हृदय की शल्य-चिकित्सा सम्बन्धी अपनी नई विधि के सम्बन्ध में कहा है : "अब हमें यह पता चल गया है कि अत्यन्त शोचनीय एक संकटपूर्ण समय में किस प्रकार औषधियाँ दी जायें। ऐसा विश्वास करने के अनेक कारण हैं कि अब हम पहले से अधिक अच्छी तरह उपचार करके रोगी को अधिक समय तक जीवित रख सकेंगे।"

स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने ऐसे ४५ कुत्तों के सम्बन्ध में अध्ययन किया है जिनके हृदय शल्य-चिकित्सा द्वारा बदले गये थे। शल्य-चिमित्सा की उस विधि द्वारा इन कुत्तों के हृदय बदले गये थे जिसका सबसे पहले ६ वर्ष पूर्व डा० नोर्मन शमवे और डा० लोवर द्वारा विकास किया गया था। शल्य-चिकित्सा की

यह नई विधि अब इतनी अधिक सफल रही है कि हाल में जिन ३२ पशुओं के हृदय बदल कर लगाये गये थे उनमें से तीन को छोड़कर अन्य सभी पशु ठीक हो गये थे। हृदय के ठीक न जुड़ने के कारण अथवा औषधियों के नशीले प्रभाव के कारण उन पशुओं की मृत्यु हो गयी थी।

व्यापक रूप में प्रयोग में लाये जाने वाले इलैक्ट्रो-कार्डियोग्राफ नामक उपकरण द्वारा यह पता लगाया जा सकता है कि हृदय शरीर की प्रणाली में ठीक बैठ गया है अथवा नहीं बैठा है।

उक्त नई विधि के प्रयोग के परिणामस्वरूप शल्य-चिकित्सकों को उन औषधियों का निरन्तर प्रयोग करते रहने की आवश्यकता नहीं रही है, जिनके बाद में खतर-नाक प्रभाव पड़ने की आशंका रहती है। यह वैसा ही उपचार है जैसा कि उन रोगियों के सम्बन्ध में किया जाता है जिनके गुर्दे बदले जाते हैं। किन्तु पता लगाने सम्बन्धी इस नई विधि के विकास से पूर्व, यह पता लगाना सम्भव नहीं था कि बदले गये हृदय शरीर की रचना के अनुकूल बैठे हैं, अथवा नहीं बैठे हैं।

जिस गम्भीर समस्या पर अभी विजय नहीं पायी जा सकी है, मांस-पेशियों में परिवर्तन करने के सम्बन्ध में हृदय के शरीर-रचना के अनुकूल न बैठने का प्रभाव और वह घाव है जिसके कारण हृदय ठीक कार्य नहीं कर पाता है। स्टेनफोर्ड के शल्य-चिकित्सकों का कथन है कि अधिक प्रभावशाली औषधियों द्वारा उपचार करके अथवा हृदय देने वाले और हृदय लेने वाले के मध्य उत्पत्ति विषयक अधिक अनुकूल समन्वय से इस समस्या पर विजय पाने में सहायता मिल सकती है।

डा० लोवर ने कहा है: "रोगियों का उपचार करने के लिए इस नई विधि का प्रयोग करने से पूर्व हमें इसके सम्बन्ध में और अधिक जानकारी प्राप्त करने की आवश्यकता है।"

३. छोटे से सौर भबके से जल की प्राप्ति

एक मामूली से उपकरण का आविष्कार हो जाने के फलस्वरूप अब कोई व्यक्ति ऐसे क्षेत्रों में प्यास से तड़प-तड़प कर प्राण नहीं देगा, जो सूर्य के प्रचण्ड ताप से झुलस कर अथवा सूखा पड़ जाने के कारण मरुस्थल बन गये हैं।

अब जेब में रखे जा सकने योग्य 'सोलर स्टिल' नामक उपकरण ने ऐसी परिस्थितियों में मनुष्य का जीवित रहना सम्भव बना दिया है। इसे बनाने में थोड़े से शिलिंग खर्च होते हैं और इसकी सहायता से संकट काल में अत्यन्त सूखी भूमि से और मरु भूमि में उत्पन्न होने वाले पौधों से जल निकाला जा सकता है।

प्यासे व्यक्ति का जीवित रहना सम्भव बनाने वाले इस झोले (सर्वाइवल किट) में पतले प्लास्टिक की लगभग ६ वर्ग फुट चादर, जिसे तह करके आसानी से जेब में रखा जा सकता है, एक प्याला और एक खोदने का उपकरण सम्मिलित हैं। एक छड़ी से भी भूमि में खुदाई की जा सकती है। एक छोटा सा पत्थर भी आवश्यक है।

लगभग १५ मिनट में यह सौर भबका तैयार किया जा सकता है। सर्वप्रथम प्याले के आकार का एक ऐसा गड्ढा खोदना चाहिए जिसका व्यास लगभग एक गज और गहराई लगभग २० इंच हो। गड्ढे के मध्य एक प्याला रख कर, उसे प्लास्टिक की चादर से ढक दिया जाता है। उस प्लास्टिक को गड्ढे में न गिरने देने के लिए उसके सिरों पर ढेले अथवा पत्थर रख दिये जाते हैं। प्लास्टिक के मध्य में पत्थर रख दिया जाता है ताकि वह प्लास्टिक चारों ओर से बीच में तली की ओर झुक जाये। यह ध्यान रहे कि पत्थरों अथवा ढेलों से दबा हुआ यह प्लास्टिक गड्ढे की आकृति के अनुरूप रहे और उसका मध्य भाग सीधा पात्र के ऊपर झुका रहे और प्लास्टिक गड्ढे की दीवारें न छुए।

यह भबका कैसे कार्य करता है? ऐसे दो साधनों धूप और मिट्टी, का प्रयोग करके यह भबका कार्य करता है जिन दोनों की मरुस्थल में बहुतायत है। सूर्य की गर्मी से मिट्टी में विद्यमान नमी प्लास्टिक की तह के नीचे की ओर जमा हो जाती है। फिर पानी की बूँदें प्लास्टिक के साथ ढल कर पात्र में पहुँच जाती हैं।

यदि भूमि अत्यन्त सूखी हो तो सेहुण्ड नामक पौधे अथवा अन्य झाड़ियों के कटे हुए टुकड़ों को प्लास्टिक के नीचे गड्ढे में डाल कर अधिक मात्रा में जल प्राप्त किया जा सकता है। एरिजोना मरुस्थल में किये गये परीक्षणों में एक दिन में तीन-चौथाई पाइण्ट से लेकर दो पाइण्ट तक जल प्राप्त किया गया। गड्ढे में सेहुण्ड डालने पर एक दिन में जल की मात्रा में तीन पाइण्ट की वृद्धि हो गयी।

गदले जल को, गड्ढे में डाल कर और सूर्य की धूप से उसका बाष्पीकरण करके निर्मल किया जा सकता है।

उक्त सौर भवका डा० रे जैक्सन और डा० कोर्नेलियस एच० एम० वान वावेल के मस्तिष्क की उपज है। ये दोनों भौतिक विज्ञानशास्त्री टेम्पल (एरिजोना) स्थित यू० एस० वाटर कन्वर्शन लेबोरेटरी में कार्य करते हैं।

४. रेडियमधर्मी पदार्थों का पता लगाने वाला यंत्र

मनुष्य के शरीर में रेडियमधर्मी पदार्थों का पता लगाने का नया उपकरण **"होल बाडी काउण्टर"** सिनसिनाटी के जनरल अस्पताल में एक ऐसे भवन में स्थित है जो इसके लिये विशेष रूप से तैयार किया गया है। वह उपकरण सिनसिनाटी विश्वविद्यालय में बनाया गया है। अमेरिका में ऐसे केवल ४० उपकरण लगाये गये हैं। इनमें से कुछेक अस्पतालों में लगे हुए हैं।

प्रायः सभी प्रकार के बाहरी विकिरणों को रोकने के लिये कमरे का विशेष प्रकार से निर्माण किया जाता है। इसमें नियन्त्रण कक्ष, कार्य करने के लिये स्थान, कार्यालय, प्रयोगशाला सम्बन्धी क्षेत्र प्रतीक्षालय और वस्त्र बदलने के कमरे भी रहते हैं।

होल बाडी काउण्टर से मनुष्य के शरीर में विद्यमान उन रेडियमधर्मी पदार्थों का पता लगाया जा सकता है और उनकी माप की जा सकती है जो स्वभावतः मनुष्य के शरीर में रहते हैं अथवा जो शरीर द्वारा ग्रहण कर लिये जाते हैं। रोगियों की भलीभाँति देख-रेख करने तथा रोगों के सम्बन्ध में अनुसन्धान करने के लिये इसका विश्वविद्यालय के मेडिकल सेण्टर द्वारा प्रयोग किया जायेगा।

होल बाडी काउण्टर द्वारा किये जाने वाले अध्ययनों में विज्ञान एवं स्वास्थ्य से सम्बन्धित ऐसे तीन मुख्य क्षेत्र सम्मिलित हैं, जिनमें शरीर की रेडियो-सक्रियता बहुत ही मूल्यवान् सिद्ध हो सकती है। ये क्षेत्र इस प्रकार हैं—

१—सामान्य लोगों की सामान्य क्रियाओं का अध्ययन करने के लिये अलग-अलग लोगों और लोगों के दलों का रेडियो-सक्रिय सम्बन्धी सर्वेक्षण। इससे चिकित्सकों को शरीर एवं स्वास्थ्य में होने वाले परिवर्तनों और रोगों के सम्बन्ध में जानकारी मिलती है;

२—विकिरण सम्बन्धी दुर्घटनाओं से प्रभावित व्यक्तियों अथवा रेडियमधर्मी वस्तुओं का खतरा उठा कर कार्य करने वाले लोगों की जाँच करना तथा उनका उपचार करना;

३— शरीर की प्राकृतिक रेडियमधर्मिता की माप करके अथवा शरीर में थोड़ी सी मात्रा में रेडियो-आइसोटोप प्रविष्ट करके रोग की विभिन्न अवस्थाओं का अध्ययन करना।

वह नई सुविधा विश्वविद्यालय की जनरल अस्पताल में स्थित रेडियो-आइसोटोप लेबोरेटरी का अंग है। अमेरिका अणुशक्ति कमीशन, 'नेशनल इन्स्टीट्यूट औव् हैल्थ' और सिनसिनाटी के एलियन ए गूल्ड फाउण्डेशन की ओर से दिये गये १,४६,००० डालर के अनुदानों से इसका खर्च चलाया जाता है। गूल्ड फाउण्डेशन ने टू-वे क्लोज्ड सर्किट टेलिविजन और अन्तः संचार व्यवस्था उपलब्ध की है।

५. इस्पात की किस्म पर नियन्त्रण

भौतिक विज्ञान के दो सिद्धान्तों—चुम्बकता और ध्वनि—ने इस्पात उत्पादन के प्रारम्भिक चरणों में समय या सामग्री को बरबाद किये बिना ही दोषों का पता

लगाने के लिये हानिरहित परीक्षण द्वारा किस्म-नियंत्रण के प्रतिमानों को बढ़ावा दिया है।

यूनाइटेड स्टेट्स स्टील कारपोरेशन के गैरी कारखाने के प्रधान धातु-शोधन वैज्ञानिक, डी० ए० हैस ने शिकागो में अमेरिकन आयरन एन्ड स्टील इन्स्टिट्यूट की बैठक में बताया कि छड़ों और प्लेटों के ऊपरी और भीतरी दोषों का पता लगाने के लिये चुम्बकता और ध्वनि का प्रयोग किस प्रकार किया जाता है।

छड़ों के सतही दोषों का पता लगाने के लिये चक्राकार चुम्बकीकरण की विधि का प्रयोग किया जाता है। जब तक चुम्बकीयकरण के निरीक्षण की यह विधि विकसित नहीं हुई थी, तब तक वस्तु की किस्म मनुष्य की नेत्र-ज्योति पर ही निर्भर करती थी।

किन्तु आँख से निरीक्षण करने की विधि में न केवल विलम्ब होता था बल्कि दोष की गम्भीरता का भी पता नहीं चल पाता था। इससे अवसर सामग्री को फिर शोधन के लिये रोक लेना पड़ता था, क्योंकि निरीक्षणकर्ता के अनुमानानुसार दोष अधिक गहरा होता था।

साथ ही, आँख से देख कर परीक्षण करने की विधि समूचे उत्पादन-समूह के अनेक नमूनों तक ही सीमित थी। किन्तु यन्त्रीकृत परीक्षण से, समय की बरबादी के बिना ही सामग्री का परीक्षण नियमित क्रम में हो सकता है।

छड़ों और प्लेटों के भीतरी दोषों का पता एक अतिस्वन यन्त्र द्वारा लग सकता है, जो वस्तु में से होकर ध्वनि लहरियों को संचालित करता है। जब उस वस्तु में दोष होते हैं, तो कुछ लहरियाँ बिजली पर परिणत होकर वापिस लौट पड़ती है और दोष की किस्म और स्थान की सूचना देने के लिये एक कैथोड रे ट्यूब पर प्रकट हो जाती है।

६. नई किस्म की इस्पाती वस्तु का निर्माण

रिपब्लिक स्टील कारपोरेशन के एक अनुसन्धानकर्ता ने यहाँ अमेरिकन आयरन एण्ड स्टील इन्स्टिट्यूट की बैठक में यह सूचना दी है कि इस्पात की एक ऐसी चादर परीक्षण के लिये तैयार की जा रही है जिस पर मुर्चे का अधिक असर नहीं होगा। इस्पात की इन चादरों का प्रयोग सामान्यतः मोटर-गाड़ियों को बाडियाँ तैयार करने में किया जाता है। इस्पात की इस नवीन चादर की अभी परीक्षा की जानी शेष है।

उक्त अनुसन्धानकर्ता डा० जोन एम० रौब्लिन ने आगे बताया कि जिंक पर एल्यूमिनियम की हल्की परत चढ़ा कर यह नई चादर तैयार की गई है। इस प्रकार निर्मित चादर में कार्बन-स्टील की सभी विशेषताओं को शामिल किया गया है। यह मुर्चा का प्रतिरोध करने की अत्यधिक क्षमता रखती है तथा चिकनी और अत्यन्त चमकदार होती है।

उन्होंने कहा कि प्रयोगशाला में इस पर जो परीक्षण किये गए हैं जिसमें पर एल्यूमिनियम की परत मुर्चा-निरोधक क्षमता में वृद्धि करने की दृष्टि से अत्यन्त प्रभावशाली सिद्ध हुई है। उन्होंने आशा प्रकट की है कि मोटर-गाड़ियों के अलावा अन्य बहुत से कार्यों में भी इसका उपयोग किया जायेगा।

उन्होंने कहा कि जिस विधि द्वारा चादर पर यह परत चढ़ाई जाती है वह इतनी लोचशील है कि उसकी परत विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुसार इच्छित ढंग पर की जा सकती है।

७. आणविक विस्फोट द्वारा गैस उत्पादन

पृथ्वी के गर्भ में जहाँ प्राकृतिक गैस अधिक परिमाण में विद्यमान नहीं हैं, वहाँ भूगर्भीय आणविक विस्फोट कर के प्राकृतिक गैस के उत्पादन में लगभग ७ गुनी तक वृद्धि की जा सकती है।

यह निष्कर्ष उस अध्ययन पर आधारित है जो एक पासो नेचुरल गैस कम्पनी तथा यू० एस० ब्यूरो औव माइन्स द्वारा मिल कर किया गया था। अमेरिकी अणुशक्ति कमिशन ने इसके लिये आवश्यक टैक्निकल सहायता सुलभ की।

उक्त अध्ययन के अन्तर्गत आणविक विस्फोटों का उपयोग उन क्षेत्रों को तोड़ने के लिये किया गया जहाँ

गैस अत्यन्त घनीभूत और कसी हुई अवस्था में विद्यमान थी। इसका उद्देश्य गैसयुक्त क्षेत्रों में गैस को बाहर निकालने की गति को बढ़ाना था। उक्त अध्ययन से वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ऐसा करना सम्भव है। यह सिफारिश भी की गई है कि अमेरिकी अणुशक्ति कमीशन द्वारा इस प्रकार का एक भूगर्भीय आणविक विस्फोट न्यूमैक्सिको की सैन जुआन घाटी में स्थित किसी स्थान पर दिया जाए।

यदि इसकी स्वीकृति मिल गई तो समस्त विश्व में सरकार द्वारा आणविक विस्फोट को औद्योगिक कार्यों के लिये प्रयुक्त करने का यह सर्वप्रथम उदाहरण होगा।

इस अनुसन्धानात्मक अध्ययन को "गैसगी" का नाम दिया गया है और यह आणविक विस्फोटों को वैज्ञानिक एवं औद्योगिक कार्यों में प्रयुक्त करने सम्बन्धी अमेरिकी अणुशक्ति कमीशन के कार्यक्रम का एक अंग है।

मूलतः आणविक विस्फोटों से भी वही परिणाम प्राप्त होने की आशा की जाती है जो सामान्य विस्फोटों से प्राप्त होते हैं। अन्तर केवल यह है कि इनका परिणाम बहुत अधिक विस्तृत होता है।

८. ब्रह्माण्ड किरणों का अध्ययन

ब्रह्माण्ड किरणें क्या हैं ? पृथ्वी की वस्तुओं पर उनका क्या प्रभाव पड़ता है ?

ब्रह्माण्ड किरणों सम्बन्धी मनुष्य की जानकारी बहुत सीमित है। उनके बारे में इस बात के अतिरिक्त बहुत कम जानकारी प्राप्त है कि उनमें अत्यधिक तीव्र बेधक शक्ति पायी जाती है, जो सम्भवतः अन्तर-ग्रही अन्तरिक्ष में अणुओं अनवरत रूपान्तरण के फलस्वरूप उत्पन्न होती है, और यह पृथ्वी पर उनकी लगातार वर्षा होती रहती है और वे पृथ्वी के वायुमण्डल के आयनीकरण के लिए कुछ अंश तक जिम्मेदार हैं।

ब्रह्माण्ड किरणें मानव द्वारा निर्मित अति तीव्र शक्ति वाले सबसे बड़े अणु-विभंजक संयन्त्र से उत्पन्न किसी भी कण की अपेक्षा कहीं अधिक शक्तिशाली होती हैं। टाटा इन्स्टिट्यूट ऑव् फण्डामेण्टल रिसर्च, बम्बई, के निदेशक, डा० एज० जे० भाभा, के शब्दों में, वे **"विश्व के सबसे बड़े अणु विभंजक संयन्त्र हैं।"**

विश्व-विख्यात टाटा इन्स्टिट्यूट ने हाल में, ब्रह्माण्ड किरणों के स्वरूप और प्रभाव सम्बन्धी अपने अनुसन्धान को तीव्रतर कर दिया है। इस महत्वपूर्ण कार्य में उसकी सहायता विख्यात अमेरिकी वैज्ञानिक, डा० सी० बुफोर्ड प्राइस, कर रहे हैं। डा० प्राइस हाल ही में भारत आये हैं।

डा० प्राइस को, जो जेनरल इलेक्ट्रिक रिसर्च लैबोरेटरी, स्केनेक्टेडी (न्यूयार्क) से आये हैं, दो अन्य अमेरिकी वैज्ञानिकों—डा० आर० एल० फूलेश्चर और डा० आर० एम० वाकर—के साथ संयुक्त रूप में, अमेरिकन न्यूक्लियर सोसायटी का १९६४ का पुरस्कार प्राप्त हुआ है। यह पुरस्कार उन्हें ब्रह्माण्ड किरणों के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण आविष्कार करने के उपलक्ष्य में मिला है।

इन तीनों वैज्ञानिकों ने हाल में यह खोज की कि कुछ ब्रह्माण्ड किरणों और अन्य ऊर्ज्वसित कण ठोस पदार्थों से होकर गुजरते समय स्थायी रूप से अति सूक्ष्म पथ-चिन्ह छोड़ जाते हैं। वे शक्तिशाली रसायनों द्वारा अणु के आकार वाले इन सूक्ष्म पथों को इस हद तक विस्तारित करने में सफल हुए हैं, जहाँ उन्हें साधारण सूक्ष्मवीक्षण यन्त्र से देखा जा सकता है और उनका अध्ययन किया जा सकता है।

प्राइस, फ़्लेश्चर और वाकर ने अपनी स्केनेक्टेडी स्थित प्रयोगशाला में यह पता लगाया कि 'जड़ीभूत पथ' जो करोड़ों, अरबों, वर्ष पूर्व ऊर्ज्वसित कणों द्वारा ठोस पदार्थों के बीच छोड़े गये थे, अभी आज भी दृश्यमान हैं और उनका प्रयोग उन ठोस पदार्थों की आयु का निर्धारण करने में हो सकता है। उन्होंने यह भी पता लगाया कि यदि वह पदार्थ वाह्य अन्तरिक्ष में बहुत लम्बी अवधि तक रहा हो, तो उस दशा में उसमें अंकित 'जड़ीभूत पथों' की तालिका उन ब्रह्माण्ड किरणों के विषय में

जानकारी प्रदान करती है, जिन्होंने उस पर आघात किया था।

लगभग ३ वष पूर्व का गयी 'जड़ीभूत मथों' सम्बन्धी अपनी खोज के बाद, जेनरल इलेक्ट्रिक के वैज्ञानिकों ने उनके वैज्ञानिक और व्यावहारिक प्रयोगों के विषय में पर्याप्त जानकारी प्राप्त की है। इनके अन्तर्गत, भूतात्विक और पुरातात्विक तिथि-निर्धारण से लेकर नाभिकीय प्रतिक्रियाओं के अध्ययन तक, रासायनिक सूक्ष्म-विश्लेषण से लेकर उल्काखण्डों में अंकित सौर-प्रणाली के प्रारम्भिक इतिहास तक तथा विकिरण-विश्लेषण संयन्त्र से लेकर अति उत्कृष्ट जीव-वैज्ञानिक छन्नियों तक विविध प्रयोग सम्मिलित हैं।

जीव-वैज्ञानिक छन्ना का निर्माण किसी प्लास्टिक की चद्दर को अति ऊर्ज्वसित कणों से छिद्रित करके और फिर पथों को साफ करके प्लास्टिक में अति सूक्ष्म छिद्र बना कर किया जाता है। इस अद्भुत छन्नी के आविष्कार के उपलक्ष्य में ही डा० प्राइस, डा० फ्लेइचर और डा० वाकर को अमेरिकन न्यूक्लियर सोसायटी का १,००० डालर का पुरस्कार मिला। इन छन्नियों का प्रयोग अब कुछ कैंसर संस्थाओं में कैंसर ग्रस्त रोगियों के रक्त की जाँच करने के लिए हो रहा है।

डा० प्राइस अमेरिकी सरकार के एक अनुदान की सहायता से ६ महीने के लिए भारत में हैं। वह जेनरल इलेक्ट्रिक की नवीन 'टोहक' विधियों का प्रयोग बहुत भारी ब्रह्माण्ड किरणों की खोज करने में करेंगे। अति दुर्लभ होने के कारण अभी तक इन किरणों के अस्तित्व की पुष्टि नहीं हो सकी है।

इन दुर्लभ कणों को ढूँढ़ने का एक ढंग यह है कि उल्का-खण्डों में निहित 'जड़ीभूत पथों' का अध्ययन किया जाये, जो करोड़ों वर्षों से ब्रह्माण्ड किरणों सम्बन्धी आंकड़े संग्रह करते रहे हैं। उल्का-खण्डों के अध्ययन से इस बात के दृढ़-प्रमाण मिले हैं कि अत्यन्त भारी ब्रह्माण्ड किरणें कम संख्या में विद्यमान हैं।

दुर्लभ ब्रह्माण्ड किरणों का पता लगाने का दूसरा तरीका यह है कि आंकड़े एकत्र करने के लिए गुब्बारों द्वारा पृथ्वी के वायुमण्डल के शिखर पर बहुत बड़े-बड़े टोहक उपकरण भेजे जायें।

जेनरल इलेक्ट्रिक और टाटा इन्स्टिट्यूट एक सहकारी प्रयास के अन्तर्गत, प्लास्टिक की विशेष प्रकार की चद्दरों के ढेर के ढेर वायुमण्डल में उड़ाने का आयोजन कर रहे हैं। ये चद्दरें एक ओर एक गज लम्बी होंगी। आशा है कि वे दुर्लभ भारी ब्रह्माण्ड किरणों के पथ-चिह्न एकत्र करेंगी।

डा० प्राइस उस समय के आगमन की प्रतीक्षा में हैं, जब वैज्ञानिकों को अपनी पृथ्वी स्थित प्रयोगशालाओं में अध्ययन के लिए चन्द्रमा की सतह के नमूने उपलब्ध हो जायेंगे। अमेरिका के राष्ट्रीय उड्डयन एवं अन्तरिक्ष प्रशासन (नैसा) की अपोलो योजना के अन्तर्गत, १९७० के पूर्व चन्द्रमा की सतह पर मनुष्य को उतार दिया जायेगा। आशा है कि वह मानव अपने साथ इस तरह के नमूने पृथ्वी पर लाने में समर्थ होगा।

डा० प्राइस के मतानुसार, "नमूनों के चिह्नित-पथों के अध्ययन के उस अवस्था के सम्बन्ध में प्रचुर जानकारियाँ प्राप्त हो सकती हैं, जब चन्द्रमा ने ठोस रूप धारण किया। साथ ही, इससे चन्द्रमा की सतह पर होने वाले विस्फोटों की तिथि तथा चन्द्रमा के क्षरण की गति के विषय में भी समुचित जानकारी प्राप्त हो सकेगी।"

डा० प्राइस ने येल विश्वविद्यालय से ठोस अवस्था सम्बन्धी भौतिक विज्ञान में एम० एस-सी० और डाक्टर की उपाधियाँ क्रमशः १९५६ और १९५८ में प्राप्त की। उन्होंने भौतिक विज्ञा में अनुसन्धान के लिए इग्लैण्ड में दो वर्ष बिताये। वह १९६० से जेनरल इलेक्ट्रिक रिसर्च लैबोरेटरी में कार्य कर रहे हैं।

१—श्वास के साथ बाहर निकलने वाली गैसों से आक्सीजन

अमेरिका में एक ऐसी विधि विकसित की गयी है, जिसके द्वारा फेफड़ों में श्वास के साथ बाहर निकलने वाले व्यर्थ पदार्थों से श्वास लेने के लिए आक्सीजन तैयार की जा सकती है। अभी भी यह विधि अपनी प्रयोगात्मक अवस्था में है। इसके द्वारा मनुष्य बार-बार तैयार की गयो कृत्रिम आक्सीजन का प्रयोग करके बहुत लम्बी अवधि तक बाहर की हवा से एकदम पृथक बना रह सकता है।

यह अनुसन्धान अमेरिकी सरकार के राष्ट्रीय उड्डयन एवं अन्तरिक्ष प्रशासन (नैसा) की ओर से चलाया जा रहा है। इसका उद्देश्य दूरस्थ ग्रहों तक की कई वर्ष लम्बी यात्राओं के दौरान अन्तरिक्ष-यात्रियों द्वारा सम्भवतः प्रयुक्त हो सकने वाली विधि की खोज करना है। इस तरह की लम्बी यात्राओं के दौरान, अन्तरिक्ष-यात्रियों के लिये यह असम्भव होगा कि वे अपने साथ बहुत बड़ी मात्रा में आक्सीजन भी ले जायें।

मनुष्य के शरीर को प्रतिदिन लगभग २·५ पौण्ड आक्सीजन की आवश्यकता होती है। इसमें से वह लगभग २ पौण्ड श्वास द्वारा हवा से प्राप्त करता है, और लगभग ·५ पौण्ड आहार से। प्राय: यह सारी आक्सीजन शरीर द्वारा कार्बन डाइआक्साइड और भाप के रूप में परिणत हो जाती है जो श्वास के साथ बाहर निकल जाती है।

जनरल डायनामिक्स कारपोरेशन, सैनडीगो, कैलिफोर्निया, के कान्वेयर डिविजन के इंजिनियरों ने एक ऐसी विधि तैयार की है, जिसके अन्तर्गत, यह कार्बन डाइआक्साइड (जिसका रासायनिक नाम CO_2 है) हाइड्रोजन से (जिसे H_2 कहते हैं) उच्च ताप बिन्दु पर संयुक्त हो जाती है। इसके फलस्वरूप वह मिश्रण जल (H_2O) और कार्बन में परिणत हो जाता है। उसके बाद पानी को हाइड्रोजन और आक्सीजन के रूप में पृथक-पृथक कर लिया जाता है। अन्तरिक्ष-यान में यह आक्सीजन चालक-कक्ष में फिर वापिस लौट जायेगा, जहाँ अन्तरिक्ष-यात्रियों द्वारा उसका प्रयोग श्वास लेने के लिये होगा। बचा हुआ हाइड्रोजन तत्सम्बन्धी यन्त्र से पुन: संचारित कर दिया जायेगा, जहाँ उसका प्रयोग उपयुक्त ढंग पर ही बार-बार होगा।

इस विधि का परीक्षण एक बन्द वातावरण के कक्ष में उस अवस्था में हुआ है, जब उस पर ४ वैज्ञानिक सवार हों।

२—अन्तरिक्ष में लिये गये चित्रों का उपयोग

अमेरिका समुद्रों के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए अन्तरिक्ष में लिये जाने वाले चित्रों का प्रयोग करने का विचार कर रहा है। राष्ट्रीय उड्डयन एवं अन्तरिक्ष प्रशासन और अमेरिकी नौसेना के समुद्री मानचित्र तैयार करने वाले कार्यालय ने उक्त घोषणा की है। उन्होंने कहा है कि वे उन परीक्षणों की व्यवस्था करेंगे जो १९६६ में अपोलो अन्तरिक्षयान को चन्द्रमा पर उतारे जाने से पूर्व अपोलो अन्तरिक्षयान में बैठ कर पृथ्वी की परिक्रमा करने वाले अन्तरिक्ष यात्रियों द्वारा किये जायेंगे।

राष्ट्रीय उड्डयन एवं अन्तरिक्ष प्रशासन की ओर

से कहा गया है कि गत वर्ष की ४ दिन और ८ दिन की जैमिनी उड़ानों के दौरान जो उल्लेखनीय रंगीन चित्र लिये गये थे, उनसे पता चला है कि मनुष्ययुक्त अन्तरिक्षयान द्वारा समुद्रों के मानचित्र तैयार करने के लिये मूल्यवान् जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

जैमिनी—५ के यान-चालक चार्ल्स कोनराड द्वारा अतलान्तक सागर स्थित बहामा दीप के जो चित्र लिये गये थे उनसे समुद्र-तल पर स्थित रेत के ऐसे टीलों के सम्बन्ध में नई जानकारी मिली है, जो समुद्री तरंगों के कारण बने हैं।

राष्ट्रीय उड्डयन एवं अन्तरिक्ष प्रशासन ने बताया कि इन परीक्षणों का उद्देश्य समुद्र-तल की तरंगों और समुद्र के भीतर बहने वाली नदियों आदि के सम्बन्ध में और अधिक जानकारी प्राप्त करना है।

अन्तरिक्ष में १० मील अथवा उससे भी अधिक ऊँचाई से लिये गये चित्रों में समुद्र का गहरा जल गहरा नीला और कम गहरा जल हल्का नीला दिखाई पड़ता है। अन्धकारपूर्ण आकाशमण्डल में बहुत से लिये गये चित्रों में भी स्पष्ट रूप से समुद्र-तल दिखाई पड़ता है।

३—नारियल के रस से बिजली का उत्पादन

अमेरिका में बिजली उत्पन्न करने के लिए नारियल के रस का प्रयोग किया गया है। इसके लिए प्रयुक्त प्रणाली या उपकरण को जीव-रासायनिक फ़्युएल सेल कहते हैं। इसने प्रयोगात्मक आधार पर एक ट्रांजिस्टर रेडियो को ४५ दिनों की अवधि में सविराम ढंग पर ५० घण्टे चालू रखा। इसके अन्तर्गत, नारियल के रस को रासायनिक प्रक्रिया द्वारा फार्मिक एसिड में बदल देने के लिए कीटाणुओं का प्रयोग किया गया। यह एक विद्युत्-रासायनिक ईंधन है, जिससे कोई बैटरी विद्युत् करेण्ट प्राप्त कर सकती है। वैज्ञानिकों ने एरोमोनास फौमिकन नामक कीटाणुओं का प्रयोग किया।

तत्सम्बन्धी अनुसन्धान रेडोण्डो बीच, कैलिफोर्निया, की टौम्पसन रामोऊल्डरिज कमानी द्वारा किया गया। वैज्ञानिकों ने कहा कि फार्मिक एसिड गन्ना, फल और अरबी से भी उत्पन्न हो सकती है। इसे पत्तियों और घासों से उत्पन्न करने की विधि भी विकसित की जा सकती है। इस प्रकार के फ़्युएल सेल संकटकालीन स्थितियों में तथा निर्जन स्थानो पर कम बिजली की पूर्ति के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

४—आइन्स्टीन के सापेक्षवाद को चुनौती

आइन्स्टीन के सापेक्षवाद सम्बन्धी सिद्धान्त को, जो इस सिद्धान्त पर आधारित है कि समस्त गतियाँ अथवा हलचलें सापेक्षित हैं तथा जिसमें अन्तरिक्ष-समय को एक चतुर्थ बिमा मान कर गुरुत्वाकर्षण सम्बन्धी पूर्व सिद्धान्तों को खण्डित कर दिया गया है, आज चुनौती दी जा रही है।

अमेरिकन इन्स्टिट्यूट औव् साइंटिस्ट्स के अनुसन्धान-विशेषज्ञों के अनुसार आइन्स्टीन के गुरुत्वाकर्षण सम्बन्धी सिद्धान्त और सापेक्षवाद सम्बन्धी सिद्धान्त की शुद्धता अथवा अशुद्धता इस बात पर निर्भर करेगी कि सूर्य के निकटतम विन्दु पर परिक्रमा करने वाला नक्षत्र 'आइकारस' जून, १९६८ में पृथ्वी से निकटतम विन्दु पर पहुँचने पर सूर्य के चिपटेपन के बारे में वैज्ञानिकों को क्या जानकारी प्रदान करता है?

यदि उस समय यह सिद्ध हो गया कि सूर्य का विषुवतीय व्यास उसके ध्रुवीय व्यास से तनिक भी अधिक है—मान लीजिए कि वह केवल ०·००५ प्रतिशत ही अधिक है—तो इससे सूर्य के वर्तमान गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में इतनी अधिक विकृति आ जायेगी कि उस बिन्दु की स्थिति काफी परिवर्तित करनी पड़ेगी जो अभी तक सूर्य से मंगल का निकटतम बिन्दु माना जाता है।

सूर्य की परिक्रमा करते हुए सूर्य से मंगल के निकटतम विन्दु के बारे में जो भविष्यवाणी की जाती है, उसमें इसके फलस्वरूप कम से कम १० प्रतिशत का अन्तर पड़ जायेगा। सूर्य से मंगल के निकटतम विन्दु की स्थिति में धीमी गति से जो परिवर्तन होता है वह उन तीन मुख्य प्रभावों में से एक है जिनकी व्याख्या आइन्स्टीन के सापेक्षवाद सम्बन्धी सिद्धान्त के अन्तर्गत की गई है।

यदि 'आइकारस' की गति से यह सिद्ध हो गया कि सूर्य ध्रुवों पर ०·००५ प्रतिशत भी चिपटा है तो यह सिद्ध हो जायेगा कि १० प्रतिशत का उक्त अन्तर, जो अभी तक सापेक्षवाद सम्बन्धी सिद्धान्त का परिणाम माना जाता है वस्तुतः सूर्य के ध्रुवों पर चिपटा होने के कारण पड़ता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि अन्तरिक्ष में गतिमान वस्तुओं का एक दूसरे की गुरुत्वाकर्षण शक्ति से प्रभावित होने का वास्तविक कारण सापेक्षवाद नहीं बल्कि कोई अन्य सिद्धान्त हो सकता है।

सूर्य के अधिक निकट होने तथा इसकी कक्षा के अधिक झुकाव के कारण यह सूर्य के उस सम्भावित विकृत चुम्बकीय क्षेत्र का पता लगाने के लिए एक अत्यन्त उपयुक्त परीक्षण है जिसका अस्तित्व सूर्य के पूर्ण गोलाकार न होने पर अवश्यम्भावी है।

५—महासागर की तलहटी में आणविक परीक्षणों की टोह लेने के लिए भूकम्प-सूचक यन्त्र

अमेरिका में विकसित महासागर की तलहटी में भूकम्प का माप करने वाले एक यन्त्र के नवीनतम नमूने की सहायता से बहुत दूरी तक भूगर्भीय आणविक परीक्षणों की टोह अब बहुत अंश तक सही-सही ली जा सकती है।

इस यन्त्र को पानी की सतह से ५ मील की गहराई तक पानी में डूबा हुआ छोड़ा जा सकता है। वहाँ पर वह समस्त भूकम्पनों और भूकम्पन-लहरियों को, जिनमें वे भी सम्मिलित हैं, जो आणविक परीक्षणों से उत्पन्न होती हैं, लगातार ३३ दिन तक अंकित करता रहता है।

इस यन्त्र को जहाज द्वारा वांच्छित क्षेत्र तक ले जाया जाता है और वहाँ महासागर की तलहटी में डूबने के लिए छोड़ दिया जाता है। यन्त्र के उपकरण पृथ्वी में से होकर गुजरने वाली कम्पन-लहरियों का पता लगा लेते हैं और इस प्रकार की जानकारी को यन्त्र में निर्मित एक विशेष प्रकार के टेपरिकार्डर तक सम्प्रेषित कर देते हैं।

१४ सूत्रों वाला रिकार्डर इतने धीरे-धीरे चलता है कि वह एक सेकण्ड में केवल ·००७५ इंच टेप का ही इस्तेमाल कर पाता है। यही कारण है कि ३३ दिनों की लम्बी रिकार्डिंग टेप की एक ९ इंच लम्बी रील पर ही हो जाती है।

पानी की सतह पर खड़े जहाज से ध्वनि-संकेत पा जाने पर भूकम्पन-मापक यन्त्र अपने वजनी आधार से ऊपर उठ जाता है, और पानी की सतह पर तैरने लगता है। वहाँ पर यन्त्र एक रेडियो-संकेत सम्प्रेषित करता है, जिससे इसका पुनः ग्रहण करने वाले जहाज को इसके स्थान का पता लगाना और इसे उठा लेना आसान हो जाता है।

जहाज के ऊपर एक तीव्र गति से चलने वाला प्लेबैक यन्त्र होता है, जिसकी सहायता से महीने भर के आँकड़ों का केवल १।। घण्टे में ही निरीक्षण सम्भव हो जाता है। उसके बाद टेप को विस्तृत विश्लेषण के लिए एक गणक-केन्द्र पर भेज दिया जाता है। इस प्रकार रिकार्डर पर अंकित प्रकम्पन-लहरियों के स्वरूप और कारण का निर्धारण करना सम्भव हो जाता है।

आधार छोड़ कर यन्त्र के सभी पुर्जे इस्पात के बने ४० इंच व्यास वाले एक गोले में बन्द होते हैं जिसकी दीवारें २ इंच मोटी होती हैं।

इस गोले के भीतर, एक टेप-रिकार्डर, एक ध्वनि-विस्तारक उपकरण, बैटरियाँ, एक चाप टोहक उपकरण तथा एक लम्बवत तथा दो क्षैतिज भूकम्प-मापक उपकरण होते हैं। गोले के भीतर एक विद्युदाणविक घड़ी भी बन्द होती है, जो रिकार्डिंग की समूची अवधि में एक सेकेण्ड के दसवें अंश तक सही-सही समय बतलाती है।

१९६३ की आणविक परीक्षण निषेध सन्धि द्वारा वायु में आणविक परीक्षणों पर रोक लगा दी गयी है। इस सन्धि पर १०० से अधिक राष्ट्रों ने हस्ताक्षर किये हैं। इस प्रकार के परीक्षणों का पता भूमि पर टोहक केन्द्रों, जहाजों, या परिक्रमागत भू-उपग्रहों द्वारा जो परीक्षण से उत्पन्न रेडियो-सक्रियता और ताप की टोह लेते हैं, अन्तरिक्ष से लगाया जा सकता है।

इसके विपरीत, भूगर्भीय परीक्षणों का विश्वसनीय ढंग पर टोह लेना अत्यन्त कठिन है। किन्तु सन्धि में उन की अनुमति दी गयी है। इन परीक्षणों की टोह केवल उन भूकम्पन-लहरियों द्वारा ही ली जा सकती है, जो वे पृथ्वी से होकर सम्प्रेषित करते हैं। किन्तु वे प्राकृतिक भूकम्पन की कम्पन-लहरियों जैसी ही होती हैं।

आणविक परीक्षण से उत्पन्न इस प्रकार की लहरियों की तीव्रता, अधिक दूरी पर बहुत ही कम हो जाती है, अतः इन लहरियों को निकटवर्ती ट्रेनों, भारी ट्रकों के आवागमन या खान के विस्फोटों आदि से उत्पन्न लहरियाँ समझने की भूल हो सकती है।

भूमि से बहुत दूरी पर स्थित होने के कारण महासागर की तलहटी में स्थापित भूकम्प-सूचक यन्त्र इस प्रकार की बाधाओं से प्रभावित नहीं होगा।

इस यन्त्र को डलास, टैक्सास, की टैक्सास इन्स्ट्रूमेण्ट कम्पनी ने विकसित किया है जिसने इसके अनेक नमूने १९६१ में विकसित किये। उसने अमेरिकी सरकार की उच्चतर अनुसन्धान-योजना एजेंसी की ओर से इन्हें विकसित किया।

थोड़े से परिवर्तन कर देने पर इसका प्रयोग भूमि पर स्थित ऐसे भूकम्प टोहक स्टेशन के रूप में हो सकता है, जिसको चलाने के लिए किसी मनुष्य की देख-रेख की आवश्यकता नहीं रहेगी।

६—बिजली के तार का काम देने वाले प्लास्टिक का निर्माण

अमेरिका में नये किस्म के प्लास्टिक तैयार किये गये हैं जिनसे बिजली के तारों का काम लिया जा सकता है।

प्लास्टिक की इन किस्मों के कारण सम्भव है निर्माण की कुछ विधियों में आमूलचूल परिवर्तन हो जाये, कुछ नई वस्तुएँ तैयार होने लगें और वर्तमान वस्तुओं के डिजायन तथा क्रिया में सुधार हो जाये, और प्लास्टिक का उपयोग सर्वथा नये क्षेत्रों में होने लगे।

तथापि, प्लास्टिक की इन नई किस्मों के बाजार में आने से पहले उनमें और अधिक सुधार की आवश्यकता है।

अब तक प्लास्टिक का उपयोग तेजी से बढ़ता रहा है। इसका एक कारण यह है कि उसमें बिजली की धारा का प्रवाह नहीं हो पाता और इसलिए, वह बहुत अच्छा विद्युत्धारा-अवरोधक (इन्सूलेटर) है। अमेरिकी उद्योगों में प्लास्टिक की खपत प्रायः उतनी ही होती है, जितनी इस्पात की।

अब बिजली की धारा को प्रवाहित करने लायक नई किस्म का प्लास्टिक निकल आने से प्लास्टिक के उपयोग के लिए सर्वथा नये क्षेत्र खुल गये हैं। उदाहरण के तौर पर, नई किस्म के प्लास्टिक का उपयोग, प्रायः रोगन की तरह, तरल रूप में किया जा सकता है।

इस प्रकार, इन नई किस्सों का उपयोग साधारण प्लास्टिक समेत बिजली-अवरोधक पदार्थों की सतह पर बिजली की धारा प्रवाहित करने वाला लेप करने के लिए किया जा सकता है। इससे नई किस्म के इन प्लास्टिकों का प्रयोग हलके रेडियो सैटों और बिजली के अन्य छोटे उपकरणों में तथाकथित 'प्रिण्टेड सर्किट' तैयार करने में किया जा सकता है।

प्लास्टिक की नई किस्मों का विकास स्कैनैकटेडी (न्यूयार्क) की 'जनरल इलैक्ट्रिक रिसर्च लेबोरेटरी' में किया गया है।

जनरल इलैक्ट्रिक के उपाध्यक्ष और अनुसन्धान-निदेशक डा० गाई सूट्स ने कहा : धातुएँ—विशेषकर ताम्बा—अब भी बिजली की धारा प्रवाहित करने का मुख्य साधन है। बिजली की अधिक हानि उठाये बिना बहुत बड़ी मात्रा में बिजली प्रवाहित करने की क्षमता की दृष्टि से नये प्रकार के प्लास्टिक धातुओं का मुकाबला नहीं करते।

किन्तु, उन्होंने कहा : नई किस्म के प्लास्टिकों में कई विशेषताएँ हैं। इनसे बिजली के प्रवाह में रुकावट नहीं पड़ती और इनसे तरह-तरह की चीजें आसानी से तैयार की जा सकती हैं।

साथ ही, नये प्लास्टिक में बिजली के प्रवाह को डिजायनर की इच्छा के अनुसार नियन्त्रित किया जा सकता है। इस प्रकार उसे नये-नये डिजायन तैयार करने का अवसर मिल सकता है।

पिछले वर्षों में, रसायनशास्त्रियों ने प्लास्टिक की ऐसी किस्में खोजी हैं जिनका उपयोग विशिष्ट कार्यों में किया जा सकता है और जो मजबूत होने के साथ-साथ सस्ती भी हैं और जिनसे आसानी से चीजें तैयार की जा सकती हैं।

किसको कौन खुजाए ?

यह समस्या चौपायों के लिए कठिन ही है, विशेषतः भारी भरकम और छोटे हाथ-पांव वाले शूकरों के लिए जू या अन्य कीट उसकी पीठ पर जम जाता है तो जम कर ही खून पीता रहता है। इसके लिए शूकर पालनेवालों की सुविधार्थ एक ऐसी कमरपेटी बनायी गयी है जो शूकर की पीठ कर फिट पहिना दी जाती है। उस पेटी में कीटनाशक दवा भरी रहती है। आवश्यकता पड़ने पर शूकर दीवार से सट कर उस पेटी को जरा पिचका देता है। तुरन्त ही दवा की फुहार पीठ पर बिखरी जाती है और उपद्रवकारी कीट का सफाया कर देती है।

और, पनीर पैदा हो गया

प्रथम बार पनीर स्वयं ही पैदा हुआ था और तभी से मनुष्य उसका बनाना और प्रयोग करना सीख पाया था। सिकन्दर की सेना के साथ विभिन्न रसद का जो लम्बा काफिला चलता था, उसी में कुछेक ऊँटों पर दूधभरी मशकें लदी हुई चलती थीं। ऐसे रेगिस्तान से गुजरना पड़ा जिसमें नीचे तपती धरती और ऊपर आग उगलता आसमान दिनमान के ताप को चरम तक पहुँचाये हुए थे। मशकों की खाल में प्रायः ही रह जानेवाले 'रेजिन' नामक पाचक-रस के जर्रे उन मशकों में भी लुके-छिपे, चिपके थे ही। उन्होंने अपना असर दिखाया और ऊँटों की मथने जैसी चाल और अति उच्च ताप में उस दूध को बहुत तो फाड़ दिया और कुछ का दही जमा दिया। फटे दूध के पानी को प्यास बुझाने में और पनीर को खाने के काम में लाया गया।

एक वैज्ञानिक कहानी

वैज्ञानिक की सनक

रामलखन सिंह

आज प्रोफेसर बहुत खुश था। रोज पढ़ा कर लौटते समय जिसके चेहरे पर गूढ़ चिन्तन के भाव रहा करते थे (जैसे किसी वैज्ञानिक तथ्य को सुलझाने का प्रयास चल रहा हो) आज उसी के मुख पर खुशी छलकी पड़ रही थी। घर में घुसते ही पुकारे—"अरे बेबी की माँ कहाँ हो...? चाय तो लाओ ...।"

"ला रही हूँ—कहीं का किला नहीं फतह करके आये हो जो..." रोज से भी ज्यादा चिढ़े स्वर में बोलते हुए उसने केतली चढ़ायी। और इस पर वह उठकर रसोई घर ही पहुँच गया—"क्या बात है जो इस तरह बोल रही हो, कभी तो प्यार से बोला करो..." और वहीं पसर कर बैठ गये।

"पूछते हो क्या बात है? अभी आधा घंटा हुआ वह कलमुँहा मकान मालिक आया था। बोला कि 'लड़कों को छत पर मत उछलने दिया करो वरना कमजोर हो जायेगी!' अब भला बताओ कि बच्चे रहते तो हैं यहाँ और क्या उछलने जायेंगे दूसरों की छत पर " उसने चाय का प्याला देते हुए कहा।

"लो—मैं तो उसी की सोच रहा था। किराये के मकान में रहते-रहते जी भर चुका है। अब तो अपना मकान बनवाऊँगा अपना..." प्रोफेसर ने खुशी का कारण जाहिर ही कर दिया।

"पर कहीं जगह भी मिल रही है या मकान ही बनवाओगे..."

"अरे पगली—उसकी चिंता मत कर, मैं ऐसी जगह मकान बनवाऊँगा जहाँ दुनिया वाले आसानी से पर भी नहीं मार सकेंगे। इस दुनिया में बेईमानी, घूसखोरी, चालबाजी के सिवा कुछ भी नहीं बचा है। अब तो यहाँ रहने का नाम भी मत लो..." चाय की चुस्की लेते हुए प्रोफेसर ने इतना सब कह डाला। "तो क्या आसमान में बनवाओगे मकान..." उसकी सनक भरी बातों से चिढ़ कर वह कह गयी।

"हाँ—हाँ आसमान में बनेगा मेरा मकान। चन्द्रमा पर बनेगा अपना शानदार बँगला..." प्रोफेसर खुशी सम्हाल न पा रहा था।

"अरे कभी तो अक्ल की बातें किया करो। चन्द्रमा पर मकान बनवायेंगे यह..." उसे और चिढ़ लग गयी—"मैं पूछती हूँ कि देवताओं के लोक में जिन्दा कोई गया है या..."

"अरे बुद्धू! तुझे क्या पता कि देवता नाम की कोई चीज नहीं होती। चन्द्रमा भी अपनी पृथ्वी की तरह एक लोक है। वहाँ भी आदमी रह सकता है बिल्कुल यहाँ की तरह। बस जाने की समस्या थी सो भी हल हो गयी है..."

"पर चन्द्रमा तो गोल होता है और साथ ही वह कितना छोटा सा है..."

"गोल तो अपनी पृथ्वी भी है। चन्द्रमा पर पहुँच कर तुम देखोगी कि तुम्हारी पृथ्वी भी चन्द्रमा की तरह गोल परन्तु हरे रंग की दिखाई पड़ती है। हाँ आकार में चन्द्रमा इससे छोटा है। पृथ्वी का व्यास चन्द्रमा से लगभग चार गुना अधिक है। चन्द्रमा का व्यास २,१६० मील है। वह हमारी पृथ्वी के चारों ओर ठीक उसी प्रकार घूमता है जैसे पृथ्वी सूरज के चारों ओर" और चाय की चुस्की लेते हुए उसने बात बढ़ाये रखी .. "चन्द्रमा और पृथ्वी के बीच की औसत दूरी ढाई लाख

मील है। वैसे चन्द्रमा कभी आज की अपेक्षा पृथ्वी से अधिक निकट था...''

"क्या चन्द्रमा पर भी रात दिन होगें..."

"अवश्य। परन्तु वहाँ का दिन यहाँ के पन्द्रह दिन के बराबर होगा। अर्थात पन्द्रह दिन तक लगातार सूर्य दिखा करेगा और..." तभी उसने बात काट लिया—"यह तो बहुत अच्छा रहेगा। मैं एक साथ सारा काम पूरा करूँगी और फिर आराम से पन्द्रह दिन तक सोऊँगी..." वह खुश हुई, परन्तु तभी शंका उठ खड़ी हुयी—"परन्तु उसे तो ग्रहण लगते हैं। उस समय हम लोगों का क्या होगा जब राहु उसे डसेगा..."

"ह ऽ ह ऽ ह ऽ..." इस बार प्रोफेसर को उसकी नादानी पर हँसी आ गयी—"अरे बुद्धू यह सब बकवास है। ऐसा तो इसलिए होता है कि चन्द्रमा में भी अपनी पृथ्वी की तरह कोई प्रकाश नहीं होता। वह तो सूर्य के प्रकाश को परावर्तित करने के कारण प्रकाशित दिखता है। और जब पृथ्वी और चन्द्रमा अपनी-अपनी परिधियों में घूमते-घूमते इस क्रम में आ जाते हैं कि पृथ्वी, सूर्य और चन्द्रमा को मिलाने वाली सीधी रेखा के बीच में रहती है तो उसे ही लोग चन्द्र ग्रहण कहते हैं क्योंकि उस स्थिति विशेष में सूर्य से चलने वाला प्रकाश चन्द्रमा तक नहीं पहुँच पाता है और चन्द्रमा से कोई प्रकाश नहीं परावर्तित होता और तभी वह काला दिखाई पड़ने लगता है..."

"परन्तु वहाँ कुछ है भी या हवा-पानी खाकर जिन्दा रहेंगे..." उसे पुन: शंका हुई।

"वैसे तो वहाँ हवा-पानी भी नहीं है..."

"क्या...? हवा-पानी भी नहीं है..." वह चौंक सी पड़ी थी।

"हाँ—नहीं है। सिवा ऊँची-ऊँची पहाड़ियों और गहरे दर्रों के वहाँ वनस्पति भी नहीं है। वायुमण्डल के अभाव के कारण वहाँ पूर्ण शान्ति व्याप्त रहती है। एक दो पहाड़ तो ३०,००० फीट से भी अधिक ऊँचे हैं। उनकी चोटियाँ खुरदरी और नुकीली हैं। वहाँ पर समतल धरातल तो मुश्किल से मिल सकेगा..."

"तो वहाँ क्या पहाड़ की चोटी पर मकान बनाओगे। ऐसी जगह मैं नहीं जाऊँगी रहने। यहीं भली हूँ, मकान-मालिक की घुड़कियाँ भली हैं; पर वहाँ बिना हवा-पानी के जान देना भला नहीं है..." वह पूरी तरह निराश हो उठी थी।

"तुम एक वैज्ञानिक की पत्नी होकर घबड़ाती हो..." इस बार प्रोफेसर के भीतर छिपा अजेय वैज्ञानिक बोल उठा—"कठिनाइयों से बचने के लिए तुम एक घुटनभरी जिन्दगी को ही कबूल कर लेने की बात कहती हो। मौत के डर से हम प्रकृति की चुनौती को अस्वीकार नहीं करेंगे। वहाँ पर सब कुछ अपने अनुसार ढालेंगे, ऐसा आत्म-बल पैदा करो अपने अन्दर। जब पृथ्वी के सीने में छुपे लोहे, सोने, मिट्टी के तेल को ऊपर लाया जा सकता है, जब एवरेस्ट की ऊँची चोटी को पैरों तले रौंदा जा सकता है, जब अथाह और असीम सागरों की छाती पर सोते हुए चला जा सकता है तो, वायुमण्डल हीन, धरातल (समतल) हीन, जलहीन, वनस्पतिहीन चन्द्रमा को भी लहलहाता चमन बनाया जा सकता है..." कह कर प्रोफेसर ने उसमें नया बल भर दिया। वह पुन: क्रम सजायें तभी एक प्रश्न विराम बन कर आ टपका और वह अस्फुट सी बुदबुदा पड़ी—"परन्तु ढाई लाख मील चलकर वहाँ पहुँचेगे कैसे...?"

"राकेट से चलूँगा—राकेट से। तुझे पता भी है कि यदि १८००० मील प्रति घण्टा के वेग से कोई यान पृथ्वी से चले तो वह उसकी आर्कषण शक्ति से बाहर निकल जायेगी। और उस समय वह स्वयं एक उपग्रह की तरह पृथ्वी के चारों ओर दौड़ने लगेगा। यह पृथ्वी के चारों ओर घूमते-घूमते अपनी व्यासीय रेखा बढ़ाता जायेगा और अन्त में चन्द्रमा की सीमा जा पहुँचेगा..."

"परन्तु एक दिन तो तुम कह रहे थे कि पृथ्वी की सीमा से थोड़ा ऊपर उठने के बाद ही वायुमण्डल समाप्त हो जाता है। और यदि हवा न रहेगी तो हमारे यान के डैने प्रतिक्रिया किससे करेगें और यान को आगे कैसे बढ़ायेगें..."

"अरे—तू तो ऐसा कहती है जैसे हम वैज्ञानिकों ने इस पर सोचा ही न हो। हमारा यान स्वयं के लिए वायुमडण्ल बनाता चलेगा। उसके पिछले हिस्से से अत्यन्त तीव्रगति से उसकी स्वयं निर्मित गैस उसकी गति की विपरीत दिशा में निकलेगी जो प्रतिक्रिया स्वरूप यान को आगे बढ़ायेगी..." कह कर प्रोफेसर ने अन्तिम चुस्की लिया और प्याला नीचे रख दिया। वह उठने वाला था तभी वह बोल पड़ी—"परन्तु उस दिन तो तुम कह रहे थे कि वस्तुओं का भार पृथ्वी की आकर्षण शक्ति के कारण है, यदि वह न रहे तो हम भारहीन होकर हवा में तैरने लगें। तो जब हमारा यान पृथ्वी की आकर्षण शक्ति के बाहर निकल जायेगा तो क्या हमारी वही दशा नहीं होगी..."

"कमाल कर दिया तुमने तो भई, कमाल कर दिया। ऐसी बातें सोचती हो कि सुनने वाला लोट-पोट हो जाये..." कहते-कहते वह स्वयं खुलकर हँस पड़ा। पुनः शान्त होते हुए बोला—"देखो, पृथ्वी की आकर्षण शक्ति उसकी अपनी कीली पर घूमने के कारण है। यदि पृथ्वी नाभीय गति बन्द कर दे तो उस पर रखी वस्तुओं पर उसका आकर्षण भी बन्द हो जाये। ठीक इसी सिद्धान्त पर हमारे यान का वह कक्ष जिसमें हम होंगे अपनी कीली पर घूमेगा जिससे वह हमारे लिये कृत्रिम गुरुत्वाकर्षण का निर्माण करेगा..." कह कर उसने विजयपूर्ण दृष्टि से उसकी ओर ताका, इस पर वह लजा सी गयी। आज पहली बार उसे अपने पति की ऊल-जलूल बातों में अर्थ दिख रहा था। प्रोफेसर भी आज अत्यन्त खुश था। वह इस क्षण को खूब छककर जीना चाहता था और इलीलिए उठ पड़ा—"देखो जी तुम जल्दी से तैयार हो जाओ। हम लोग सिनेमा चलेंगे और उधर से 'नावेल्टी' में डिनर लेते हुए लौटेंगे..." और जाते-जाते फुसफुसा गया—"तुम भी क्या कहोगी कि किसी किस्मत वाले के संग फेरे घूमें हैं..."

"जाओ जी! तुम तो..." और खुशी से पुलकती वह तैयार होने चली गयी।

बाथ रूम से निकल कर प्रोफेसर ने बन्द गले वाला बादामी रंग का सूट पहना, जतन से बाल बनाये और तब तक वह भी नीली साड़ी और उस पर खूब फबता सा ब्लाउज पहने साथ में गुड्डे से सजे मुन्ने को लेकर आ पहुँची। हाथ में छड़ी हिलाता प्रोफेसर जिस समय ताला बन्द कर बाहर निकला उस समय मोहल्ले वाले सोच में पड़ गये कि यह सब सपना है या हकीकत। उनके लिये यह पहला क्षण था जब इतना सजधज कर दोनों साथ निकले थे। पड़ोस के मिस्टर चटर्जी तो पूछ ही बैठे—"क्या बात है प्रोफेसर...कहीं शादी-वादी में जाना है क्या...?

"अरे नहीं..." कह कर प्रोफेसर मुस्कराया था—"यूँ ही नया मकान बनवाने की खुशी में..."

"मकान बनवाने..." अब तो पास खड़े 'मिस्टर धर' भी चौंके।

"हाँ-हाँ। हम लोग चन्द्रमा पर मकान बनवाने की सोच रहे हैं...।"

"क्या..." एक जोर का ठहाका लगाते हुए चटर्जी महाशय लाख न चाहने के बाद भी कह ही गये... "अरे भाई प्रोफेसर तुम्हारी भी सनक का जवाब नहीं—" "सनक..." प्रोफेसर गम्भीर हो उठा—"काश! कि तुमने मानव की प्रगति का इतिहास पढ़ा होता और तुम्हें मालूम होता कि उसकी हर उपलब्धि के पीछे किसी सिरफिरे की सनक ही थी। मार्कोनी को भी बिना तार के समाचार भेजने की बात सोचने पर लोगों ने सनकी कहा था। गैलीलियो को भी 'नवीन अन्तरिक्ष' की बात करने पर पागल कहा गया था। जार्ज स्टीवेन्सन की बिना घोड़े की, भाप द्वारा गाड़ी खींचने की बात को झक कह कर हँसी उड़ायी गयी को। इलियास हावे की सिलाई की मशीन की बात का अन्य सारी औरतों ने मजाक उड़ाया था। परन्तु आज कौन नहीं जानता कि उन सनकियों की सनक ही हमारी प्रगति का इतिहास है।..." और इतना कहकर बिना ध्यान दिये पत्नी को साथ लेकर गुनगुनाता आगे बढ़ गया।

●●
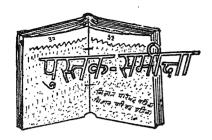
विज्ञान प्रगति (मासिक) : रक्षा विशेषांक, दिसम्बर १९६५ : कुल पृ० १०७ : पठनीय पृ० ८२ :

मूल्य (सामान्य अंक का ही)०-५० पै: वार्षिक ५-०० रु०

प्रकाशक : भारतीय भाषा युनिट : सी० एस० आई० आर० पी० आई० डी० बिल्डिंग : हिल साइड रोड : न्यू दिल्ली-१२

सम्पादक : प्रधान-श्री कृष्णमुरारी अग्रवाल : सहायक श्री श्यामसुन्दर शर्मा एवं अन्य।

इस बार का युद्ध हमें बहुत कुछ नया सोचने-समझने के लिए दे गया है। 'राडार, पैटन टैंक, सेबर जेट और नैट' आदि अन्य भी कुछ नये शब्द ऐसे हैं जो जन-जन के शब्दकोष में इस युद्ध से पहले थे ही नहीं। और, अब नये आए तो पुरानों से भी अधिक गहरे बस गए। इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि एक उन्नतिशील राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को ज्ञान-सम्पन्न कहाने के लिए कुछ बातों का बहुत कुछ और बहुत सी बातों का कुछ-कुछ ज्ञान रखना आवश्यक है। इसी आवश्यकता में विज्ञान का औसत सरल ज्ञान भी सम्मिलित है। यह एक अलग ही चिन्ता का विषय बना हुआ है कि विज्ञान-प्रसार के सरल साधनों, पुस्तकों, पत्रिकाओं का हिन्दी में दयनीय अभाव है।

इस व्याप्त गहन अज्ञान-अन्धकार में यथासाध्य एक नन्हे मार्गदीप का कार्य विज्ञान-प्रगति (मासिक) करता आ रहा है। विगत दो वर्षों से तो इसके १४ वर्ष पुराने रूप-स्वरूप का कायाकल्प किया जा चुका है और प्रति मास, मनोरम साज-सज्जायुक्त यह मासिक तेजी से लोक-प्रियता बटोर रहा है। जैसा मनोहारी इस आलोच्य रक्षा-विशेषांक का चित्रावरण और छपाई-सफाई है, तदनुरूप ही उपयोगी सामग्री सीमित पृष्ठों के २३ लेखों में समाविष्ट है।

'समारा नेट,' 'गिराये सेबर जेट,' 'हमारी सेनायें,' 'सागर और सुरक्षा,' जैसे ज्ञानवर्द्धक विषयों पर तथा जन जीवन से निकटत: सम्बन्धित—'विस्फोट से बचाव,' राष्ट्रीय संकट और आत्म-निर्भरता,' 'मोर्चा भोजन का तथा औषधियों का'—आदि विषयों पर संकलित सामग्री ने इस अंक को सर्वोपयोगी एवं संग्रहणीय तथा सरल, सुबोध भाषा, रोचक शैली तथा चित्रों की प्रचुरता ने ज्ञान-विज्ञान के सामान्य जिज्ञासु तक के लिए इसे चाव से पढ़ने योग्य बना दिया है। अंक संग्रहणीय तो है ही, बारम्बार पठनीय भी है।

इस अत्युपयोगी एवं आकर्षक विशेषांक के लिए सम्पादन-युनिट को हमारा विशेष ही अभिनन्दन।

—श्यामसरन विक्रम

अन्न सङ्कट बनाम अन्य ग्रहों की सैर

हमारा देश जिस विकट अन्न स्थिति का सामना कर रहा है वह विश्व के समस्त राष्ट्रों के लिए उत्सुकता एवं चिन्ता का विषय बन रहा है। हमारे देश के विभिन्न प्रान्तों से भूख-मृत्युओं की जो सूचनाएँ प्राप्त हो रही हैं वे तो हैं ही, कई प्रदेशों में उपद्रव एवं हड़तालें भी चल रही हैं। हमारे कृषि एवं खाद्य मन्त्री लगातार यह कहते जा रहे हैं कि देश का एक भी प्राणी भूख के कारण नहीं मरेगा।

उपर्युक्त कथनों से यह सिद्ध है कि देश में अन्न संकट है और जनता पर उसका बुरा प्रभाव पड़ रहा है। यहाँ यह बात देना आवश्यक है कि यह भी सत्य है कि हमारी सरकार ने अमरीका से इतना अनाज माँग रखा है कि कोई भूखों नहीं मरेगा। तो फिर यह उपद्रव क्यों ?

यह उपद्रव मुख्यतः राजनीतिक कारणों से है। शास्त्री जी ने जिस आत्म-निर्भरता के लिए राष्ट्र को वचनबद्ध किया था, अब उसमें शिथिलता आने लगी है। राष्ट्रीय एवं देश भक्त लोग ऐसा सोचने लगे हैं कि यदि इसी प्रकार हम अन्न के सम्बन्ध में पराश्रित बने रहें तो हमारे लिए यह लज्जा का विषय होगा। कोई भी स्वतन्त्र राष्ट्र १८ वर्षों की स्वाधीनता के बाद इस प्रकार से दाने-दाने के लिए परावलम्बी रहे, शोभा नहीं देता।

इसीलिए देश में उपद्रव खड़े किये जा रहे हैं जिससे सरकार सँभले। किन्तु हमारी सरकार के कानों में तनिक भी जूँ नहीं रेंग रही। अमरीकी सहायता को वह सदा सर्वदा के लिए त्राता मान रही है।

तो क्या हमारे देश में वास्तविक भुखमरी की स्थिति आ गई है ? उत्तर होगा — नहीं। खाद्यान्नों के जो कटिबन्ध बनाये गये हैं उनके कारण उनके मुक्त यातायात में बाधा पड़ती है। फिर मुनाफेखोरों की तो आजकल बन आई है ही। वे खाद्यान्नों का संग्रह करके देश में अभाव की स्थिति उत्पन्न कर रहे हैं। जहाँ हम दैवी कारणों को अन्न संकट का प्रमुख कारण मानते हैं, वहीं हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि ये मुनाफेखोर उसके कम भागी नहीं हैं।

यदि हमारे किसान उपलब्ध साधनों का प्रयोग करते रहे तो इसमें सन्देह नहीं कि अन्न संकट से निकट भविष्य में ही मुक्ति मिल सकेगी।

किन्तु क्या उन राष्ट्रों के समक्ष खाद्य समस्या नहीं है जो अन्य ग्रहों की यात्रा कर लेने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ हैं ? क्या चन्द्रमा और मंगल ग्रहों की रोमांचकारी यात्राएँ हमें यह सोचने के लिए प्रेरित नहीं करतीं कि कम से कम हम अपनी पृथ्वी पर तो सुख से जीवित रहें ?

अमरीका तथा रूसवासियों ने खाद्य-समस्या को जिस निपुणता से हल किया वह हमारे सीखने का विषय है। हमारे राजनीतिज्ञ इसे समझें और अपने कृषकों को समझावें कि अभी उन्हें पृथ्वी का ही उपभोग करना है। वे तो न जाने क्यों अभी से चन्द्रलोक की मानसिक परिक्रमा में व्यस्त जान पड़ते हैं और इससे भी गम्भीर बात यह है कि अपने साथ वे जनता को भी उसी ओर प्रेरित कर रहे हैं ? क्या वहाँ भी जनमत की आवश्यकता होगी ?

आशा है हमारे देश के सभी वर्गों के लोग खाद्य-समस्या पर विधि से विचार करेंगे और फिलहाल अन्य ग्रहों सम्बन्धी किसी प्रकार की भी विचारधारा में बहेंगे नहीं। खाद्य समस्या दुर्लंध्य नहीं है किन्तु उसके लिए परिश्रम एवं त्याग का सेतु बनाना होगा। सुखी राष्ट्र के लिए धरती माँ की शरण लेनी होगी। उससे बड़ा एवं विकसित अन्य ग्रह हमारे लिए अभी कोई भी ग्रह नहीं है।

कोटि-कोटि मनुष्यों का उदरपोषण कर लेने के बाद हम अन्य ग्रहों की यात्रा सम्बन्धी अभियान बनावें तो अच्छा लगेगा। क्षुधा की होली जलाकर अमृत घट की खोज के लिए स्वर्ग की यात्रा पौराणिक ही कही जावेगी।

अप्रेल १९९६
भाग १०२

विषय-सूची

सम्पादक- डॉ० शिवगोपाल मिश्र

विज्ञान परिषद् प्रयाग

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुखपत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। विज्ञानेन जातानि जीवन्ति। विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ० ३।५।

भाग १०३ | चैत्र २०२३ विक्र०, १८८७ शक अप्रैल १९६६ | संख्या १

पृथ्वी के ऊपर

श्याम मनोहर व्यास

पृथ्वी के ऊपर क्या है ? इस रहस्य को जानने की पृथ्वीवासियों की स्वाभाविक जिज्ञासा रही है।

पृथ्वी के ऊपर वायुमण्डल है। वायुमण्डल का कार्य काफी महत्त्वपूर्ण है। यदि वायुमण्डल नहीं होता तो किसी भी जीवधारी का पृथ्वी पर रहना सम्भव नहीं होता।

वायुयानों, गुब्बारों एवं पतंगों के उड़ने में वायुमण्डल ही माध्यम का महत्त्वपूर्ण काम करता है।

वायुमण्डल हानिकारक विकिरणों से भी हमारी रक्षा करता है। सूर्य का ताप १०,३००°F है। सूर्य गैस का एक चमकता हुआ गोला है इसलिये वह चारों ओर अत्यधिक परिमाण में अपनी शक्ति बिखेरता है। आप यह सुनकर आश्चर्य करेंगे कि पृथ्वी उस शक्ति का केवल $\frac{१}{२२०००,०००,०००}$ वाँ भाग ही ग्रहण कर पाती है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि वायुमण्डल लगभग एक हजार किलोमीटर की ऊँचाई तक फैला हुआ है।

वायुमण्डल द्वारा काफी शक्ति सोख ली जाती है। सूर्य से प्राप्त शक्ति का ४२% शून्य में वापिस चला जाता है, ११% जल वाष्प सोख लेता है, ४% गैसें और धूल सोख लेती हैं और शेष ४३% शक्ति पृथ्वी के धरातल पर पहुँचता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि पृथ्वी को प्राप्त होने वाली आधी से अधिक शक्ति वायुमण्डल में आते-आते ही समाप्त हो जाती है। वायुमण्डल में आक्सिजन, नाइट्रोजन, कार्बन डाइआक्साइड, हीलियम, नियान, जेनान, क्रिप्टन और आर्गन गैसें पायी जाती हैं। जल-वाष्प तथा धूल के कण भी वायुमण्डल में पाये जाते हैं। आयतन की दृष्टि से नाइट्रोजन ७९% और आक्सिजन २१% है।

वैज्ञानिक रैले ने नाइट्रोजन के घनत्व का पता लगाया और उसके बारे में विशेष जानकारी प्राप्त की। रैमज़े ने निष्क्रिय गैसों (जैसे हीलियम, क्रिप्टान आदि) की खोज की।

रासायनिक दृष्टि से क्रियाशील नहीं होने के कारण ये गैसें निष्क्रिय सी हैं। ये गैसें रंग हीन और गन्ध हीन हैं। हीलियम हवाई जहाजों में भरने के और आर्गन बिजली के बल्ब में भरने के काम में आती है।

नियान से भरे लैम्प के प्रकाश में धुन्ध कोहरे को पार करने की क्षमता है। रैमज़े को इन्हीं गैसों की खोज करने के कारण नोबल पुरस्कार मिला था।

वैज्ञानिकों के अनुसार वायुमण्डल की तीन तहें हैं —

(१) चल स्तर वायुमण्डल (Troposphere).

(२) अचल स्तर वायुमण्डल (Stratosphere)

(३) भारी पक्ष की तह (Heavy Side Layer).

चलस्तर वायु-मण्डल -- पृथ्वी के पास वाले वायुमण्डल के निचले भाग को चलस्तर वायुमण्डल कहा जाता है। इसकी ऊँचाई विषुवत् रेखा के पास दस मील है और दक्षिणी एवं उत्तरी ध्रुव के पास ६ मील है। वायुमण्डल के इसी भाग में सदैव हलचल मची रहती है। ऋतु-परिवर्तन की सभी क्रियायें वायुमण्डल के इसी भाग में होती हैं। वर्षा, बादल, तूफान, पवन आदि यहीं उठते और उत्पन्न होते हैं। इसका ताप पृथ्वी के सामान्य ताप से लेकर शून्य से ६७ फा० नीचे तक परिवर्तित होता रहता है।

अचल स्तर वायुमण्डल—इसकी ऊँचाई चलस्तर वायुमण्डल से लेकर ५३ मील ऊपर तक होती है। यहाँ पर तूफान आदि नहीं उठते। जल-बाष्प के अभाव में यहाँ बादल नहीं पाये जाते।

वायुमण्डल के इस भाग में प्रायः पवन एक ही दिशा में बहता रहता है।

यहाँ का ताप काफी कम है और इसमें परिवर्तन भी कम ही होता है। यहाँ आसमान काला दृष्टिगोचर होता है। पन्द्रह मील की ऊँचाई के पश्चात् ताप बढ़ता रहता है। तीस मील की ऊँचाई पर ओज़ोन स्तर (Ozone Layer) है जिसका ताप ५० फा० है।

वायुमण्डल की ऊपरी सतह में से होकर जब सूर्य की किरणें ओज़ोन-स्तर से टकराती हैं तो उनका बहुत भाग परावर्तन क्रिया द्वारा शून्य में बिखर जाता है।

वायुमण्डल में विद्यमान बादल भी सूर्य शक्ति का एक बड़ा भाग परावर्तित कर वापिस लौटा देते हैं।

ओजोन तह के ऊपर वायु ठण्डी होती जाती है। लगभग साठ मील की ऊँचाई पर एक दूसरी तह पाई जाती है जिसे भारी पक्ष की तह (Heavy side layer) कहते हैं। इस तह में गैसों का आयनीकरण (Ionization) होता है। रेडियो तरंगें भारी पक्ष की तह से परावर्तित होकर ही पृथ्वी पर लौटती हैं जिन्हें रेडियो सेट ग्रहण करता है और हम सुदूर ब्राडकास्टिंग स्टेशन से प्रसारित मनोरंजन कार्य-क्रमों को सुनते हैं।

पृथ्वी के ऊपर का सारा रहस्य अब अन्तरिक्ष यात्रा ने खोल दिया है।

रूस के मेजर यूरी-गागरिन, टिटोव, कमाण्डर कारपेंटर आदि ने अन्तरिक्ष यात्रा कर पृथ्वीवासियों में एक नये युग का सूत्रपात कराया है जिसे **"अन्तरिक्ष युग"** कहते हैं।

अब तो रूस का राकेट चन्द्रमा में भी पहुँच गया है। आशा है एक-दो वर्षों में मानव चन्द्रमा में भी पहुँच जाय।

आज तो अन्तरिक्ष यात्री पृथ्वी के हजारों मील ऊपर उड़ने की क्षमता रखते हैं पर सन् १९३५ के उस मानव-प्रयास को हम अपनी आँखों से ओझल नहीं कर सकते जब स्टीवेन्स और एंडरसन एक बड़े हीलियम गैस से भरे गुब्बारे में बैठकर उड़े थे और १३.८ मील ऊँचे जाकर सकुशल वापिस लौट आये थे।

वायुमण्डल का हमारे ऊपर १६ टन का दाब है, परन्तु यह दाब मनुष्य के चारों ओर पड़ता है इसलिये ज्ञात नहीं हो पाता। वायुमण्डल के दाब को नापने वाले यन्त्र का नाम वायु दाब-मापक यन्त्र है। ज्यों-ज्यों हम ऊपर जाते हैं, हवा का दाब घटता जाता है। सामान्य अवस्था में वायु का दाब १५ पौण्ड प्रति वर्ग इंच है। हल्की गैस से भरा गुब्बारा ऊपर उड़ता है, कारण यह कि जितनी वायु वह हटाता है उसकी मात्रा गुब्बारे तथा उसमें भरी हल्की गैस की मात्रा से अधिक होती है। ३½ मील की ऊँचाई पर वायुमण्डल का दाब

आधा ही रह जाता है। इस युग में कई विनाशकारी परमाणु अस्त्रों का भी निर्माण हो रहा है। उदहरणार्थ, हाइड्रोजन बम, परमाणु बम, मैगाटन बम, दाहक बम आदि।

इनके परीक्षण से कई हानिकारक रेडियो आइसोटोप उत्पन्न होकर वायुमण्डल में घुल-मिल गये हैं। ये आइसोटोप प्राणि जगत् तथा वनस्पति जगत् के लिये हानि प्रद हैं।

इस वैज्ञानिक युग में सत्य के अन्वेषक पृथ्वी के गर्भ का और पृथ्वी के ऊपर का और भी रहस्य जानने को प्रयत्नशील हैं।

वह दिन अब दूर नहीं है जब साहसी वैज्ञानिक ग्रहों, उपग्रहों पर पहुँच कर उनका भी रहस्य खोज निकालेंगे।

भौतिक विज्ञान पर तैलङ्ग पुरस्कार सम्बन्धी घोषणा

"मुझे यह सूचित करते हुए हर्ष है कि निर्णायक समिति द्वारा सर्व सम्मति से तैलङ्ग पुरस्कार सन् ६५ सम्बन्धी लेखों में लेखक श्री अरुण ब्यूर (लेख—सापेक्ष्यवाद और प्रकृति की मूल संरचनाभौतिकी दृष्टिकोण) और श्री महेन्द्र सिंह (लेख—ठोस में ऊष्मा संवहन) को यह पुरस्कार सम विभक्त कर प्रदान किया जा रहा है।"

पुरस्कर्ता

बाल मुकुन्द दीक्षित तैलङ्ग

चन्दा मामा की सैर

डा० बालगोबिन्द जायसवाल

चन्द्रमा को मामा क्यों कहा जाता है, इसका उत्तर कठिन नहीं है। चन्द्रमा अत्यन्त प्राचीन काल में पृथ्वी से ही पृथक हुआ है। इस कारण चन्द्रमा तथा पृथ्वी जुड़वा भाई-बहिन हुए। पृथ्वी हमारी माता है, तभी तो चन्द्रमा हम लोगों का मामा है। इसी कारण वह पृथ्वी की परिक्रमा कर सदैव उसकी रक्षा करता रहता है तथा रात्रि में शीतल निर्मल प्रकाश से उसका हृदय आलोकित करता है। अपने भांजों से भी उसे कम प्रेम नहीं। प्रत्येक पक्ष में वह अपनी सोलह कलाओं का विचित्र तमाशा दिखाकर हमारा कितना मनोरंजन करता है। इसी मनोरंजन एवं अन्य ग्रहों तथा तारों की तुलना में चन्द्रमा के पृथ्वी से सानिध्य ने मनुष्यों में उसके प्रति कौतूहल तथा आकर्षण उत्पन्न किया। मानवता के शैशवकाल में, उस उपकरण विहीन युग में तो केवल चन्दा मामा की सैर की कथा-कहानियाँ ही लिखी गईं; परन्तु ज्यों-ज्यों शिशु-मानव की बुद्धि परिपक्व होती गई, उसके अवयवों-साधनों में शक्ति का संचार हुआ, उसे प्रकृति के अनेक रहस्य ज्ञात हुए अर्थात् विश्व में विज्ञान का सूर्य उदय हुआ, त्यों-त्यों मानव को अपनी माता पृथ्वी की गोद, जहाँ उसने अपने अज्ञान काल में लालन व आश्रय पाया था, छोटी प्रतीत होने लगी। उसी चिरपरिचित सीमित क्षेत्र में बैठे रहने से वह ऊब चला। पृथ्वी से बाहर की सैर की केवल कहानियाँ उसका मनोरंजन करने में असमर्थ हो चलीं। अब वह स्वयं की अर्जित शक्ति से, इस गोद के बाहर विचरने के लिए लालायित हुआ। स्वाभाविक ही था कि बाहरी सैर में प्राथमिकता उसने अपने निकटस्थ पड़ोसी "चन्दा मामा" को दी।

यह स्वयं में एक अत्यन्त कठिन कार्य था। चन्द्रमा पृथ्वी से लगभग ३ लाख ५० हजार किलोमीटर दूर पर है। पृथ्वी के वायुमण्डल के पश्चात् चन्द्रमा तक अन्तरिक्ष ही अन्तरिक्ष अर्थात् शून्य प्रदेश है। इसे पार करने हेतु विशाल शक्ति से संचालित राकेटों की आश्यकता थी। विश्व का सर्वप्रथम राकेट कहाँ, कब बना यह अतीत के घन अन्धकार में डूबा है, परन्तु फिर भी भारत में प्राचीन काल में युद्धों में वर्णित स्वशक्ति चालित अग्निबाणों का उल्लेख अब मात्र कथा अथवा कल्पना नहीं प्रतीत होता। लगता है कि वह सत्य के अत्यन्त निकट है। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि सन् १२३२ ई० में काई फंग फू में चीनियों ने आक्रान्त मंगोलों को "उड़ती अग्नि के बाणों" की सहायता से परास्त कर दिया था। ये राकेट पश्चिम के आधुनिक वैज्ञानिक राकेटों का पूर्वपुरुष कहे जाते हैं। ये तेरहवीं शती के मध्य में योरोप पहुँच गये थे। वहाँ के उस काल के कई ऐतिहासिक अभिलेखों में इनका उल्लेख है।

इसके पश्चात् उन्नीसवीं शती के प्रारम्भ में योरोप में लोगों का ध्यान पुनः सामरिक महत्व के राकेटों पर गया। ब्रिटिश वैज्ञानिक सर विलियम कालग्रेव उस काल के सर्वोच्च राकेट-विद माने जाते थे। उन्होंने ठोस ईंधन से चालित एक राकेट का निर्माण किया था जिसका उपयोग नेपोलियन के विरुद्ध युद्धों में प्रचुरता से हुआ था। सन् १८३८ में यही राकेट एक "प्राणरक्षक राकेट" के रूप में इंगलैंड में एकिस्वित कराया गया। इसके द्वारा एक शृंखला समुद्री किनारे से सागर में धँसे जल पोतों तक ले जाई जाती थी, जिसके द्वारा विपत्ति ग्रस्त यात्रियों को किनारे खींच लिया जाता था।

सन् १९०३ में कान्स्टेंटिन झिओलकोवस्की

नामक एक रूसी शिक्षक ने अन्तरिक्ष यात्रा पर एक पुस्तिका लिखी, जिसमें उन्होंने द्रव ईंधन चालित राकेटों के उपयोग का समर्थन किया था। उस समय इस पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। इसी काल में रूमानियाई जर्मन हरमन ओबेर्थं तथा अमरीकी वैज्ञानिक राबर्ट एच० गोडार्ड ने पृथक-पृथक आधुनिक राकेट विज्ञान की आधार शिला रखी। आचार्य ओबेर्थं ने सन् १६२३ "अन्तर्ग्रहीय अन्तरिक्ष में राकेट" नामक पुस्तक प्रकाशित की। इस पुस्तक में उन्होंने पृथ्वी के धरातल से उठा कर किसी वस्तु को किसी अन्य खगोलीय पिंड में भेजने सम्बन्धी सिद्धान्त तथा गणित का स्पष्टीकरण किया था तथा कई ऐसी समस्याओं पर भी विचार-विमर्श किया था, जो आज भी राकेट विज्ञान में ज्यों की त्यों उपस्थित हैं। आचार्य ओबेर्थं की इस पुस्तिका के कारण ही जर्मनी में राकेट विज्ञान में प्रायोगिक कार्य प्रारम्भ हुआ तथा इस पुस्तिका के कारण ही "अन्तरिक्ष यात्रोन्मुख जर्मन समाज" नामक संस्था की स्थापना का उत्साह वहाँ के लोगों में जागा। बाद में इसी संस्था के सदस्यों ने द्वितीय विश्व युद्ध में जर्मनी द्वारा व्यवहृत V—2 नियंत्रित प्रक्षेपणास्त्रों का विकास किया था जिन्होंने उस काल में इंगलैंड में तहलका मचा दिया था।

अमेरिका में डा० गोडार्ड ने, जो कि मेसाच्युसेट्स में क्लार्क विश्वविद्यालय में आचार्य थे, स्वयं द्वारा वर्षों तक किए गए खोजों तथा परिकलनों से सम्बद्ध ६६ पृष्ठों की एक मूल प्रति, जिसका शीर्षक का —

"अत्यन्त ऊँचाई पर पहुँचने की एक विधि" प्रकाशनार्थ भेजी। इस पुस्तिका के एक पैराग्राफ में चन्द्रमा पर राकेट भेजने की सम्भावना सम्बन्धी विचार होने से समाचार पत्रों का ध्यान इस ओर आकृष्ठ हुआ। आचार्य ओबेर्थ तथा डा० गोडार्ड दोनों ही द्रव ईंधन राकेट के समर्थक थे। लगभग छः वर्षों तक डा० गोडार्ड ने राकेट बनाने में अथक प्रयास किया। अन्त में १६ मार्च १६२६ को संसार का प्रथम द्रव ईंधन राकेट प्रक्षेपित किया गया। यह राकेट ५६ मीटर की ऊँचाई तक गया। इसके पश्चात् डा० गोडार्ड के राकेटों के बढ़ते हुए आकार तथा कर्ण कटु घोर ध्वनि का वहाँ के जनता ने विरोध किया। फलतः डा० गोडार्ड को अपना कार्य करते रहने हेतु वह विश्वविद्यालय त्यागकर दक्षिण पश्चिम अमरीका के खुले प्रान्त में जाना हुआ जिससे कि उनके पड़ोसियों का जीवन किसी खतरे में न पड़े। सतत परिश्रम करते हुए वहाँ उन्होंने अपने राकेट में कई परिशोधन किए। इसके फलस्वरूप सन् १६३५ में उनके राकेट २३०० मीटर की ऊँचाई तक पहुँच गए तथा उनकी गति ग्यारह सौ किलोमीटर प्रति-घंटा तक हो गई।

सन् १६३० में राकेट-प्रेमी अमेरिकनों ने एक संस्था बनाई जिसका नाम "अन्तर्ग्रहीय अमरीकी संस्था" रखा गया। परन्तु बाद में इसे परिवर्तित कर "अमरीकी राकेट संस्था" कर दिया गया। इस संस्था की सभाओं तथा परीक्षण प्रक्षेपणों से ही अमेरिकी जनता में राकेट विज्ञान तथा उसकी क्षमता के प्रति जागरूकता उत्पन्न हुई। अमरीका द्वारा भूभौतिकी वर्ष १६५७-५८ में प्रारम्भ किए गए तथा अभी तक चलाए जा रहे कई विशाल अंतरिक्ष कार्यक्रमों का श्रेय भी इस संस्था के कुछ सदस्यों को है। डा० गोडार्ड ने सर्वप्रथम उपकरण-युक्त राकेट १७ जुलाई १६२६ को छोड़ा था। इसमें एक वायुदाब मापी तथा एक तापमापी लगे हुए थे। साथ ही एक छोटा केमरा था जो सर्वोच्च ऊँचाई पर प्रेक्षण का चित्र लेने हेतु फोकस किया हुआ था।

जब कोई भी पिंड अथवा अन्तरिक्षयान अन्तरिक्ष में प्रक्षेपित कर दिया जाता है, तो उसकी गति खगोलीय गणित के कुछ नियमों से नियंत्रित रहती है। इनमें जोहानेस केप्लर तथा आइजक न्यूटन के नियम प्रमुख हैं। पृथ्वी प्रत्येक वस्तु को अपने केन्द्र की ओर आकर्षित करती रहती है अतः पृथ्वी के आकर्षण क्षेत्र से निकलकर किसी अन्तरिक्षयान को चन्द्रमा के आकर्षण क्षेत्र में पहुँचा देने हेतु कितने बल वाले राकेट की आवश्यकता है तथा इस यात्रा में कितना समय लगेगा, यह सब परिकलित कर लिया जाता है। परन्तु इसके अतिरिक्त अन्य भी अनेक अत्यन्त महत्वपूर्ण यान्त्रिक, तकनीकी तथा वैज्ञानिक गुत्थियाँ हैं, जिन्हें सुलझाने हेतु

विश्व के प्रमुख राष्ट्र—अमेरीका तथा रूस— में शतत प्रयत्न हो रहे हैं। उदाहरणार्थं, अन्तरिक्ष में उपस्थित ताप तथा ब्रह्माण्ड विकिरण को सहने योग्य धातु अथवा मिश्रधातु की खोज, अन्तरिक्ष यान का आकार-प्रकार, अन्तरिक्ष में पहुँचने पर मनुष्य भारहीन अवस्था प्राप्त कर लेता है, उस अवस्था की परिस्थितियों का सामना करना इत्यादि। इस हेतु पहिले चालकहीन यान अन्तरिक्ष में तथा चन्द्रमा पर भेजे जा रहे हैं, जो कि वहाँ कि विशेष परिस्थितियों का अध्ययन उनमें लगे हुए वैज्ञानिक उपकरणों द्वारा कर, रेडियो वीक्षणयंत्र द्वारा उसकी सूचना तथा चित्र पृथ्वी पर प्रेषित कर देते हैं। आपको स्मरण होगा कि रूस ने सर्वप्रथम दिनांक ४ अक्टूबर १९५७ को मानव निर्मित उपग्रह छोड़ा था जिसका नाम स्पुतनिक—१ था। प्रथम अमरीकी उपग्रह "पायोनीयर—१" दिनांक ११ अक्टूबर को कक्षा में स्थापित किया गया। उस समय से संसार ने अन्तरिक्ष युग में प्रवेश किया। पायोनीयर—१ ने कई महत्व पूर्णं खोजें की, जैसे वान ऐलन विकिरण पट्टियों की मोटाई नापना तथा सूक्ष्म उल्का कणों का घनत्व नापना। इसके पश्चात् कई पायोनीयर उपग्रह छोड़े गए।

पायोनीयर-कार्यक्रम के पश्चात् का अमरीकी कार्यक्रम रेंजर-कार्यंक्रम है। इसके अधीन कई चालकरहित अंतरिक्षयान प्रक्षेपित किए जाएँगे, जो चन्द्रमा के पृथ्वी की ओर के क्षेत्र तथा परे क्षेत्र के रेडियो-चित्र पृथ्वी पर प्रेषित करेंगे, तथा वहाँ के गामा विकिरण के प्रेक्षण भी प्रेषित करेंगे। चंद्रमा के समीप पहुँचने पर ये यान स्वयं में से एक "अवतरण-कैपसूल" जो कि कठिन अवतरण की टक्कर को सहने योग्य होगी, चन्द्रमा पर उतार देंगे। इस कैपसूल में चंद्रकंपों को नापने तथा रेडियो द्वारा पृथ्वी पर प्रेषित कर देने के उपकरण लगे रहेंगे। रेंजर अत्यन्त आधुनिक तकनीकों से निर्मित अन्तरिक्षयान है। इसका नियंत्रण तथा स्थायित्व अत्यन्त उत्तम है तथा इसका पथ चलते-चलते परिवर्तित किया जा सकता है। यह सर्वप्रथम त्रिकक्षा-स्थायी अन्तरिक्षयान है। कई रेंजर यान प्रक्षेपित किए जा चुके हैं, परन्तु किसी ने भी उचित प्रकार से कार्य सम्पादन नहीं किया।

इस प्रकार के अन्तरिक्ष यानों के पश्चात् चन्द्रमा पर "सर्वेयर" अन्तरिक्ष यान भेजे जाएँगे। ये अत्यन्त मन्दगति से सरलतापूर्वक चन्द्रमा के धरातल पर अवतरण करेंगे। इस हेतु इनमें विभिन्न प्रकार की नियंत्रण तथा संचालन इकाइयाँ लगाई गई हैं। ये यान तरल हाइड्रोजन से चालित Centaur नामक राकेट से प्रक्षेपित किए जाएँगे। जैसे ही ये यान चन्द्र के समीप पहुँचेगा, रेडियो-कैमरा स्वतः ही चन्द्र के धरातल के चित्र लेकर उन्हें पृथ्वी पर प्रेषित करना प्रारम्भ कर देगा। इसी समय यान में लगा कर विपरीत राकेट तथा तीन वर्नीयर राकेट अर्थात् अन्य शक्ति सम्पन्न राकेट (जो मुख्य राकेट के साथ अपनी [illegible] विपरीत दिशा में यथार्थं परिकलित आवश्यक शक्ति देंगें) विपरीत दिशा में यान को खींचना प्रारंभ कर देंगे। इस तरह यान की गति अत्यन्त कम हो जाएगी। यान चंद्र के धरातल पर १० किलोमीटर प्रति घंटे के वेग से अवतरण करेगा। अवतरण के पश्चात् सर्वेयर का एक बर्मा चन्द्रमा में डेढ़ मीटर गहरा छिद्र करेगा तथा चंद्र धरातल के टुकड़े विभिन्न उपकरणों को दे देगा, जो उनका विश्लेषण करेंगे। ये सारे कार्य अमरीकी वैज्ञानिक पृथ्वी से ही रेडियोवीक्षण द्वारा देखते रहेंगे। इसके अतिरिक्त यान में उल्का टक्कर मापी, मेगनेटोमीटर तथा अन्य कई उपकरण लगे रहेंगे। प्रत्येक सर्वेयर यान चन्द्र पर लगभग एक महीने वैज्ञानिक कार्य करता रहेगा।

इसके पश्चात् छोड़े जाने वाले "प्रास्पेक्टर" यानों द्वारा तो चंद्रमा के धरातल के टुकड़े बर्मे द्वारा खोदे जाने पर कैपसूलों में भर कर पृथ्वी पर ले आए जाएँगे। जब कैपसूल भर जाँएगे तब पृथ्वी पर से ही कैपसूल का राकेट इंजिन एक नियंत्रक संकेत द्वारा चालू कर दिया जाएगा, जो कैपसूल को पृथ्वी पर वापिस ले आवेगा।

विभिन्न अन्तरिक्ष यानों द्वारा अभी तक कई अन्तरिक्ष यात्री रूस तथा अमरीका प्रत्येक द्वारा अंतरिक्ष में भेज कर सकुशल पृथ्वी पर उतार लिए गए हैं। इन

यात्राओं से अंतरिक्ष का मनुष्य पर पड़ने वाले प्रभाव को समझने में पर्याप्त सहायता मिली है। आपने पढ़ा होगा कि गत १८ मार्च को रूस ने "वोस्तवोद—२" नामक अंतरिक्ष यान छोड़ा था। यह प्रति ९०'९ मिनिट में पृथ्वी की एक परिक्रमा पूर्ण कर लेता था। पृथ्वी से इसकी अल्पतम दूरी १७३ कि०मी० तथा अधिकतम दूरी ४९५ कि० मी० रहती थी। पृथ्वी से इसमें दो तरफ रेडियो संचार था। इसमें दो चालक थे—कमान्डर चालक कास्मोनाट कर्नल पावेल बेल्यायेव तथा सहचालक लेफ्टीनेंट कर्नल अलक्सई लियोनोव। जब यान पृथ्वी की दूसरी परिक्रमा कर रहा था तब लियोनोव अन्तरिक्ष की विशेष पोशाक पहिने यान से बाहर निकलकर उससे पाँच मीटर की दूरी तक चले गए तथा आवश्यक जाँच पड़ताल के पश्चात् खुले अन्तरिक्ष से वापस यान के भीतर आ गए। बे यान तारों द्वारा कसे हुए थे। उन्हें यह कार्य करते रूस तथा योरोप में रेडियोवीक्षण द्वारा देखा गया। दोनों यात्रियों को सकुशल यूराल पर्वत के निकट उतार दिया गया। यह चंद्र यात्रा की ओर एक महत्वपूर्ण कदम है।

इसी प्रकार २८ मार्च को अमरीका का जेमिनी यान चार घंटे अंतरिक्ष में रह कर बहामा के समीप एटलांटिक महासागर में सकुशल उतारा गया। उसके चालक थे बरजिल ग्रीसम तथा जान यंग। अमरीकी कार्यक्रम-जेमिनी अर्थात् "मिथुन-कार्यक्रम" के अन्तर्गत अंतरिक्ष में दो यानों को जोड़कर कुछ दिनों से लेकर कई सप्ताह तक वैज्ञानिकों के वहाँ रह कर वैज्ञानिक खोज करना सम्मिलित है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत पहिले एक चालकरहित यान को राकेट द्वारा कक्ष में स्थापित कर दिया जाएगा। फिर उपयुक्त घड़ी परिकलित कर दो चालकों वाला यान प्रक्षेपित किया जाएगा ताकि वह पहिले यान के अत्यन्त समीप पहुंच जाए तथा उससे जोड़ा जा सके। इसमें अत्यन्त सूक्ष्म गणित व प्रक्षेपण-प्रवीणता आवश्यक हैं। आपको याद होगा कि इस कार्यक्रम के अन्तर्गत गत ४ जून को एक यान प्रक्षेपित किया गया था। उसके अन्तरिक्ष में पहुँच जाने पर, सहचालक ह्वाइट हाथ में एक छोटा जेट इंजन लिए यान से कई गज दूर अन्तरिक्ष में चले गए और अन्तरिक्ष की स्वच्छन्द सैर करके कुछ मिनिट पश्चात् उस जेट इंजिन की शक्ति के सहारे वापिस यान में आ गए। यह यान सकुशल वापिस उतार लिया गया और ह्वाइट पूर्णतः स्वस्थ्य हैं।

ता० २७ अगस्त को अमेरिका ने इस क्षेत्र में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रयोग किया। उनके जेमिनी—५ नामक यान को इस दिन कक्ष में स्थापित किया गया। इसमें दो यात्री थे। यह ८ दिन अंतरिक्ष में रहा। यह स्वयं में एक नवीन कीर्तिमान था। इन यात्रियों ने कई महत्वपूर्ण प्रयोग किए जिनमें से एक-कल्पित यान के अत्यन्त समीप तक अपने यान को ले जाना था। ये सब चन्द्र यात्रा की ओर महत्वपूर्ण चरण हैं।

परन्तु गत १८ दिसम्बर का दिवस तो अंतरिक्ष यात्रा के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखा जाएगा। इस दिन भारतीय समय के अनुसार सायं ७ बजकर ३५ मिनिट पर, अमरीका द्वारा प्रक्षेपित जेमिनी-७ यान १४ दिन अंतरिक्ष में रहकर, सकुशल अटलांटिक महासागर में निश्चित समय पर तथा लक्ष्यबिंदु से केवल ९ मील के अन्तर पर उतर आया। उसके अंतरिक्ष यात्री फ्रेंक बोरमेन तथा जेम्स लावेल पूर्णतः स्वस्थ्य हैं। अपनी इस यात्रा में उसका मिलन स्वयं से पूर्व प्रक्षेपित अंतरिक्ष यान जेमिनी ६ से अंतरिक्ष में सरलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। इन यात्रियों ने इस मिलन के समय अपने यान की खिड़की से, स्वयं से २० फुट की दूरी पर स्थित जेमिनी ६ यान के अन्तरिक्ष यात्रियों (शीरा तथा स्टेफोर्ड) को देखा और बधाई दी। जेमिनी-७ के यात्रियों ने (१८ दिसंबर को) भारतीय समय के अनुसार सायं ७ बजकर ५८ मिनिट पर, पृथ्वी पर वापिस आने की इच्छा से, विपरीत दिशा में राकेट छोड़े, जबकि उनका यान फिलिप्पाइन द्वीप से ३००० मील दक्षिण पूर्व में, विषुवत रेखा के ऊपर था। इसके फलस्वरूप उनका यान टेक्साज के ऊपर पहुँच कर पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रवेश कर गया। यहाँ से उस यान की यात्रा सीधे पृथ्वी (के केन्द्र) की ओर प्रारंभ हो गई।

इतने अधिक समय तक अंतरिक्ष मे रहना स्वयं में

एक नवीन विश्व कीर्तिमान—है तथा दोनों यानों का अन्तरिक्ष में सफलतापूर्वक मिलन चंद्र यात्रा की सफलता की ओर एक महत्वपूर्ण कदम। रूसी समाचार-पत्रों ने लेख निकाला है कि जेमिनी ६ तथा जेमिनी ७ का मिलन, गत मार्च में रूस द्वारा छोड़े गए, "वोस्तवोद-२" में उपलब्ध जानकारी के आधार पर ही हो सका है। रूस ने अमरीकी वैज्ञानिकों को इस यान के यात्रियों से बातचीत करने का अवसर दिया था।

इसके पश्चात् अन्तिम कार्य क्रम "अपोलो" है। इन यानों में तीन यात्री रहेंगे। ये यान दो सप्ताह तक अन्तरिक्ष में रखे जाएँगे। सर्वप्रथम विशाल प्रयोगशाला यान पृथ्वी के आस-पास कक्षा में स्थापित किया जाएगा। इसके पश्चात् प्रक्षेपित अपोलो यान चन्द्रमा की परिक्रमा कर वापिस लौट आयेंगे। सन् १९६७-७० में मनुष्य को चन्द्रमा पर उतार कर वापिस पृथ्वी पर लाया जाएगा। अभी के विचारों के अनुसार यह इस प्रकार किया जाएगा—

३४ लाख किलो ग्राम-प्रणोद शक्ति-उत्पादक राकेट, एक ४३ टन भार वाले अपोलो यान को चन्द्र के चारों ओर एक कक्षा में स्थापित कर देगा। इस मात्रा में ३ दिन लगेंगे। इसके पश्चात् इस यान के तीन यात्रियों में से दो, एक १५ टन भार वाले भाग में मुख्य यान से पृथक होकर, ब्रेक लगाने वाले राकेटों की सहायता से अत्यन्त धीमे चन्द्रमा के धरातल पर उस यान खण्ड को उतार कर उस पर प्रथम मानव चरण रखेंगे। लगभग २४ घन्टे तक अध्ययन, प्रेक्षण तथा नमूने एकत्रित करने के पश्चात् ये लोग अपने यान खण्ड द्वारा वापिस, चन्द्रमा के आस-पास कक्षा में स्थित मूलयान के अन्यन्त समीप आकर उसके बचे हुए तीसरे यात्री से मिल जायँगे। इसके पश्चात् मूल यान पृथ्वी की ओर प्रक्षेपित कर दिया जायेगा, परन्तु चन्द्र पर अवतरण वाला यान खण्ड चन्द्रमा के आस पास कक्षा में स्थापित कर दिया जायेगा। वापिस यात्रा भी तीन दिन की होगी। पृथ्वी के पास पहुँच कर अंतरिक्ष यात्री २३ टन भार वाला सेवा खण्ड (जिसमें वायु, ईंधन, तथा अन्य उपकरण हैं) पृथ्वी के चारों ओर कक्षा में छोड़ देंगे और केवल पांच टन वाला खण्ड वापिस पृथ्वी के धरातल पर ले आयँगे।

कमाऊ पूत—बिलाव

कनेक्टिकट (अमेरिका) निवासी बिल्ली पालने के शौकीन एक व्यक्ति ने नर-बिल्ली-बिलाव ऐसा पाल रखा है, जो अपना खर्चा स्वयं कमा लाता है और कुछ बचा कर बैन्क में जमा भी करवा देता है। उसकी कमाई का साधन है, रक्त-दान। अनेक पालतू बिल्लियों में से कोई चोट-चपेट में आती है, कोई बीमार पड़ जाती है, तो प्रायः ही उन्हें नया रक्त देने की आवश्यकता पड़ जाती है। तब यही बिलाव सबसे आगे पहुँचता है और अपना खून बेच कर अच्छी कमाई कर लाता है। इसके अतिरिक्त यह बिलाव नवजात कुत्ते के पिल्लों की देख-भाल करता है और आए हुए मेहमान की दर्वाजे पर घण्टी बजते ही दर्वाजा खोल कर उसका स्वागत भी करता है।

भारतीय तेल

गिरीश चन्द्र चौधरी

भारतीय तेल स्रोतों में आसाम के स्रोतों का योगदान मुख्य रूप से रहा है। प्राकृतिक तेल सबसे पहले सन् १८२५ में ब्रह्मपुत्र की घाटी, आसाम, में देखा गया। उस समय यह चट्टानों की दरारों में से बहता पाया गया। यह खोज नमक की खोज के साथ-साथ हाथियों की मदद से की गई। आसाम के डिगबोई नामक स्थान पर प्रथम तेल कूप सन् १८९० में खोला गया। उस समय इस कूप की उत्पादन क्षमता २०००० टन प्रति वर्ष थी। तब से द्वितीय महायुद्ध तक डिगबोई तेल क्षेत्र ही हमारे लिए प्रमुख उत्पादक क्षेत्र बना रहा। प्रथम महायुद्ध के बाद कोयले की बढ़ती माँगों को पूरा करने के लिए तेल की खोजों पर ध्यान दिया जाने लगा। इस कार्य में सबसे अधिक प्रगति सन् १९३७ में की गयी। उस वर्ष की दो बड़ी कम्पनियों, बर्मा आयल कम्पनी एवं ब्रिटिश पेट्रोलियम, ने तत्कालीन अंग्रेजी सरकार के साथ समझौता करके भारतीय उपखण्ड के स्तरीय चट्टानों वाले भागों पर भूभौतिकी सर्वेक्षण किया। सर्वेक्षण के साधनों का अविकसित रूप एवं द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ ने इस कार्य को प्रारम्भ में में ही खटाई में डाल दिया।

किसी भी उद्योग का समुचित एवं प्रगतिशील विकास उसके विभिन्न उपयोगों पर निर्भर करता है। भारत में यातायात के प्रचलित वैज्ञानिक साधनों में इस शती के मध्य तक रेलों का ही महत्व रहा है। कोयले के विशाल भंडार के कारण प्रकाश साधनों में भी तेल का उपयोग कम ही रहा है। मोटर एवं अन्य तेल चालित अन्तर्वाह्य इंजनों का उपयोग द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् ही प्रचलित हुआ। इन सब कारणों से भारतीय तेल-उत्पादन एवं सर्वेक्षण में रुचि कम रक्खी गयी। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् देश के नवीन आर्थिक ढाँचे को जब हमारी योजनाओं ने ढालना प्रारम्भ किया तब इस बहुमूल्य खनिज पदार्थ की मांग बढ़ी। तब से अब तक इस दिशा में सरकारी कार्य अत्यन्त प्रशंसनीय रहा है।

इस प्रगति में एक और बाधा उपस्थित थी। ब्रिटेन का तेल उद्योग अमरीकी उद्योग से काफी पीछे रहा है। ब्रिटेन का उद्योग मुख्यतः अरब क्षेत्रों के उत्पादन पर निर्भर था। तत्कालीन भूतात्विक सर्वेक्षण ने सर्व प्रथम कुवैत में जाकर तेल का सर्वेक्षण किया था। विदेशी सरकार का ध्यान भारतीय तेल क्षेत्रों की उन्नति के प्रति उदासपूर्ण था। यहाँ तक कि काफी समय तक भारतीय तेल का समस्त भंडार ५ लाख टन ही आँका गया जब कि अभी-अभी अन्तर्राष्ट्रीय भूतात्विक सम्मेलन १९६४ नई दिल्ली, में यह भंडार ४००० मिलियन टन तक रूसी विशेषज्ञों द्वारा आँका जा चुका है।

भारत में वैज्ञानिक एवं समुचित रूप से तेल भंडारों के सर्वेक्षण हेतु सन् १९५६ में तैल एवं प्राकृतिक गैस आयोग की स्थापना की गई। अब तक यह कार्य केवल भारतीय भूतात्विक सर्वेक्षण के साथ में ही था। इस कार्य के सघन विकास के हेतु नये आयोग की स्थापना की गई। इस आयोग को सोवियत रूस, रूमानिया एवं अन्य पूर्वी यूरोपीय देशों की सहायता प्राप्त हुई।

सबसे पहले आयोग ने स्तरीय चट्टान युक्त बेसिनों का सर्वेक्षण प्रारम्भ किया क्योंकि इस प्रकार की बेसिनों में तेल की उपस्थिति की आशा होती है। इनका अब तक कोई समुचित सर्वेक्षण भी नहीं हुआ था। पंजाब के कांगड़ा जिले के ज्वालामुखी नामक

स्थान पर प्रथम बेधन की व्यवस्था सन् १६५८ में रूमानियन तकनीकी सहायता से प्रारम्भ की गई। लेकिन आर्थिक दृष्टि से अनुपयोगी होने से इस योजना को स्थगित कर देना पड़ा। आयोग ने पंजाब के अतिरिक्त गुजरात के कैम्बे की खाड़ी एवं अंकलेश्वर क्षेत्र, आसाम के नहर कटिया एवं मोरान क्षेत्र, राजस्थान, कावेरी घाटी, नर्मदा की घाटी एवं उत्तर प्रदेश के मैदानी भागों में अपना कार्य प्रारम्भ किया।

फलस्वरूप गुजरात के अंकलेश्वर, कैम्बे की खाड़ी एवं सूरत के इलाको में तेल का भंडार ५० करोड़ टन तक आँका जा चुका है। तैल एवं प्राकृतिक गैस आयोग के कार्यों में और कुशलता एवं प्रशासनिक सुदृढ़ता लाने के लिये आयोग का पुनर्गठन किया गया। इसका एक अध्यक्ष एवं इसके अन्तर्गत कार्य करने को ३ निदेशालय बनाये गये। पहला भूगर्भीय निदेशालय, द्वितीय भू-भौतिकी निदेशालय एवं तीसरा बेधन निदेशालय। इसका मुख्य कार्यालय देहरादुन में स्थित है तथा इसका कार्य तेल एवं गैस के प्राकृतिक स्रोतों का सर्वेक्षण एवं उत्पादन तक ही सीमित है।

आसाम के तेल क्षेत्रों में मुख्यत: बर्मा आयल कम्पनी के साथ समभौता करके भारत सरकार एक नई कम्पनी का गठन कर रही है। यह एक निगम है जिसका नाम आयल इन्डिया लिमिटेड है। इस कम्पनी ने केवल आसाम के रुद्र सागर, मोरान एवं नहर कटिया नामक स्थान में ५० करोड़ टन तेल के भंडार का पता लगाया है। इस कम्पनी का कार्य दिसांग मुख के पास फलदायक नहीं रहा। पश्चिम बंगाल के क्षेत्रों में इन्डोस्टेन वेक पेट्रोलियम प्रोजेक्ट नामक कम्पनी ने कार्य करने का भार लिया। तेल की खोज का चौथाई खर्च भारत सरकार ने भी देना स्वीकार किया है। मुख्यत: दस तेल कूपों में बेधन कार्य किया गया है लेकिन अच्छे स्रोतों का पता नहीं चल पाया।

इन चतुर्मुखी सर्वेक्षण कार्यों के फलों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि गंगा की घाटी में जहाँ कि स्तरीय मिट्टी की तह ४२०००' तक मोटी है तेल की खोज अवश्य की जानी चाहिए। यद्यपि कि संसार का सबसे गहरा कुँआ २५०००' तक ही गहरा है फिर भी हमें नवीनतम उपकरणों के कारण निराशा का कोई कारण नहीं है। आसाम के डिगबोई क्षेत्र में ही १४०००' तक गहरे कुएँ खोदे जा चुके हैं। यह कोई निश्चित नहीं है कि तेल केवल मोटी तहों में ही प्राप्त होगा। वैज्ञानिक बेधन में काफी विकास हो चुका है। उत्तर प्रदेश के चन्दौसी तिलहर, दातागंज एवं देहरादून में बेधन किया जा रहा है। यहाँ पर तेल का उन्हीं अवस्थाओं में पाये जाने की आशा है जिन अवस्थाओं में यह डिगबोई क्षेत्र में पाया जाता है। ग्रेविमीट्रिक सर्वे के फलस्वरूप बिहार एवं उत्तर प्रदेश में १५०००' तक तेल के पाये जाने की सम्भावना की जाती है। बिहार राज्य में रक्सौल एवं किसान गंज के इलाकों में तेल का पूर्ण अनुमान है। तिलहर के पास जो कुआँ खोदा गया वह २०७६ मीटर की गहराई तक गया। ऊभानी, बरेली जिले में खुदाई स्तरीय चट्टानों के न रहने से रोक देनी पड़ी, नहीं तो वहाँ काफी मात्रा में तेल होने का अनुमान था।

कावेरी नदी की घाटी में एवं मद्रास राज की पाक की खाड़ी में सर्वेक्षण कार्यों ने काफी उम्मीद दिलाई है। परीक्षण बेधन व्यवस्था भी कारीकल जिले में पट्कोटाई नामक स्थान पर की जा रही है। उड़ीसा राज्य के आठ गढ़, पुरी, बालासोर एवं बारीपद नामक स्थानों में तेल की उपस्थिति की आशा की जाती है। पश्चिमी तट पर केरल में उपस्थित टरशियरी चट्टानों में खोज जारी है।

यद्यपि राजस्थान की स्तरीय चट्टानों में तेल की उपस्थिति उतनी उत्साहवर्द्धक नहीं है तब भी प्राकृतिक गैस के एक बड़े भंडार का अनुमान लगाया जा रहा है। इसी प्रकार का गैस का भंडार पश्चिमी पाकिस्तान में सुई, कान्डकोट एवं मारी में पाया गया है। जिन अवस्थाओं में गैस इन स्थानों पर है उसी प्रकार की अवस्थाएँ जैसलमेर में पायी जाती हैं। पश्चिमी राजस्थान विशेषत: जैसलमेर ग्रेविमीट्रिक सर्वे गैस के पूर्ण भंडार पता लगाने के लिए का की जा रही है।

नर्मदा नदी की घाटी में तेल की खोज काफी उत्साहवर्द्धक रही है। इसी घाटी में उत्तर की ओर कैम्बे एवं दक्षिण की ओर अंकलेश्वर के प्रधान तेल क्षेत्र आते हैं। अन्य मुख्य क्षेत्रों में नवगाम्, कलोल एवं सानन्द के क्षेत्र गुजरात राज्य सीमा में पाये जाते हैं।

अंकलेश्वर के तेल कूपों का पता सन् १९५९ में चला था। यह स्थान वड़ोदा से ८० किलोमीटर दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। इसकी उत्पादन क्षमता ७००० किलोलीटर प्रतिदिन अनुमानित है। यहाँ पर प्राकृतिक तेल एवं गैस समुद्र की सतह से ११८० से १२१० मीटर की गहराई तक पाये जाते हैं। यहाँ के तेल का आपेक्षिक घनत्व ०.८ एवं बहाव बिन्दु २०° सेन्टीग्रेड है। यह तेल गैसोलीन कीरोसीन से काफी भरा पूरा है। अंकलेश्वर के पूर्व में भी तेल के लिए बेधन कार्य किया जा रहा है।

कैम्बे या लुनेन के तेल क्षेत्र बड़ोदा से ६० किलोमीटर पश्चिम में स्थित है। इस स्थान पर बेधन कार्य १९५८ में प्रारम्भ किया गया था। अनुमान है कि इस स्थान के कुओं के दैनिक उत्पादन तेल से ज्यादा प्राकृतिक गैस का होगा जो कि ५ लाख घन लीटर प्रतिदिन होगा।

अहमदाबाद से २५ किलोमीटर की दूरी पर कलोल नामक स्थान पर तेल कूप खोदे गये हैं। प्राथमिक खुदाई में अनुमान के अनुसार तेल स्रोतों का पता चला तथा आशा की जाती है कि भविष्य में यह लाभप्रद सिद्ध होगी।

अहमदाबाद से ३४ किलोमीटर में नवगाम में अभी अभी तेल स्रोतों का समाचार मिला है।

गुजरात राज्य के अंकलेश्वर तेल क्षेत्र में उत्पादन शुरू हो गया है। अभी यह उत्पादन २००० टन प्रतिदिन है। आशा है नवगाम के क्षेत्रों में उत्पादन शुरू हो जाने पर यही उत्पादन ५६०० टन प्रतिदिन होगा। प्राकृतिक गैस का भी १० लाख घन-मीटर प्रतिदिन उत्पादन होने की आशा की जाती है। कैम्बे में भी भूभौतिकी सर्वेक्षण किया जा रहा है एवं आशा है कि यह क्षेत्र सऊदी अरब एवं कुवैत की खाड़ी को समान ही अमूल्य सिद्ध होगा।

भारत का सबसे प्राचीन एवं पूर्ण उत्पादित क्षेत्र आसाम का है। डिगबोई एवं बदरपुर के क्षेत्र सम्प्रति प्रमुख उत्पादक क्षेत्र हैं। इसके अतिरिक्त नहर कटिया, मोरान, रुद्रसागर एवं लाखवा के क्षेत्र काफी उत्साह-वर्द्धक हैं।

नागा पहाड़ी क्षेत्र के लखीमपुर जिले की टीपम पहाड़ियों के पूर्वोत्तर में भारत का अमूल्य तेल उत्पादक क्षेत्र डिगबोई स्थित है। इस क्षेत्र में सन् १८८९ से १९५९ तक तेल बेधन कार्य चल रहा था। यह क्षेत्र १३ किलोमीटर लम्बा एवं १ किलोमीटर चौड़ा है। यहाँ तेल २४ विभिन्न स्तरों में १२०० मीटर की गहराई तक पाया जाता है। यह स्तरीय चट्टानें टीपम सैंडस्टोन स्टेज की है। ये तेल कुँए या तो मसूराकार है या विस्तृत हैं। यहाँ उत्पादक तेल कूपों की संख्या ४०० हैं। प्रत्येक की उत्पादन क्षमता लगभग २०० किलोलीटर प्रतिदिन है। यहाँ के तेल में वैक्स काफी मात्रा में है। तेल का बहाव बिन्दु ३० डिग्री सेन्टीग्रेड एवं आपेक्षित घनत्व ०.८४ है। इस तेल से मोटर स्पिरिट एवं केरोसीन क्रमशः २३ से २२% निकाला जाता है। प्राकृतिक गैस आर्थिक दृष्टि से कम पाई जाती है।

डिगबोई से ४० किलोमीटर दक्षिण-पश्चिम में डिहिंग नदी के किनारे नहर कटिया का तेल क्षेत्र स्थित है। सन् १९२५ में सर्वेक्षण से अनुमान किया गया कि तेल मुख्यतः १५,०००′ तक की गहराई पर स्थित है फलतः वैज्ञानिक उपकरणों की कमी से यह कार्य बन्द कर देना पड़ा। लेकिन सन् १९५३ में फिर खुदाई प्रारम्भ की गई एवं उत्पादन की आशा की गई। ये कुँए ११०००′-१५,०००′ तक की गहराई तक खोदे गये। आसाम क्षेत्र में पहाड़ियों के पास स्थित कुँए कम गहराई पर ही उत्पादन देते हैं। उदाहरण के लिए डिगबोई। ज्यों-ज्यों पहाड़ियों से दूर होते जाते हैं यह गहराई बढ़ती जाती है। यह अनुमानित है कि जोरहाट एवं रुद्रसागर क्षेत्रों में यह गहराई और बढ़ेगी। लेकिन नवीनतम वैज्ञानिक उपकरणों की उपस्थिति में हमें

वेधन कार्य में कोई बाधा नहीं उपस्थित होगी। अभी तक के कार्यों में १४० कुओं की खुदाई की जा चुकी है।

उद्देश्य यह है कि बरौनी एवं गौहाटी दोनों तेल शोधक कारखानों के पूर्ण होने पर ही यहाँ उत्पादन पूरे जोर से शुरू किया जावे। यहाँ पर वेधन कार्य में एक विशेष बात पाई गई। कुएँ नम्बर ३८ में ८ घंटे में ७९६ मीटर तक गहराई नापी गई। यह खुदाई की रफ्तार संसार की अब तक की अधिकतम रफ्तार ७०३ मीटर प्रति ८ घंटे से ज्यादा है। यह रफ्तार अमरीका के लास एंजिल्स में पायी गयी थी। यहाँ पर जिन स्तरीय चट्टानों में तेल पाया जाता है वह बरल सीरीज की हैं।

इस तेल के रासायनिक विभाग डिगबोई तेल से अधिक अन्तर नहीं रखते। इसका आपेक्षिक घनत्व ०·८६ है तथा बहाव बिन्दु २६ डिग्री से ३२ डिग्री सेन्टीग्रेड है।

इस तेल में एक विशेषता और यह है कि जाड़े के दिनों में लम्बी दूर तक शोधन के लिए ले जाने का कार्य पाइपों द्वारा जमने द्वारा कुछ कठिन होता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए गर्म करके तुरन्त ठंडा करने का कार्य करना होता है। यह क्रिया बार-बार दुहरानी पड़ती है। इससे तेल की कमी हो जाती है। इसका वैज्ञानिक एवं सैद्धान्तिक कारण तो नहीं ज्ञात हो सका है लेकिन इस क्रिया के बाद हो पाइपों द्वारा बहने के लिए यह आवश्यक है।

नहर कटिया से ४० कीलोमीटर दक्षिण पश्चिम पर मोरान का तेल क्षेत्र स्थित है। यहाँ पर कार्य बहुत उत्साहपूर्ण वातावरण में नहीं किया जा रहा है। २६ तेल कूपों में से २२ में तेल होने का अनुमान है। यहाँ के तेल में कोई विशेष बात नहीं है।

इन प्रधान तेल क्षेत्रों के अतिरिक्त ब्रह्मपुत्र की घाटी में रुद्र सागर एवं लखवा तेल क्षेत्र में तेल काफी मात्रा में होने का अनुमान है। यह कार्य आयल इंडिया के साथ-साथ तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग कर रहा है।

नेफा के प्रदेशों में भी आयल इंडिया मुख्य रूप से कार्य कर रहा है। वहाँ का कार्य सरकार ने उसी कम्पनी को सौंपा है। उल्लेखनीय फलों की आशा की जा रही है।

अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूहों में मायोसीन युग की चट्टानों में तेल होने का अनुमान है। आयोग वहाँ पर शीघ्र ही अपना कार्य प्रारम्भ करने जा रहा है।

भारत के ४०००० वर्ग मील के स्तरीय चट्टान युक्त क्षेत्र में तेल सर्वेक्षण का कार्य और जोर शोर से चलाने के सरकारी कार्यक्रम की घोषणा श्री हुँमायू कबीर ने अभी-अभी की है।

इन सब विकास कार्यों के फलस्वरूप हमारा उत्पादन हमारी आवश्यकताओं से बहुत कम है। तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग का उत्पादन सन् १९६१-६२ में ४०००० टन से बढ़कर १००००० टन सन् १९६३-६४ में हुआ। आशा है यह उत्पादन १९७१ में नये तेल कूपों के द्वारा १ करोड़ टन हो जावेगा। सन् १९६१ में आयल इंडिया का उत्पादन ३० लाख टन रहा। इन उत्पादनों ने १९६३-६४ में १५ करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा की बचत की। आशा है कि जब हमारा उत्पादन सन् १९७१ तक १ करोड़ टन प्रतिवर्ष होगा तब यह बचत ७० करोड़ रुपये तक होगी।

इसके साथ-साथ इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि तेल की बढ़ती माँग सन् १९७१ तक इस उत्पादन से २॥ करोड़ टन ज्यादा होगी। एक प्रकार से यह माँग हमारे उत्पादन से आधी रहेगी। इसीलिए भारत सरकार ने अरब देशों से एक नया समझौता किया है। इसके अनुसार हम अमरीका एवं इटली की सहायता से कुवैत एवं ईरान के समुद्री तटों पर अपना सर्वेक्षण कार्य करेंगे। इस उत्पादन का कुछ प्रतिशत हमें भी मिलेगा। इससे कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति संभव हो सकती है।

प्राकृतिक तेल के उत्पादन के साथ-साथ हमें उसके शोधन का भी प्रबन्ध करना पड़ेगा। सरकारी क्षेत्र में १९५० तक कोई शोधक कारखाना नहीं था।

निजी क्षेत्र में तीन तेल शोधक कारखाने १९५७ तक ४०००० टन प्रतिवर्ष तेल शोधन का कार्य कर रहे थे। यही शोधन कार्य अब ७०००० टन १९६३ में पहुँच गया है।

सन् १९६२ में पहले तेल शोधक कारखाने की स्थापना रूमानिया की मदद से नूनमती में की गयी। यह अत्यन्त कष्टप्रद अवस्था से गुजरा लेकिन इसने अन्त में सन् १९६२ में उत्पादन प्रारम्भ कर ही दिया। बरौनी तेल शोधक कारखाना प्रतिवर्ष १०००००० टन तेल प्रत्येक वर्ष साफ करेगा। इस कारखाने के और विस्तार के लिये हमें रूस एवं रूमानिया से सहायता के आश्वासन प्राप्त हुए हैं। कोयली नामक स्थान पर बन रहा कारखाना भी जल्दी ही चालू होगा। इसमें १०००००० टन तेल प्रति वर्ष साफ किया जावेगा। कोचीन में अमरीकी सहायता से एक कारखाना स्थापित किया जा रहा है। इन कारखानों के अतिरिक्त मद्रास एवं हल्दिया में भी तेल शोधक कारखाना स्थापित किया जा रहा है। ये कारखाने इसी वर्ष उत्पादन प्रारम्भ कर देंगे।

जब ये सभी कारखाने चालू हो जावेंगे तो तेल शोधन २.२ करोड़ टन तक पहुँच जावेगा। ये कार्य तृतीय योजना के अन्तर्गत ही होंगे। इन सब कारखानों में एक तिहाई कारखाने केवल निजी क्षेत्र में ही रहेगा।

चौथी योजना के अन्तर्गत इन कारखानों की शोधन शक्ति २.८ करोड़ टन प्रति वर्ष होगी। अब तक तेल के शोधन एवं व्यापार का कार्य इंडियन आयल कारपोरेशन एवं इन्डियन आयल कम्पनी करते थे। अब दोनों को मिला कर कार्य में प्रगति लाने के लिये एवं प्रशासनिक असुविधाओं को मिटाने के लिए एक नये निगम, इन्डियन आयल कारपोरेशन, की स्थापना की गई।

तेल के कार्यों में नवीनतम वैज्ञानिक उपकरणों की सबसे ज्यादा आवश्यकता होती है। उसके लिये अनुसंधान की आवश्यकता है। इसी कारण से सरकार ने एक नई संस्था इन्डियन इंजीनियरिंग लिमिटेड की स्थापना की। यह कम्पनी तेल शोधन, सर्वेक्षण एवं शोधन कारखानों के डिजाइन एवं यान्त्रिक विकास का कार्य कर रही है। हर्ष का विषय है कि तेल सर्वेक्षण के भूतात्विक यन्त्र इलेक्ट्रिकल लागिंग का उपकरण अब भारत में ही बनने लगा। इसके लिये हमें काफी विदेशी मुद्रा खर्च करनी पड़ती थी।

यह जानने योग्य विषय है कि शुद्ध तेल के साथ-साथ अन्य रासायनिक पदार्थ भी उत्पन्न होते हैं जिनका महत्व काफी है। ये पदार्थ राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर अधिक प्रभाव डालते हैं। बहुमुखी औद्योगिक प्रगति के लिये ये तैल-रासायनिक पदार्थ बड़े उपयोगी हैं। रासायनिक खाद इनका एक प्रमुख पदार्थ है। इस पदार्थ के उत्पादन के सम्बन्ध में सरकार ने बेच तेल कारपोरेशन से एक समझौता करके २००००० टन उत्पादन क्षमता वाला ५ कारखानों की स्थापना का आश्वासन प्राप्त किया। ये कारखाने तेल से रासायनिक खाद के उत्पादन के साथ-साथ उसके बेचने एवं मूल्य सम्बन्धी भी कार्य करेंगे। पहला कारखाना समझौते के २८ महीनों के भीतर ही स्थापित करने का आश्वासन प्राप्त हुआ है।

रासायनिक खाद के अतिरिक्त इमारती सामान के रूप में प्लास्टिक एवं रेज़िन के पदार्थ, गर्म एवं सूती कपड़ों के लिये रासायनिक सूत, रासायनिक रबर एवं अल्कोहल उत्पादन में योगदान, अन्य विशेष उल्लेखनीय पदार्थ हैं।

वैज्ञानिक प्रयोगों ने यह भी सिद्ध किया है कि हाइड्रोकार्बन को कार्बोहाइड्रेट में बदल कर खाने योग्य बनाया जा सकता है। इस प्रयोग के सफल होने पर तेल हमारी भोजन समस्या का हल भी प्रस्तुत करेगा।

मोटे तौर पर तेल द्वारा उत्पन्न रासायनिक पदार्थों का उतना ही उपयोग एवं महत्व है जितना तेल का शक्ति उत्पादन हेतु।

सोवियत रूस, रूमानिया, यूगोस्लाविया, जर्मनी एवं अन्य यूरोपीय देशों से हमें बराबर सहयोग मिल रहा है। सोवियत रूस का सहयोग हमेशा उत्साहवर्द्धक एवं

[शेष पृष्ठ १६ पर

खैर-अकैसिया कैटेच्यु विल्ड वृक्ष से कत्था एवं कच उत्पादन

एम० जी० कर्णिक, ओमप्रकाश शर्मा तथा नरेन्द्र प्रसाद डोभाल (अनु० बाबूराम वर्मा)

सारांश

(प्रस्तुत लेख में वनोपज रसायन शाखा, वन अनुसंधान संस्थान में कुछ समय पूर्व विकसित की हुई द्वि अस्थाई विधि (द्रष्टव्य इंडियन फोरेस्ट, १९६५, ९१, १ पृ० ६७ (अंग्रेजी में) द्वारा कत्था तथा कच उत्पादन पर पथप्रदर्शक परिणाम पर किये गये परीक्षणों को वर्णित किया गया है। इसमें ऊष्मक शुष्क आधार पर सारकाष्ठ से कत्थे और कच की प्राप्ति क्रमशः ९.३५ प्रतिशत एवं ५.६६ प्रतिशत मिली है)

इससे पूर्व के प्रकाशन में[1] द्वि-अवस्थायी विधि द्वारा खैर काष्ठ से कत्थे का आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद निस्सारण के लिए उपयुक्ततम दशाओं को मालूम करने के लिए लघु अनुमाप पर किये गये संपरीक्षणों को वर्णित किया गया था। इस विधि में कत्था निर्माणी तथा उसका देशी ढंग पर निर्माण करने वाले दोनों ने बड़ी रुचि दिखाई। अतः हमने कत्थे और कच की प्राप्ति और गुणों (कोटि) विषयक प्रकट किये हुए पहले प्रेक्षणों की पुष्टि हेतु कत्था उत्पादन संपरीक्षणों को पथप्रदर्शक परिमाण पर करना बड़ा वांछनीय समझा।

प्रयोगात्मक

प्रस्तुत अन्वेषण के लिए अकैसिया कैटेच्यु (खदिर बब्बूल) अर्थात् खैर के लट्ठे प्रदर्शक वन क्षेत्र, न्यू फौरेस्ट वनसम्पदा (एस्टैट) से प्राप्त किये गये। लट्ठों की छाल उतरवा कर सारकाष्ठ को उसके रसकाष्ठ से अलग कर दिया गया। फिर हैंड प्लैनिंग मशीन (हस्त-रन्दा यन्त्र) द्वारा सार-काष्ठ को रँद कर दो मि० मी० मोटी छीलनें बना ली गईं। ऐसी ३० कि० ग्रा० छीलनों को अच्छी तरह हिलाते डुलाते २ घन्टे तक सामान्य कक्ष तापमान (३०° से०) पर ठंडे जल में निस्सारित किया गया और तदुपरान्त मलमल से छानकर निस्सार प्राप्त कर लिया गया। अवशिष्ट छीलनों को फिर पानी से क्वथनांक ताप (९८° से०) पर १½ घन्टे तक निस्सारित किया गया और निस्सार को पूर्ववत् पृथक् कर लिया गया।

ठंडे और गर्म जल दोनों अवस्थाओं में प्राप्त किये गये निस्सारों (छाने हुए पदार्थ) को अलग अलग ४० गैलन धारिता वाले खुले संकेन्द्रण पात्र में ३०° से० पर १.१७५ सघनता तक संकेन्द्रित किया गया। संकेन्द्रित निस्सार को पलट कर एक छोटे पात्र (धारक) में डाला गया और स्फाट बनाने (केलासन) के लिए रात भर उसी में रहने दिया गया। दोनों निस्सारों से कत्थे के बभ्राभ-श्वेत रंग के सुविकसित स्फाट प्राप्त हुए। प्रत्येक कत्थे का स्फाटीय (केलासित) पुन्ज सावधानी पूर्वक कैनवस (किरमिच) लगे काष्ठ संधार (फ्रेम) पर पहुँचाया गया और हस्त चालित पेंच-निपीड़ में उसे मृदुता पूर्वक दबाया गया गया जिससे कत्था भिंच कर बाहर न निकल आए। दबाने का उद्देश्य उसमें से यथासम्भव सारा अवशिष्ट द्रव निकाल देना था जिसे उसमें रहे कच को निकालने के लिए इकट्ठा कर लिया गया। अर्द्ध-शुष्क कत्थे को सुखाने के लिए टिकिया बनाने वाले पट पर समानतः फैला दिया गया और तार कर्तक द्वारा काट कर उसकी ५ वर्ग से० मी० की टिकियाँ बना दी गईं। इन टिकियों को पहले छाया में (शालिका में) और तदुपरान्त ४०° से० पर ऊष्मक में सुखाया गया।

ठंडे और गर्म निस्सार वाले कच युक्त मूल द्रव को अलग-अलग संकेन्द्रण पात्रों में संकेन्द्रित किया गया और छोटी परिमा (आयतन) वाले पुन्ज का कर दिया गया जिनका फिर उद्वाष्पन करके उन्हें वायु-शुष्क ठोस

पुन्ज बना दिया गया। दोनों निस्सारों से मिले कच को अलग-अलग तौला गया और उनकी प्राप्ति विनिश्चित की गई। विधि की दोनों अवस्थाओं से प्राप्त कत्थे और कच को विश्लेषण परिणामों को सूचित करने वाली संलग्न सारणी में प्रथम अवस्था का कत्था एवं कच तथा द्वितीय अवस्था का कत्था तथा कच नाम दिया गया है।

सामान्य रीतियों द्वारा कत्थे के न्यादर्शों (नमूनों) की भौतिकी-रासायनिक विशिष्टताओं का विश्लेषण किया गया। कैटेचिन (खदिरि) का आकलन कुछ समय हुए कर्णिक तथा शर्मा द्वारा विकसित की हुई परिष्कृत रीति से किया गया। विश्लेषण के परिणाम सारणी १ में दर्शाए गये हैं। कच के न्यायदर्शों[२] की भौतिकी-रासायनिक विशिष्टताओं का भी विश्लेषण किया गया। शल्कि तत्व का आकलन खाल चूर्ण रीति[३] द्वारा किया गया। इस विश्लेषण के परिणाम सारणी २ में दर्शाए गये हैं।

सारणी १

कत्था न्यादर्शों की प्राप्ति और संगठन

	प्रथम अवस्था का कत्था	द्वितीय अवस्था का कत्था
१ – निस्सार्य छीलनों की दशा		
(अ) निस्सारण अवधि घण्टों में	२·०	१·५
(आ) तापमान सें०	३०° (कक्ष तापमान)	९८° (क्वथन)
(इ) माल: जल	१·६	१·६
२—ऊष्मक-शुष्क छीलनों के आधार पर प्राप्ति प्रतिशत	३·१९	६·१९
३—खदिरि तत्व प्रतिशत*	३६·७०	४२·६
४—जल अविलेय पदार्थ प्रतिशत*	१·६०	०·८०
५—९० प्रतिशत एलकोहल (सुषव) में अविलेय पदार्थ प्रतिशत	१४·२०	१२·००
६—भस्म प्रतिशत	१·६०	०·५७
७—हाइड्रोकारिक (उद्नीरिक) अम्ल में अविलेप राख प्रतिशत	—	—

*प्रतिशत ऊष्मक-शुष्क कत्थे के आधार पर है

सारणी—२

कच न्यादर्शों की प्राप्ति और संगठन

	प्रथम अवस्था का कच	द्वितीय अवस्था का कच
१—ऊष्मक-शुष्क छीलनों के आधार पर प्राप्ति प्रतिशत	२·७६	२·९०
२—शल्कि प्रतिशत*	६०·७०	६८·७४
३—अशल्कि प्रतिशत*	२६·५०	१६·४६
४—जलविलेयता प्रतिशत*	८७·२०	८५·२०
५—मिथाइल एल्कोहल (दक्षुल सुषव) विलेयता प्रतिशत	७८·३०	८६·८०
६—खदिरि प्रतिशत*	७·५०	६·१०
७—वर्ण चण्डता (लोवीबांड टिण्टोमीटर—१% विलयन ०·५ सें० मी० कोशा)	लाल = ८·० पीला = ११·५	लाल = ७·५ पीला = १०·५

*प्रतिशत ऊष्मक-शुष्क कच के आधार पर है

विवेचन

इस अन्वेषण के पहले भाग[1] में यह प्रस्थापना की गई थी कि खैर के सारकाष्ठ की छीलनों का ठंडे जल के साथ अधिक समय तक संयोग रहने से खदिरि का अधिकाधिक परिमाण निकलता जाता है। अतः यह अनिवार्य है कि कच का अधिकता और कत्थे का न्यूनतम परिमाण निस्सारित करने के लिए ठंडे जल में छीलनों का न्यूनतम समय तक ही निस्सारण किया जाए। अतः इन पथप्रदर्शक परीक्षणों में प्रथम अवस्था का कत्था और कच प्राप्त करने के लिए छीलनों को ठंडे जल में दो घन्टे तक ही निस्सारित किया गया। सारणी १ में दिये गये परिणामों के अवलोकन से पता चलेगा कि छीलनों को ठंडे जल में दो घण्टे तक निस्सारित करने से पर्याप्त अच्छे गुणों वाले कत्थे की, जिसका खदिरि तत्व ६६.७० प्रतिशत है, ३.१६ प्रतिशत प्राप्ति मिल गई है। किन्तु प्रथम अवस्था का कत्था कुछ गहरे रंग का रहा। इन उपचारित छीलनों का गर्म जल में निस्सारण करने पर ६.१६ प्रतिशत कत्था और मिला। द्वितीय अवस्था के इस कत्थे की प्राप्ति और संगठन भी सारणी १ में आलेखित है। इस कत्थे का खदिरितत्व ४२.६ प्रतिशत जितना अधिक तथा भस्म (ask) तत्व ०.५७ प्रतिशत जितना कम रहा। कत्था भूरे से श्वेत रंग का था। इस विधि द्वारा इस प्रकार खैर के सारकाष्ठ के ऊष्मक-शुष्क आधार पर कत्थे की कुल प्राप्ति ६.३५ प्रतिशत हो जाती है जो प्रचलित रीति द्वारा सामान्यतः मिलने वाली ४.५ प्रतिशत प्राप्ति की तुलना में काफी अधिक है। सारणी २ से यह भी पता चलेगा कि सारकाष्ठ के ऊष्मक-शुष्क भार के आधार पर ५.६६ प्रतिशत कुल कच भी प्राप्त हो गया है। कच के इन न्यायदर्शों में खदिरि तत्व ६० प्रतिशत से अधिक है जो इसकी उच्चकोटि का निर्देश है। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि इस विधि से अच्छे गुणों वाला अधिक परिणाम में कत्था मात्र ही नहीं बल्कि कच भी अधिक पूर्णता में प्राप्त हो जाता है जिससे यह विधि आर्थिक दृष्टया लाभप्रद हो जाती है।

निर्देश

१—कर्णिक तथा शर्मा—ए प्रासेस टु फर्दर दि युटिलिजेशन आफ खैर ट्रीज।
इंडियन फारेस्टर, १९६५, ९१ (१), जनवरी, ६५ (अंग्रेजी)—हिन्दी रूपान्तर 'विज्ञान' में मुद्रणाधीन

२—कर्णिक तथा शर्मा—एन एम्प्रूव्ड मैथड फार दि एस्टीमेशन आफ केटेचिन इन कत्था एण्ड खैर वुड सैम्पल्स। आई० एस० आई, बुलेटिन, १९६४ १६ (८), ३३५।

३—विश्लेषण रीति—ए० ओ० ए० सी०, तृतीय संस्करण, १९३०, ९६।

[पृष्ठ १३ का शेषांश]

सराहनीय रहा है - अभी-अभी रूसी विशेषज्ञों की इस घोषणा ने कि भारत में तेल का कुल भंडार ४ हजार मिलियन टन से ज्यादा है, हमारा उत्साह और बढ़ा दिया है।

साथ ही यह भी आशा प्रगट की है कि अगले बीस वर्षों में भारत में १५० मिलियन टन प्रतिवर्ष का उत्पादन होगा।

इस उत्साह को हम तभी रख सकते हैं जब कि हमारे भू-वैज्ञानिक एवं अन्य तकनीकी विशेषज्ञ इस कार्य में प्रगति लावें तथा इस आँकड़े को सिद्ध कर देवें जो अभी अनुमानित है। तभी हमारी सदियों प्राचीन "तमसो मा ज्योतिर्गमय" प्रार्थना सार्थक एवं साकार होगी।
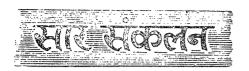
१. खाद्य-संरक्षण की एक सम्भाव्य प्रमुख प्रविधि : विकिरणीकरण

अत्यन्त प्राचीन काल से हमारे पूर्वज खाद्य-संरक्षण की अनेक विधियों से परिचित रहे हैं। इनमें खाद्य-पदार्थों को सुखा कर, नमक लगा कर, धुएँ में रख कर, उबाल कर, आचार बना कर, शीत-भण्डारों में रख कर और शीत में जमा कर सुरक्षित रखने की युग-प्राचीन विधियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं किन्तु इन विधियों के बाद से लेकर अब तक, डिब्बाबन्दी को छोड़ कर, जिसे प्रारम्भ में नेपोलियन की सेनाओं के लिए विकसित किया गया था, आणविक विकिरण की विधि ही खाद्य-संरक्षण की एक मात्र पहली नई विधि है।

डिब्बाबन्द खाद्य-पदार्थ पके-पकाये होते हैं। किन्तु उनके विपरीत, विकिरणीकृत ताजे खाद्य-पदार्थ स्वाद और स्वरूप में मूल खाद्य-सामग्रियों से बहुत मिलते-जुलते हैं। अमेरिकी प्रतिरक्षा-विभाग और अमेरिकी अणुशक्ति आयोग की ओर से १९५० के दशाब्द से ही खाद्य विकिरणीकरण सम्बन्धी अनुसन्धान होते आ रहे हैं। ये अनुसन्धान अमेरिकी कांग्रेस के एक निर्देश के अन्तर्गत हो रहे हैं, जिसका उद्देश्य "सामान्य कल्याण को बढ़ावा देने तथा रहन-सहन के स्तर को उठाने" के लिए अणुशक्ति के लाभकारी उपयोगों को विकसित करना रहा है।

अमेरिकी अणुशक्ति आयोग के लिए हाल में तैयार एक अध्ययन-रिपोर्ट में अमेरिकी वाणिज्य विभाग के अधिकारियों ने भविष्यवाणी की है कि "इस दशाब्द के दौरान विकिरणीकरण को खाद्य-संरक्षण की एक प्रमुख प्रविधि मान लिया जायेगा।"

साधारण मनुष्य के लिए, "खाद्य-विकिरणीकरण" से आशय एक ऐसी विधि से हो सकता है, जिसमें आणविक रश्मियाँ सभी दिशाओं में घातक किरणें बिखेर रही हों। किन्तु वास्तविकता यह है कि यह विधि घर से बाहर वन-प्रदेश में शिकार में मारे गये जानवरों के मांस को भून कर खाने के लिए तैयार करने की विधि से भी कम खतरनाक है। प्राविधिक दृष्टि से, इसके अन्तर्गत, खाद्य-पदार्थ को विकिरण की नियन्त्रित मात्रा के प्रभाव में रखा जाता है, किन्तु इससे खाद्य-पदार्थ रेडियो-सक्रिय नहीं होने पाता। हैम्बरगर को अंगीठी पर भूनने की विधि जिसका प्रयोग बहुत सी गृहिणियाँ अक्सर करती हैं, वस्तुतः आग से निकलने वाली अधोरक्त (इन्फ्रा-रेड) किरणों से विकिरणीकृत करके खाद्य-पदार्थ को सुरक्षित रखने की ही विधि है।

विकिरणीकरण से किसी खाद्य-पदार्थ की क़िस्म में तो सुधार नहीं हो सकता, किन्तु उससे ये पदार्थ अपेक्षाकृत अधिक समय तक यथासम्भव सर्वश्रेष्ठ दशा में बने रह सकते हैं। चूँकि विकिरणीकरण से खाद्य पदार्थ की किस्म में सुधार नहीं हो सकता, इसलिए प्रविधि-विशेषज्ञों को उसी समय खाद्य-पदार्थों—विशेष रूप से फलों और मछलियों—को विकिरणीकृत करना पड़ता है, जब वे ताजे हों। फलस्वरूप विकिरणीकरण सम्बन्धी सचल यन्त्रों को फलों के पकने के समय बगीचों के निकट या मछली पकड़ने वाले जहाजों पर ले जाना पड़ता है। यह देखा गया है कि विकिरणीकरण से ताजे खाद्य-पदार्थों की जीवनावधि में २ सप्ताह से लेकर १ वर्ष तक की वृद्धि हो जाती है।

अमेरिकी वाणिज्य विभाग के अधिकारियों का

कहना कि विकिरणीकरण द्वारा संरक्षण की विधि के फलस्वरूप आने वाले वर्षों में जिन वस्तुओं के व्यापारिक विकास की सम्भावना सबसे अधिक है, उनमें मुर्गियाँ, टर्की पक्षी, मांस, सुअर का मांस, मछली, सूखी सब्जियाँ और कई तरह के ताजे फल विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये सभी ऐसे पदार्थ हैं जिनका स्वाद विकिरणीकरण के बाद भी बना रहता है। अध्ययन के अन्तर्गत २८ प्रकार के खाद्य-पदार्थों पर विचार किया गया, जिनमें से १७ के विकास की सम्भावना 'अच्छी' या 'उत्कृष्ट' पाई गई।

अमेरिकी खाद्य एवं पेय प्रशासन ने, जिसके निर्देशानुसार कानूनी तौर पर बाजार में बेचे जा सकने से पहले किसी भी खाद्य-पदार्थ को सुरक्षित होना जरूरी है, विकरण-शोधित सुअर के मांस, आलू, गेहूँ और गेहूँ के सामानों को मनुष्य द्वारा उपभोग्य करार दिया है। अगले वर्ष विकिरणीकृत मुर्गी, सुअर के मांस, तथा कई समुद्री मछलियों के सम्बन्ध में भी स्वीकृति प्रदान करने के लिए प्रार्थना-पत्र पेश किये जायेंगे। १९६७ और १९६८ में जिन खाद्य-पदार्थों के सम्बन्ध में इस उद्देश्य से प्रार्थना-पत्र लिए जायेंगे, उनमें केकड़े, शम्श, हैलिबट जैसी मछलियाँ और खूबानी, आदि के फल सम्मिलित हैं।

विश्व में भूखों को आहार देने और बढ़ती हुई जनसंख्या की भावी आवश्यकताएँ पूरी करने को दृष्टि से विकिरणीकरण द्वारा खाद्य-पदार्थों के संरक्षण की विधि में अमित सम्भावनाएँ छिपी हैं। विशेषज्ञों का कहना है कि यह विधि उन देशों के लिए अत्यन्त बहुमूल्य सिद्ध होगी, जिनके सामने खाद्याभाव की समस्या है और जहाँ परिवहन या वितरण की सुविधाओं का अभाव है।

२. आणविक काष्ठ

अमेरिका में गामा किरणों की सहायता से एक ऐसा काष्ठ तैयार किया गया है, जो साधारण काष्ठ से श्रेष्ठतर है।

यह काष्ठ लकड़ी और प्लास्टिक के संयोग को प्रायः कोबाल्ट-६० द्वारा उपचारित करके तैयार किया जाता है। काष्ठ और प्लास्टिक के इस सम्मिलत पदार्थ का उत्पादन सबसे पहले वेस्ट वर्जिनिया विश्वविद्यालय में अमेरिकी अणुशक्ति आयोग द्वारा दिये गये ठेके के अन्तर्गत हुआ। आशा है कि इस प्रकार निर्मित काष्ठ-प्लास्टिक काष्ठ के सामान तैयार करने वाले उद्योग के क्षेत्र में अनेक प्रकार से प्रयुक्त हो सकेगा।

काष्ठ और प्लास्टिक के संयोग से निर्मित यह नया कृत्रिम काष्ठ प्राकृतिक काष्ठ से अधिक मजबूत और कड़ा होता है। इसकी सहायता से काष्ठ को एक ऐसे क्षेत्र में एक बार फिर प्रमुख स्थान प्राप्त हो जायेगा, जिसमें इस्पात, अल्यूमिनियम, और विशेष रूप से प्लास्टिक, जैसी सामग्रियों ने काष्ठ को हटा कर अंशतः उसका स्थान ग्रहण कर लिया था।

इस नये पदार्थ की प्रकृति क्या है और इसका निर्माण किस तरह होता है? इसके निर्माण की विधि बहुत कुछ सरल है। मूलतः इस विधि के अन्तर्गत, एक-व्यूहाणुओं (मोनोमर) को दीर्घ शृंखला में सम्बद्ध करके किसी काष्ठ में विशाल व्यूहाणुओं (पोलीमर) का निर्माण किया जाता है। ये दीर्घ-शृंखला वाले वृहत अणु मूलतः प्लास्टिक होते हैं। यह प्लास्टिक की ऐसी किस्म है, जो प्रयुक्त हुए एकल-व्यूहाणुओं पर निर्भर करती है। इस प्रकार एक ऐसे काष्ठ का सृजन होता है, जिसके भीतर प्लास्टिक समाविष्ट होता है।

यह रासायनिक चमत्कार प्लास्टिक का निर्माण करने वाले अभिवांछित एकल व्यूहाणु से भरपूर काष्ठ पर अयनकारी विकिरण की बौछार डाल कर और इन व्यूहाणुओं में से कुछ को इलेक्ट्रान से वंचित करके सम्पन्न किया जाता है। अयनकारी विकिरण एक ऐसी क्रिया है, जिससे किसी अणु या व्यूहाणु से एक इलेक्ट्रान का निष्क्रमण हो जाता है। इस प्रकार इलेक्ट्रान से वंचित होकर एकल व्यूहाणु विद्युतधर्मी बन जाते हैं, और द्रव पदार्थ के भीतर स्वतन्त्र तत्वों के रूप में चल-फिर कर किसी अन्य एकल-व्यूहाणु से चिपक जाते हैं।

जब एकल-व्यूहाणुओं में से, जो मुख्यतः कार्बन और हाइड्रोजन द्वारा निर्मित होते हैं, कोई एक व्यूहाणु

पकड़ में आ जाता है, और स्वतन्त्र तत्व के रूप में प्रवहमान व्यूहाणु से सम्बद्ध हो जाता है, तब कार्बन अणुओं में से एक पर एकाकी इलेक्ट्रॉन छूट जाता है। अब सम्बन्द्ध एकल-व्यूहाणु का साथ मिलकर एक स्वतन्त्र तत्व के रूप में क्रियाशील होते हैं, और उसी प्रकार किसी अन्य एकल-व्यूहाणु पर प्रहार करते हैं। इससे नवप्राप्त व्यूहाणु पर एक स्वतन्त्र बन्धन शेष रह जाता है। यह विधि कई बार दुहरायी जाती है और तब तक जारी रखी जा सकती है, जब तक कई-कई हजार एकल-व्यूहाणु एक बाद दूसरे से सम्बन्ध हो कर एक दीर्घ शृंखला का निर्माण नहीं कर देते। जैसे-जैसे विभिन्न शृंखला-लम्बान के अनेक विशाल-व्यूहाणु बनते जाते हैं, वैसे ही वैसे यह प्रतिक्रिया, जिसे 'पोलीमराइजेशन' कहते हैं, द्रव एकल-व्यूहाणु को कड़े और मजबूत पोलीमर या प्लास्टिक में परिणत करती जाती है।

वास्तविक विधि के अन्तर्गत, उपचारित होने वाले काष्ठ को उपयुक्त लम्बाइयों और मोटाइयों में काट लिया जाता है, फिर उसमें वेकूम या चाप का संचार करके उसे उपयुक्त किस्म के द्रव एकल-व्यूहाणु में परिणत कर लिया जाता है। इसके बाद काष्ठ को पेटी में बन्द कर दिया जाता है, ताकि उसमें से एकल-व्यूहाणु भाप बन कर निकलने न पाये। उसके उपरान्त पेटी को कोबाल्ट-६० से निकलने वाली विकिरण जैसी विकिरण के सामने रख दिया जाता है।

वैकूम या चाप से गर्भित होने की प्रक्रिया के दौरान, प्लास्टिक का निर्माण करने वाला एकल-व्यूहाणु छिद्र-मय काष्ठ में प्रविष्ट हो जाता है, और काष्ठ के कोषों के नन्हें-नन्हें खाली स्थानों को भर देता है। जब कोबाल्ट ६० की अयनकारी किरणें व्यूहाणुओं पर प्रहार करती हैं, तब वे पूरे काष्ठ में एक दूसरे से सम्बद्ध हो जाते हैं, जिससे अति सूक्ष्म कोषों के चारों ओर पोलीमर का एक संजाल तैयार हो जाता है जो अतिसूक्ष्म कोषों के चारों ओर चक्कर काटता और उन्हें कड़े प्लास्टिक की एक पूर्णतम बन्द मुहर में बन्द कर देता है।

यह प्लास्टिक-युक्त काष्ठ प्राकृतिक काष्ठ से अधिक मजबूत और कड़ा होता है, और अपने में सन्निविष्ट प्लास्टिक के कुछ गुण ग्रहण कर लेता है। यह अनु-पचारित काष्ठ की अपेक्षा अधिक धीमी गति से पानी को शोषित करता है और उस पर चोटों और खरोचों का अधिक प्रभाव नहीं पड़ता।

पोलिमर रसायन और अयनकारी विकिरण कई अन्य प्रकार से भी प्रयुक्त हो रहे हैं। उदाहरण के लिए, पोलिमर रसायन द्वारा कितनी ही ऐसी नई सामग्रियाँ बनने लगी है, जिनसे आज हम सब भली भाँति परिचित हैं। इनमें तरह-तरह के कृत्रिम रेशे, प्लास्टिक के सामान, फिल्में तथा रबर जैसी वस्तुएँ सम्मिलित हैं।

यद्यपि अन्तिम रूप में उत्पन्न वस्तुएँ पोलिमर की दृष्टि से भिन्न-भिन्न हो सकती हैं, किन्तु उनमें कई आधारभूत रसायन और भौतिक विशेषताएँ समान होती हैं। रासायनिक शोधन के लिए विकिरण का प्रयोग कई क्षेत्रों में किया गया है; इनमें पोलिथाइलिन फिल्मों, खाद्य-सामग्रियों के संकुचित होने वाले आवरणों और दवाओं आदि को कीटाणु रहित करना सम्मिलित है।

वर्तमान प्रयोग के अन्तर्गत विकिरण उन रासायनिक तत्वों या अन्य साधनों का स्थान ग्रहण कर सकती है, जो प्रायः व्यूहाणुओं को परस्पर सम्बद्ध करने की क्रिया को ग्रहण करने के लिये प्रयुक्त होते हैं। विकिरण स्वयं एकल-व्यूहाणुओं को सक्रिय कर देती है जिससे वे स्वतन्त्र तत्व बन कर पोलिमराइजेशन की प्रक्रिया प्रारम्भ कर देते हैं।

इस प्रकार शान्तिपूर्ण उपयोग की दिशा में अणु-शक्ति ने एक अन्य महत्वपूर्ण प्रगति कर ली है। उसने न केवल एक श्रेष्ठतर काष्ठ उत्पन्न करने में योग दिया है, बल्कि एक युगों पुराने उद्योग को नया जीवन भी प्रदान किया है।

श्रेष्ठतर प्राविधिक गुणों के अलावा, काष्ठ-प्लास्टिक संयोग में काष्ठ के प्राकृतिक गुण और रंग बने रहते हैं, क्योंकि यह विधि कमरे के तापमान के भीतर ही पूरी हो सकती है, और काष्ठ को कोषक ढाँचे में कोई परि-

जब इस तरह की किसी धातु के छल्ले में कोई बिजली की करेण्ट चालू कर दी जाती है, तब वह अनन्त समय तक--उस समय के बाद भी जब केरेण्ट देने वाले स्रोत को बन्द या पृथक् कर दिया जाता है—पूरी शक्ति के साथ चक्कर काटना जारी रखती है।

नये चुम्बक के छल्ले को एक 'डेवार' फ्लास्क के भीतर लटका रखा जाता है। इस फ्लास्क की दीवारें थर्मस बोतल की तरह इन्सुलेटेड होती हैं। फ्लास्क के भीतर द्रव हिलियम होती है, जो छल्ले को—४५२ अंश फारेनहाइट (-२६६ अंश सेण्टीग्रेट) पर शीतित रखती हैं। यह तापमान पूर्ण शून्य से केवल लगभग ७½ अंश ऊपर होता है।

इस अत्यन्त न्यून तापमान पर—जो पृथ्वी पर प्राकृतिक रूप में उत्पन्न किसी भी तापमान से अत्यधिक नीचा होता है—तार सुपर-कण्डक्टिंग हो जाता है।

मोटर की बैटरियों से उत्पन्न बिजली की करेण्ट इसमें से होकर उस समय भी बराबर प्रवाहित होती रहती है, जब बैटरियाँ पृथक् कर दी जाती हैं। छल्ले में से होकर प्रवाहित यह करेण्ट चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न करती है। उपकरण की अद्भुत डिजाइन ऐसी है कि जैसे-जैसे तार चुम्बकीय दबाव के कारण संकुचित होता या फैलता जाता है, वैसे-वैसे यंत्र का क्षरण कम होता जाता है।

वैज्ञानिक गण चुम्बकीय शक्ति को 'गौस' नामक इकाई में व्यक्त करते हैं। पृथ्वी की चुम्बकीय शक्ति लगभग ½ गौस के बराबर है। नये चुम्बक की अधिकतम शक्ति १,३२,००० गौस है।

निर्माणकर्त्ताओं का कहना है कि तापमान को और ज्यादा घटा कर इस शक्ति को अभी और बढ़ाया जा सकता है। किन्तु और अधिक शीतित करने में संचालन विधि ज्यादा जटिल हो जायेगी। इस समय इस यंत्र में प्रयुक्त तापमान आधुनिक उपकरणों द्वारा अपेक्षाकृत अधिक आसानी के साथ प्राप्त किया जा सकता है। यह तापमान हीलियम के उबाल-बिन्दु के लगभग समान होता है।

इसी प्रकार, छल्ले के केन्द्र में स्थित प्रयोग-क्षेत्र को विस्तृत करना सम्भव है। इसके लिए छल्ले के केन्द्रभूत विभागों में से सबसे भीतरी विभाग को निकाल देना पड़ेगा किन्तु ऐसा करने से चुम्बक की शक्ति घट जाती है।

इससे पहले विश्व के सबसे शक्तिशाली सुपर कण्डक्टिंग चुम्बक का निर्माण अमेरिका में ही 'रेडियो कारपोरेशन औब अमेरिका' ने किया था। वह १०७,००० गौस तक भी क्षमता वाला चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न करने में समर्थ था। उसका प्रयोग क्षेत्र उसके केन्द्र में था जिसका व्यास एक इंच था।

फिर भी, अभी तक कोई भी सुपर-काडक्टिव मैगनेट शक्ति में सामान्य एलेक्ट्रोमैगनेट की बराबरी नहीं कर सका है। लेकिन, इनके लिए अत्यधिक परिणाम में विद्युत शक्ति की और भारी सहायक उपकरणों की आवश्यकता होती है ताकि उनके तारों के छल्ले विद्युतशक्ति के भारी प्रवाह के कारण गलने न पायें। इस कारण, ये अनेक अनुसन्धानात्मक कार्यों के लिये उपयुक्त नहीं होते।

इन समान्य मैगनेटों-२५५,००० गौस, अथवा पृथ्वी के चुम्बकीय आकर्षण शक्ति को ५००,००० गुना से भी अधिक शक्तिशाली क्षेत्र में सर्वोत्तम रिकार्ड मैसाचूसेट्स के इंस्टिट्यूट औब टेक्नौलोजी द्वारा संचालित और नवम्बर, १९६४ में अमेरिकी नेशनल मैगनेट लेबोरटरी में स्थापित किया।

अपनी सर्वाधिक शक्ति को प्राप्त करने के लिये इस मैगनेट को १० करोड़ वाट शक्ति वाली विद्युत धारा की आवश्यकता पड़ी। इसके साथ ही तारों के छल्लों को इस प्रचण्ड विद्युत शक्ति प्रवाह के फलस्वरूप गलने से बचाने की समस्या भी थी। इसके लिए उसे जल से शीतल रखने की व्यवस्था की गई थी। यह जल २००० गैलन प्रति मिनट की गति से प्रवाहित होता है।

अमेरिका में आज कल शक्तिशाली मैगनेटों का उपयोग बिना टरबाइनों के विद्युत शक्ति उत्पन्न करने के लिये तरीकों की खोज करने के लिये किया जा रहा है। अणु सम्बन्धी अन्वेषण तथा नाना प्रकार के अन्य प्रकार के महत्वपूर्ण अनुसन्धानों के लिए भी इनका प्रयोग हो रहा है।

इस समय, वैज्ञानिक अनुसन्धान हेतु मैगनेटों की नई-नई डिजाइनें तैयार करने के लिये वैज्ञानिकों के मध्य चल रही प्रतिस्पर्धा इतनी उग्र है कि हर कुछ माह के उपरान्त पहले से अधिक शक्तिशाली मैगनेट तैयार कर लिया जाता है। ●●

१. श्रवण क्षमता को नष्ट करने वाली ध्वनि

नार्थवेस्टर्न विश्वविद्यालय के टैक्नोलौजिकल इन्स्टिट्यूट में वायुमण्डलीय स्वास्थ्य सम्बन्धी इंजिनियर, एडवर्ड आर० हरमैन, श्रवण-क्षमता पर ध्वनि के प्रभाव का निर्धारण करने के लिए एक सर्वेक्षण किया है। उन्होंने इस सर्वेक्षण के लिए ५,००० श्रमिकों को चुना है, जो एक पेट्रो-कैमिकल रिफाइनरी (खनिज तेल-शोधन कारखाना) में विभिन्न पदों पर कार्य करते हैं।

हरमैन के अध्ययन से पता चला कि इस रिफाइनरी के दफ्तर में काम करने वाले लोग तथा टैक्निकल कर्मचारियों की श्रवण-क्षमता ध्वनि द्वारा बहुत ही कम नष्ट हुई है। इसके विपरीत ब्वायलर-निर्माताओं की श्रवण-क्षमता पर ध्वनि का प्रभाव सबसे बुरा पड़ा है। उनके बाद, ध्वनि के प्रभाव से वेल्डरों, शीट-मेटल के श्रमिकों, पाइप-फिटरों तथा अन्य श्रमिकों की श्रवण-क्षमता का क्रमगत ह्रास हुआ है। सर्वेक्षण करने के सिलसिले में, इन्हें रोज कर्णभेदी ध्वनियों का सामना करना पड़ता था।

हरमैन के सर्वेक्षण की सबसे उल्लेखनीय विशेषता यह थी कि उन्होंने प्रारम्भिक अवस्थाओं में ध्वनि के कारण श्रवण-क्षमता में होने वाले ह्रास का पता लगाने के लिए एक सांख्यिकी-विधि का विकास किया। यद्यपि श्रवण-क्षमता को पहुँचने वाली क्षति का उपचार चिकित्सा द्वारा नहीं हो सकता, फिर भी उनकी विधि प्रभावित व्यक्तियों को यह चेतावनी तो दे ही सकती है कि वे अपने लिए कोई ऐसा पेशा चुन लें, जहां शोर-शराबा अधिक न हो। अगर नहीं, तो उन्हें बधिरता का कष्ट भोगना पड़ेगा।

पैट्रो-कैमिकल रिफाइनरी के ५,०० कर्मचारियों के सर्वेक्षण में हरमैन ने एक श्रवण-क्षमता-मापक उपकरण का प्रयोग किया, जो विभिन्न तीव्रता वाली शुद्ध ध्वनियों को कर्मचारियों की कर्णेन्द्रियों पर प्रक्षिप्त करता था। उन्होंने देखा कि जिन नये कर्मचारियों और दफ्तर में काम करने वाली महिलाओं को अति तीव्र ध्वनियों के बीच नहीं रहना होता है, वे उपकरण की ऐसी ध्वनियों को भी सुन सकते हैं, जिनकी तीव्रता अत्यन्त न्यून होती है। इसके विपरीत, बहुत से ऐसे कर्मचारी जिन्हें हर वक्त शोर-शराबे के बीच काम करना पड़ता था, और जो ४,००० चक्र की तीव्रता वाली ध्वनियां के बीच भी कम सुनते थे, तब तक उस उपकरण की ध्वनि को सुनने में असमर्थ थे, जब तक उसकी तीव्रता २० डेसीबेल (ध्वनि की आपेक्षा तीव्रता को मापने वाली सामान्य इकाई) से अधिक न हो।

अपने सर्वेक्षण के दौरान हरमैन ने एक समीकरण सूत्र भी विकसित किया, जिसे उन्होंने बीमा-गौतिकी के एक नियम के रूप में निर्दिष्ट किया। यह नियम विभिन्न वातावरणों में सम्भवतः विद्यमान ध्वनियों के कारण श्रवण-क्षमता में होने वाली अधिकतम क्षतियों की भविष्यवाणी कर सकता है। वह यह भी बताता है कि अगर प्रभावित व्यक्ति किसी शोर-गुल वाले वातावरण में रहना जारी रखता है, तो उसकी श्रवण-क्षमता में किस दर से ह्रास होगा।

नार्थ वेस्टर्न विश्वविद्यालय में सिविल इंजिनियरिंग के सहायक प्रोफेसर, जिम्मी ई० कुओन की सहायता से हरमैन अब टैक्नोलौजिकल इन्स्टिट्यूट की वायुमण्डलीय स्वास्थ्य इंजिनियरिंग प्रयोगशाला में इस उपकरण

को और भी विकसित करने के लिए गहनतर अनुसन्धान करेंगे।

नये अनुसन्धान-कार्यक्रम के अन्तर्गत, अपने उपकरण के व्यवहार और उपयोग को विस्तृत करने और मानव की श्रवण-क्षमता का परीक्षण करने के लिए एक समीकरण-सूत्र विकसित करने का प्रयत्न करेंगे। वह प्रति सेकण्ड ४,००० चक्रों वाली ध्वनियों और प्रति सेकण्ड ५० से २,००० चक्रों वाली ध्वनियों के बीच और भी सम्बन्ध ढूँढने का प्रयत्न करेंगे।

२. अद्भुत किस्म का 'हाई फ्लक्स बीम रिसर्च' रिएक्टर

ब्रुक हैवन नेशनल लेबोरेटरी के वैज्ञानिकों ने अपटोन, लौंग आइलैण्ड न्यूयार्क, स्थित प्रयोगशाला में 'हाई फ्लक्स बीम रिसर्च रिएक्टर' (एच० एफ० बी० आर०) नामक यन्त्र का आविष्कार किया है।

यह प्रतिक्रियावाहक यन्त्र बड़ा अद्भुत है, क्योंकि यह वैज्ञानिकों को जितने शक्तिशाली न्यूट्रोन उपलब्ध करता है उतने शक्तिशाली न्यूट्रोन किसी अनुसन्धानात्मक प्रतिक्रियावाहक यन्त्र द्वारा इससे पूर्व कभी पैदा नहीं किये गये हैं। 'फ्लक्स' शब्द से अभिप्राय न्यूट्रोनों की उस संख्या से है जो एक निश्चित अवधि में गुजरते हैं।

न्यूट्रान, जो पदार्थ का एक मूल अंश है, पदार्थ के गुण और बनावट सम्बन्धी समस्या में अधिकाधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। इसके परिणाम-स्वरूप अत्यधिक शक्तिशाली न्यूट्रोन 'फ्लक्स' उपलब्ध कर सकने वाले अनुसन्धानात्मक प्रतिक्रियावाहक यन्त्रों का कार्य अधिकाधिक महत्वपूर्ण होता जा रहा है। इसके अलावा, अपने मौलिक तथा सामान्य गुण के कारण न्यूट्रोन उन अनुसन्धानकर्ताओं को खोजबीन सम्बन्धी अत्यन्त शक्तिशाली साधन उपलब्ध करते हैं, जो सोलिड-स्टेट एण्ड लो एनेर्जी फिजिक्स, मेटलर्जी, और न्यूक्लियर कैमिस्ट्री के क्षेत्रों में अनुसन्धान कार्य कर रहे हैं।

उक्त प्रतिक्रियावाहक यन्त्र में अत्यधिक तेज गति से भारी संख्या में प्रवाहित होने वाले थर्मल न्यूट्रोन पैदा होते हैं, जिनका उस प्रतिक्रिया वाहक यन्त्र के बाहर एक असाधारण प्रकार के रिएक्टर कोर, रिफ्लेक्टर और बीम ट्यूबों द्वारा किये जाने वाले में प्रयोग किया जाता है। एच० एफ० बी० आर० अधिकतर उस न्यूट्रोन पर निर्भर करता है, जो न्यूट्रोनों को चार्ज करने के लिए कोर को घेरे हुए है। बाद में न्यूट्रोन कोर पर लौटते रहते हैं और शृंखलाबद्ध प्रतिक्रिया जारी रहती है।

प्रारम्भिक संचालन अवधि में जो परीक्षण किये जायेंगे उनमें तरल पदार्थों और ठोस पदार्थों के निर्माण सम्बन्धी अध्ययन, क्रिस्टलों के विखण्डन सम्बन्धी अध्ययन, चुम्बकीय पदार्थों के पोलराइज्ड न्यूट्रोनों का विखण्डन करना, और एक नये घूमने वाले चौपर द्वारा फास्ट न्यूट्रोन क्रास नशक्से की माप करना सम्मिलित है, जो एक विशिष्ट शक्ति वाले न्यूट्रोनों को दूसरी शक्तियों वाले न्यूट्रोनों से पृथक् करता है।

'एच० एफ० बी० आर०' न्यूट्रोन प्रकाश किरणों को प्रयोग में लाने वाली प्रयोगात्मक सुविधाओं की एक उल्लेखनीय विशेषता मल्टिपल न्यूट्रोन स्पेक्ट्रोमीटर कण्ट्रोल सिस्टम है। आठ स्पेक्ट्रोमीटरों को प्रयोग में लाया जायेगा और इनमें से प्रत्येक स्वतन्त्र अनुसन्धान में संलग्न दल के लिए उपलब्ध होगा। किन्तु, उन सब स्पेक्ट्रोमीटरों का एक ऐसे गणक यन्त्र द्वारा नियन्त्रण किया जायेगा, जिसका यान्त्रिक मस्तिष्क ३२,००० शब्दों को संग्रह करने में समर्थ है।

'एच० एफ० बी० आर' का संचालन उस प्रयत्न की सफलता का द्योतक है, जो लगभग ९ वर्ष पूर्व, १९५६ में, ब्रुक हैवन के वैज्ञानिकों द्वारा प्रारम्भ किया गया था। इसका उद्देश्य एक ऐसा प्रतिक्रियावाहक यन्त्र तैयार करना था, जो प्रयोगशाला की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके।

३. हृदय-फुफ्फुस विकार सम्बन्धी योजना

देश के अन्य भागों के लोगों की तुलना में उत्तर भारत के लोगों को 'कौर पुलमोनेल' नामक हृदय-रोग अधिक क्यों होता है? इस प्रश्न ने चिकित्सा-विशेषज्ञों को एक लम्बे अर्से से हैरान कर रखा है। किन्तु, यदि नई दिल्ली के एक मेडिकल कालेज में अमेरिकी सहायता

से कार्यान्वित एक अनुसन्धान-योजना की प्रगति जारी रही, तो वह दिन दूर नहीं, जब इस प्रश्न का और इससे सम्बद्ध अन्य प्रश्नों का उत्तर पाना सम्भव हो जायेगा।

इस योजना को १९६२ में लेडी हार्डिंग मेडिकल कालेज की प्रोफेसर डा० एस० पद्मावती ने प्रारम्भ किया था। अब इस योजना की अवधि तीन वर्ष और बढ़ा दी गयी है, ताकि वह इस घातक रोग की उत्पत्ति और कारण सम्बन्धी अपनी खोज जारी रख सकें। उन्हें इसके लिए ७,७०० डालर (३६,६०० रुपये) का वार्षिक अनुदान दिया गया है। वैसे तो यह रोग सारे देश में पाया जाता है, किन्तु उत्तरी क्षेत्रों में उसकी तीव्रता अधिक है।

'कोर पुल्मोनेल' की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि यह एक हृदय-धमनी सम्बन्धी विकार है, जो ऊतकों में विनाशक परिवर्तनों के कारण फेफड़ों के रक्त-प्रवाह के विरुद्ध अधिकाधिक प्रतिरोध के फलस्वरूप उत्पन्न होता है।

चिकित्सा-विशेषज्ञों के अनुसार, यह रोग दिल्ली के अस्पतालों के समक्ष उपस्थित सार्वजनिक स्वास्थ्य सम्बन्धी एक प्रमुख समस्या है। अमेरिका के राष्ट्रीय स्वास्थ्य-संस्थान (नैशनल इन्स्टिट्यूट औव् हैल्थ) द्वारा दिये गये उपर्युक्त अनुदान से इस बात का पता लगाने सम्बन्धी प्रयास में सहायता मिलेगी कि इस रोग की तीव्रता भारत, और विशेष रूप से उत्तर भारत में, इतनी अधिक क्यों है।

लेडी हार्डिंग कालेज द्वारा किये गये एक पंच-वर्षीय सर्वेक्षण से पता चला है कि दिल्ली में हृदय की बीमारी से ग्रस्त रोगियों में से २० प्रतिशत को लगातार 'कोर-पुल्मोनेल' से पीड़ित होने के कारण वह बीमारी होती है। यह प्रतिशत विश्व के किसी गैर-औद्योगिक नगर की दृष्टि से सब से ऊँचा है।

भारत में स्थायी कोर-पुल्मोनेल का निदान अभी भी ज्ञात नहीं है। अभी तक की गयी खोजों के अनुसार, यह रोग पौष्टिक आहार प्राप्त न करने वाली जनसंख्या का बार-बार फेफड़े सम्बन्धी रोग (पुल्मोनरी) के दौरे आने और उसका उपचार न होने के प्रभाव के कारण उत्पन्न हो सकता है। यह एक ऐसा प्रभाव है, जो शहरों की गन्दगी, उपले के धुएं और जाड़े की कड़ी ठण्ड के फलस्वरूप, तीव्र और कभी-कभी प्रारम्भ भी होता है, क्योंकि ऐसी स्थितियों में बहुत से लोगों को गन्दी और हवा-रोशनी विहीन झोपड़ियों में रहना पड़ता है।

१९५८ से १९६२ तक की अवधि में, लेडी हार्डिंग अस्पताल में जितने रोगी भर्ती हुए, उनमें से ५ प्रतिशत पुल्मोनेल से पीड़ित थे। इसके अलावा, उस अवधि में हृदय-विकार से पीड़ित जितनी महिलाएँ इस अस्पताल में उपचार के लिए आयीं, उनमें से १८ से २८ प्रतिशत कोर-पुल्मोनेल की मरीज थीं। इस अवधि में, रोग या अन्य 'प्राकृतिक' (चिकित्सा-रोगी के अन्तर्गत आने वाली) पीड़ाओं से हुई मौतों में ७ से १२ प्रतिशत तक तथा हृदय-रोगों से हुई मोतों में १७ से ३१ प्रतिशत तक मौतें पुल्मोनेल के कारण हुई। इसके विपरीत, बेल्लूर (मद्रास राज्य) के क्रिश्चियन मेडिकल कालेज अस्पताल में १९५७ से १९६२ तक की अवधि में भर्ती रोगियों के सर्वेक्षण से पता चला है कि समस्त रोगियों में से केवल ०.३७ प्रतिशत से १.९२ प्रतिशत तक और हृदय-रोगियों में से ०.८ प्रतिशत से ३.५ प्रतिशत तक ही कोर-पुल्मोनेल से पीड़ित थे।

उत्तरी और दक्षिणी क्षेत्रों के बीच पाये गये इस अन्तर की पुष्टि कश्मीर में किये गये सर्वेक्षण के परिणाम से भी हुई है। श्रीनगर में हृदय की गति रुकने का सबसे प्रमुख कारण कोर-पुल्मोनेल रहा है।

डा० पद्मावती को जो अनुदान मिला है, वह नैशनल इन्स्टिट्यूट आफ हेल्थ की ओर से दिया गया है। यह अमेरिकी सरकार के स्वास्थ्य, शिक्षा और कल्याण विभाग का अंग है। नैशनल इंस्टिट्यूट आफ हेल्थ विश्व के चिकित्सा-अनुन्धान सम्बन्धी सबसे बड़े केन्द्रों में एक है। इसके अन्तर्गत ६ संस्थान, जो प्रयोगशालाओं में स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रमुख समस्याओं का अध्ययन करते

हैं, और तथा एक क्लिनिकल सेण्टर, जो वाशिंगटन, डी० सी०, के निकट बेथेस्डा में स्थापित है, सम्मिलित हैं। नैशनल इन्स्टिट्यूट आफ हेल्थ स्वास्थ्य अनुसन्धान सम्बन्धी एक कार्यक्रम की प्रशासनिक व्यवस्था भी करता है, जो विश्व के सभी भागों की निजी और सार्वजनिक संस्थाओं में अमेरिकी सहायता और सहयोग से कार्यान्वित है।

आशा है कि कोर-पुलमोनेल के सम्बन्ध में कार्यान्वित इस भारत-अमेरिकी सहकारी अनुसन्धान योजना के परिणामों से हृदय रोगों के विषय में जानकारी बढ़ेगी। हृदय-रोग के विशेषज्ञों का कहना है कि मनुष्य के शरीर में सबसे मजबूत मांस पेशी हृदय है। यह सबसे टिकाऊ रक्त-वाहक यन्त्र भी है। इसका वजन आधे पौण्ड से लेकर ३/४ पौण्ड तक होता है। इसका व्यास उसके सबसे चौड़े भाग (तले) पर ४½ से लेकर ६ इंच तक होता है।

यद्यपि मनुष्य का हृदय सक्रिय होने पर १/६० अश्वशक्ति के बराबर और आराम के समय केवल १/८०० अश्वशक्ति के बराबर शक्ति उत्पन्न करता है, फिर भी, यह प्रतिदिन ५ से १० टन तक रक्त पंप करता है और प्रति मिनट इससे होकर शरीर का समस्त रक्त गुजर जाता है। प्रत्येक धड़कन पर हृदय लगभग ३ औंस रक्त पंप करता है; एक घण्टे में यह उस मनुष्य के बराबर श्रम कर लेता है, जो १५० पौण्ड वजनी सिमेण्ट की थैली सिर पर रख कर सड़क से एक तीन मंजिले मकान की छत पर जाता है।

किन्तु, हृदय की इतनी शक्ति और मजबूती के बावजूद, भारत में और संसार के अन्य भागों में भी होने वाली कुल मौतों के एक बड़े प्रतिशत का कारण हृदय और रक्तवाहिनी-धमनी सम्बन्धी रोग हैं। अब अनुसन्धान सम्बन्धी अध्ययनों में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के फलस्वरूप घातक हृदय-विकारों पर विजय प्राप्त करने की दिशा में सही अर्थ में एक संयुक्त प्रयास हो रहा है।

४. नियन्त्रित करने वाली मस्तिष्क-शिरा

बन्दर ने अपने पिंजड़े के एक कोने से एक व्यक्ति को केले का टुकड़ा रखते तथा उसे एक धातु से ढकते हुए देखा। उस व्यक्ति ने पहले प्याले के समीप एक दूसरा प्याला रखा।

तत्पश्चात् उस बन्दर और उन प्यालों के मध्य एक पर्दा लटका दिया गया था। उसके ५० सैकिण्ड बाद वह पर्दा उठा दिया गया था और उस पशु को उनमें से एक को चुनने के लिए छोड़ दिया गया था। इस सम्बन्ध में की गयी १०० जाँचों में से ८० जाँचों में वह बन्दर उस प्याले को चुनने में सफल हो गया था जिसके नीचे केले का टुकड़ा रखा गया था।

यहाँ आकर मनुष्य और बन्दर में पायी जाने वाली समानता का अन्त हो गया।

शिकागो विश्वविद्यालय में स्नायु रोगों से सहायक प्रोफेसर, डा० सिडनी शुलमैन ने बेहोश किये गये बन्दर के मस्तिष्क का बड़ा ही पेचीदा आपरेशन किया।

उन्होंने उस बन्दर के मस्तिष्क में क्षीण शक्ति वाला आइसोटोप, इटरियम ९० प्रविष्ट कर दिया। सावधानी बर्ते जाने के फलस्वरूप विकिरण से मस्तिष्क के तनिक से भाग को ही क्षति पहुँची। उसके पश्चात्, वह बन्दर उस प्याले को पहिचानने में और जीव-जन्तुओं की तुलना में अधिक समझदारी का परिचय देने में असफल रहा। वास्तव में, वह बन्दर कुछ ही क्षणों के बाद यह याद नहीं कर सका कि किस प्याले के नीचे केले का टुकड़ा मौजूद था।

उस बन्दर की अल्पकालीन स्मरण शक्ति बिल्कुल जाती रही थी। किन्तु उसकी दीर्घकालीन स्मरण शक्ति पर अपेक्षाकृत कम प्रभाव पड़ा था।

कुछ थोड़ी सी बड़ी नस्लों के पशुओं और मनुष्य में देखने, और कुछ समय तक स्मरण रखने और अस्थायी महत्व की जानकारी को प्रयोग में लाने और फिर उसे भूल जाने की क्षमता मौजूद है। प्रोफेसर शुलमैन आपरेशन द्वारा स्मरण शक्ति के सम्बन्ध में मस्तिष्क के एक विशेष भाग के विषय में अनुसन्धान कर रहे थे, जो संक्षिप्त कालिक उपयोग के लिये हाल की घटनाओं की स्मृति बनाये रखता है और उनकी उपयोगिता न रहने पर उनकी स्मृति जाती रहती है।

मस्तिष्क का थैलेमस नामक भाग भूरे पदार्थ का अण्डाकार पिण्ड है। वह मस्तिष्क के ऊपरी भाग में स्थित है और उसकी शल्य-चिकित्सा करना बिल्कुल असम्भव हैं। इसमें कुछ ऐसे विशेष क्षेत्र हैं जो मस्तिष्क के उस बाहरी भाग से जुड़े हुए हैं, जिस में सोचने-समझने की शक्ति मौजूद है।

एक ऐसा क्षेत्र डोर्सो-मेडियल (डी० एम० एन०) है जो मस्तिष्क के ऊपरी भाग में है और कोमल शिरा तन्तुओं द्वारा मस्तिष्क के ऊपरी भाग से जुड़ा है।

प्रोफेसर शुलमैन ने मस्तिष्क के उस भाग (डी० एम० एन०) के सम्बन्ध में जाँच-पड़ताल करने के लिए एक परीक्षण करने का निश्चय किया। विकिरण के प्रभाव से 'डी० एम० एन०' नामक भाग क्रियाशून्य हो गया और उससे मस्तिष्क के दूसरे भागों को कोई क्षति नहीं पहुँची।

अरेगोन कैंसर रिसर्च हास्पिटल (इस अस्पताल का संचालन शिकागो यूनिवर्सिटी अमेरिकी अणुशक्ति कमिशन के लिये करती है) द्वारा विकसित एक संवेदनशील तथा अत्यन्त सही विधि का प्रयोग कर प्रोफेसर शुलमैन ने बेहोश किये गये बन्दरों की थैलमिक न्यूक्लिई (मस्तिष्क सम्बन्धी सूक्ष्म कोष) में इस्पात की एक पतली और खोखली सुई प्रविष्टकर दी। इट्रियम-९० के कुछ सूक्ष्म कण भी साथ ही प्रविष्ट कर दिए गये। चूँकि, इस की रेडियो-सक्रियता शीघ्र ही समाप्त हो जाती है, अतएव कुछ ही दिनों में इट्रियम-९० की विनाशक क्षमता नष्ट हो गई।

चूहे....चूहे और, चूहे

इनसे भगवान ही बचाए। कहते तो यह हैं कि भगवान ने सृष्टि में एक तिनका भी व्यर्थ नहीं बनाया; रज-रज और कन-कन की अपनी उपयोगिता रहती है। यह दूसरी बात है कि वह महत्व हम कब समझ पायें। किन्तु चूहे हानि ही हानि के अतिरिक्त कुछ लाभ भी दे सकते हैं क्या, इस विषय में विज्ञान के पास कहने को कुछ भी नहीं। संसार में तीव्रतम गति से तो ये फलते-फूलते हैं (प्रति मास, प्रत्येक मादा ६ बच्चे देने में समर्थ रहती है!); कुल ४-५ वर्ष की औसत आयु लेकर आते हैं किन्तु उतने में ही तोबा-तोबा करा लेते हैं। प्रति वर्ष २-४ इंच बढ़ सकने वाले इनके दाँतों को सीमा में रखने के लिए पैदा होते ही इन्हें कुछ न कुछ कुतरने को चाहिये अन्यथा वे बढ़ते दाँत इन्हीं को चीर कर रख देंगे। बस, 'कुछ न कुछ' की ही सूची में संसार की कोई भी चीज नहीं बच पाती—किताब, कपड़ा, अनाज, लकड़ी, यहाँ तक कि ईंट, पत्थर और लोहा भी। यह तो यह, महामारी प्लेग जैसे विनाशकारी रोग को फैलाने में इनका इतना बड़ा हाथ रहा है कि इन्हें तो सृष्टि से ही देशनिकाला दिया जाए, तभी जान बचे। सोचिए, संसार में अब तक जितने विश्वयुद्ध हुए, उनमें मारे गए मनुष्यों की गिनती, इन चूहों द्वारा महामारियों के शिकार हुए मनुष्यों की गिनती के पासंग में भी नहीं आती।

सम्पादक के नाम पत्र

विज्ञान के हिन्दी लेखक

३ अप्रैल, १९६६ के धर्मयुग में पृ० १८।३५ पर श्री० रमेशदत्त शर्मा का उपरोक्त परिचयांकन पढ़ा—और दुबारा-तिबारा पढ़ा। 'मौन मनीषियों' को चुन-चुन कर अपनी लेखनी द्वारा वाचा देकर विद्वान लेखक ने उन्हें उपकृत किया है, इसमें सन्देह नहीं। यों भी लेख में आद्योपान्त सामान्यगत चुने हुओं का उल्लेख मात्र, विशेषगत चुने हुओं का तनिक विस्तृत परिचय और गिने-चुनों का चित्रमय परिचय ही पढ़ने को मिला है। कदाचित् सीमित कलेवर में इससे अधिक का समावेश सम्भव भी नहीं था। जिनसे मेरा घनिष्टतम परिचय है, उन कुछ के चित्रों के बारे में आकांक्षा यह अवश्य रही कि उनके चित्र आजकल के होते तो अच्छा रहता। प्रकाशित चित्र व्यतीतावस्था के हैं, जिनसे व्यक्तित्व का सही परिचय न मिल पायेगा।

इस पत्र के लिखने का मुख्य उद्देश्य दो प्रश्न प्रस्तुत करना है—

(१) क्या वास्तव में चर्चित लेखकों को इस अधूरे-सधूरे विज्ञापनात्मक परिचय की अपेक्षा थी? यदि वास्तविक परिचय-प्रकाशन की उन्हें आकांक्षा थी तो क्या इतने भर से उनकी तुष्टि हो सकेगी?

(२) लेख के उत्तर-भाग में जिन अधिक महत्वपूर्ण विज्ञान-सेवियों का मात्र उड़न-उल्लेख (flying reference) किया है, और 'सूची बेहद अधूरी है'—कह कर जिन अनेक अचर्चित विज्ञान के हिन्दी लेखकों को अछूता छोड़ दिया है, उनके प्रति न्याय हुआ माना जाए?

'विज्ञान के हिन्दी लेखक' शीर्षक में स्पष्टतः दो श्रेणियाँ आ जाती है—१. पाठ्यपुस्तकों के लेखक, २. सरल साहित्य-लेखन द्वारा विज्ञान के प्रचारक-लेखक। पाठ्यपुस्तकों को आज जिस दुरवस्था में पटक कर उनसे पाई-पैसा कमाने का काम लिया जा रहा है, वैसी व्यवसायात्मक लेखन या सम्पादन की प्रवृत्ति को सेवा नहीं कहा जा सकेगा। वैसे लेखकों, अनुवादकों की निरर्थक सूची काफी लम्बी बनायी जा सकती है। इसके विपरीत, राष्ट्र-निर्माण की दिशा में विज्ञान को घर-घर और जन-जन की लोकप्रिय वस्तु बनाने में सरल विज्ञान के साहित्यिकों का मासिक विज्ञान, विज्ञान-लोक, विज्ञान जगत, विज्ञान प्रगति (हमारे राष्ट्र के लिये ४-५ विज्ञान पत्रिकाएँ कम थोड़े ही हैं) जैसी पत्रिकाओं के नियमित लेखकों का महत्व कहीं अधिक है। पूर्वाग्रहग्रस्त अनेक सम्पादकों की संकीर्ण मनोवृत्तियाँ यदि सुधर सकतीं तो सरल विज्ञान के हिन्दी साहित्य में अवश्य अभिवृद्धि हो सकती। उपकार तो तब होता, जब पुस्तकाकार न सही, परिचयांक के रूप में ही कोई विज्ञान-पत्रिका भारत के हिन्दी विज्ञान-लेखकों के कृतित्व और व्यक्तित्व की ईमानदारी से चर्चा करते हुए एकाध विशेषांक ही प्रकाशित करती। तभी सामान्य पाठक तथा विशेषतः छात्र-वर्ग अपनी रुचि के लेखक से सीधा सम्पर्क भी स्थापित करके लाभान्वित हो सकता।

श्यामसरन अग्रवाल 'विक्रम'
एम० ए०
६।६२ ए, मोती कटरा, आगरा (उ० प्र०)

कृषि विश्वविद्यालयों की आवश्यकता

सन् १९८१ तक भारतीय जनता के उदर पोषण के लिए आवश्यक होगा कि वर्तमान अन्नोत्पादन को द्विगुण कर दिया जाय। किन्तु यह किस प्रकार सम्भव है ?

अमरीका के विख्यात कृषि विशेषज्ञ प्रो० रोजर रेवेले ने यह सुझाव रखा है कि आसाम, गुजरात, केरल, मध्यप्रदेश, मद्रास, मैसूर, उड़ीसा, पंजाब तथा राजस्थान में कम से कम एक-एक कृषि विश्वविद्यालय स्थापित हों जिससे प्रत्येक के द्वारा ३-५ करोड़ कृषक लाभान्वित हो सकें। आन्ध्र, बिहार, महाराष्ट्र, तथा पश्चिमी बंगाल में से प्रत्येक में दो-दो और उत्तरप्रदेश में कम से कम तीन विश्वविद्यालय स्थापित होने चाहिए। ऐसा हो जाने से १९८१ तक १,२७००० स्नातक कृषिशास्त्र के विभिन्न विषयों में दक्षता प्राप्त कर लेंगे। इस योजना में जो व्यय होगा वह कृषि पर होने वाले वार्षिक व्यय का केवल ३-४% होगा।

इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार लगभग २० नवीन कृषि विश्वविद्यालयों की स्थापना हो जाने से उनका कार्य-क्षेत्र संकुचित रहेगा जिससे उनके साथ अन्य कृषि कालेजों के सम्बद्ध होने की आवश्यकता नहीं रह जायगी; किन्तु यह आवश्यक होगा कि जो भी प्रदर्शन फार्म या प्रयोगात्मक फार्म बनें वे प्रत्येक विश्वविद्यालय के सम्पूर्ण कार्य-क्षेत्र में वितरित हों।

किन्तु क्या मात्र विश्वविद्यालय खुल जाने से कार्य पूरा हो सकेगा ? नहीं। देश को कृषि इंजीनियरों की नितान्त आवश्यकता है। जब तक वे भूमि की सिंचाई-आवश्यकता या फसल की जल-आवश्यकता से परिचित नहीं होंगे, इस देश में लगातार अन्न का अभाव बना रहेगा।

क्या आजकल जितने विद्यार्थी कृषि कालेजों से पढ़ कर निकलते हैं वे अन्नोत्पादन में हाथ नहीं बटा सकते ? उत्तर होगा नहीं। इस देश में कृषि-विज्ञान में शिक्षित होने का तात्पर्य यह है कि जितने भी स्नातक निकलेंगे वे कहीं नौकरी ढूँढ़ेंगे जिसका कृषि से कोई सरोकार नहीं होगा। यहाँ तक कि किसान का लड़का भी कृषि विज्ञान पढ़ने के बाद खेतों में जाकर खेती नहीं करता—उसे नौकरी प्रिय लगती है। इस प्रवृत्ति का कारण यह है कि हमारे शिक्षित युवक अपनी प्रतिभा एवं अपने ज्ञान को व्यवहार में नहीं लाना चाहते; वे कृषि कर्म को हेय समझते हैं। जिस दिन युवकों में यह भावना जागरित हो उठेगी कि उनके ज्ञान का उपयोग खेतों में काम करने पर ही हो सकेगा, उस दिन देश में अन्नसंकट नहीं रह जावेगा।

इस दृष्टि से कृषि विश्वविद्यालय महत्वपूर्ण होंगे। इससे अनुसन्धान एवं शिक्षा के बीच ऐसा सामञ्जस्य स्थापित हो जावेगा कि स्नातकों को कृषि कार्यों में रुचि उत्पन्न होगी। बिना रुचि-परिवर्तन के किसी प्रकार से अन्न-समस्या को हल कर पाना कठिन होगा।

विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका

वैज्ञानिक अनुसन्धान से सम्बन्धित हिन्दी की प्रथम शोध पत्रिका

त्रैमासिक

जिसमें गणित, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, प्राणि शास्त्र, वनस्पति शास्त्र तथा भूगोल शास्त्र पर मौलिक एवं शोधपूर्ण निबन्ध प्रकाशित होते हैं। भारतवर्ष की विविध प्रयोगशालाओं के उत्कृष्ट निबन्धों को इसमें स्थान दिया जाता है।

विश्व की सभी प्रमुख वैज्ञानिक संस्थाओं, पुस्तकालयों तथा विश्वविद्यालयों द्वारा यह पत्रिका समादृत है।

सामान्य सदस्यों के लिए वार्षिक शुल्क ८ रु०। 'विज्ञान' के सभ्य ४ रु० अतिरिक्त वार्षिक शुल्क देकर अनुसन्धान पत्रिका प्राप्त कर सकते हैं। यह पत्रिका अभी त्रैमासिक है किन्तु भविष्य में द्वैमासिक होने की सम्भावना है।

प्रधान सम्पादक—डा० सत्य प्रकाश

प्रबन्ध सम्पादक—डा० शिवगोपाल मिश्र

मंगाने का पता

विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका,

विज्ञान परिषद्,

थार्नहिल रोड,

इलाहाबाद—२

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आंध्रप्रदेश के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों, कालिजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

प्रकाशक—डा० बल्देव बिहारी लाल सक्सेना, प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।

मुद्रक—लक्ष्मी प्रसाद पांडेय, नागरी प्रेस, दारागंज, इलाहाबाद।

विषय-सूची

विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका

वैज्ञानिक अनुसन्धान से सम्बन्धित हिन्दी की प्रथम शोध पत्रिका

(त्रैमासिक)

जिसमें गणित, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, प्राणि शास्त्र, वनस्पति शास्त्र तथा भूगोल शास्त्र पर मौलिक एवं शोधपूर्ण निबन्ध प्रकाशित होते हैं। भारतवर्ष की विविध प्रयोगशालाओं के उत्कृष्ट निबन्धों को इसमें स्थान दिया जाता है।

विश्व की सभी प्रमुख वैज्ञानिक संस्थाओं, पुस्तकालयों तथा विश्वविद्यालयों द्वारा यह पत्रिका समादृत है।

सामान्य सदस्यों के लिए वार्षिक शुल्क ८ रु०। 'विज्ञान' के सभ्य ४ रु० अतिरिक्त वार्षिक शुल्क देकर अनुसन्धान पत्रिका प्राप्त कर सकते हैं। यह पत्रिका अभी त्रैमासिक है किन्तु भविष्य में द्वैमासिक होने की सम्भावना है।

मंगाने का पता

विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका,

विज्ञान परिषद्,

थार्नहिल रोड,

इलाहाबाद—२

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुखपत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति। विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ० ३।५।

भाग १०३ | वैशाख २०२३ विक्र०, १८८७ शक मई १९६६ | संख्या २

दीमक तथा उसका नियंत्रण

वीरेन्द्रनाथ सिंह एम० एस०-सी० (लखनऊ)

कीट-पतंगों के आइसाप्टेरा समूह के जीवों को लोग बहुधा दीमक कहते हैं। सम्भवत: ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा जिसने दीमक का नाम न सुना हो। सम-शीतोष्ण क्षेत्रों में दीमक बन, वृक्षों तथा उनकी लकड़ियों तथा मकान बनाने की लकड़ी के सामानों को क्षति पहुँचाती है। उष्ण कटिबन्ध में भी यह ऐसी ही क्षति पहुँचाती है परन्तु इसके अलावा अन्य भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुओं तथा उपयोगी पेड़ तथा पौधों को भी हानि पहुँचाती है।

दीमक चीटियों से भिन्न होती है। दीमक की कमर चींटी की कमर से मोटी होती है। कभी-कभी पंखदार चींटियाँ और पंखदार दीमक एक सी मालूम होती हैं। दीमक के पंखों के जोड़े एक ही लम्बाई के होते हैं, परन्तु चीटी के अगले पंखों का जोड़ा बड़ा तथा पिछले पंखो का जोड़ा छोटा होता है। चींटियों के पंख पारदर्शक तथा शरीर से लम्बे नहीं होते हैं परन्तु पंखधारी दीमक के पंख अपारदर्शक तथा शरीर से लम्बे होते हैं। कीट पहचानने के विशेषज्ञों द्वारा इनका जो वर्गीकरण किया गया है वह सारिणी (१) में अंकित है।

सारिणी संख्या (१) – शरीर-रचना के आधार पर ही प्राणी जगत का वर्गीकरण किया गया है। भिन्न-भिन्न वर्ग के प्राणियों के विशेष लक्षणों के आधार पर उन्हें मुख्य भागों में विभक्त किया गया है, जैसा कि निम्न लिखित सारिणी से विदित है :—

क्रम-संख्या	प्राणी संसार या जीव-जन्तु संसार		विशेषतायें तथा उदाहरण
(१)	प्राणी संसार का भाग	अपृष्ठ वंशधारी	
(२)	मुख्य वर्ग	आर्थोपोडा	
(३)	वर्ग	कीट वर्ग	
(४)		टेरीगोटा	पंखधारी कीट
(५)	उप वर्ग	एक्सोप्टेरीगोटा	
(६)	उच्च विभाग	ब्लाटोयडिया	क्रमशः २

क्रम संख्या	प्राणी संसार या जीव जन्तु संसार		विशेषतायें तथा उदाहरण
(७)	विभाग	ग्राइसाप्टेरा	
(८)	कुटुम्ब	टरीमटाइडी	जाति समुदाय	अन्तर्गत जाति

भारतवर्ष में पाई जाने वाली प्रमुख दीमकों के वैज्ञानिक नाम
हिमालय पर्वत पर पाई जाने वाली प्रमुख दीमकों के वैज्ञानिक नाम

Assmuthi. Hlmgr-abesus. Remb. obesi. Himgr. heimi. wasm. Sp. Wroughtoni, Desn.

भारतवर्ष में कई प्रकार के दीमक पाये जाते हैं। यहाँ पर अलग-अलग भाषा में इन्हें अलग-अलग नाम से पुकारा जाता है

सारिणी संख्या (२)—भारतवर्ष के विभिन्न भाषाओं के प्रदेश तथा वहाँ पर दीमक के स्थानीय नाम निम्नलिखित हैं :—

क्रम संख्या	विभिन्न भाषा के प्रदेश	दीमक के स्थानीय नाम
(१)	मध्य प्रदेश	वमीठा (दीमक का उप-निवेश), दीमक, दिउक, पाँखी, उदही, उदी, उट्टी।
(२)	उत्तर भारत	ईशलु, इशल, दीमक, दिउंक, पाँखी।
(३)	मलावार	चिथल, चिदालू, पट्ट।
(४)	हजारी बाग	देवत्त।
(५)	बिहार, राँची	दियार, दीयार, दीमक, मुस्का।
(६)	उड़ीसा	झरिया, ऊली।
(७)	तामिल प्रांत	करयन, करायां।
(८)	गुजरात	उदई, उधेर, उधेय।
(९)	मराठी प्रान्त	वलाबी।
(१०)	जालन्धर तथा रावलपिन्डी के कुछ भाग।	सैक, सेयाँक।
(११)	पंजाब, झेलम, जालन्धर, होशयारपुर, लायलपुर, मुलतान।	सिवि, सियोक, या सिओक, सैयोंक।
(१२)	बिलासपुर	सौधीं।
(१३)	बंगाल	बादला पोका, बे बे।
(१४)	मालवा	उदेही, उदी, ऊही।

भारत में अधिकतर पाई जाने वाली दीमकों के नाम निम्नलिखित हैं :—

ओडोन्टोटरमीज, असमुथी, आडोन्टोटरमीज ओबेसस, माइक्रोटरमीज ओबेसो, ट्रीनेरवीटरमीज हाइमी, आरकोटरमारपसिस स्पे०, टरमोपसिस राटोनी, आदि। भारत में दीमक से क्षति ग्रस्त क्षेत्र निम्नलिखित है :—

फलों के वृक्ष, तरकारी की फसलें, सजावट के पौधे, खेतों की फसलें, आर्थोत्पादक उद्यान, बन के वृक्ष तथा लकड़ी, खादें, अन्न के भन्डार, कागज, सूती ऊनी व जूट के मिलों के सामान, मानव निवास के स्थान जिनका विशेष विवरण सारिणी संख्या (३) से विदित होता है।

सारिणी संख्या (३)—दीमक से क्षति ग्रस्त क्षेत्र, हानि के पात्र तथा उनके ढंग और प्रकृति

क्रम संख्या	क्षति की मात्रा	हानि के पात्र	हानि के ढंग और प्रकृति
(१)	फलों के वृक्ष	चीकू, नीबू, अमरूद, अनार, आम, अँगूर, आदि नरसरी के पेड़।	आक्रमण के स्थान :— जड़, तना, शाखा। पहले छाल पर फिर फ्लोएमस तक और वहाँ से पिथ तक। विशेष स्थान ग्राफ्ट पर।
(२)	तरकारी की फसलें	बैंगन, मिर्च, आलू, सेम।	जमीन से लगे भाग तथा जड़ पर।
(३)	सजावट के पौदे	गुलाब, गुलदावदी, सूरजमुखी।	जड़ों पर तथा गुलाब की कलम पर।
(४)	खेतों की फसलें	गेहूँ, धान, जौ, जई, ईख, अरहर, मूंगफली, कपास, जुआर, कुसुम, टोपआका।	जड़ों पर, गन्ने की पेड़ी या पेड़ों की आँखों को नष्ट कर देते हैं और परिणामतः जमाव में कमी हो जाती है।
(५)	आर्थोत्पादक उद्यान	चाय, काफी, सुपारी, नारियल।	जड़ों तथा तने पर आक्रमण होता है।
(६)	बन के वृक्ष तथा लकड़ी	देवदार, साखू, शीशम, आदि तथा वन वृक्षों की बल्लियों, शहतीरों के भन्डार।	स्वस्थ तथा सड़ी हुई लकड़ी या पेड़ के भाग पर सीधे आक्रमण या घास फफूँदी या ह्यूमस द्वारा आक्रमण।
(७)	खादें	गोबर की कच्ची खाद, घुड़साल की खाद, पाशविक खाद।	खेत में इन तीनों खादों से दीमक का आकर्षण होता है तथा वह उनके वनस्पति भाग को भोजन के रूप में ग्रहण करती है। खेत का अंश कम हो जाता है।
(८)	अन्न में भन्डार	सूखे अनाज के भन्डार में जब कि वह लकड़ी का या कच्ची मिट्टी का या सीमेन्ट का बना हो तथा उसमें दरारें पड़ जायँ।	जमीन के छूने लकड़ी के भाग द्वारा या सीधे अन्न पर या भन्डार गृह की दरारों द्वारा दीमक का प्रवेश और आक्रमण होता है।

क्रम संख्या	क्षति की मात्रा	हानि के पात्र	हानि के ढंग और प्रकृति
(९)	कागज, सूती व ऊनी मिल तथा जूट के सामान।	कागज, दफ्ती, किताबें सूती, ऊनी कपड़े के भन्डार, जूट के बने सामान आदि।	सीधे इन सामानों पर आक्रमण होता है या भन्डार गृहों में घुसकर किसी अन्य वस्तु द्वारा।
(१०)	मानव निवास के स्थान।	घरेलू लकड़ी का सामान, फर्नीचर, लकड़ी के चाहार दीवारी वाले लम्बे, मकानों में लगी लकड़ी। यहाँ तक की लोहे में भी।	लकड़ी के सामानों पर सीधे अँधेरे में तथा जमीन से छूते लकड़ी के भाग द्वारा आक्रमण होता है।

टिप्पणी :—इन्डियन इन्सेक्ट (पृष्ठ संख्या ११५) के आधार पर।

दीमक से एक प्रकार का प्रकृति अम्ल भी निकलता है जिससे लोहे में भी आक्रमण हो जाता है तथा सुरंगें बन जाती हैं।

कपड़ों और फर्श बनाने के अन्य सामानों आदि से भी होता है। दीमक वर्ष भर सक्रिय रहते हैं। मानसून में जुलाई से सितम्बर तक दातों में वर्षा का पानी भर जाने से इनकी क्रिया रुक जाती है। इनका आयतन ग्रीष्म ऋतु में अत्यधिक होता है। यह कीट वर्षा के उपरान्त फिर सक्रिय हो जाते हैं, परन्तु खेतों में नमी होने के कारण अधिक नहीं बढ़ते। ऐसे वर्षों में जब वर्षा न्यून होती है और विशेष कर सिंचाई के साधन रहित क्षेत्रों में इस अवधि में भी इनका उत्पात अधिक हो जाता है, जिसके कारण उपज को पर्याप्त हानि पहुँचती है। दीमक हल्की बलुई जमीन में ज्यादा होते हैं। इनकी जनसंख्या उन स्थानों में अधिक होती है जहाँ की जमीन प्राय: दोमट तथा बलुई दोमट है। विख्यात कीट विशेषज्ञ फ्लेचर का अनुमान है कि दीमक विभिन्न जातियों से एशियाई देशों में लगभग २५०,०००,००० रुपये वार्षिक की क्षति होती है। अमेरिका में सन् १९३८ में लगभग १,६०१५,२७,००० डालर की क्षति शत्रु कीटों द्वारा हुई। यह अनुमानित क्षति, शत्रु कीटों से क्षति तथा नियन्त्रण का व्यय जोड़कर की गई है।

अन्य कीट पतंगों की भाँति दीमक अलग-अलग नहीं वरन लाखों की संख्या में परिवार बनाकर सामूहिक जीवन व्यतीत करते हैं। इस सामूहिक या सामाजिक जीवन में सब का काम अलग अलग बँटा होता है। यही कारण है कि इनका आक्रमण बहुत तीव्र होता है। इनके सामाजिक जीवन की प्रकृति का संक्षिप्त अनुमान सारिणी संख्या ४ से होता है।

सारिणी संख्या ४ :—दीमक के सामाजिक जीवन की प्रकृति का संक्षिप्त अनुमान

क्रम संख्या	प्रकृति तथा स्वभाव	साधारण पाई जाने वाली दीमक
(१)	वियम, वमीठा, उपनिवेश या छत्ते का स्थान	लकड़ी में या भूमि में
(२)	छत्ते का सामान	काष्ठ, लकड़ी, मिट्टी

क्रम संख्या	प्रकृति तथा स्वभाव	साधारणतया पाई जाने वाली दीमक
(३)	छत्ते का प्रारम्भ	मादा और श्रमिकों द्वारा
(४)	समजात की प्रकृति	स्थाई या कई वर्षों तक रहने वाली
(५)	मादा परिवार का भोजन (विमटा के अन्दर)	पाचन क्रिया नल द्वारा दिया भोजन, कोट लकड़ी या सेल्यूलाज।
(६)	दलों या समूहों का प्रवाह	होता है।
(७)	सप्त अवस्था के तरीकें	समजात की प्रकृति में।
(८)	भोजन ग्रहण करने के तरीके	प्रगतिशील भोजन दिये जाने की प्रणाली।

दीमक का विवरण

दीमकों के समूह में दो भिन्न-भिन्न प्रकार के प्राणी होते हैं :

(१) प्रजनन क्रियाशील प्रकार :—राजा तथा रानी दीमक।

(२) नवजात अथवा नपुंसक प्रकार : - रक्षक तथा श्रमिक दीमक।

प्रजनन क्रियाशील प्रकार :—राजा तथा रानी जिनका मुख्य कार्य प्रजनन क्रिया ही होता है प्रारम्भ में इनके पंख होते हैं तथा केवल सूर्य या दिन के प्रकाश में निकलते हैं अन्यथा दीमकों को साधारणतया अंधेरे में पाया जाता है। राजा और रानी दीमक के प्रारम्भ में चार बराबर आकार के पंखें होती हैं, जिनका उपयोग सहवास की उड़ान के समय होता है, ऐसा इनके जीवन काल में केवल एक बार होता है। इस उड़ान के बाद पंख झड़ जाते हैं।

नवजात अथवा नपुंसक जातियाँ

इनको रक्षक और श्रमिक दीमक कहते हैं। इनके पंख जीवन काल में कभी नहीं होते हैं तथा यह लम्बे होते हैं। यह सदा प्रकाश और जलयुक्त वातावरण से दूर रहने की कोशिश करते हैं। यह नर या मादा होते हैं, परन्तु इनके अन्दर प्रजनन क्रिया शीलता की क्षमता नहीं होती है।

श्रमिक दीमक

इनका शरीर लगभग १।४ इन्च लम्बा तथा कोमल, रंग मटमैला-सफेद तथा सिर का भाग सुनहला-चमकीला होता। दीमकों के समूह में इनकी संख्या लगभग ८० से ६० प्रतिशत तक होती है। आँखों से नीचे की ओर को दो जबड़े (त्रिबुकास्थि) होते हैं। जबड़ों में शूल के समान दो दाँत होते हैं। साधारण बोलचाल की भाषा में इस प्रकार के मुँह को काट कर खानेवाले मुँह कहते हैं। इसी मुँह की सहायता से यह श्रमिक दीमक एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचने के लिये रास्ता बनाते हैं। ये मिट्टी एकत्रित करते तथा रानी दीमक द्वारा उत्पन्न अण्डे होते हैं। समूचे परिवार में श्रमिक दीमक ही पेड़ पौधों तथा अन्य वस्तुओं को काट कर नष्ट कर देते हैं। दीमकों के समूह में केवल यही जाति ऐसी है जो कि मानव संसार के लिये सबसे अधिक कष्टप्रद हैं।

रक्षक दीमक

यह श्रमिक दीमक से कुछ बड़े और बलवान होते हैं। इनके सिर का भाग गाढ़े कत्थई रंग का तथा इनके जबड़े बहुत तेज होते हैं। दीमकों के समूह में इनकी संख्या २ से ३ प्रतिशत तक होती है। रक्षक दीमक दो प्रकार के होते हैं। प्रथम बड़े बलबान जबड़े वाले या चिबुक वाले या मैन्डीबलेट टाईप (Mandibulate type) तथा दूसरे सूंड वाले या नसूटी टाईप (Nasutl type) जिनके सिर में एक विशेष प्रकार की सीधी लम्बी सूंड निकली होती है तथा इनमें चिबुक या जबड़े नहीं होते हैं। यह दोनों प्रकार के दीमक अपने परिवार तथा समूह की रक्षा करते हैं। मैन्डीबुलेट टाईप अपने जबड़ों द्वारा रक्षा करते हैं तथा कभी-कभी एक विशेष प्रकार का द्रव भी स्राव करते हैं जिनसे किसी बाहरी

आक्रमणकारी को दूर भगा देते हैं। तथा दूसरे प्रकार के नसूटी टाइप वाले रक्षक दीमक अपने छत्ते या विमटा के रास्ते को, अपनी लम्बी सूंड वाले सिरे से बन्द कर देते हैं जिससे बाहरी आक्रमण के समय अन्य दीमकभक्षी कीटों या जन्तुओं से दीमक परिवार की रक्षा हो जाती है।

रानी दीमक

दीमकों के समूह में अधिकतर केवल एक ही रानी दीमक होती है। प्रारम्भ में यह ३/४ इन्च लम्बी होती है परन्तु धीरे-धीरे यह २ इन्च से ३ इन्च से तक लम्बी हो जाती है। कुछ कीट विशेषज्ञों का अनुभव है कि यह कहीं-कहीं पर ५-६ इन्च तक लम्बी हो जाती है। इनकी आयु ७-८ वर्ष तक हो सकती है। पूरी आयु की रानी दीमक का सिर का भाग बहुत ही छोटा परन्तु धड़ का भाग बहुत लम्बा एवं चौड़ा दिखाई देता है क्योंकि उसमें असंख्य अण्डे भरे होते हैं। इनके एकमात्र कार्य अन्डे देना होता है। कीट विशेषज्ञ पटेल का अनुमान है कि एक रानी दीमक के गर्भाशय में ४००० तक अण्डे पाये गये हैं। रानी दीमक बहुधा भूमि के भीतर के छत्ते में बने एक विशेष कक्ष (केन्द्रीय कक्ष या सम्राज्ञी कक्ष) में गति शून्य पड़ी रहती है। इससे कक्ष के पास गोमज (फफूदीं) तथा काई से भरा एक छोटा सा उपवन होता है। इसी कक्ष में श्रमिकों द्वारा अण्डे सेये जाते हैं। भूमि के अन्दर बने इस पूरे निवास स्थान को दीमक का छत्ता, विटा, बमीठा, उपनिवेश या अंग्रेजी में टरमिटेरियम भी कहते हैं।

राजा दीमक

प्रजनन क्रिया में सहायता पहुँचाने के लिये रानी दीमक के पास केवल एक राजा दीमक होता है। दीमक के समूह की रक्षा अथवा किसी अन्य प्रकार से श्रम से इसे कोई प्रयोजन नहीं होता है।

टिप्पणी :—उपरोक्त चार प्रकार के दीमकों के के अतिरिक्त कुछ थोड़े से पंखधारी दीमक भूमि के भीतर बने छत्ते या सम्रश में रहते हैं। यह एक प्रकार के दीमक होते हैं, जिनको कि दीमकों की प्रजनन क्रियाशील जाति में गिना जा सकता है। इनका रंग भूरा या भूरी सफेद होता है, वर्षा ऋतु की पहली झड़ी के बाद रात्रि के समय बहुधा इन्हें प्रकाश की तरफ उड़ते देखा जाता है। इनकी लम्बाई १ से १½ इन्च तक हो सकती है। इनके पंखो की नसें (Venation) पूर्ण रूप से विकसित नहीं होती तथा साधारणतया पायी जाने वाली पंखधारी दीमक के पंख में नसें अधिक विकसित होती है।

दीमक की जीवनी

बहुधा यह देखा गया है कि वर्ष में एक बार वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में तथा गर्म और नमी युक्त वातावरण में भविष्य के राजा और रानी दीमक अपनी जन्मभूमि का निवास स्थान छोड़ देते हैं तथा रात्रि के समय प्रकाश की ओर अधिक संख्या में उड़ते देखे जाते हैं। कुछ लोगों का कथन है कि कभी-कभी ऐसा दिन में भी होता है। इस विशेष प्रकार की उड़ान को—वैवाहिक उड़ान—कहते हैं। कुछ देर उड़ने के बाद इनके पंख एक स्थान से टूट कर गिर जाते हैं। तदुपरान्त ही ये सहवास करने लगते हैं। इनकी अवस्था इस समय लगभग बीस माह की होती है। सहवास के बाद यह भूमि में घुस जाते हैं तथा एक नया दीमक का छत्ता बना लेता है। इस विशेष उड़ान (वैवाहिक उड़ान) के समय की तथा सहवास की क्रिया के समय इन्हें बहुत से छिपकली जाति के जीव जन्तु, कीड़े तथा अन्य प्रकार के कीट-भक्षी पक्षी खा डालते हैं जिससे इनकी संख्या भी कम हो जाती है। यही कारण है कि इनके जन्म भूमि के निवास स्थान से लगभग आधे मील की दूरी तक इनमें टूटे हुए पंख पाये जाते हैं। सहवास के बाद भविष्य के राजा और रानी दीमक अपने ही बनाये गये छोटे से दीमक के छत्ते में रहने लगते हैं तथा कुछ समय रानी दीमक पहली बार लगभग ८ से १२ अण्डे देती है। धीरे-धीरे अवस्था बढ़ने के साथ रानी दीमक के अण्डे देने की क्षमता में वृद्धि होने लगती है तथा ऐसा भी पाया गया है कि रानी दीमक ५,००० से

८०,००० अण्डे प्रतिदिन देने लगती है। यही कारण है कि अवस्था बढ़ने के साथ-साथ रानी दीमक का शरीर (उदर भाग) बहुत बढ़ जाता है और यह गति शून्य हो जाती है। रानी दीमक द्वारा दिये गये अण्डों में से पहले श्रमिक दीमक निकलते हैं। यह श्रमिक दीमक क्या काम करते हैं इसके बारे में पहले लिखा जा चुका है। रानी दीमक के दिये अण्डों से किस प्रकार अन्य वयस्क दीमकों की उत्पत्ति होती रहती है यह उनके जीवन की अवस्थाओं को देखने से मालूम हो सकता है।

अब समस्या यह उठती है कि एक ही रानी दीमक द्वारा दिये गये अण्डों से कैसे विभिन्न प्रकार के वयस्क दीमक उत्पन्न हो जाते हैं। इसी प्रकार की समस्या चींटी, तथा शहद की मक्खी की जीवनी में भी उठती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस बात में भोजन का महत्व है जो कि "अप्राकृति" होता है। कुछ कीट-विशेषज्ञों का अनुमान है कि "श्रमिक दीमकों" द्वारा भोजन बनाया तथा खिलाया जाता है तथा यही "श्रमिक दीमक" इस भोजन सामग्री में अन्तर कर नवजात दीमक को खिलाते रहते हैं तथा इसी कारण से एक प्रकार के अण्डों से विभिन्न प्रकार के वयस्क दीमक उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार "श्रमिक दीमक" अपनी इच्छा और समूह की आवश्यकता के अनुसार इच्छित संख्या में विभिन्न प्रकार के वयस्क दीमक उत्पन्न कर लेते हैं।

दीमक के छत्ते के अन्दर दीमकों का भोजन

यह मुख्यतः वनस्पतिक रेशों के श्रमिक दीमकों द्वारा चबाया तथा कुछ सीमा तक पचा हुआ भोजन होता है। कुछ दीमक की उप-जातियों में "श्रमिक दीमक" की पाचन क्रिया नली के अगले तथा पिछले सिरे से निकला "भोज्य पदार्थ" भी अन्य नवजात दीमकों को दिया जाता है जिसका एक विशेष प्रकार का पौष्टिक महत्व होता है। यह एक महत्व की बात है कि दीमक के समूह में उत्पन्न होने वाले विभिन्न प्रकार के "वयस्क दीमकों" का तथा 'दीमक के छत्ते' की बनावट और अन्य कार्य प्रणाली का सब प्रकार का शासन "श्रमिक दीमकों" द्वारा नियंत्रित किया जाता है।

साधारणतया दीमकों का भोजन

'सैल्युलोज' नामक पदार्थ है जो पेड़ पौधों तथा उनसे बनने वाली अनेक वस्तुओं (लकड़ी, काष्ठ और कागज आदि) में पाया जाता है। यही कारण है कि दीमक हरे पेड़ पौधों तथा घर में रखे विभिन्न प्रकार के लकड़ी के सामान और कपड़ों तथा पुस्तकों आदि पर आक्रमण करते हैं। कुछ पदार्थ के उदाहरण पहले भी दिये जा चुके हैं, जैसे कि वानस्पतिक पदार्थ, लकड़ी, न पचा हुआ पशुओं का भोजन, फफूँदी (गोमज), सूखे पौधे आदि। दीमकों की 'पाचन क्रिया नली' के अन्दर विशेष प्रकार का 'प्रोटोजोओ' पाया जाता है जो कि सैल्यूलोज' जैसे पदार्थ को पचाने में सहायक होता। यह महत्व की बात है कि यह अत्यन्त ही सूक्ष्म जीव 'प्रोटोजोओ' (पोलीमैस्टोजाइना तथा टाइपरमेस्टी-जाइना) एक दीमक से दूसरे दीमक में जाते रहते हैं जब कि एक दीमक दूसरे दीमक का मल भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं। फफूँदी (गोमज) भण्डार अथवा भूमि के अन्दर बने हुए उप-निवेश में दीमक अपना भोजन स्वयं उगा लेते हैं। फफूँदियों की कुछ उपजातियाँ इस तरह के उपनिवेश में भी पाई गई हैं जिन्हें दीमक भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं। कीट विशेषज्ञ फुल्लउ का मत है कि दीमक की कुछ उपजातियों (आन्डान्टोटरमीज सपै० तथा ट्रीनिरबीटरमीज सपै०) को भूमि के भीतर बने छत्ते या वमीठा में एक विशेष प्रकार का कोष्ठ बना होता है जिसमें दीमक बीजों का संग्रह करते हैं तथा भोजन के रूप में प्रयोग करते हैं, कीट विशेषज्ञ ग्रास्से का मत है कि भूमि के भीतर बने दीमकों के छत्ते में जो गोमज (फफूँदी) का भन्डार होता है वह फफूँदी के पहिचान विशेषज्ञों द्वारा 'एस्कोमाइसीट' तथा 'वैसीडियोमाइसीट' नामकरण किये जाते हैं। यह "श्रमिक दीमकों' के भोजन का एक अंश होता है तथा यह सम्भव है कि दीमकों को इनसे एक प्रकार का

पौष्टिक तत्व (विटामिन) तथा वानस्पतिक नाइट्रोजन प्राप्त होता है।

दीमक के निवास स्थानों का विवरण

दीमक के विभाजन का एक ढंग निम्नलिखित है—

(अ) वन के वृक्षों की लकड़ी में रहने वाली – जो कि नम या शुष्क लकड़ी में रह सकती हैं। इनमें कुछ ऐसी भी उपजातियों की दीमक होती है जो कि केवल वृक्षों की लकड़ी में ही अपना जीवन काल व्यतीत करती है तथा इनका भूमि से कोई सम्बन्ध इनके जीवन काल में नहीं होता है। ए० डी० इम्मस का अनुभव है कि ऐसा स्वभाव हिमालय पर्वत की दीमक आरकोटरमोपसिस में पाया जाता है जो कि देवदार तथा चीड़ जाति के वृक्षों के नम तथा सड़ते हुये तनों में रहती है।

ऐसी दीमकों का निवास स्थान लकड़ी में बनी सुरंगों के समान होता है।

(ब) अधिकतर पाई जाने वाली दीमकें जो भूमि के भीतर रहती हैं यह भी वृक्षों की लकड़ी को हानि पहुँचा सकती हैं परन्तु अपने जीवनकाल में यह भूमि के निवास स्थान से बराबर अपना सम्पर्क बनाये रहती हैं। इनमें से कुछ ऐसी होती हैं जिनके छत्ते का मुख्य भाग भूमि के भीतर होता है ऐसा गेहूँ के खेतों में पाया जाता है। दूसरे प्रकार की भूमि में उहनर वाली दीमकों के छत्ते का ऊपरी माथ एक टीले के समान भूमि के ऊपर उठा रहता है। ऐसा महाराष्ट्र प्रान्त तथा दक्षिण भारत में बहुधा तथा विशेष कर वन वृक्षों के समूह के आसपास पाया जाता है। उपरोक्त कथन कीट विशेषज्ञ पटेल का अनुभव है। ए० डी० इम्मस का मत है कि भारतवर्ष में आडोन्टोटरमीज ओबेसस नामक दीमक द्वारा दोनों प्रकार के निवास स्थान बनाये जाते हैं, परन्तु यह भी सत्य है कि भिन्न-भिन्न दीमक की उपजातियों द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार के निवास स्थान बनाये जाते हैं।

(स) दीमक पृथ्वी के विभिन्न स्थानों पर पाई जाती है। अमेरिका के कीट विशेषज्ञ पी० ए० ग्लिक ने समुद्र के धरातल से ३००० फुट की ऊँचाई तक दीमक की आपत्ति का सर्वेक्षण किया। भारतवर्ष में इसकी तुलना काश्मीर की दीमक से की जा सकती है, तथा ए० डी० इम्मस द्वारा १९१९ में हिमालय पर्वत पर पाई जाने वाली दीमक की उपजातियों का विशेष अध्ययन किया गया। एम० एस० भनी का मत है कि समशीतोष्ण क्षेत्रों में भी इनका आक्रमण तनिक गरम स्थानों में होता है। यथा हवलबाग, चिलियानाला (अलमोड़ा)।

फफूँदियों द्वारा दीमक के आक्रमण को प्रोत्साहन

बहुधा यह देखा गया है कि अंडों को सड़ाने वाली फफूँदी (रूट राट फंगस) निम्नलिखित पौधों पर दीमक को आक्रमण के लिये प्रोत्साहित करती है। जैसे कि कपास, मिर्च, बैंगन, गेहूँ और मूँगफली में बहुधा पाया गया है। यह कीट विशेषज्ञ पटेल का मत तथा अनुभव है।

दीमक का नियंत्रण

१. फल वृक्षों में—

(क) आम की पौधशाला के पेड़ों की जड़ों को दीमक खा जाती है जिससे वे मर जाते हैं। दीमक का आपतन तथा आक्रमण को रोकने के लिये सिंचाई के पानी में क्रूड आयल इमलशन मिला देना चाहिये (५-६ सेर प्रति बीघा)।

(ब) आम के तना, शाखा, छाल में सुरंगें बनाकर और उसके अन्दर रहकर दीमक आम के वृक्षों की छाल खाती हैं। एक भाग क्रूड आयल इमलशन में एक भाग फिनाइल मिला कर छाल पर चुपड़ने में दीमक का आक्रमण बहुत कम हो जाता है।

(ग) आम की कलम (ग्राफ़्ट) के पेड़ों के चारों तरफ की भूमि को ०·२ प्रतिशत डी० डी० टी० सस्पेन्सन से कई बार भिगो दीजिये जिससे दीमक मर

जावेंगे। सिंचाई के पानी में नीम या अण्डी की खली को पानी में देने से दीमकों का आपतन कम हो जाता है।

(घ) बगीचे की सफाई, निराई, तथा बीच की फसलें बोना दीमकों को दूर रखता है।

(च) वृक्षों की जड़ के पास की भूमि को ५ प्रतिशत बी० एच० सी० या १.५ इल्ड्रीन या क्लोरडेन चूर्ण से छिड़किये तथा मिट्टी में अच्छी तरह मिला दीजिये।

(छ) फल वृक्षों के नवजात ग्राफ्ट (कलम) के पौधों पर—इस समय इसको दीमक से बचाना बहुत अवश्यक होता है जिसे वे अच्छी तरह पनप सकें। पौध या बेहन को नयी जगह लगा देने के बाद डी० डी० टी० या टेबल चूर्ण की स्प्रे (घोल) (५० प्रतिशत डी० डी० टी० वेटेबल चूर्ण) जिसके १ पौन्ड को २० गैलन पानी में मिलाना चाहिये। इस घोल को ग्राफ्ट की पौध के चारों तरफ तने पर तथा ग्राफ्ट के स्थान पर अच्छी तरह छिड़कना चाहिये। इस व्यवहार को हर १५ बाद दुहराना चाहिये जब तक कि फिर आवश्यकता न पड़े। दूसरा छिड़काव वर्षा ऋतु (मानसून) के अन्त में करना चाहिये क्योंकि दीमक वर्षा ऋतु में कम आक्रमण करती है। एक तीसरा छिड़काव नवम्बर में बहुत उपयोगी सिद्ध होगा क्योंकि दीमक का आपतन उस समय तथा उसके बाद अधिक होता है।

(ज) फल वृक्षों पर—छोटे पेड़ों पर उपरोक्त ढङ्ग को प्रयोग में लाना चाहिये। बड़े अर्थात् वयस्क फल वृक्षों पर जिनके तने की मोटाई एक फुट या अधिक है ५ प्रतिशत डी० डी० टी० तेल के साथ प्रयोग करना उचित होता है। पहले दीमक द्वारा बनाई गई सुरंगों को ब्रुश से साफ कीजिये तदुपरान्त भूमि से ऊपर १–१।२ फुट तक उपरोक्त तेल युक्त ५ प्रतिशत डी० डी० टी० द्वारा हल्का हल्का भिगो दीजिये। इस पदार्थ के एक गैलन रसायन से ८० पेड़ों पर नियन्त्रण किया जा सकता है। अधिक छिड़काव पेड़ों को कोमल छाल को हानि पहुँचा सकता है। इस छिड़काव का प्रभाव लगभग एक वर्ष तक रहता है। इसका उपयोग बहुत ही कोमल नरसरी या ग्राफ्ट के पौधों पर नहीं करना चाहिये क्योंकि उससे उनकी कोमल छाल को हानि पहुँच सकती है।

बहुत से उद्यानों के मालिक आजकल अण्डी का तेल, कोलतार, लालमिट्टी या गेरू, चूने और कापर-सल्फेट का पेस्ट (लेप) फल वृक्षों में लगाकर दीमकों से उनकी रक्षा करते हैं। परन्तु इससे व्यय अधिक पड़ता है तथा अधिक मात्रा में प्रयोग करना पड़ता है। ऐसा अनुभव पाया गया है कि मैदानी भागों में दीमक का आपतन अक्टूबर से जनवरी तक अधिक होता है। अतः फल वृक्षों पर उपरोक्त प्रयोग वर्षा ऋतु (मानसून) के समाप्त होने पर ही करना चाहिये ताकि वृक्षों की सुरक्षा ठीक से हो सके।

२. दीमकों के निवास स्थानों पर नियन्त्रण के उपाय :—

(क) वर्षा ऋतु में रात्रि के प्रकाश के पास उड़ने वाले पंखधारी-दीमकों को भरसक नष्ट कर देना चाहिये क्योंकि ये ही दीमक आगे चल कर राजा और रानी दीमक में परिवर्तित होकर असंख्य दीमकों को जन्म देते हैं।

(ख) दीमकों के छत्ते, बिमटा, वमीठा या अपनिवेश (टरमिटेरियम) को पूर्ण रूप से नष्ट कर देना चाहिये। परन्तु इनके साथ साथ रासायनिक नियन्त्रण विधियों का प्रयोग भी होना चाहिये। दीमक के छत्ते को नष्ट करके बराबर कर दीजिये तथा उस स्थान के मध्य में ६-१२ इंच तक गहरा छेद बना दीजिये, फिर-धूमद-जैसे कि कार्बन डाई सल्फाइड तथा क्लोरोफार्म का मिश्रण छोड़ा जा सकता है। पेट्रोल भी छोड़ा जा सकता ही परन्तु उसका प्रभाव कम होता है। इसकी मात्रा छत्ते के आकार पर निर्भर करती है परन्तु साधारणतया ८ से १२ औंस तक की मात्रा संतोषजनक परिणाम देती है। यदि दीमक का छत्ता काफी बड़ा हो तो साईनोपम्प द्वारा-साइनोगैस-का प्रयोग छत्ते के छिद्रों द्वारा करना चाहिये। अन्य धूम विषों के स्थान पर मेथाइल ब्रोमाइड का प्रयोग भी किया जा सकता है। यह एक प्रकार की

कांच की बोतलों में मिलता है जिससे कि दीमक के छत्ते में घुसेड़ दिया जा सकता है तथा उसके बाद वह कांच की बोतल तोड़ दी जाती है, जिससे कि धूम विष की विषैली गैस निकल पड़ती है। इससे दीमक मर जाती हैं। परन्तु यह धूम विष-एक बहुत घातक विष है अतः बहुत ही सावधानी के साथ इसका प्रयोग करना चाहिये।

३. तरकारी की फसलों में :—

जड़ों और तनों के आसपास काफी बालू बिछा देना चाहिये जिससे दीमकों का प्रकोप कुछ समय के लिये रुक जाता है। पौधों का वह भाग जो भूमि से लगा हो उसे चूने और गन्धक के मिश्रण (लाईम सल्फर) से लेप कर देना चाहिये। इसके निवास स्थानों के छिद्र में गन्धक तथा संखिया का धूम विष छोड़ देना चाहिये।

४. सजावट के पौधों में :—

दीमक कभी कभी मूल, तना और कलमों को क्षति पहुँचाती है, सिंचाई के पानी में क्रूड-आइल-इमलशन या फिनाइल का हल्का मिश्रण मिला दिया जाय। नरसरी या पौधाशाला के छोटे पेड़ों को हल्के तम्बाकू के काढ़े से सींचिये।

५. खेतों की फसलों में :—

(क) फसल कट जाने के बाद खेतों में कूड़ा, ठूंठ तथा खूटियों आदि न रहने दें।

(ख) खेतों के किनारे किनारे नाली खोद कर उसमें गोबर तथा सूखी पत्तियाँ भर दीजिये। इसमें दीमक आकर एकत्रित हो जायेंगे तथा इस पर मिट्टी का तेल छिड़क कर आग जला देना चाहिये।

(ग) गन्ने के बीज के टुकड़ों को बोने से पहिले उन्हें चूने के पानी, फिनाइल, अथवा कोलतार (अलकतरे) में १६ घन्टे तक भिगोकर रखिये, अथवा गन्ने के बीज के टुकड़ों को ०·२ प्रतिशत डी० डी० टी० (वाटर डिसपरसिबल) घोल में डुबो देना चाहिये। इस घोल को एक पौन्ड ५० प्रतिशत डी० डी० टी० (वाटर डिसपरसिबल चूर्ण) को २५ गैलन पानी में मिलाकर बनाया जा सकता है, अथवा गन्ने के कटे हुए भाग को उपरोक्त घोल के गाढ़े लेप में डुबो दीजिये। महाराष्ट्र में यह प्रचलित है।

(घ) पानी के अभाव के कारण पौधे सूखना प्रारम्भ कर देते हैं, जिससे दीमक के आक्रमण को प्रोत्साहन मिल जाता है। दक्षिण भारत में खेतों तथा गन्ने के बोने के बीज के टुकड़ों को बी० एच० सी० ०·१ प्रतिशत या डी० डी० टी० ०·८ के छिड़काव करने की रीति प्रचलित है।

(च) मध्य भारत में सिंचाई की फसल के लिये, सिंचाई की नाली में बहते हुये पानी में खेत के पास, थोड़ा-थोड़ा क्रूड आयल इमलशन (नक्की का तेल) ५-६ सेर प्रति बीघा की मात्रा से मिलाकर डाल देने की प्रथा है, जिससे दीमक उपद्रव कम हो जाता है।

(छ) ईख के खेतों की नाली में ५ प्रतिशत बी० एच० सी० या ५ प्रतिशत क्लोरडेन का चूर्ण १५ से २० पौन्ड प्रति एकड़ की मात्रा में छिड़कना चाहिये। अथवा एल्ड्रीन के शुद्ध रसायन का चूर्ण या घोल एक पौन्ड प्रति एकड़ की मात्रा में प्रयोग करना चाहिये। उत्तर प्रदेश की ईख अनुसन्धानशाला शाहजहाँपुर का उपयोगी अनुभव निम्नलिखित है।

दीमकों से बचाव केलिये गन्ने की बुवाई करते समय गामा बी० एच० सी० (२० प्रतिशत) के ५ पौन्ड अथवा हैप्टाक्लोर (२० प्रतिशत) के १५ पौन्ड मूल घोल को १५० गैलन पानी में मिला कर कूड़ों में पड़े हुये पेड़ों पर छिड़कवाना चाहिये। ऐसा जनवरी से मार्च तक किया जा सकता है। यदि मई और जून के माह में भी दीमकों का प्रकोप हो जाय तो खेतों की शीघ्र सिंचाई करवा देना चाहिये। यदि बुवाई अक्टूबर या नवम्बर में की जाय तो बी० एच० सी०, क्लोर्डेन, या आल्ड्रीन के ५ प्रतिशत चूर्ण को क्रमशः २०, १५, १० पौन्ड प्रति एकड़ की मात्रा से बोते समय कूड़ों में डाल दिया जाना चाहिये।

(झ) गेहूँ तथा जौ आदि की फसलों में ५ प्रतिशत बी० एच० सी० चूर्ण, १० से १५ पौन्ड प्रति एकड़ की मात्रा में, अथवा २-३ प्रतिशत क्लोरडेन, १५ पौन्ड

प्रति एकड़ की मात्रा में भूमि में मिला देना चाहिये। परन्तु दक्षिण भारत में ५ प्रतिशत बी० एच० सी०, क्लोरडेन, या एल्ड्रीन चूर्ण को खेत की मिट्टी में बोने से पहले या बुवाई के साथ २० से २५ प्रति एकड़ की मात्रा में मिलाते हैं। मूंगफली की फसलों में एल्ड्रीन ३० प्रतिशत के इमलशन का प्रयोग खेतों में करना चाहिये जिसमें २ से ३ पिन्ट रसायन को १५० से २०० गैलन पानी मिलाना चाहिये। वर्ष में एक बार इसका प्रयोग करना चाहिये। धान के खेतों में तथा पौधशाला या नरसरी में एल्ड्रीन के ३० प्रतिशत इमलशन का १ औंस ५ गैलन में मिला कर, २५० गैलन घोल प्रति एकड़ की मात्रा से भूमि पर छिड़कना चाहिये। दक्षिण भारत में टोपयोका के बीज के हेतु टुकड़ों को ०·५ प्रतिशत बी० एच० सी० में डुबाते हैं या बी० एच० सी० के ०·२५ प्रतिशत घोल का छिड़काव करते हैं। उपरोक्त नियन्त्रण की विधियाँ खेतों की अन्य फसलों में भी उपयोगी होती हैं जैसे कि कपास आदि में १ पौन्ड शुद्ध एल्ड्रीन रसायन प्रति एकड़ की मात्रा में उपयोगी होता है।

६. अर्थोत्पादक उद्यानों में :—

जैसे चाय, काफी, सुपारी, नारियल आदि। चाय के बगीचों में एल्ड्रीन ५ प्रतिशत चूर्ण का प्रयोग ४० से ६० पौन्ड प्रति एकड़ की मात्रा में करना चाहिये। नरसरी में क्यारी तैयार करने के समय भुरकाव करना चाहिये। पूरी वयस्क चाय के उद्यान के झाड़ी एवं पेड़ों में जड़ के पास भूमि में अच्छी तरह मिलाना चाहिये। जिन स्थानों पर कीट नाशक को रसायानिक खादों में मिलाया जाता है तथा उसे चाय के बगीचे की भूमि के ऊपर छिड़का जाता है वहाँ पर एल्ड्रीन के स्थान पर २ पौन्ड प्रति एकड़ की मात्रा से डाइएल्ड्रिन का प्रयोग करना चाहिये। सुपारी के उद्यानों में दीमक बहुधा नवजात पौध या नरसरी के पौधे पर आक्रमण करती हैं। इसके लिये पौधशाला की भूमि को एल्ड्रीन इमलशन ३० प्रतिशत (१ फ्लोरिन औंस, ५ गैलन पानी में) के घोल द्वारा २५० गैलन प्रति एकड़ की मात्रा से छिड़काव करना चाहिये।

नारियल तथा ताड़ जाति के पौधों तथा वृक्षों में दीमक के आक्रमण होने पर तम्बाकू के बेकार डंठलों को पौधे के आस-पास सिंचाई के लिये बनाये गये आलबाल (थाले) में छोटे-छोटे टुकड़े करके गाड़ देने से दीमक का आपतन कम हो जाता है। करंज, नीम, अण्डी, पोस्ता आदि की खली की खाद देने से भी दीमक का आक्रमण घट जाता है। बगीचों तथा छोटे बगीचों और खेतों में सिंचाई की नाली में हींग और नमक को कपड़े में बाँध कर डालने से भी दीमक का आपतन कम हो जाता है।

७. बन के बृक्षों तथा लकड़ी में :—

पर्वतीय तथा मैदानी भागों दोनों में बन के वृक्षों तथा लकड़ी में दीमक का आक्रमण होता जिनके जीवन चक्र के विषय में पहले भी लिखा जा चुका है। अमेरिका के कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में एक विशेष प्रकार का विद्युत यन्त्र का आविष्कार १९५४ के लगभग हुआ। यह एक हल्का सा यन्त्र है जो बैटरी से चलता है। इसका एक भाग वृक्ष या लकड़ी में टीन धंसा देने से कान में लगे चोगें में एक विशेष प्रकार की ध्वनि होती है जिससे इस बात का आभास मिल जाता है कि इस वृक्ष लकड़ी में दीमकों का निवास है। इस यन्त्र का कुल वजन ३ पौन्ड है। इसका उपयोग वृक्षों के अन्य तना छेद का शत्रु कीटों के लिये भी किया जाता है। यह स्मरण रहे कि हिमालय पर्वत पर पाई जाने वाली दीमकों की उपजातियों के जीवन चक्र की कोई भी अवस्था भूमि के भीतर नहीं होती है अतः इनके आक्रमण का प्रारम्भिक पता केवल उपरोक्त यन्त्र द्वारा ही लग सकता है।

बन के वृक्षों तथा लकड़ी की दीमक से रक्षा के हेतु निम्नलिखित कीट नाशक रसायनों का प्रयोग किया जाता है :—कापर सल्फेट, जिन्क क्लोराइड, पेन्टाक्लोराफेनोल, कापर नेफथेनाल।

८. खादों में :—

यदि पूरी तरह सड़ी हुई खाद हो तो उसमें दीमक नहीं लगती है। अण्डी, करंज, तथा नीम की खली की

खाद देने से दीमक दूर भाग जाती है। यदि इससे भी दीमक का प्रकोप कम न हो तो खेतों की फसलों पर दी गई किसी भी रसायनिक विधि को अपनाया जाना चाहिये।

६. अन्न के भण्डार गृहों में :—

ऊपर लिखी गई विधि से मैथिल ब्रोमाइड का प्रयोग करना चाहिये। परन्तु इससे भी अधिक सुरक्षित इ० डी० सी० टी० का धूम विष होता है। या कार्बन डाई सल्फाइड के धूम विष का प्रयोग करना चाहिये। इनके प्रयोग विधियों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित सारिणी से ज्ञात हो सकता है : —

क्रम संख्या	धूमविष का नाम	किस अवस्था में, किस रूप में मिलता है।	किस मात्रा में प्रयोग करें।	इसके धूमविष को कितनी देर तक प्रयोग करना चाहिये	सावधानियाँ
१	२	३	४	५	६
१)	कार्बन डाइसल्फाइड	तरल पदार्थ या द्रव के रूप में काच के बोतल में मिलता	१ पौन्ड प्रति १०० घन फुट स्थान के लिये है।	२४ घन्टे तक	(१) जलती हुई दियासलाई, सिगरेट तथा अग्नि से प्रज्वलित वस्तुओं को दूर रखिये क्योंकि यह शीघ्र अग्नि से प्रज्वलित हो उठता है। (२) इसे सूंघिये नहीं क्योंकि यह श्वास क्रिया द्वारा प्रभाव करने वाला एक प्राण घातक विष है।
(२)	इथीलीन डाइक्लोराइड कार्बनटेट्रा अर्थात (ई० डी० सी० टी०)	तरल अथवा द्रव पदार्थ के रूप में काष्ठ एवं धातु के ड्रमों में मिलता है।	२ पौन्ड प्रति १०० घन फुट स्थान के लिये।	२४ घन्टे तक	(१) आग लगने का कोई भय नहीं रहता है। (२) यह कम घातक है, परन्तु इसे भी सूंघना नहीं चाहिये। (३) बीज के लिये यह हानिप्रद नहीं है।
(३)	मेथिल ब्रोमाइड।	यह धूमक (गैस) के रूप में द्वारा कम स्थान घेरने वाले सिलिन्डरों या कांच की बोतलों में होता है।	१ पौन्ड प्रति १०० घन फुट स्थान के लिये।	४८ घन्टे के लिये।	(१) यह एक प्राण घातक धूमविष है, इसका प्रयोग किसी योग्य व्यक्ति द्वारा ही करना चाहिये।

(२) इसका प्रयोग केवल धूम विष रक्षक यन्त्र पहन कर (गैस्क मास्क) करना चाहिये।

(३) यह मनुष्यों और पशुओं के लिये प्राणघातक है।

(४) यह बीज या अन्न के लिये हानिप्रद हो सकता है।

१०. कागज, सूती, ऊनी, तथा जूट की मिलों के भण्डार के लिये :—

उपर्युक्त धूम विषों का प्रयोग ही उचित होगा।

११. मानव विकास के स्थानों में :—

काष्ठ तथा उपयोगी लकड़ी की रक्षा की समस्या अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। केवल कीटनाशकों का बाहरी प्रयोग ही सन्तोषजनक परिणाम नहीं देता है, जब तक की उनके निवास स्थानों की जन्म भूमि को पूर्ण रूप से नष्ट न कर दिया जायें। यद्यपि यह देखा गया है कि दीमक चूने की नींव में छिद्र करके घुस कर भवनों में आक्रमण करते हैं, परन्तु सीमेंट की नींव द्वारा इनका घुसना कठिन होता है जब तक कि उसमें दरार न पड़ जायँ। दीमकों से स्थाई रूप से सुरक्षा के लिये भवनों के निर्माण से पहले नींव के नीचे ३ से ६ इन्च तक मोटी सीमेंट की पर्त बिछी होनी चाहिए तथा फर्श के नीचे भी सीमेन्ट का प्रबन्ध होना चाहिए। भवनों में लगे काष्ठ एवं लकड़ी की सभी वस्तुओं के नीचे भी सीमेन्ट की एक मोटी पर्त होनी चाहिये। यदि फिर भी दीमक का आक्रमण हो जाये तो ५ प्रतिशत तैलयुक्त डी० डी० टी० का प्रयोग करना चाहिये। उसके अतिरिक्त निम्नलिखित काष्ठ रक्षकों का भी प्रयोग किया जा सकता है जैसे कि कापर सल्फेट जिन्क क्लोराइड पेन्ट, क्लोरोफेनोल तथा काप्ट नैफथेनोल, आदि।

काष्ठ या लकड़ी खम्भे तथा चहार दिवारियाँ

इनका कि प्रयोग किसानों, उद्यान रक्षकों तथा भवन निर्माताओं आदि द्वारा अधिक किया जाता है। इन पर भी दीमकों का विशेष आक्रमण होता है। इनकी सुरक्षा के हेतु भी उपरोक्त प्रकार को निर्माण विधि का प्रयोग करना चाहिये। स्थाई सुरक्षा के हेतु कोलतार या क्रियासोट तेल का प्रयोग किया जा सकता है। इन खम्भों को भूमि में गाड़ने के पहले ५ प्रतिशत तेल युक्त डी० डी० टी० में अच्छी तरह भिगो देने से भी काफी दिनों तक दीमक के आक्रमण से सुरक्षा हो जाती है। कोई भी उपरोक्त विधियाँ स्थाई सुरक्षा नहीं देती है अतः स्थाई सुरक्षा के हेतु इन खम्भों का निचला भाग एक सीमेन्ट के साँचे में खड़ा हुआ होना चाहिए ताकि भूमि का कोई भी भाग लकड़ी या काष्ठ को न छूता हो। ऐसा ही किसी धातु (लोहा) से भी किया जा सकता है।

● ●

लिग्नाइट

दिनेश मोहन श्रीवास्तव

जब किसी व्यक्ति के कालेपन की किसी वस्तु से तुलना करनी होती है तो कहते हैं कि अमुक व्यक्ति कोयले सा काला है। परन्तु तुम्हें यह जानकर आश्चर्य होगा कि कोयला सदैव काला ही नहीं होता। लिग्नाइट, कोयले की एक किस्म है जिसका रंग भूरा होता है। इसीलिए इसे भूरा कोयला भी कहते हैं। जानते हो, कोयला कैसे बनता है? आँधी और तूफान में कितने ही पेड़ पौधे टूट-टूट कर गिरते हैं और चट्टानों के नीचे दब जाते हैं। इसके बाद इनके ऊपर बालू एवं अन्य पदार्थों की पर्तें जमा होती जाती हैं। अत्यधिक दबाव के कारण कुछ वर्षों बाद यही पेड़-पौधे कोयले में बदल जाते हैं। प्रारम्भ एवं अन्त में जो कोयला प्राप्त होता है, वह क्रमशः पीट-कोयला तथा बिटूमनी कोयला कहलाता है। लिग्नाइट इन दोनों के बीच की एक किस्म है जो अपने परिमाण, आकार एवं तन्तुमय अथवा काष्ठगठन के कारण सरलतापूर्वक अलग की जा सकती है। भूमिगत अवस्था में इसमें २०% से लेकर ६०% तक नमी रहती है जो कि हवा में बाहर आने पर लुप्त हो जाती है और लिग्नाइट चूर्ण अवस्था को प्राप्त हो जाता है। लिग्नाइट में ५% से १५% तक रेजिन अथवा मोम भी होता है। जलते समय इसमें या तो बिल्कुल धुआँ नहीं होता है या होता है तो बहुत थोड़ा। एक पौंड लिग्नाइट को जलाने पर ६००० से ७००० तक ब्रिटिश ऊष्मा मात्रक ऊष्मा उत्पन्न होती है।

वाह्य रूप के आधार पर लिग्नाइट को निम्नलिखित किस्मों में विभाजित किया जा सकता है :—

(१) मटियाला भूरा या तन्तुमय लिग्नाइट—वाह्य आकार तथा गुणों में यह पीट कोयले के समान होता है।

(२) काष्ठीय अथवा जाइलिटिक लिग्नाइट—यह अधिकतर कोयला-क्षेत्र के अवशिष्ट काष्ठ के रूप में प्राप्त होता है।

(३) अमणिभ भूरा कोयला—इस कोयले का रंग लिग्नाइट की उपरोक्त दो किस्मों से अधिक गहरा होता है।

रेजिन अथवा मोम की उपस्थिति के आधार पर लिग्नाइट को निम्नलिखित किस्मों में विभाजित कर सकते हैं :—

(क) मोम लिग्नाइट—इस प्रकार के लिग्नाइट में मोम तथा इसी प्रकार के अन्य पदार्थों का अंश अपेक्षाकृत अधिक होता है और रेजिन की मात्रा कम होती है।

(ख) रेजिन लिग्नाइट—इस प्रकार के लिग्नाइट में मोम के अतिरिक्त रेजिन का भी पर्याप्त अंश उपस्थित रहता है।

(ग) मोम रहित तन्तुमय अथवा काष्ठीय लिग्नाइट—लिग्नाइट की इस किस्म में उपस्थित मोम का अंश नगण्य होता है।

दक्षिण ध्रुवीय महाद्वीप को छोड़कर संभवतः सभी महाद्वीपों में लिग्नाइट प्राप्त होता है। उत्तरी अमेरिका तथा यूरोप में यह बहुतायत से प्राप्त होता है। भारतवर्ष में यह गुजरात, काश्मीर, केरल, मद्रास तथा राजस्थान में और हिमालय प्रदेश की अभिनूतन तथा शिवालिक पहाड़ियों में प्राप्त होता है।

भारतवर्ष में लिग्नाइट के प्राप्ति स्थान

भारतवर्ष में लिग्नाइट के प्राप्ति स्थानों का संक्षिप्त वर्णन आगे दिया गया है :—

गुजरात—कच्छ में लिग्नाइट, आदि नूतन युग (इओसीन) की लाकी श्रेणी के अनुदिश लेफरी, भुलराय और बरांडा नामक स्थानों पर प्राप्त होता है। कच्छ में प्राप्य लिग्नाइट की कुल मात्रा ११ दशलक्ष टन है। इसके अतिरिक्त भूरी तथा नर्बद-ताप्ती के बीच के प्रदेश में भी लिग्नाइट की उपस्थिति की सूचना प्राप्त हुई है। प्रेक्षकों के अनुसार यहाँ का लिग्नाइट भी कच्छ की भाँति उत्तम कोटि का है।

कश्मीर—कश्मीर में लिग्नाइट मध्य करैवा नामक पर्वत श्रेणी में प्राप्त होता है। शालिगंगा नदी-फिरोजपुर नाला क्षेत्र तथा नीचाहोम क्षेत्र इसके मुख्य प्राप्ति स्थान हैं। उपरोक्त क्षेत्रों में से प्रथम क्षेत्र में तंगमार्ग नामक स्थान के निम्न स्तरों का लिग्नाइट तो दैनिक उपयोग के उपयुक्त है (यद्यपि उसमें भी ४०% राख है)

ऊपर के स्तरों का लिग्नाइट अनुपयोगी है। द्वितीय क्षेत्र में उपस्थित लिग्नाइट शालिगंगा फिरोजपुर क्षेत्र से अच्छी कोटि का है। कश्मीर में उपस्थित पूर्ण लिग्नाइट की अनुमानित मात्रा १२४ दशलक्ष टन है यद्यपि इसमें से उपयोगी लिग्नाइट की मात्रा सीमित ही है।

केरल—केरल में कन्नोर, बीयपुर तथा वर्कल्लाय नामक स्थानों में लिग्नाइट के निक्षेप प्राप्त होते हैं। इनमें से अन्तिम क्षेत्र से जो कि क्विलान तथा पलई-वकल नामक प्रदेशों के बीच फैला हुआ है काफी उत्साह-वर्धक परिणाम प्राप्त हुए हैं। केरल में उपस्थित कुल लिग्नाइट का अनुमानित परिमाण २७० दशलक्ष टन है। इस क्षेत्र में उपस्थित लिग्नाइट की उपयोगी मात्रा का सही अनुमान करने के लिये इंडियन ब्यूरो आफ माइन्स की ओर से वेधन कार्य हो रहा है।

मद्रास—देश भर में सबसे अधिक लिग्नाइट मद्रास के दक्षिण आर्कोट जिले में स्थित नेवेली नामक स्थान से प्राप्त होता है। इस क्षेत्र में उपस्थित लिग्नाइट की अनुमानित मात्रा २००० दशलक्ष टन है। इसके अतिरिक्त लिग्नाइट के निक्षेप पांडिचेरी तथा कड्लौर के समुद्र की तटीय पट्टी पर भी पाये जाते हैं। ये निक्षेप कड्लौर के ३ मील उत्तर में कनैय्याकोविल नामक स्थान पर भी प्राप्त होते हैं। बाहुर से २ मील उत्तर में अरंगानूर स्थान पर भी लिग्नाइट के निक्षेप प्राप्त होते हैं। इन स्थानों से प्राप्त लिग्नाइट सामान्यतया उत्तम कोटि का होता है।

राजस्थान—बीकानेर जिले में लिग्नाइट, पलना, मध, खारी तथा चनेरी नामक स्थानों पर प्राप्त होता है। इनमें से बीकानेर के दक्षिण में १२-१३ मील दूरी पर स्थित पलना नामक स्थान के लिग्नाइट निक्षेप सबसे महत्वपूर्ण है। इस स्थान के लिग्नाइट निक्षेप अर्द्धवृत्ता-कार रूप में प्राप्त होते हैं। किनारे की ओर इन संस्तरों की मोटाई २ फुट है। केन्द्र की ओर बढ़ने पर यह २२-४० फुट तक हो जाता है। इसके पश्चात् ये अचानक अदृश्य हो जाते हैं और मिट्टी में मिल जाते हैं। सम्पूर्ण क्षेत्र बालू से ढका होने के कारण यह नहीं कहा जा सकता कि लिग्नाइट के यही निक्षेप पुनः खारी में दिखाई देते हैं, अथवा खारी के लिग्नाइट निक्षेप पृथक रूप से जमा हुए थे। यहाँ पाये जाने वाले लिग्नाइट में रेंजिन की मात्रा दक्षिण के आर्कोट जिले के लिग्नाइट की तुलना में अधिक होती है। इस क्षेत्र में उपस्थित लिग्नाइट की अनुमानित मात्रा २०.५ दशलक्ष टन है। इसके समीप स्थित डेस्नाक नामक स्थान पर भी लिग्नाइट के कुछ निक्षेप प्राप्त होते हैं जिनकी अनुमानित मात्रा १५ दशलक्ष टन है।

लिग्नाइट की रासायनिक संरचना

नेवेली; उमरसार, पलना और कश्मीर में पाये जाने वाले लिग्नाइट की रासायनिक संरचना निम्न सारिणी में दिखायी गयी है :—

उपस्थित पदार्थ	दक्षिण आर्काट	उमरसार (कच्छ)	पलना	कश्मीर
नमी प्रतिशत	१०·५ से १५·३ तक	१८·२०	२६·७ से ३३·४ तक	६·५ से १९·२ तक
राख प्रतिशत	३·८ से ६·७ तक	१५·४०	४·४ से ६·१ तक	३७·९ से ३८·६ तक
उड़नशील पदार्थ प्रतिशत	४२·७ से ४५·५ तक	३०·५०	३४·३ से ४५·२ तक	२२·३ से २७·० तक
कार्बन प्रतिशत	५३·७९ से ५९·०५ तक	४६·०५	५२·३२	२६·३ से ४२·१९ तक
हाइड्रोजन प्रतिशत	३·७१ से ३·९६ तक	३·१५	४·७४	१·७५ से २·४३ तक
आक्सीजन प्रतिशत	१७·७६	१३·६०	८·८१	५·८०
नाइट्रोजन प्रतिशत	०·५५ से ०.९४ तक	०·६२	०·९१	०·३० से ०·८४ तक
गंधक प्रतिशत	०·७२ से १·१३ तक	३·१०	१·६८	०·३३ से १·७७ तक
ऊष्मीय मान ब्रिटिश ऊष्मीय मात्रक पौंड	९५६६ से ९८५० तक	८७४०	९७४०	६६०

उपयोग

लिग्नाइट एक ऐसा ईंधन है जो उन सभी कार्यों के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है जिनके लिए कोयले का उपयोग होता है। इसके अतिरिक्त इसका उपयोग विद्युत उत्पादन हेतु ऊष्मीय शक्ति संयंत्र (थर्मल पावर प्लांट) में भी किया जाता है। अमोनियम नाइट्रेट, यूरिया, प्लास्टिक, औषधि उद्योगों एवं कीटाणुनाशक रासायनिक पदार्थों के निर्माण में भी इनका उपयोग होता है। लिग्नाइट के शोधन की प्रक्रिया में लिग्नाइट-टार फीनाल तथा [illegible] फीनाल नामक अन्य उत्पाद भी प्राप्त होते हैं। टार में लगभग ७% पैराफीन मोम होता है जो रासायनिक प्रक्रिया द्वारा शुद्ध रूप में पुनः प्राप्त किया जा सकता है। दक्षिणी आर्काट जिले से प्राप्त लिग्नाइट में मार्टेन मोम का भी थोड़ा अंश उपस्थित रहता है जो बेन्जाल तथा अल्कोहल के मिश्रण के साथ ही निष्कासित किया जा सकता है।

हमारी पंचवर्षीय योजनाएँ और लिग्नाइट

हमारे देश में नेवेली लिग्नाइट कार्पोरेशन नामक अर्द्ध सरकारी संस्था बड़े पैमाने पर लिग्नाइट का खनन कर रही है और ३·५ दशलक्ष टन प्रतिवर्ष का उत्पादन दे रही है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में इसमें से १·५ दशलक्ष टन लिग्नाइट का उपयोग २५०,००० किलोवाट धारिता की विद्युत उत्पन्न करने के लिए और १·५ दशलक्ष टन लिग्नाइट, कार्बनीकृत ब्रिकेटस (इष्टिका) निर्मित करने के लिए हुआ। शेष लिग्नाइट ३८०,००० टन का उपयोग १५२,००० टन यूरिया-निर्माण के लिए किया गया। तृतीय पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत इसका उत्पादन ४·८ दशलक्ष टन और ऊष्मीय शक्ति की धारिता ४००,००० किलोवाट तक बढ़ाने की योजना है। इसके अतिरिक्त हमारी पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत उपयोगी लिग्नाइट के खनन के लिए सतत् प्रयत्न किया जा रहा है और नए निक्षेपों की खोज जारी है।

सूचना

खेद है कि अवांछनीय कारणों से मई का यह अंक केवल २४ पृष्ठों में प्रकाशित हो रहा है। इसके लिए हम अपने पाठकों से क्षमा चाहते हैं।

१. रामानुजम् पुरस्कार

इस वर्ष का 'रामानुजम् पुरस्कार' डॉ० बी० पी० पाल ने जीता है। यह पुरस्कार उन्हें भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल नई प्रकार की गेहूँ की किस्में विकसित करने के उपलक्ष्य में प्रदान किया गया। डॉ० पाल इस पुरस्कार को प्राप्त करने वाले दूसरे भारतीय हैं। इसके पहले यह पुरस्कार प्रसिद्ध ज्योति-वैज्ञानिक डॉ० चन्द्रशेखरन को प्राप्त हो चुका है। 'रामानुजम् पुरस्कार' काऊंसिल ग्राफ इंडियन नेशनल इंस्टीट्यूट ग्राफ साइंसेज की ओर से हर दूसरे वर्ष विज्ञान की किसी भी शाखा में महत्वपूर्ण खोज करने वाले वैज्ञानिक को प्रदान किया जाता है।

२. पोटैशियम सल्फेट उत्पादन की नई विधि

साधारण नमक बनाते समय कुछ जल बेकार ही फेंक दिया जाता है। इस अनुपयोगी पदार्थ को वैज्ञानिक भाषा में बिटर्न कहते हैं। केन्द्रीय नमक व समुद्री अनुसंधान संस्थान, भावनगर में बिटर्न के उपयोग द्वारा पोटैशियम सल्फेट के उत्पादन की एक नई विधि विकसित की गई है। स्मरणीय है कि पोटैशियम सल्फेट एक उपयोगी उर्वरक (फर्टेलाइज़र) है। कच्छ के रन में बिटर्नों का बहुत पैमाने पर विश्लेषण किया गया है और देखा गया है कि जब कि कुछ बिटर्नों में मैग्नीशियम सल्फेट भी उपस्थित रहता है तो कुछ बिटर्न इससे मुक्त रहते हैं। इस विधि से इन दोनों प्रकार के बिटर्नों के मिश्रण को सूर्य की ऊष्मा द्वारा वाष्पीकृत करके पोटैशियम सल्फेट प्राप्त किया जाता है। प्रतिदिन एक टन पोटैशियम सल्फेट उत्पन्न करने वाले प्रायोगिक संयंत्र का पूर्ण विवरण तैयार कर लिया गया है। इस संयंत्र द्वारा ८,००० टन पोटैशियम सल्फेट प्रति वर्ष प्राप्त होगा और लगभग २७ लाख रुपये की विदेशी मुद्रा की बचत होगी।

३. गरम पानी से चलने वाला रेफ्रीजरेटर

यू० एस० एस० आर० एकेडमी ग्राफ साइंसेज के साइबेरिया विभाग के ऊष्ण भौतिकी संस्थान में एक ऐसा रेफ्रीजरेटर बनाया गया है जो विद्युत के स्थान पर गरम पानी से चलता है। इस रेफ्रीजरेटर का सफलता पूर्वक परीक्षण किया जा चुका है और अब ऊष्मा ट्रांस-फार्मर के रूप में इसके उपयोग के लिए प्रयोग किये जा रहे हैं। इस प्रकार का रेफ्रीजरेटर ऐसे स्थानों पर अत्यधिक उपयोगी प्रमाणित होगा जहाँ पर ऊष्मा जल के प्राकृतिक स्रोतों अथवा कोई धात्वीय संयंत्र (मैटलर्जिकल प्लांट) है। जहाँ से ऊष्ण जल निरन्तर प्राप्त हो सकता है।

४. समुद्र के नीचे स्थित तेल के स्रोतों का पता लगाने की नई मशीन

जापान की मित्सुबिशी हेवी इंडस्ट्रीज लिमिटेड नामक कम्पनी ने समुद्र तल से २६,२४० फीट नीचे तक वेधन करके तेल उद्गमों का पता लगाने की एक नई मशीन का आविष्कार किया है। यह एक त्रिकोण के आकार की एक मशीन है जिसके तीनों चरण १६४ फीट की ऊँचाई पर ३२८ फीट लम्बी भुजा वाले समबाहु त्रिभुज का निर्माण करते हैं। जिसकी प्रत्येक भुजा ३२८ फीट लम्बी है। ये तीनों चरण तीन ३२८ फीट लम्बे डेक द्वारा सम्बन्धित होते हैं जिसमें वेधन-यंत्र (ड्रिलिंग मास्कस) स्थित होते हैं। इस मशीन को चलाने के लिए ८१ व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। यह विश्व में अपने ढंग की सर्वप्रथम मशीन है।

५. बिना रेफ्रीजरेशन के दूध को छः महीनों तक ताजा रखना

किसी भी प्रकार की जलवायु में बिना रेफ्रीजरेशन का प्रयोग किए दूध को छ. महीने तक ताजा रखने के लिए ब्रिटेन के वैज्ञानिकों ने एक नई विधि विकसित की है। इस विधि के अनुसार दूध को पहले १००° तक गरम करते हैं, इसके पश्चात् इसे विशेष विधि द्वारा शीघ्रता से ठंडा करते हैं। ब्रिटेन की एक्सप्रेस डेरी के वैज्ञानिकों ने ऐसा करने के लिए एक नई विधि की खोज की है। दीर्घ जीवन काल वाले इस प्रकार के दूध से उत्पादन के लिए दो संयंत्र स्थापित किए जा चुके हैं और इस प्रकार के दूध का बृहत उत्पादन प्रारम्भ हो चुका है। इस प्रकार के दूध के मूल्य तथा स्वाद में साधारण दूध से कोई भी अन्तर नहीं होता। केवल यह अधिक दिनों तक बिना खराब हुए रखा रह सकता है।

६. रजत धातु (चांदी) का पता लगाने की परमाण्विक विधि

चांदी के निक्षेपों का पता लगाने के लिए अमेरिका में एक परमाण्विक विधि विकसित की गई है। इस विधि में प्रयुक्त यंत्र शैल धरातल पर न्यूट्रान प्रक्षेपित करता है जिससे उनमें उपस्थित रजत धातु के परमाणु अस्थायी हो जाते हैं और १० मिनट के लिए रेडियो सक्रिय हो जाते हैं। रेडियो सक्रिय रजत परमाणु विखंडित होने पर उनके द्वारा विकिरण निकलते हैं जिन्हें एक डिटेक्टर द्वारा पहचाना जा सकता है। इस यंत्र के चालक को रेडियो सक्रिय विकिरण के प्रभावों से बचाने के लिए यह यंत्र एक ट्रेलर पर स्थित रहता है और दूर स्थित एक जीप से उसका नियंत्रण किया जाता है।

७. नये प्रकार का उर्वरक

केन्द्रीय ईंधन अनुसन्धान संस्थान में हुई खोजों के आधार पर कोयले द्वारा एक नए प्रकार का उर्वरक विकसित किया गया है जिसमें खनिज नाइट्रोजन तथा ह्यूमस के गुण मिश्रित होते हैं। स्मरणीय है कि अच्छी फसल के लिए नाइट्रोजन युक्त उर्वरक (खाद-मिट्टी) और कार्बनिक खाद का मिश्रण सर्वोत्तम होता है। कारण यह है कि कार्बनिक खाद मिट्टी को ह्यूमस प्रदान करती है और उर्वरक का नाइट्रोजन अंश पौधों का आवश्यक भोजन् नाइट्रोजन प्रदान करता है। इस प्रकार के उर्वरक का विभिन्न खाद्य पदार्थों जैसे गेहूँ, धान, जूट, गन्ना आदि के उत्पादन में सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा चुका है। इस उर्वरक की एक विशेषता यह है कि यह मिट्टी-नियंत्रक की भाँति भी कार्य करता है। केन्द्रीय ईंधन अनुसन्धान संस्थान के इस आविष्कार में कनाडा, आस्ट्रेलिया और अमेरिका के वैज्ञानिकों ने काफी रुचि दिखायी है।

८. ऊतकों को जोड़ने वाला गोंद

रूसी डाक्टरों ने एक ऐसे गोंद 'सिकारिक' की खोज की है जो कि जीवित ऊतकों को जोड़ सकता है। इस गोंद का २०० से अधिक यकृत तथा फेफड़ों के आपरेशनों में उपयोग किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त हड्डियों के टूटने के ४० से अधिक केसों में भी इस गोंद का सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा चुका है। सूचना मिली है कि दो-तीन महीनों में जब ऊतक पूरी तरह से जुड़ जाते हैं तो इस गोंद के अवशेष भी नहीं दिखायी देते हैं। इस गोंद की खोज रूस की एकेडेमी आफ साइन्सेज़ और शल्य चिकित्सा उपकरणों के प्रायोगिक संस्थान के सम्मिलित तत्वाधान में की गई है।

९. अब तक की समानव अन्तरिक्ष-यात्राएँ

अन्तरिक्ष-यान	राष्ट्र	तिथि	अन्तरिक्ष-यात्री	परिक्रमाओं की संख्या	उड़ान की अवधि (घंटे और मिनट)
वोस्टोक—१	सोवियत रूस	१२ अप्रैल, १९६१	गगारिन	१	१:४८
फ्रीडम—७	अमेरिका	५ मई, १९६१	शेपर्ड	उप-कक्षागत	:१५
लिबर्टी बेल—७	अमेरिका	२१ जुलाई, १९६१	ग्रिसम	उप-कक्षागत	:१६
वोस्टोक—२	सोवियत रूस	६-७ अगस्त, १९६१	टिटोव	१७	२५:१८
फ्रैंडशिप—७	अमेरिका	२० फरवरी, १९६२	ग्लेन	३	४:५५
आरोरा—७	अमेरिका	२४ मई, १९६२	कारपेण्टर	३	४:५६
वोस्टोक—३	सोवियत रूस	११-१५ अगस्त, १९६२	निकोलेयेव	६४	९४:२२
वोस्टाक—४	सोवियत रूस	१२-१५ अगस्त, १९६२	पोपोविच	४८	७०:५७
सिगमा—७	अमेरिका	५ अक्तूबर, १९६२	शिर्रा	६	९:१३
फेथ—७	अमेरिका	१५-१६ मई, १९६२	कूपर	२२	३४:२०
वोस्टोक—५	सोवियत रूस	१४-१९ जून, १९६३	वाइकोवस्की	८१	११९:०६
वोस्टोक—६	सोवियत रूस	१६-१९ जून १९६३	टैरेश्कोवा	४८	७०:५२
वोश्कोड—१	सोवियत रूस	१२-१३ अक्तूबर, १९६४	फयोक्तिस्टोव कोमारोव येगोरोव	१६	२४:१७
वोश्कोड—२	सोवियत रूस	१८-१९ मार्च, १९६५	वेल्यायेव लिओनोव	१७	
जैमिनी—३	अमेरिका	२३ मार्च, १९६५	ग्रिसम यंग	३	
जैमिनी—४	अमेरिका	३-७ जून, १९६५	मैक्डेविट ह्लाइट	६२	
जैमिनी—५	अमेरिका	२१-२९ अगस्त, १९६५	कूपर कोनराड	१२०	
जैमिनी—७	अमेरिका	४-१८ दिसम्बर, १९६५	बोरमैन; लोवेल	२०६	
जैमिनी—६	अमेरिका	१५-१६ दिसम्बर, १९६५	शिर्रा स्टेफोर्ड	१६	

आधुनिक जीवाणु-विज्ञान के जनक राबर्ट कोख

बर्लिन के हुम्बोल्ट विश्वविद्यालय ने, एक ऐसे मनुष्य के जीवन और कृतित्व सम्बंधी स्थाई प्रदर्शनी कायम की है जिसने समस्त मानवता को अपनी अमूल्य सेवायें अर्पित की थीं। इन महामानव का नाम है राबर्ट-कोख। डा. कोख सन् १८४३ में जन्मे और सन् १६१० में उनका देहान्त हुआ। इन्होंने क्षय रोग, मलेरिया, गिल्टी-रोग (एन्थ्रैक्स), ताऊन इत्यादि जैसे संक्रामक रोगों के निदान और अनुसन्धान में अपना सारा जीवन बिताया। इस महान कार्य के लिये इनको सन् १६०५ में नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया।

स्व. कोख के मानवीय कार्य को आगे बढ़ाने के लिये और उनकी खोजों के आधार पर काम करने वाले अनेक वैज्ञानिकों ने 'राबर्ट कोख संग्रहालय' की स्थापना की है। यह 'संग्रहालय डा. कोख का एक मूर्तिमान स्मारक होने के साथ-साथ संक्रामक रोगों के अनुसन्धान का एक महत्वपूर्ण केन्द्र भी है।

'संग्रहालय' में आये हुये दर्शकों को कोई सामान्य गाइड 'संग्रहालय' नहीं दिखाता, बल्कि अनुसंधान में रत कोई एक वैज्ञानिक कुछ समय के लिये अपने परीक्षण-यंत्र, सूक्ष्मदर्शी (माइक्रास्कोप) आदि छोड़कर दर्शकों को, डा. कोख के जीवन और कृतियों से सम्बंधित मौलिक दस्तावेज दिखाता और समझाता है। इस प्रकार यह विशिष्ट गाइड, उस महापुरुष के साथ आत्मीयता और श्रद्धा का परिचय देता है।

दर्शक, 'संग्रहालय' में रखी स्व. कोख की घाव-संक्रमण से सम्बंधित सर्वप्रथम रचना देख सकते हैं। यह कृति, सन् १८७८ में वोगल ने लाइपजिग से प्रकाशित की थी। सन् १८७६ में ही जबकि डा. राबर्ट कोख एक अज्ञात सामान्य ग्राम डाक्टर थे, उस समय के एक सुप्रसिद्ध वनस्पति-शास्त्री श्री एफ. कोन ने, उनको "वैज्ञानिक अनुसंधान का एक अनुपम मनीषी" कहा था। श्री कोख ने उनको पशु संक्रामक रोगों के अपने शोध से अवगत कर दिया था। इस शोध से, एक ब्रिटिश डाक्टर श्री जोजफ लिस्टर का यह सिद्धान्त प्रमाणित होता था कि अनेक रोग जीवाणु (बैक्टीरिया) से पैदा होते हैं।

सतत अनुसन्धान साधना के फलस्वरूप कालान्तर में डा. कोख आधुनिक जीवाणु विज्ञान के जनक बन गये, और उन्होंने सूक्ष्मदर्शिकी (माइक्रास्कोपी) से सम्बंधित शोध-विधि एवं तकनीक को बहुत विकसित किया। 'कोख संग्रहालय' में अनेक पाण्डुलिपियाँ, प्रकाशन, प्रसिद्ध लोगों की स्मृत्तियां आदि रखे गये हैं जिनका सम्बंध इन महापुरुष के जीवन और कृतियों से है।

'संग्रहालय' की एक अमूल्य वस्तु है श्री कोख की मैट्रिक सर्टिफिकेट, जिस पर २ अप्रैल १८६२ की तिथि है और जिसमें उनको स्कूल का एक साधारण विद्यार्थी बताया गया है। एक अन्य वस्तु इस अभिमत की काट सी प्रस्तुत करती है। यह वस्तु है १० अप्रैल, १८८२ की तिथि के 'बर्लिनेर क्लिनर्र क्लिनिश वोखेनश्रिटे' नामक अखबार की वह मौलिक प्रति जिसमें श्री कोख का "क्षयरोग का हेतु विज्ञान" लेख प्रकाशित हुआ था। यह लेख एक और वैज्ञानिक सफलता थी, और इससे क्षयरोग से सम्बन्धित अनुसन्धान की नींव पड़ गई।

'संग्रहालय' में, तद्कालीन सुविख्यात मनीषियों एवं राजनीतिज्ञों के अनेक पत्र भी रखे हुये हैं जिनसे

यह पता चलता है कि श्री कोख के प्रति उनका कितना आदर तथा श्रद्धा थी। इन पत्रों में 'अमरीका की कला एवं विज्ञान अकादमी' का वह मौलिक पत्र भी है जो इस अकादमी ने १३ मार्च, सन् १६०१ के दिन उनको लिखा। इसमें, डा. कोख की इस बात की सूचना दी गई थी कि 'अकादमी' ने उनको अपना सदस्य और लूई पास्चर का उत्तराधिकारी मनोनीत किया है। इस पत्र के अलावा उनके 'नोबेल पुस्कार' का मौलिक दस्तावेज भी यहाँ रखा गया है। 'संग्रहालय' में रखे गये देश-देशान्तरों से आये हुये उनके पत्र, उपहार और सम्मानार्थ दी गई उपाधियों के प्रमाण-पत्र, डा. राबर्ट कोख की विश्व-व्यापी प्रसिद्धि को सिद्ध करते हैं।... उन्होंने अपने शोध के सिलसिले में अफ्रीका और एशिया के कई दौरे किये, और वहाँ मनुष्य के दो भयावह रोगों—निद्रा रोग एवं हैजे के मूल कारणों की खोज के लिये बुनियादी अनुसंधान किया। इसी अनुसंधान के दौरान सन् १८८३ में उन्होंने, भारत (कलकत्ता) में, हैजे के बैसिलस (जीवाणु) का पता लगाया। जापान के एक उपहार, सामुरी तलवार को, उपहारों में एक सम्मानित स्थान दिया गया है। जापान में, डा. कोख की आत्मा शांति के लिये आज भी प्रार्थना की जाती है।

जर्मन जनवादी गणतंत्र ने, इस महामानव की स्मृति में संग्रहालय, स्मारक और मार्ग स्थापित करके ही इसके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त नहीं की है, बल्कि डा. कोख के जीवन-कार्य को, उनके, अनुसंधान कार्य को, विस्तृत और विकसित करके ज. ज. ग. ने उनके प्रति अनन्त श्रद्धा का मूर्तिमान स्मारक खड़ा किया है। इस संदर्भ में, क्षय-रोग उन्मूलन सम्बन्धी यहाँ किया गया कार्य, विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ६८ प्रतिशत बच्चों को यहाँ, जन्म लेने के कुछ ही घण्टों बाद, क्षय-रोग विरोधी टीका लगाया जाता है।......स्कूल जाने वाले बच्चों की नियमित जाँच होनी है, और जरूरत पड़ने पर उनको फिर से क्षय-रोग विरोधी टीका लगाया जाता है।

अनुसन्धान-रत डा. कोख

जर्मन जनवादी गणतंत्र में यह कानून है कि प्रत्येक बालिग की एक्स-रे जाँच होनी चाहिये। यदि कोई व्यक्ति क्षय-रोग ग्रस्त हो, तो इस जाँच से, पहले ही इसका पता चल जाता है, और तुरन्त उसका इलाज होता है। विशिष्ट अस्पतालों और आरोग्य-आश्रमों में क्षय रोगियों का मुफ्त इलाज होता है। इलाज के दौरान रोगी को सामाजिक सुरक्षा की गारण्टी है, क्योंकि उसकी, अपनी आया का ६० प्रतिशत भाग दिया जाता है।

सम्पादक के नाम पत्र

महोदय,

वैसे तो व्यावहारिक-बुद्धि से मैं देहली की एक अच्छी बड़ी फर्म (M|s Bhagwanadass and Co, K. Gate) का गुड़गाँवाँ में ब्रांच-मैनेजर हूँ तथापि विज्ञान-विषयों में भी अत्यधिक दिलचस्पी है। और लगभग १९५४ ई० से अनवरत परिश्रम करने के बाद भौतिक-विज्ञान से सम्बन्धित एक ऐसे सिद्धान्त को खोज लिया है।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वह सिद्धांत रिलेटीविटी थ्योरी एवं क्वाण्टम थ्योरी में समुचित समन्वय स्थापित करते हुए मास (Mass) एवं दिक् (Space) के विषय में ऐसी मान्यताओं एवं समस्याओं की व्याख्या कर सकेगा जो आज तक संसार में उत्तर-रहित कौतूहल बनी रही हैं।

अपनी सारी Study मैंने अंग्रेजी ही में की है और सिद्धान्त का प्रतिपादन भी अंग्रेजी भाषा ही में किया है और यद्यपि मेरे सभी सहयोगी जन मुझे ऐसी सम्मति करते हैं कि अपने सिद्धान्त का प्रकाशन मैं किसी विदेशी पत्रिका (यथा Nature) में करूँ तथापि इस विषय में मैं किसी भारतीय-पत्रिका (हिन्दी) को ही अपनाना चाहता हूँ। यदि आप इससे सहमत हों तो मैं अपने सम्पूर्ण work को हिन्दी में बदल (translate, अनुवाद) कर दूँगा ताकि आप उसका प्रकाशन "विज्ञान" के माध्यम से कर सकें। मेरे विचार में ऐसी राष्ट्रीयता के विचार पर हम सब को गर्व ही होना चाहिए और आप इससे सहमत होंगे। अन्यथा, मैं अंग्रेजी भाषा की शरण ही में चला जाऊँगा जो आदतन मेरे लिए अधिक सरल एवं उपयोगी सिद्ध होनी ही चाहिए।

मुझे पूर्ण आशा है कि आपकी सहमति मुझे शीघ्र ही मिलेगी। धन्यवाद,

प्रेषक

२२-४-६६ सोभनाथ

गुरगाँव

प्रिय महोदय,

'विज्ञान' द्वारा आप अपनी खोज को जन-जन तक पहुँचा सकें, इसके लिये आपकी रचना आमन्त्रित की जा रही है।

भवदीय

सम्पादक

परिषद् का पृष्ठ

१. नये सभापति का निर्वाचन

गत बैठक में स्व० बी० एन० प्रसाद के स्थान पर लोक सेवा आयोग के चेयरमैन डा० रामधर मिश्र को परिषद् का सभापति चुना गया।

डा० मिश्र सुप्रसिद्ध गणितज्ञ हैं। उनके कार्यकाल में परिषद् को उनसे बड़ी-बड़ी आशायें हैं।

२. १९६४ का हरिशरणानन्द विज्ञान पुरस्कार

डा० सन्त प्रसाद टण्डन द्वारा लिखित एवं हिन्दी समिति द्वारा प्रकाशित मौलिक वैज्ञानिक कृति "स्टार्च" पर २०००) का हरिशरणानन्द विज्ञान पुरस्कार घोषित हुआ है।

डा० टण्डन हिन्दी में वैज्ञानिक पुस्तकों के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक हैं। वे रसायन विभाग, प्रयाग विश्व-विद्यालय के वरिष्ट प्राध्यापक हैं।

३. विद्यालय रसायन (College chemistry) का प्रकाशन

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा वैज्ञानिक ग्रंथों के हिन्दी अनुवादों के प्रकाशन का जो कार्य विज्ञान परिषद् को प्राप्त हुआ था, उसमें से नोबेल पुरस्कार विजेता लिनस पॉलिंग की प्रसिद्ध कृति College Chemistry का हिन्दी अनुवाद छप कर तैयार हो गया है। यह अनुवाद "विद्यालय रसायन" नाम से हुआ है। इसमें प्राय: ९०० पृष्ठ हैं।

हिन्दी में रसायन सम्बन्धी अनूदित ग्रंथों में यह पहला ग्रंथ होगा जिसको प्रकाशित करने का श्रेय विज्ञान परिषद् को है।

सम्पादकीय

देश और वैज्ञानिक शिक्षा

दिल्ली में होने वाले वैज्ञानिकों के अफ्रीकी एशियाई सम्मेलन में यह घोषित किया गया है कि विकासोन्मुख राष्ट्रों को अपने ही वैज्ञानिकों द्वारा देश में वैज्ञानिक उत्थान लाना चाहिए। इस दिशा में कुछ अन्य महत्वपूर्ण तथ्यों का उद्घाटन भी हमारे शिक्षा-मंत्री जी ने किया है। उनके अनुसार हमारे देश में योग्य शिक्षकों का नितान्त अभाव है और हमारे उच्चकोटि के वैज्ञानिकों में से अधिकांश वैज्ञानिक विदेशों में रहकर कार्य कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में यह प्रश्न उठाना स्वाभाविक है कि देश का वैज्ञानिक उत्थान कैसे किया जाय ?

योग्य शिक्षकों के अभाव में किसी भी प्रकार का ज्ञान प्राप्त करना सम्भव नहीं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश का प्रत्येक छात्र विज्ञान का अध्ययन करके वैज्ञानिक बनने का स्वप्न देखने लगा किन्तु इतने वर्षों के पश्चात् न तो देश मे वैज्ञानिकों का ही अभाव और न योग्य शिक्षकों का ही अभाव पूरा हुआ। ऐसा क्यों हुआ ?

इसका कारण यह है कि हमारे देश में वैज्ञानिक शिक्षा के द्वारा अच्छी नौकरी प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है, उस शिक्षा का सदुपयोग नहीं किया जाता। विद्यालयों में जो शिक्षक विज्ञान का अध्यापन करते हैं वे प्रायः पूर्णतया योग्य नहीं होते—क्यों ? इसलिए कि अध्यापन कार्य निकृष्ट कार्य समझा जाता है। योग्य एवं मेधावी छात्र तो आई० ए० एस० या पी० सी० एस० में उत्तीर्ण होकर देश की शासन डोर को संभालने के लिए लालायित रहते हैं। इस प्रकार से विद्यार्थी जीवन की सारी मेहनत का प्रतिफल मिलता है प्रशासन में उच्च स्थान की प्राप्ति। बाद में वे ही व्यक्ति अपनी संतानों को भी अपने पद-चिन्हों पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं। यही कारण है कि विगत ५० वर्षों में भी हमारे देश में उतने वैज्ञानिक नहीं बन पाये जितने की आशा की जाती थी या देश को जितने वैज्ञानिकों की आवश्यकता थी।

विज्ञान का अध्ययन एवं अध्यापन अनवरत परिश्रम का जीवन है। इसे विरले ही स्वीकार करना चाहते हैं। और जो इस ओर आकृष्ठ होते हैं उनके लिये मुक्त क्षेत्र न मिलने से उनकी प्रगति नहीं हो पाती। यही कारण है कि देश के भीतर कार्य करते हुये कम ही उच्चकोटि के वैज्ञानिक बन सके हैं। किन्तु इसमें निराशा की बात नही है। शिक्षित व्यक्तियों को अपनी विचारधारा बदल कर विज्ञान के प्रति निष्ठा एवं लगन उत्पन्न करनी होगी।

भविष्य को सुखद बनाने के लिये आवश्यक है कि हर परिवार में एक वैज्ञानिक उत्पन्न हो।

●●

मई १९६६

पंजीकृत संख्या ए—१७४५

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आंध्रप्रदेश के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों, कालिजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

'विज्ञान' में विज्ञापन की दरें

	प्रति अंक	प्रति वर्ष
आवरण के द्वितीय तथा तृतीय पृष्ठ	४० रु०	४०० रु०
आवरण का चतुर्थ पृष्ठ (अन्तिम पृष्ठ)	५० ,,	५०० ,,
भीतरी पूरा पृष्ठ	२० ,,	२०० ,,
आधा पृष्ठ	१२ ,,	१२० ,,
चौथाई पृष्ठ	८ ,,	८० ,,

प्रत्येक रंग के लिये २५) प्रति रंग अतिरिक्त लगेगा।

विज्ञापन के नियम

१—विज्ञापन के प्रकाशित करने अथवा उसके रोकने के लिये एक मास पूर्व सूचना कार्यालय में आनी चाहिए।

२—विज्ञापन का मूल्य पहले ही आ जाना चाहिये। यदि चेक द्वारा भुगतान करना हो तो साथ में बैंक-कमीशन जोड़ कर भेजा जाय।

साथ भेजे हुए ब्लाकों को परिषद् स्वीकार करेगा।

प्रकाशक—डा० अरुदेव बिहारी लाल सक्सेना, प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।

मुद्रक—[illegible] प्रसाद पांडेय, नागरी प्रेस, दारागंज, इलाहाबाद।

विषय-सूची

सम्पादक- डा० शिवगोपाल मिश्र

विज्ञान परिषद् प्रयाग

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुखपत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजनात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति। विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ० ३।५

भाग १०३ | आषाढ़-श्रावण २०२३ विक्र०, १८८७ शक
जून-जुलाई १९६६ | संख्या ३-४

जीवन में रंगों का प्रभाव

ब्रजेश्वर प्रसाद शर्मा

हमारा दैनिक जीवन और वर्तमान संसार शायद आज इतने सुन्दर और रोचक प्रतीत न होते यदि मनुष्य के हस्तकौशल और प्रकृति में रंगों का मनोहारी सामंजस्य न होता। पक्षियों, पुष्पों, वस्त्रों और सूर्यास्त इत्यादि के विविध रंगों के अभाव में जीवन की कल्पना कितनी नीरस प्रतीत होती है। रंगों के प्रति आंतरिक प्रेम और उसको संतुष्ट करने की इच्छा मानव के महानतम आनंदों की सृष्टि करती रही है। अबोध शिशु की प्रथम अंतःप्रेरणा है—उसका चमकीले रंगों के लिए आकर्षण। प्रखर वर्ण पुरातन कालीन मानव द्वारा प्रयोग किया गया पारस्परिक सौन्दर्य और सज्जा का पहला साधन था। ज्यों-ज्यों मानव अधिक सभ्य और शिक्षित हुआ उसकी गाढ़े, दृढ़ और गहरे रंगों को प्रयोग करने की इच्छा कम हुई तथा हल्के, कोमल रंगों ने उसे अधिक प्रभावित किया। रंगों के विषय में अधिकतर लोग लापरवाह पाये जाते हैं जबकि इनका महत्व हमारे लिए बहुत प्राचीन समय से रहा है और अब वर्तमान युग में तो अत्यधिक बढ़ गया है। प्रस्तुत लेख में रंगों के विषय में वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार किया गया है।

रंग-विज्ञान

वास्तव में रंग उस तरह की कोई चीज़ नहीं होती, जिस अर्थ में साधारणतया इसे हम सोचते हैं। अर्थात् लाल सेब, बैंगनी अंगूर और पीले फलों का रस लाल, बैंगनी या पीला नहीं होता। रंग वस्तुओं का गुण नहीं है, वरन् आँखों के बारीक कार्य-कलाप के द्वारा इन्द्रियों को दिया गया आभास मात्र है। कभी-कभी दुकान के कृत्रिम प्रकाश में एक से दिखने वाले दो टुकड़े प्राकृतिक प्रकाश में ले जाकर देखने पर भिन्न दिखाई देते हैं।

हमारा किसी वस्तु को सफेद, काला, लाल या हरा देखना निम्नलिखित ३ बातों पर निर्भर है—(१) वस्तु जो प्रकाश प्राप्त करती है (२) वस्तु जिस तरीके से इस प्रकाश को परावर्तित, विसरित या सोखती है तथा प्रकाश तरंगों के व्यतिकरण द्वारा उत्पन्न प्रभाव (३) आँख की रंग-पहिचान क्षमता।

रंगों की रचना प्रकाश से हुई है इसलिए पहले प्रकाश की प्रकृति समझना आवश्यक है। प्रकाश तरंग रूप में यात्रा करता है और ये तरंगें कुछ अति सूक्ष्म हल्के कणों से मिलकर बनी होती हैं। इन कणों

को 'फोटान' कहते हैं, परावर्तन, वर्तन, वर्तन और ध्रुवीकरण के परीक्षणों में प्रकाश तरंग-गति प्रदर्शित करता है। इन परीक्षणों से ज्ञात होता है कि प्रकाश तरंग के रूप में गमन करता है। परन्तु प्रकाश-वैद्युत प्रभाव, विसरण, अवशोषण और विकिरण से सम्बंधित परीक्षणों के द्वारा निष्कर्ष निकला कि फोटॉन (कण) की उपस्थिति के कारण प्रकाश ने ये गुण प्रदर्शित किये। इस प्रकार प्रकाश के गुण उसके तरंग एवं फोटान गुण के कारण द्विगुणित हो जाते हैं। ये 'फोटॉन' ऊर्जा अंतर्निहित रखते हैं।

प्रकाश की तरंगों की लम्बाई नापने के लिए आंगस्ट्राम इकाई प्रयोग में लाई जाती है। यह एक आंगस्ट्राम १०$^{-८}$ से० मी० के बराबर होता है। यदि प्रकाश अधिक तीव्रता से प्रकम्पित होता है तो तरंगें छोटी होती हैं और यदि कम तीव्रता से प्रकम्पित होता है तो तरंगें बड़ी होती हैं। कुछ विशेष प्रकार का प्रकाश इतनी तीव्रता से प्रकम्पित होता है कि हम उसे नहीं देख सकते, यद्यपि उसका फोटो लिया जा सकता है। कोई प्रकाश इतना मंद प्रकम्पित होता है कि उसे भी आँख से नहीं देखा जा सकता।

आँखों को उत्तेजना देने वाली सबसे लम्बी तरंगों को हम 'लाल' कहते हैं। ये तरंगें ६५६३ आंगस्ट्राम या '०००० ३ इंच या लम्बाई में एक इंच की तीन सौ हजारवां भाग हैं। लघुतम तरंग जिसे हम देख सकते हैं, 'बैंगनी' का आभास देती है। ये लगभग आधी लम्बाई ('००००१६ इंच) की होती हैं। इससे भी अधिक छोटी तरंगें अदृश्य अल्ट्रावायलेट (पराबैंगनी) रश्मियों से बनी होती हैं, जो कभी डाक्टरों के काम आती हैं। ज्यादा बड़ी तरंगें नील-लोहितोत्तर (इन्फ्रा-रैड) हैं जो देखी जा सकती हैं। उपरोक्त माप स्टैण्डर्ड लाल एवं बैंगनी की लम्बाई दर्शाते हैं।

प्रकाश सात रंगों से मिलकर बना है जिनमें बैंगनी, नीला, पीला और लाल प्रमुख हैं। इन रंगों की तरंग दैर्घ्य क्रमशः निम्न प्रकार है : —

बैंगनी—४३०८ आंगस्ट्राम

नीला—४८६२ आंगस्ट्राम

पीला—५८६३ आंगस्ट्राम

लाल—६५६३ आंगस्ट्राम

सूर्य का प्रकाश विभिन्न लम्बाइयों की असंख्य तरंगों को अंतर्निहित रखता है और हमें ऐसा आभास देता है—जिसे हम श्वेत प्रकाश का नाम देते हैं।

मिट्टी के तेल के लैम्प का प्रकाश सूर्य प्रकाश की अपेक्षा कम नीली तरंगें निहित रखता है और इसी कारण सूर्य प्रकाश में हम जिन वस्तुओं को नीला कहते हैं वे इस लैम्प के प्रकाश में कम नीली प्रतीत होती हैं। इसी प्रकार वैल्शवाक गैस मैन्टल या मर्करी लाइट में लम्बी तरंगों का अभाव रहता है। यह प्रकाश जिन लोगों पर पड़ता है, वह हल्का हरा प्रतीत होता है।

वस्तुओं की रंग-ग्रहण क्षमता

जब सूर्य प्रकाश बर्फ पर पड़ता है, तो प्रत्येक लम्बाई की तरंगें परावर्तित होती हैं और हम बर्फ को सफेद कहते हैं। यदि सूर्य प्रकाश लाल ट्यूलिप पर पड़ता है तो केवल लम्बी तरंगें परावर्तित हो सकती हैं और ट्यूलिप लाल दिखाई देता है। ट्यूलिप में कुछ ऐसे पिगमैन्टस (कण) पाये जाते हैं जो लाल होते हैं। संतरा जो तरंगें परावर्तित करता है वे ज्यादा बड़ी नहीं होती, जबकि नवीन कोंपलें उससे भी छोटी तरंगें परावर्तित कर पाते हैं। इसलिए प्रत्येक वस्तु प्रकाश के सापेक्ष विभिन्न रंगों में रंगायित होती हैं। प्रकाश परावर्तन के अभाव में पदार्थ काला दिखता है। पिगमैन्ट्स (रंग-कणिकायें) इस प्रकार समस्त श्वेत प्रकाश को अवशोषित या परावर्तित करने के गुण के आधार पर वर्गीकृत किए जाते हैं।

यदि एक पदार्थ पारदर्शक है तो वह उस प्रकाश के कारण नहीं जो वह परावर्तित करता है, वरन् उसमें से गुजरने वाले उस प्रकाश के कारण है जो हमें प्रभावित करता है। जब आकाश धुंधले व घिसे हुए काँच के द्वारा देखा जाता है तो वह विभिन्न पीले और काले शेड्स का बना हुआ दिखाई देता है। कारण यह है कि

पीले रंग का आभास देने वाली लम्बाइयों की तरंगों को छोड़ शेष सभी को कांच प्रयोगात्मक रूप में वापस मोड़ देता है। फोटोग्राफर प्रकाश विहीन कक्ष की खिड़की में लाल कांच प्रयोग करते हैं क्योंकि वह केवल लम्बी और उन रश्मियों को ही अंदर आने देता है, जो फोटोग्राफिक प्लेट को किसी तरह प्रभावित नहीं करती। संक्षेप में, वे रश्मियाँ जो न तो वस्तु द्वारा परावर्तित होती हैं और न संप्रेषित, अवश्य ही अवशोषित होती हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि खास कपड़ों के रंग दूसरे कपड़ों की अपेक्षा क्यों अधिक ठंडे या गर्म रहते हैं। सफेद कपड़ा सब रंगों का परावर्तित करता है जबकि काला किसी को भी नहीं। काला कपड़ा सफेद कपड़े की अपेक्षा गर्म होता है क्योंकि अवशोषित प्रकाश उष्मा का रूप ग्रहण कर लेता है।

रंग-विभेद

रंग के ३ प्रकार या डाइमैन्शन हैं—**वर्ण (ह्यू,)** **तुल्यांक (वैल्यू)** और **क्रोमा** जो वास्तविक रंग-निरूपण में प्रयोग में लाये जाते हैं।

ह्यू वह प्रकार है जिससे एक रंग दूसरे रंग से (जैसे लाल, पीला या नीला) अलग किया जाता है।

वैल्यू से हम किसी रंग का हल्का या गहरा होना पहिचानते हैं। इसके द्वारा एक रंग दूसरे गहरे रंग से अलग किया जाता है। एक हल्के वर्ण (ह्यू) की हलकी वैल्यू 'टिन्ट' और गहरी वैल्यू 'शेड' कहलाती है।

क्रोमा किसी रंग की शक्ति है, या वह प्रकार है जिसके द्वारा एक शक्तिमय रंग कमजोर रंग से या चमकीला रंग एक धुंधले रंग से अलग किया जाता है।

लाल, पीला और इनके बीच वाले माध्यमिक रंग गर्म रङ्ग हैं। ये रङ्ग प्रकाश को अवशोषित करते हैं और निकटता का गुण रखते हैं। ये सूर्य और अग्नि के गर्म तत्वों का संकेत करते हैं। नीला, हरा, बैंगनी और इनके माध्यमिक रङ्ग ठंडे रङ्ग हैं। ये रंग प्रकाश की उपेक्षा करते हैं और दूरी या अन्तर का गुण रखते हैं। ये रंग सुदूर वृक्षों, पत्तियों, छायाओं, जल और आकाश के तत्वों का संकेत करते हैं।

रंगों का उपयोग

श्रृंगार और गृह-सज्जा में रंगों को प्रभावशाली ढंग से संयोग और प्रयोग करने के लिए उनका ज्ञान आवश्यक है। गहरे रंग किसी कमरे की वास्तविक माप को कम बताते हैं जबकि हल्के रंग कमरे को बड़ा प्रदर्शित करते हैं। गहरे रंग इतना अधिक प्रकाश भी अवशोषित करते हैं कि वे कृत्रिम प्रकाश प्राप्त करने की दृष्टि से मँहगे पड़ते हैं।

कमरे का बाह्य रूप कुछ हद तक यह स्पष्ट कर देता है कि उसके लिए कौन सा रंग चुना जाय। नीला, बैंगनी, हरा-नीला या स्लेटी हरा जैसे हल्के रंग जो उष्मा रहित होते हैं, छोटे कमरों में बैक-ग्राउण्ड के रूप में असुन्दर लगते हैं। यदि किसी कमरे का मुख दक्षिण में है जहाँ से पर्याप्त सूर्य का प्रकाश आता है, तो हल्का भूरा, बहुत हल्का हरा-भूरा, क्रीम या हाथी दाँत जैसा रंग कमरे को ठंडा बनायेगा, जबकि उत्तर में मुख होने पर कमरे के लिए हल्का पीला, भूरा-पीला या कम वैल्यू का भूरा सा पीला नारंगी रंग अधिक उपयुक्त होगा। ये रंग गर्मी और सूर्य प्रकाश को लिए हुए से आभासित होते हैं, इसी कारण कमरे की भीतरी छत अधिकतर क्रीम या दीवार की सज्जा से हल्के 'टिन्ट' में सज्जित की जाती है।

प्रकृति में रंग

रंग-विन्यास का प्रकृति से अच्छा कोई संयोजक नहीं है। वैसे मुख्यतः हरा, नीला, बैंगनी, भूरा-बैंगनी, हल्का भूरा जैसे मद्धिम रंग अधिक दृष्टिगोचर होते हैं। तीव्र लाल जैसे उष्ण रंग ठंडे रंगों की अपेक्षा कम दिखाई देते हैं। वसन्त ऋतु में पेड़ों में मुख्यतः लाल, नारंगी और पीले जैसे शक्तिशाली तीव्रता वाले चमकदार रंगों का एकाधिकार हो जाता है। इसी ऋतु में रंग अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचते हैं। आकाश वृक्षों के स्वर्णिम नारंगी रंग के विरोध में अधिक नीला दिखाई देता है। हरे रंग के विभिन्न वर्ग जैसे पीला हरा और

नीला-हरा स्वयं सादृश्य बना लेते हैं। जिस प्रकार से ऋतुराज वसंत वर्ष में रंग का सरताज है वैसे ही सूर्यास्त दिवस का तीव्र रंग संयोजन वाला क्षण है। उस समय बहुधा पृथ्वी नीले, भूरे व बैंगनी रंगों की छटा से आच्छादित हो जाती है। इनकी वैल्यू हल्के भूरे से गहरे भूरे और गहरे नीले से पूर्णतः काले तक हो सकती है।

सूर्यास्त के रंग प्रारम्भ में बहुत कांतिमान होते हैं, परन्तु शनैः-शनैः रंग हल्के पड़कर अंत में आकाश पर बिखर जाते हैं। प्रकृति प्रत्येक ऋतु में, दिन और रात में एक निश्चित क्रमबद्ध परिवर्तन प्रदर्शित करती है। दिवस के अवसान पर सूर्यास्त उपस्थित होता है जबकि कार्य लगभग समाप्त हो जाता है और मनुष्य की दृष्टि पृथ्वी से मनोहारी आकाश की तरफ बरबस आकर्षित कर शीतलता प्रदान करता है। उस समय चाँद, उपग्रह और हजारों सितारे पृथ्वी को रजत आभा से प्रकाशित करते हैं और महासागर की तरंगों को स्वर्ण प्रकाश देते हैं। रंगों का यह अनोखा संसार वास्तव में मनुष्य के लिए सदा से रोचकता का विषय रहा है।

प्रो० टी० आर० शेषाद्रि का परिषद् भवन में स्वागत

२४ जुलाई को ८½ बजे प्रातःकाल दिल्ली विश्वविद्यालय के सुप्रसिद्ध रसायनज्ञ प्रो० टी० आर० शेषाद्रि, एफ० आर० एस० ने विज्ञान परिषद् भवन का निरीक्षण किया। इस अवसर पर आयोजित जलपान के समय उन्होंने अपने विचार व्यक्त करते हुये कहा कि परिषद् द्वारा हिन्दी में प्रकाशित अनुसन्धान पत्रिका प्रशंसनीय कार्य है। वे उसकी उन्नति में अपना पूर्ण योग देंगे।

प्रकृति में रैडार

रमेशचन्द्र मिश्र

प्रकृति बहुत रहस्यमयी है। मनुष्य प्रारम्भ से ही प्रकृति के रहस्यों का उद्घाटन करता रहा है परन्तु फिर भी प्रकृति की गोद में छिपे हुये रहस्यों का अन्त नहीं। ज्यों-ज्यों मनुष्य प्रकृति के रहस्यों का पता लगाता है त्यों-त्यों उसे नये रहस्यों की सम्भावना का संकेत मिलता है। यहाँ पर हम प्रकृति के उस अद्भुत रहस्य का वर्णन करना चाहते हैं जिसका पता सबसे पहले हार्टरिज आदि वैज्ञानिकों ने लगाया था।

विज्ञान के आधुनिक आविष्कारों की गणना करते समय यदि हम रैडार को छोड़ दें तो आविष्कारों की सूची अधूरी रह जायगी। रैडार आधुनिक विज्ञान का महत्वपूर्ण आविष्कार है। सामरिक दृष्टि से तो इसका महत्व है ही परन्तु इसके शान्तिकालीन उपयोग भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। आज रैडार के नाम से प्रायः प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति परिचित है। अभी हाल में हुये भारत-पाक युद्ध के कारण अधिक लोग इसके नाम और काम से परिचित हो गये। सरगोधा के रैडार ने इन दिनों बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की। यह तो हुई मनुष्य द्वारा निर्मित या कृत्रिम रैडार की बात परन्तु क्या आपने कभी यह भी सोचा है कि प्रकृति ने भी रैडार यंत्र तैयार किया है जो मनुष्य द्वारा निर्मित रैडार से कम दक्ष या कम आश्चर्यजनक नहीं ? इसके पहले कि हम आपको यह बतायें कि प्रकृति में रैडार कहाँ और कैसे काम करता है, हम आपसे एक प्रश्न करना चाहते हैं। हम सभी जानते हैं कि चमगादड़ दिन के समय पेड़ की डालों से लटके रहते हैं और रात के समय जब अँधेरा हो जाता है तब वे एक स्थान से दूसरे स्थान तक यात्रा करते हैं। सच पूछा जाय तो बात यह है कि जो महत्व दिन का हमारे आपके लिये है वही महत्व चमगादड़ों के लिये रात का है। चमगादड़ अपने सारे काम रात्रि में ही करता है। प्रकृति की यह विचित्र घटना हम सभी प्रतिदिन देखते हैं। किन्तु वैज्ञानिक के मस्तिष्क ने इसको एक प्राकृतिक घटना मानकर ही नहीं सन्तोष कर लिया। उसने इस घटना के रहस्य का पता लगाने का प्रयत्न किया और अन्त में उसने विजय प्राप्त की। प्रकाश की अनुपस्थिति में वस्तुओं का देख पाना सम्भव नहीं तो फिर ये चमगादड़ किस प्रकार मार्ग में बिना टकराये हुये एक स्थान से दूसरे स्थान तक तीव्र गति से यात्रा करते हैं ? यदि इस प्रश्न के उत्तर में हम यह कहें कि प्रकृति ने चमगादड़ों के अन्दर एक रैडार का प्रबन्ध कर दिया है तो आप चौंकिये नहीं क्योंकि यह बात बिल्कुल सत्य प्रमाणित हो चुकी है। आइये हम आपको बतायें कि यह प्रकृति का रैडार किस प्रकार कार्य करता है। प्राकृतिक रैडार की कार्य विधि को समझने से पहले मानव निर्मित रैडार की कार्य विधि का समझ लेना आवश्यक है।

रैडार (Radar) अंग्रेजी भाषा का शब्द है जो (Radio detection and ranging) का संक्षिप्त रूप है। radio detection and ranging से अभिप्राय है रेडियो तरंगों द्वारा किसी वस्तु का पता लगाना और उसकी ठीक स्थिति निर्धारित करना। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि रैडार वह यंत्र है जिसकी सहायता से हम रेडियो तरंग के द्वारा किसी वस्तु की सही स्थिति ज्ञात कर सकते हैं। रेडियो तरंगें एक प्रकार की विद्युत चुम्बकीय तरंगें हैं जिनका उपयोग घरेलू रेडियो में सम्वाद एवं संगीत प्रेषित के लिये किया जाता है। वास्तव में यदि देखा जाय तो रैडार सैद्धांतिक रूप में एक प्रतिध्वनिमापक (Echometer) है।

रैडार में एक प्रेषित्र (Transmitter) के द्वारा बहुत शक्तिशाली (कई सौ किलोवाट शक्ति की) वैद्युत-

चुम्बकीय तरंगें बहुत ही थोड़े समय (एक माइक्रोसेकेण्ड अर्थात् १।१०६ सेकेण्ड) के लिये उत्पन्न की जाती हैं। इन तरंगों को बिल्कुल समान समयान्तरों (Intervals) पर भेजना चाहिए। यदि लम्बी दूरियाँ नापनी हों तो तरंगों को १।२५ सेकेण्ड के अन्तर से भेजना चाहिये। और यदि छोटी दूरियाँ नापनी हों तो तरंगों को १।५००० सेकेण्ड के अन्तर से भेजना चाहिये। प्रेषित्र एक माइक्रोसेकेण्ड के लिये काम करता है और अपेक्षाकृत अधिक समय १।२५ सेकेण्ड के लिए निष्क्रिय रहता है। यह तरंगे जब वस्तु से जाकर टकराती हैं तो परावर्तित हो जाती हैं। इन परावर्तित रेडियो तरंगों को एक संग्राही (Receiver) द्वारा ग्रहण किया किया जाता है। वैद्युत चुम्बकीय तरंगों का वेग प्रकाश के वेग के समान होता है अर्थात् एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकेण्ड। इस अत्यधिक वेग के कारण रेडियो तरंगों की प्रतिध्वनि की ट्यूनिंग एक सेकेण्ड के दस लाखवें भाग में करनी होती है जो किसी यान्त्रिक-विधि द्वारा सम्भव नहीं है। इन अत्यन्त छोटे समयान्तरों को कैथोड़-रे-ऑसिलोग्राफ (Cathode-Ray-Oscillograph) के द्वारा नापा जाता है। जो संग्राही से लगा रहता है, कैथोड़-रे-ऑसिलोग्राफ पर्दे पर ग्रहण की हुई प्रतिध्वनियों में संगती के आकार के के बक्र बन जाते हैं, जिनसे उस वस्तु की स्थिति, जिसने इन प्रतिध्वनियों को भेजा है, ठीक से निर्धारित की जा सकती है। इस प्रकार रैडार का सिद्धान्त केवल रेडियो तरंगों की प्रतिध्वनि की देरी के समय का मापना मात्र है।

चमगादड़ों के पास प्रकृति प्रदत्त अद्भुत शक्ति होती है जो रैडार की भाँति कार्य करती है। हार्टरिज, डी० आर० ग्रिफिन आदि वैज्ञानिकों ने चमगादड़ों पर प्रयोग किये और ये प्रमाणित किया कि यह पक्षी बहुत ऊँची आवृति की ध्वनि तरंगें उत्पन्न करते हैं और आस पास की वस्तुओं से परावर्तित ध्वनियों को ग्रहण करते हैं। यह क्रिया ठीक रैडार के प्रेषित्र और संग्राही यंत्र की भाँति होती है। अन्तर केवल इतना होता है कि रैडार में रेडियो तरंगें काम में लाई जाती हैं, और यहाँ पर ध्वनि तरंगे काम में लाई जाती हैं। यह ध्वनि कर्णातीत होती है अर्थात् कान द्वारा नहीं सुनी जा सकती है। इन ध्वनि तरंगों की आवृत्ति (अर्थात् एक सेकेण्ड में कम्पनों की संख्या) ३० से लेकर ७० किलो साइकिल प्रति सेकेण्ड होती है और इनका तरंग दैर्ध्य (Wavelength) वायु में लगभग ६ मि० मी० होता है। यह ध्वनि तरंगें एक सेकेण्ड के दस लाखवें भाग के लिये उत्पन्न की जाती हैं। जब इस प्रकार की ध्वनि तरंगें चमगादड़ के मार्ग की बाधाओं से टकराती हैं और प्रतिध्वनि के रूप में पुनः उस तक पहुँचती हैं तब चमगादड़ जान जाता है कि मार्ग में उपस्थित बाधाओं से किस प्रकार बचना चाहिये। चमगादड़ की रैडार क्षमता इतनी अधिक होती है कि वह अपने मार्ग में आई बाधा, जैसे महीन तार आदि को भी बचा सकता है। यही नहीं जब दो या दो से अधिक चमगादड़ एक दूसरे के निकट उड़ रहे होते हैं, और प्रत्येक अपना "सोडार" (Sodar) या "सोनर रेडार" Sonar Radar) या ध्वनि रैडार प्रयोग कर रहा होता है, उस समय भी कोई गड़बड़ी नहीं उत्पन्न होती है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक चमगादड़ अपनी आवाज पहचानता है। प्रकृति का यह चमत्कार बहुत अद्भुत है। जब मनुष्य ने रैडार के विषय में सोचा भी नहीं होगा उस समय से अनेकों वर्ष पहले से प्रकृति ने चमगादड़ों को ध्वनि रैडार से लैस कर रखा है। तब से निरन्तर प्रकृति का रैडार कार्य कर रहा है और न जाने कब तक कार्य करता रहेगा। मनुष्य को तो इस प्रकृति के रैडार का ज्ञान स्वनिर्मित रेडार के वर्षों बाद हुआ है। प्रकृति के गर्भ में छिपे हुये रहस्य मनुष्य को चुनौती दे रहे हैं और वैज्ञानिक का तो उद्देश्य ही इन रहस्यों का पर्दाफाश करना है।

बम-विस्फोटों का विनाशकारी प्रभाव

श्याम मनोहर व्यास

आज सारा विश्व तीसरे महायुद्ध की आशंका से भयभीत है। विश्व के महान् राजनीतिज्ञों और दार्शनिकों का विश्वास है कि आण्विक अस्त्रों का निर्माण मानव जाति के लिये विनाशकारी ही सिद्ध होगा।

विज्ञान ने नये नये परमाणु बम, हाइड्रोजन बम व मेगोटन बम आदि विनाशकारी बमों का निर्माण कर तीसरे युद्ध का एक खतरा उत्पन्न कर दिया है।

बम विस्फोट से उत्पन्न विनाशकारी परिणामों को हम तीन भागों में बाँट सकते हैं—

(१) विस्फोट के धड़ाके का प्रभाव

(२) दाहक प्रभाव

(३) रेडियोधर्मिता का प्रभाव !

विस्फोट के धड़ाके का प्रभाव :—बम विस्फोट के धड़ाके के प्रभाव से आलीशान मकान खंडहर का रूप धारण कर लेते हैं, भूमि में दरारें पड़ जाती हैं, सड़कें नष्ट हो जाती हैं और बड़े-बड़े पुल टूट जाते है। भयंकर धड़ाके के प्रभाव के कारण कानों के पर्दे फट जाते हैं। अनेक प्राणी मौत के ग्रास बनते हैं।

भारत पाक युद्ध के दौरान पाकिस्तानी बमों के शिकार हुये कई ध्वस्त मकान इस बात के साक्षी हैं। पाकिस्तान ने लगभग ५०० बम भारतीय भूभाग पर गिराये थे। एक परमाणु बम की विस्फोटन शक्ति बीस हजार टन भार के सादे टी० एन० टी० बमों के बराबर होती है।

द्वितीय महायुद्धों के दौरान हिरोशिमा पर गिराये गये परमाणु बम के विस्फोटन से दो मील के अन्दर की सारी इमारतें पूर्णतया नष्ट भ्रष्ट हो गयी थीं।

हिरोशिमा पर बम २००० फीट की ऊँचाई से गिराया गया था। परमाणु बम के विस्फोटन का प्रभाव विस्फोट के क्षण से लगभग पन्द्रह सेकेण्ड बाद तक बना रहता है।

इतनी देर में विस्फोट के धड़ाके की तरंग लगभग दो मील की दूरी तय कर लेती है।

बम के जमीन पर गिरते ही उसमें रासायनिक क्रिया प्रारम्भ हो जाती है जिससे अत्यधिक ऊर्जा, ताप, प्रकाश तथा ध्वनि उत्पन्न होती है। उस बम में रखे विस्फोटक तथा दाहक पदार्थ इधर-उधर छिटक जाते हैं। इससे वायु में भीषण कम्पन होता है।

विस्फोट के कारण उत्पन्न कार्बन मोनोआक्साइड (CO) गैस द्वारा मृत्यु भी हो सकती है। हाइड्रोजन बम के विस्फोट के धड़ाके के कारण अस्सी वर्ग मील के क्षेत्र में विद्यमान सभी इमारतें पूर्णतया नष्ट हो जाती हैं। इसका अर्थ यह है कि एक अकेला हाइड्रोजन बम लन्दन या न्यूयार्क को पूर्णतया नष्ट कर सकता है। हाइड्रोजन बम की विस्फोटन सामर्थ्य लगभग १००० परमाणु बमों की सामर्थ्य के बराबर होती है। हाइड्रोजन बम के विस्फोटन का प्रभाव पूरे बारह सैकण्ड तक रहता है। बम विस्फोट के कारण भूमि में बड़े-बड़े गड्ढे पड़ जाते हैं। हिरोशिमा तथा नागासा की में गिराये गये परमाणु बम के विस्फोट के परिणाम स्वरूप १, १००० व्यक्ति मरे और इतने ही घायल हुये थे।

दाहक प्रभाव—विस्फोट के क्षण बम में से तीव्र चमकीला प्रकाश निकलता है। उसके परिणामस्वरूप असह्य ताप की ज्वाला चारों ओर दूर-दूर तक पहुँच जाती है।

विस्फोट के समय परमाणु बम में विद्यमान पदार्थ का ताप १० लाख सेंटीग्रेड तक पहुँच जाता है।

हिरोशिमा में गिराये गये परमाणु बम के विस्फोट

के फलस्वरूप भूमि का ताप ३०००° से० तक पहुँच गया था जो पत्थर तक को पिघलाने के लिये काफी है। खुले मैदान में जो लोग थे, बुरी तरह से झुलस गये। काफी दूर पर स्थित लोगों की त्वचा भी इससे अछूती न रही। उनकी भी त्वचा पर फफोले पड़ गये। हाइड्रोजन बम का दाहक प्रभाव भी बड़ा विनाशकारी है। इसका प्रभाव ८०० वर्ग मील के क्षेत्र में पहुँचता है। इस क्षेत्र में स्थित व्यक्तियों की खुली हुई त्वचा पर जलने के घाव उत्पन्न हो जाते हैं। अनेक मकान आग की भेंट हो जाते हैं। फास्फोरस बम के विस्फोटन से सफेद फास्फोरस निकलता है जो सूखा रहने पर हवा लगते ही जलने लगता है। विस्फोट होने पर इसके कण तीव्रता से शरीर के भीतर घुस जाते हैं और जलने लगते हैं।

यूरेनियम बम की ज्वाला तीन सैकण्ड में समाप्त हो जाती है पर हाइड्रोजन बम के विस्फोटन से उत्पन्न ज्वाला को समाप्त होने में पच्चीस सैकण्ड लगते हैं। नापाम बम इमारतें जलाने के लिये ही प्रयोग में लाये जाते हैं। पाकिस्तान ने इन बमों का भी उपयोग किया था।

इसकी लपेट में आये व्यक्ति जीवित ही जल जाते हैं। मकान की दीवारें या मोटे कपड़े अवश्य ही शरीरांगों को परमाणु बम के दाहक प्रभाव से बचाने में समर्थ होते हैं।

रेडियोसक्रियता का प्रभाव

बम विस्फोट के तुरन्त पश्चात् ही गामा किरणें, इलेक्ट्रान किरणें आदि निकलने लगती हैं और हजारों रेडियो आइसोटोप निकलते हैं जो वायु, धूल तथा अन्य पदार्थों पर फैल जाते हैं।

मनुष्य जाति और अन्य जीव जगत् पर रेडियो-सक्रिय किरणों का अत्यन्त विनाशकारी प्रभाव पड़ता है। गामा रश्मियों के प्रभाव के कारण कई मानसिक व शारीरिक रोगों की उत्पत्ति होती है। इसके अतिरिक्त अल्फा कणों तथा बीटा कणों की बौछार भी विस्फोट से उत्पन्न होती है। पर अल्फा तथा बीटा के कणों को वायु अपने में सोख लेती है इसलिये उसका कोई प्रभाव जीव-धारियों पर नहीं पड़ता। केवल गामा किरणें ही जीव जगत् को हानि पहुँचाती हैं।

एक्स किरणों की भाँति गामा किरणें भी लकड़ी, कपड़ों आदि में से आसानी से गुजर जाती हैं। गामा किरणें शरीर के अन्दर प्रवेश कर ऐसे हानिकारक प्रभाव उत्पन्न करती हैं जो कुछ वर्षों बाद अपना घातक रूप प्रकट करते हैं। इन किरणों का प्रभाव २-३ पीढ़ियों तक रहता है।

गामा किरणों के शरीर में प्रवेश करने के परिणाम-स्वरूप कैन्सर, ल्यूकेमिया जैसे भयंकर रोग हो जाते हैं। गामा किरणें शरीर में प्रवेश कर मज्जा तन्तुओं पर भी अपना हानिकारक प्रभाव डालती हैं।

परमाणु बम के विस्फोट के लगभग एक मिनट पश्चात् परमाणु बम के अन्दर के पदार्थ असह्य ताप और दबाव के कारण वाष्प रूप में परिवर्तित हो जाते हैं।

वाष्प के सभी अणु रेडियोधर्मी होते हैं। जहाँ रेडियोधर्मी अणु पहुँचते हैं वहाँ मनुष्यों में भूख न लगना, बालों का गिरना, जी मचलाना, चर्म रोग, बुखार, कै दस्त आदि सामान्य रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

हाइड्रोजन बम से उत्पन्न रेडियोधर्मी किरणें श्वास व खाद्य पदार्थों द्वारा शरीर में पहुँच कर बुरा प्रभाव डालती हैं।

ये किरणें त्वचा भेद कर भी शरीर के अन्दर प्रविष्ट हो जाती हैं। रेडियोसक्रिय किरणों का मनुष्य की प्रजनन शक्ति पर भी हानिकारक प्रभाव पड़ता है।

किरणों की तीव्रता यदि कम रही तो अस्थायी रूप से प्रजनन-शक्ति मारी जाती है और यदि किरणें अधिक तीव्र हुईं तो सदैव के लिये उस व्यक्ति की प्रजनन सामर्थ्य नष्ट हो जाती है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में दो प्रतिशत बालक प्रजनन सम्बन्धी विकृतियों के शिकार होते हैं। जापान में हुये परमाणु बम-विस्फोट के फलस्वरूप अनेक व्यक्ति अपनी प्रजनन शक्ति खो बैठे थे और बहुतों को मृत या विकृत शिशु उत्पन्न हुये!

आज तक के छूटे बमों का विष आकाश में लगभग बीस मील ऊपर तक फैल चुका है। धीरे-धीरे आकाश से रेडियोसक्रिय अणु पृथ्वी पर गिरते रहते हैं।

खाद्य पदार्थों पर भी रेडियोसक्रियता का बुरा प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिये रेडियो सक्रिय आयोडीन दूषित चरागाहों से पशु के दूध में होकर बच्चों की गल गन्थियों में एकत्र हो जाता है !

इसी प्रकार से रेडियोसक्रिय स्ट्रॉशियम अन्न या समुद्री मछलियों के शरीर में एकत्रित हो जाता है। पेड़ पौधों पर भी रेडियोसक्रियता का प्रभाव पड़ने के कारण वे मानव शरीर के लिये हानिप्रद सिद्ध हो जाते हैं।

हाइड्रोजन बम के विस्फोटन के परिणामस्वरूप लगभग पच्चीस मन रेडियोसक्रिय पदार्थ के कण तप्त वाष्प के गोले के रूप में आकाश में चढ़ते हैं।

आकाश में पहुँचने के उपरान्त इस गोले के छोटे-छोटे रेडियोसक्रिय कण आठ घण्टे तक धरती पर गिरते रहेगें और सौ मील के क्षेत्र में अपना विनाशकारी प्रभाव डालेंगे।

परमाणु परीक्षणों के समय मुख्यतः स्ट्रॉशियम ६० नामक तत्त्व निकलता है जिसका प्रभाव हड्डियों पर सबसे भयंकर होता है। यह पानी में भी विलेय है। यह मिट्टी में पहुँच कर वनस्पति के साथ घुल-मिल जाता है। दूध, साग-सब्जी में मिलकर हमारे शरीर में भी पहुँच सकता है। कैन्सर व ल्यूकेमिया रोगों का कारण रेडियोसक्रिय स्ट्रांशियम ही हैं। यूरेनियम बम में यह यूरेनियम २३५ के विघटन से उत्पन्न होता है।

हाइड्रोजन बम विस्फोटन के समय बीस सेर स्ट्रॉशियम ९० तप्त वाष्प के रूप में वायुमण्डल में फैलता है। आजकल अमरीका में वैज्ञानिक ऐसे हाइड्रोजन बम बनाने के लिये प्रयत्नशील हैं जिनमें यूरेनियम का उपयोग ही न हो परमाणु विस्फोट से उत्पन्न रेडियोसक्रिय धूल मानव शरीर के आन्तरिक भागों में ऐसे परिवर्त्तन करती है जिसके परिणामस्वरूप आने वाली पीढ़ी रोगी, पंगु और अपाहिज बनती है।

बमों के परीक्षण के फलस्वरूप संसार में एक विषाक्त वातावरण फैलता जा रहा है। मानवता का तकाजा है कि आणविक परीक्षण शीघ्र ही बन्द हो। अणु शक्ति का उपयोग मानव जाति को सुखी व समृद्ध बनाने में ही होना चाहिये।

अणु शक्ति का उपयोग चिकित्सा के क्षेत्र में, कृषि के क्षेत्र में, यांत्रिक क्षेत्र में ही होना चाहिये न कि विनाशकारी बमों के निर्माण में।

गणितीय मनोरंजना

दयाल सिंह कोठारी

मयूर के मस्तक पर शिखा तथा नाग फन पर मणि की तरह वेदांग ज्योतिष (१२०० ई० पू०) में गणित को सर्वोपरि स्थान प्रदान कर उसके प्रणेता ने आज से ३२०० वर्ष पूर्व गणित की उपयोगिता की ओर इंगित किया है। छान्दोग्य उपनिषद में नारद सनत कुमार संवाद से स्पष्ट है कि पारलौकिक ज्ञान की प्राप्ति में गणित प्रमुख स्थान रखता था। गीतकार प्रख्यात गणितज्ञ पाइथैगोरस ने आध्यात्मिक आस्थाओं से ओत-प्रोत श्रध्दाताओं के हृदय की धड़कन को पहचान कर, अपनी संख्या ब्रह्म की बांसुरी से जो मधुर राग अलापा उससे श्रोताओं के कान सैकड़ों वर्षों तक गूँजते रहे। प्रकृति के ताने-बाने तथा सृष्टि के कण-कण में व्याप्त सत्य गणितीय सत्य ही है इस ज्ञान के पिपासु समझ चुके थे। प्लेटो के द्वार पर लगा निषेध पट भी उसकी आवश्यकता की ओर इंगित करता था। गणित सार संग्रह के यशस्वी लेखक महावीर की इस वाणी में कि सचराचर त्रैलोक्य में जो कुछ भी है उसका अस्तित्व गणित के बिना असंभव है हम स्पष्ट सुन सकते है। कहने की आवश्यकता नहीं कि लान्सिलाट हॉगबन के शब्दों में गणित आज हमारी समूची सभ्यता का दर्पण बन गया है।

आदि काल से आज तक गणित की सर्वविदित उपयोगिता के बावजूद गणित लोकप्रिय विषय क्यों नहीं बन सका और गणित के महामंदिर तक पहुँचने से रोकने के लिए उसके चारों ओर विकट बन क्यों खड़ा है? यदि हम कहें कि अपने आराध्यदेव तक जन साधारण को पहुँचने से रोकने के लिए उसके अनेक आराधकों ने इस विकट बन को विकसित होने में योग दिया है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। पाइथैगोरस भ्रातृपरिवार अपने अनुसंधानों को पिटारे में बन्द कर पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ाता रहा और जनता को उसके ईश्वरीय ज्ञान होने की बंदिश लगाता उसे दूर रखता रहा। जिसने इसके विरुद्ध आवाज लगाई उसे सृष्टि के पर्दे से ओझल कर दिया गया। इतिहास इस बात का साक्षी है कि गोपनीयता के इस द्वार को खोलने के प्रयास में हिपसश को अग्नि देव की भेंट-चढ़ना पड़ा। पाइथैगोरस भ्रातृ परिवार के सत्य और सिद्धान्त गोपनीयता की उस प्रचण्ड ज्वाला में जो जनता वर्ग उनके आराध्यदेव तक पहुँचने से रोकने के लिए प्रज्वलित की गई थी घास-फूस के ढेर की तरह राख हो गई। अपने आराध्यदेव को प्रसन्न करने के लिए गणित के अनेक गीतकारों ने जिस भाषा का प्रयोग किया उसे जनसाधारण समझ नहीं सका। इस क्लिष्ट भाषा प्रयोग [illegible] उद्देश्य जहाँ आंशिक रूप से गणित के कठिन सिद्धान्तों को स्पष्ट करना था वहाँ अपने पाण्डित्य का बोझ जनता पर लादने का भी था जिससे गणित लोकोपयोगी होते हुए भी लोकप्रिय न हो सकी और ए० एन० व्हाइटहेड के शब्दों में गणित उन्नत ललाट वालों का विषय बना रहा।

प्रकृति का प्रकोप जहाँ मानव जाति पर अभिशाप सिद्ध हुआ वहाँ गणित के अभ्युदय में वह वरदान भी यदा कदा सिद्ध हुआ। मिश्र के भीमकाय पिरेमिड, जो मृत बादशाहों व जीवित सेवकों के कलेवर पर खड़े इठलाते थे, समकोण चमत्कारिक त्रिभुजों की खोज में साधक रहे और नील की बाढ़ खेतों की पुनः सीमांकन समस्या के रूप में ज्यामिति के विकास में वरदान सिद्ध हुई। यूनान में फैली महामारी डिलाई नगर की घनाकार वेदी को द्विगुणित करने के प्रयास में भले ही शान्त न हुई हो परन्तु जनसाधारण को बड़े मनोरंजक ढंग से उसमें अन्तर्निहित गणित की असंभव समस्या की ओर आकृष्ट किया। मिश्र का गणितज्ञ [illegible]

प्रणाली भारतीय अंक प्रणाली के समक्ष भले ही शिशुवत थी परन्तु गूढ़ गम्भीर गणितीय संस्थाओं को सरलता से अभिव्यक्त करने की दिशा में एक अभूतपूर्व मार्गदर्शिका थी। गीतकार पाईथैगोरस भी इस दिशा में पीछे न रहा। समकोण त्रिभुज, जो भारत, यूनान व मिश्र में अपने चमत्कार की विजय-दुंदुभी बजा चुके थे पाइथैगोरस के उर्वरा मस्तिष्क से अपने असली रूप में गणित के धरातल पर उतर आए और सेवक बन कर गणित के विभिन्न प्रदेशों में मानव जाति की सेवा में आज भी व्याप्त है। आत्माओं के आवागमन का परम विश्वासी पाइथैगोरस इस आविष्कार से कितना प्रसन्न हुआ होगा यह हम उसके सौ आटों के बैलों की बलि के अबोध कार्य से समझ सकते हैं। एक से पाँच तक के अंकों को क्रमशः तर्कना, पुरुष, स्त्री, न्याय और विवाह शब्दों से नामकरण करना जहाँ पाइथैगोरस का यथार्तता की भूमि से परे दार्शनिकता की आकाशीय उड़ान भरने का द्योतक है वहाँ संख्याओं में प्राण प्रतिष्ठा की उसकी अपूर्व सूझ से कौन मना कर सकता है।

मनोरंजकता के उद्गम से यदि हम कुछ और आगे बढ़ें तो हमें युनानी दार्शनिक जेनों की नूपुर ध्वनि सुनाई देती है। कछुए द्वारा द्रुतगामी सुभट अचिलस की पराजय जनता को दुलार व ललकार के द्वारा किस मनोहारी ढंग से गणित देश में आने हेतु आमन्त्रित करती है यह हम जैनों द्वारा रखी गई इस समस्या में स्पष्ट सुन सकते हैं। कछुआ अचिलस से दस चरण आगे है और अचिलस की गति कछुए से दस गुनी है। जितने समय में अचिलस दस चरण पार करता है कछुआ एक चरण आगे बढ़ जाता है। इस चरण को अचिलस जितने समय में पार करता है कछुआ दशांश चरण और आगे बढ़ जाता है। इस प्रकार शतांश, सहस्रांश आदि चरण कछुआ अचिलस से सदा आगे रहेगा। समय की परमावधि द्वारा अचिलस की दौड़ को जिस सुन्दर ढंग से जैनों ने नियन्त्रित किया है वह गणितीय मनोरंजना के अंधकार युग में प्रकाश की प्रखर ज्योत्स्ना है।

मनोरंजन के बीज किसी अध्ययेता की मनोभूमि में तभी पल्लवित व पुष्पित होते हैं जब उन्हें उपयोगिता की खाद व सहजता का मधुर नीर, स्वच्छ सुरुचिपूर्ण पवन प्रवाह के साथ देश काल व परिस्थिति के अनुकूल जलवायु में प्राप्त हो। "आवश्यकता आविष्कारों की जननी है" के अनुसार गणित के सिद्धान्त भी आविष्कृत हुए परन्तु सभ्यता के विकास के साथ-साथ उपयोगिता का यह कलेवर सूत्रों और सिद्धान्तों की विविध वेष-भूषाओं से इतना अलंकृत हो गया है कि उपयोगिता के प्राकृत सौन्दर्य को अनावृत करना बड़े-बड़े मनीषियों के लिए भी समस्या बन जाता है। टालमो से आचार्य, जिनके इस कथन पर कि समान स्थिति में गिराई जाने वाली भारी वस्तु पहले भू-स्पर्श करेगी बारह सौ वर्षों तक गैलेलियो से पूर्व अविश्वास करने का किसी ने साहस तक न किया, विद्यार्थी को यूक्लिड के साध्य का उपयोग बताने में असफल होने से झुंझला कर आदेश देते हैं कि इसे तीन आने देकर यहाँ से विदा करो क्योंकि इसे प्रत्येक साध्य सीखने पर कुछ लाभ होना चाहिए।

उपयोगिता के धर्म को समझने के लिए हमें किसी सिद्धान्त के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन होना चाहिए। इतिहासकार फ्लोरियन कैजोरी के गणित को इतिहास नामक ग्रन्थ में ठीक ही कहा गया है कि किसी गणितीय विषय को समझने हेतु जितनी सार्थकता उसके इतिहास की है उतनी शायद ही किसी विषय के लिए उसके इतिहास की हो। भारतीय अंक प्रणाली की दिग्विजय को समझने के लिए हमें जानना होगा कि शून्य स्थानीय मान व दशमलवीय आधार के अभाव में अन्य देश किस प्रकार संख्या लेखन व परिगणन करते थे। सांख्यिक भाषा के विकास की कहानी से अवगत हुए बिना कोई अध्ययेता नवीन अंक प्रणाली की पूर्णता व महत्व को समझ सकता है—इसमें सन्देह है। आइन्सटीन के सापेक्ष्यवाद को समझने से पूर्व भास्कर, कैप्लर व न्यूटन के आकर्षण सम्बन्धी नियमों की अवगति परमावश्यक है। ऐतिहासिक विकास क्रम के द्वारा विषय न केवल सरल सहजग्राही हो जायगा वरन् सुरुचिपूर्ण व मनोरंजक भी हो जायगा।

सहजता के साथ-साथ जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है मनोरंजकता के लिए पाठकों को उसके उपयोगी स्वरूप से परिचित कराना होगा। उपयोगिता से परे मनोरंजना की कल्पना मृत तृष्णावत है। ऊँचाई व दूरियाँ नापने को अभिलाषी क्या समरूपी त्रिभुजों के गुणों को आत्मसात न कर लेगा? क्या मंगल और चन्द्र की यात्रा को साकार करने वाले साहसी यात्री के सम्मुख आकर्षण के नियमों का हारमोनियम पर गाना होगा? क्या ध्वनि सीमा से परे वेगवान विमान के निर्माता को घर्षण के नियमों की अवगति के लिए प्रेरणा देने की आवश्यकता होगी? उपयोगी ज्ञान की प्राप्ति से किसका हृदय पुलकित न होगा? वास्तविकता तो यह है कि गणितीय सिद्धान्तों व सूत्रों के कथानक को ऐतिहासिक विकास के रंगमंच पर उपयोगिता के अभिनय द्वारा ही मनोरंजक ढंग से अभिनीत किया जा सकता है।

उपयोगिता के संदर्भ में हमें टालेमी की झुंझलाहट को खुर्दबीन से देखना होगा। गणित के अनेक सिद्धान्त अपने आविष्कार के समय इतने उपयोगी सिद्ध न हुए जितने की आज। विशुद्ध गणित के आविष्कारक को स्वप्न में भी आशा न थी कि एक दिन उनके दृढ़ परिश्रम से बनाई संसार को निरर्थक प्रतीत होने वाली ईंटों के द्वारा गणित का वह विराट वैभवशाली भवन खड़ा होगा जिसमें विज्ञान के सहोदर बैठकर शक्ति के उद्गम का पता लगा चाँद और सितारों से बातें करने में सफल होंगे। ज्ञान के अथाह समुद्र में अमूल्य हीरों की खोज में गोते लगाते हुए कभी-कभी ऐसे पत्थर हाथ लग जाते हैं जिन्हें व्यापारी जगत निरर्थक कहता है परन्तु गोताखोर अपने अथकश्रम की स्मृति में उन्हें भावी पीढ़ी के लिए सुरक्षित रख कर चल देता है। तात्कालिक लाभ की भूल-भुलैया में कहीं हम इन ढेलों को निरर्थक मान कर फेंक न दें—इसके लिए टालेमी की झुंझलाहट हमें समुद्र में प्रकाश स्तम्भ की तरह सदैव सावधान करती है।

उपयोगिता के प्रसंग में हमें एक बात और ध्यान में रखनी है। उपयोगिता का परम पौष्टिक आहार अपने शक्तिदायक प्रभाव से अध्ययेता के रोम-रोम में आनन्द की लहर तभी उत्पन्न कर सकता है जब उसमें आहार ग्रहण करने की वास्तविक भूख हो। ऐसी वास्तविक भूख तो इने-गिने उन मनस्वियों में पाई जा सकती है जो नये देशों की खोज में गणित संसार में साहसिक यात्राएँ करते हैं। प्रश्न है कि क्या ऐसी सच्ची भूख की प्रतीक्षा में अध्ययेता को आहार से वंचित रखा जाए? मंदाग्नि से पीड़ित क्षीण रोगी को क्या आहार निषेध द्वारा बचाया जा सकेगा? इन प्रश्नों के नकारात्मक उत्तरों के संदर्भ में हमें यह स्वीकार करना होगा कि सच्ची भूख की प्रतीक्षा में आहार का सर्वथा परित्याग नहीं किया जा सकता वरन् जीवन वीणा के तार अधिक खींचे जाने पर टूट जाएँगे। आवश्यकता है अध्ययेता में भूख उत्पन्न करने की। इसे हम चाहें तो आंत्र शुद्धि के द्वारा उत्पन्न करें, चाहे बलदायक व्यायाम के द्वारा। सुस्वादु पाचक आहार अथवा औषध भी इसके सहायक हो सकते हैं। इन साधनों का उपयोग कर रोगी अपनी खोई हुई भूख को प्राप्त कर लेगा और शक्ति का समुद्र रोम-रोम में हिलोर उठेगा।

भूख और भोजन के सन्दर्भ में हमें कुछ तथ्य सामने रखने हैं। भूख भोजन का आधार है न कि स्वयं ही भोजन। क्षुधा जागरण के प्रयास में कहीं हम चटपटे भोजन तथा औषधियों के इतने दास ही न हो जाएँ कि अपनी पाचन शक्ति को ही नष्ट कर दें। भोजन जीवन का आधार है। इसके बिना कोई वृक्ष पुष्पित व पल्लवित नहीं हो सकता और वह असमय में ही मुरझा कर सृष्टि के पर्दे से ओझल हो जाता है। साथ ही हम भोजन के इतने दास ही न होजाएँ की उसके बिना हम जीवित ही न रह सकें। भोजन हमारे लिए बना है न कि हम भोजन के लिए। भोजन के बिना जीने की कला का पूर्ण विकास हो जाने पर ही अध्ययेता योगियों की तरह समाधिस्थ होकर गणित ब्रह्म से साक्षात्कार कर सकेगा।

गणित के इतिहास का यदि हम ध्यानपूर्वक अवलोकन करें तो हमें कुशल चिकित्सा शास्त्री गणितज्ञों द्वारा क्षुधा जागरण हेतु अपनाए गये विविध उपाय दृष्टिगत होंगे। ऐतिहासिक विकास क्रम का अध्ययन दीर्घकालीन घासफूस के ढेलों पत्थरों के मलवे मे लदे

आँत्र जलमार्ग को शुद्ध कर सिद्धान्त क्षुधा के उद्गम स्थान उदर तक पहुँचने का एक ऐसा ही अचूक प्राकृतिक उपाय है। सिद्धान्तों पर आधारित यंत्र, उपकरण व चित्रों का अध्ययन बलदायक व्यायाम की तरह क्षुधा जागरण का दूसरा उपाय है। गणितीय भ्रम, समस्याएँ पहेलियाँ व चित्र सिद्धान्तों के विविध रागों पर आधारित ऐसे शास्त्रीय संगीत व नृत्य हैं जो श्रोताओं पर अपना अमिट प्रभाव ही नहीं छोड़ जाते वरन् उन्हें ग्रहण करने हेतु तीव्र भूख भी जाग्रत कर जाते हैं। ऐतिहासिक संस्मरण, कथानक, भूमिकाएँ व रोचक घटनाएँ वे सुस्वादु थालियाँ हैं जिनकी ओर अध्ययेता अपना हाथ बढ़ाए नहीं रह सकता।

सितार के कर्कश तारों से साधक जिस प्रकार अपनी सतत साधना से समधुर स्वर का स्रोत प्रवाहित कर देता है, गणित के कठोर तारों से भी सिद्धान्तों व सूत्रों के रागों में रंग गीतकार गणितज्ञ भी यदा कदा मधुर स्वर से जनमानस को आल्हादित कर देते हैं। इन्द्र-जालिक वर्ग, जो यन्त्र के रूप में सर्वत्र सम्मानित हो रहे हैं, सैकड़ों वर्षों तक कुतूहल के विषय रहे हैं। कंकड़ों, खूँटों, चित्रों, रेखाओं, अनेक आधारों व संकेतों के स्थूल शरीर से सूक्ष्म देही भारतीय अंक प्रणाली स्वयं में एक रोचक कहानी है जिसे दुनियाँ ने कान खोल कर सुना, आँखें खोल कर देखा और हृदय कपाट खोल कर अभिनंदन किया। यूक्लिड की समानान्तर रेखाओं का अनन्त पर मिलन कितनों ने देखा परन्तु काल्पनिक आकाशीय शून्य के गर्भ में संख्याओं के विराट शक्तिशाली स्वरूप के सन्मुख विश्व की जनता नतमस्तक हो उठी। देश, काल, जाति व धर्म के बन्धनों ने आत्म-समर्पण कर नूतन प्रणाली की दिग्विजय के सन्मुख आनत हो उठी। जनता के निश्चय को जिसने बदलना चाहा जनता ने उसे बदल दिया। चार्ल्स तृतीय के शासन में पार्लियामेंट भवनों का दाह इसके प्रबल साक्ष्य है। आर्किमिडीज की समाधि पर उत्कीर्ण बेलन में गोल पिण्ड महान गणितज्ञ की अमर साधना का ही स्मरण नहीं दिलाता वरन् दोनों के वक्र धरातल की समानता के तथ्य को भी चिरस्थायी कर देता है। ऐतिहासिक धरोहर में मिले ऐसी अनेक घटनाएँ सिद्धान्त को अमर बना देती हैं।

अंधकारयुग के अवसान पर पुनरुत्थान युग में हम आर्य भट्ट प्रथम की त्रिकोणमिति में समकोणिक त्रिभुजों को यथार्थता की भूमि पर मुस्कराते हुए देख सकते हैं। ब्रह्मगुप्त ने शास्त्रीय गणित को सुगम व सरस बनाने का सर्वप्रथम प्रयास किया। ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में वर्णित पाइथेगोरस साध्य पर आधारित बंदरों की उछल कूद, वृक्षों की टूट आदि प्रश्नों व समीकरणों पर आधारित प्रश्नों को देखने से यह स्पष्ट होगा कि भाषा लालित्य, उपयोग व आकर्षण को ब्रह्मगुप्त ने अपना आधार बनाया था। भाषा लालित्य व सुन्दर उपमा का सम्मेलन इससे भी पूर्व हम सुबन्धकृत वासवदत्ता में देख सकते हैं :—

"निमीलित होते हुए नील कमल के व्याज से रचे हुए अंजलिपुट के द्वारा उदय होते हुए चन्द्रमा को नमस्कार सा करते हुए अंधकार का आगमन हुआ। उसी समय गगन रूपी महासमर में कुमुदों के समूह का सन्देह उत्पन्न करने वाले तारे प्रकाशित हुए मानों विश्व की गणना करते हुए ब्रह्मा ने शशि रूपी खड़िया के टुकड़ों से आकाश रूपी काले अंजिन पर संसार के अति शून्य होने के कारण शून्य बिंदुओं को लिख दिया हो।"

प्रत्यक्ष रूप से इस प्रकार की उपमा का जटिल गणित को सरल बनाने में महत्व न हो परन्तु यह निश्चित है कि इस प्रकार के प्रयासों ने गणित को मनोरंजना की ओर ले जाने में अवश्य ही प्रेरित किया। इन प्रयासों का विराट वैभव हम महावीर (८८२५ ई०) के 'गणित सार संग्रह' में देख सकते हैं। गणित के सभी क्षेत्रों को मनोरंजकता व यथार्थता के धरातल पर उतारने का भीम प्रयास जैसा महावीर ने किया वैसा किसी भी पूर्वकालीन गणितज्ञ ने नहीं किया। महावीर के मेधावी मस्तिष्क ने संकलन व सर्जन के द्वारा गणित के भंडार को परिपूरित ही नहीं किया वरन् साहित्य, दर्शन व काव्य की अमूल्य मुक्तामणियों से इसे अलंकृत भी किया। "गणित सार संग्रह" में वर्णित प्रश्न जहाँ कुतूहल एवं मनोरंजन के स्रोत हैं वहीं समय की ऐतिहासिक, आर्थिक तथा सामाजिक

स्थिति के भी परिचायक हैं। उदाहरणार्थ, निम्नलिखित प्रश्न प्रस्तुत किये जाते हैं :—

"औषध व आकर्षण विद्या में निपुण एक व्यक्ति ने किसी स्थान पर मुरगों की लड़ाई होते देख एक पक्षी के स्वामी के पास पहुँच कर विश्वासपूर्ण भाषा में उससे बोला, यदि तुम्हारा पक्षी विजयी पक्षी विजयी हो जाए तो शर्त की रकम मुझे दे देना अन्यथा मैं तुम्हें तुम्हारी शर्त की दो तिहाई रकम दे दूँगा। दूसरे पक्षी के स्वामी को भी उसने इसी शर्त पर तीन चौथाई रकम देने का वचन दिया। यदि प्रत्येक दशा में उस निपुण व्यक्ति को द्वादश स्वर्ण मुद्राओं का लाभ हुआ तो ओ गणित शिरोमणी बताओ प्रत्येक पक्षी के स्वामी ने कितनी मुद्राओं की शर्त लगाई।"

"एक जैन भक्त सुवासित पुष्पों को लेकर चतुर्मुखी जिनालय में पहुँचा। प्रत्येक द्वार पर पहुँचते ही उसके पुष्प क्रमशः द्विगुणित, त्रिगुणित व चौगुणित पंचगुणित हो गये। यदि प्रत्येक द्वार पर भक्त ने साठ पुष्प अर्पित किए तो प्रारम्भ में उसके पास कितने पुष्प थे ?"

समीकरणों पर आधारित प्रश्न भी जहाँ विविध व रुचिपूर्ण हैं वहीं समीकरणों को अर्थ प्रदान करने में भी सक्षम हैं। उदाहरणार्थ $\frac{1}{x}+\frac{1}{y}=\frac{1}{2}$ को महावीर ने एक ऐसे आयत के द्वारा, जिसकी परिमिति व क्षेत्रफल तुल्य है, व्यक्त किया। इसी प्रकार वर्ग समीकरणों को भी आयत के क्षेत्रफल व आसन्न भुजाओं के योग अथवा अन्तर द्वारा व्यक्त किया। पाइथैगोरस साध्य पर आधारित अथवा क्षेत्रफल सम्बन्धी प्रश्न मनोरंजकता के साथ साथ अपना उपयोगी अस्तित्व भी रखते हैं। निश्चय ही साढ़े ग्यारह सौ वर्ष पूर्व गणित को क्लिष्टता के कारागार से निकालने का महावीर प्रयास गणित मनोरंजन के इतिहास में अविस्मरणीय रहेगा।

महावीर के लगभग तीन सौ वर्ष पश्चात् गणित गगन में द्वितीय भास्कर का उदय हुआ जिनकी सर्वश्रेष्ठ रचना लीलावती के सम्बन्ध में गणित विनोद और शिक्षण सोहनलाल गुप्त लिखते हैं "लीलावती के समान अब तक भारत में क्या किसी भी देश या भाषा में गणित पर लीलामय ग्रन्थ न लिखा जा सका।" "ताजमहल की भाँति लीलावती भी प्राचीन भारत के गणित गौरव की प्रतीक और संसार की अमर कृति रहेगी।" लीलावती के अतिरिक्त सिद्धान्त शिरोमणि का द्वितीय अध्याय बीजगणित भी भास्कर की अमूल्य कृति है। अपनी रचनाओं में भास्कर ने गणित में सिद्धान्तों का सुन्दर उपमाओं से विभूषित कर अपने ग्रन्थ के लालित्य का और भी अधिक बढ़ा दिया। अनन्त के विषय में, जिसे भास्कर ने खहर की संज्ञा से सम्बोधित किया है, वे लिखते हैं—खहर में कुछ जोड़ने या घटाने से परिणाम उसी प्रकार अपरिवर्तनशील रहता है जिस प्रकार जीवों की उत्पत्ति या मरण पर अनन्त और अपरिवर्तनशील ईश्वर में कोई परिवर्तन नहीं होता। एक अन्य स्थान पर त्रैराशिक नियम की गणित में सर्वव्यापकता की ओर इंगित करते हुए वे लिखते हैं, जिस प्रकार भगवान श्री नारायण जो जन्म-मरण के क्लेश से मुक्ति देने वाला है, व सारे संसार में, स्वर्ग, गिरि, नर, सुर, असुर आदि में व्याप्त है उसी प्रकार त्रैराशिक नियम सम्पूर्ण गणित में व्याप्त है। सरोवर में प्रविष्ट हुए बिना ही कमल की गति को देख सरोवर की गहराई निकालने में भास्कर की अद्वितीय प्रतिभा की झलक हम निम्न उदाहरण में देख सकते हैं—

ताल में स्थित एक कमल कलिका, जिसका सिरा पानी के तल से एक बालिश्त ऊपर था, वायु व जल वेग से धीरे २ अपने स्थान से हटकर चार बालिश्त दूर जाकर ठीक जल के तल को स्पर्श करने लग जाता है। ओ लीलावती! बताओ सरोवर कितना गहरा था ?

उक्त प्रश्न ही नहीं लीलावती व बीजगणितम के अनेक प्रश्न जैसे मोर साँप संघर्ष, बन्दर की वृक्ष शिखर से उतर कूप पर पहुँच, कर्णार्जुन युद्ध, बाँस की टूट सम्बन्धी प्रश्न देश विदेश की अनेक गणित पुस्तकों में आज भी प्रचलित है। गणित मनोरंजन के विकास में जितना लीलावती ने योग दिया है शायद ही किसी और ग्रन्थ ने दिया हो।

डाक्टर इरिक टेम्पल बेल अपने ग्रन्थ "डेवलपमेंट इन मैथेमेटिक्स" मेत्र में गणित के विकास क्रम को तीन भागों, आदि काल (१६३७ ई० तक) मध्यकाल (१६३८ ई०—१८०० ई०) और आधुनिक काल (१८०१ ई० से वर्तमान काल तक) में विभक्त करते हुए लिखते हैं कि लाइबनीज के अनुसार अकेले न्यूटन द्वारा गणित के क्षेत्र में किया गया कार्य पूर्व कार्य के अर्द्धांश से किसी प्रकार अधिक नहीं। आधुनिक काल में तो यह प्रगति पूर्व प्रगति की पाँच गुनी हो जाती है। प्रगति की इस विषमता का कारण नूतन सिद्धान्तों का सर्जन है। जिस प्रकार नूतन अंक प्रणाली ने मनुष्य को अंबकस व गणिका पट्टियों की दासता से मुक्त कर उसे परिगणन व अभिव्यक्ति की अमोघ शक्ति से विभूषित किया, उसी प्रकार न्यूटन, गैलेलियो, लाइबनीज, गॉस, कोशी, बोल्याई, प्लूकर, राइमाँ, आइन्स्टीन, आदि गणितज्ञों ने अपने उर्वर मस्तिष्क से गणित वृक्ष को जो खाद प्रदान की उससे वह अनेक शाखाओं में पल्लवित हो आधुनिक ज्ञान-विज्ञान का हृदय केन्द्र बन गया। गणित के इस द्रुत विकास के साथ मनोरंजक गणित भी आगे बढ़ी और आदि व मध्य काल में जहाँ इस ओर कोई पृथक रचनाएँ नहीं हुईं वहाँ आधुनिक काल में ड्युडेनी, राउज बाल, सामलोयड एबोट, एन्ड्रियु, बंकस्ट, आग, ब्रेसालेक, स्मिथ, एच० ए मेरिल, लिक्स रूपर्ट विलियम, याकोव पर्लमान, सोहनलाल गुप्त, लक्ष्मण प्रभृति लेखकों ने सर्जन व संकलन के द्वारा मनोरंजक गणित पर स्वतंत्र रचनाएँ कर जनता को गणित की मुख्य बाटिका में विचरण करने हेतु आमंत्रित किया।

आधुनिक काल में अमेरिका एवं ब्रिटेन के महानतम पहेलीकार सेमुअल लोयड व हेनरी अर्नेस्ट ड्युडनी गणित मनोरंजना के इतिहास में अपना सानी ही नहीं रखते। सेमुअल लोयड की चौदह पन्द्रह पहेली जो एक सहस्र डालर की पुरस्कार पहेली थी, समाज के सभी वर्ग, क्या मजदूर, क्या मालिक, विद्यार्थी और गणितज्ञ सभी के आकर्षण का विषय बन गयी। पहेली में लीन होकर इक्के वाले, जलयान चालक, इंजिन चालक, मजदूर, पथिक व विद्यार्थी अपने काम को भूल जाते या दुर्घटना के शिकार हो जाते। विवश होकर सरकार व कारखानों के कर्मचारियों को कानून के द्वारा उसका निषेध करना पड़ा। पृथ्वी से परे खच्चर चातुरी भी सेम लोयड की प्रख्यात पहेलियाँ है जो समाज के लिए एक बड़ी चुनौती थी। अंक लेखन अनन्त, शून्य, स्थानीय मान, भिन्न, औसत, समय दूरी, लाभ हानि, मिश्र समीकरण, समीकरण पर आधारित प्रश्न, समान्तर श्रेणी, गुणोत्तर श्रेणी, क्षेत्रफल अन्तर, घनफल, पाइथैगोरस साध्य आदि गणित के सभी क्षेत्रों को मनोरंजना के धरातल पर सेम लोयड ने बड़े सुन्दर ढंग से अभिनीत किया। अनेक पहेलियाँ यद्यपि सेम लोयड की अपनी मौलिक सर्जना हैं फिर भी संकलन का सर्वथा अभाव हम नहीं कह सकते। सेम लोयड की कई पहेलियाँ ब्रिटेन के महानतम समकालीन पहेलीकार ड्युडेनी (१८५७-१९३१) के समान हैं। लीलावती की कमल सरोवर की गहराई को भी हम The Lily Problem के रूप में देख सकते हैं। संकलन या सर्जन पहेली सम्राट ने अपनी पहेलियों को बड़ी आकर्षक वेषभूषा में जनता के सन्मुख प्रस्तुत किया। उनकी पुरस्कार पहेलियों ने, जिसमें से कई का हल गणित की दृष्टि से असंभव था, जनता के प्रत्येक वर्ग को आंदोलित कर दिया और गूढ़ गंभीर गणितीय सत्यों को उनके सन्मुख प्रस्तुत किया।

सेम लोयड ने गणित मनोरंजना की जिस लघु धारा को अपनी दिव्य प्रतिभा से दीर्घाकार प्रदान किया उसी का परिणाम है कि इस धारा के कूल पर गणित की वाटिकाएँ लहलहाने लगी हैं। इन वाटिकाओं के विकास में हम पूर्व उल्लेखित मनस्वियों को नहीं भूल सकते जिन्होंने रंग विरंगे पुष्पों से इन्हें सुन्दर बनाया है। रूसी पहेलीकार याकोव पर्लमान ने अपनी पुस्तिका "फिगर्स फॉर फन" में अनेक ऐसी पहेलियों, प्रश्नों व समस्याओं का समाविष्ट किया है जो खेल, मनोरंजन के अतिरिक्त शैक्षणिक दृष्टि से भी अपना महत्व रखती हैं। रोमन सेनापति टेरेन्टियस व शतरंज के आविष्कारक का पारितोषिक, अफवाहों का प्रसार, फल के उत्पादन की शीघ्र वृद्धि, समकोणिक त्रिभुज व आयत मनोरंजन, बाइबिल का प्रलय, मुद्राओं के मनोरंजन, दश रूबल में

बाइसिकिल, वस्तुएँ किसके पास, अंकों व संख्याओं के कुतूहल, क्षेत्रफल परिवर्तन आदि अनेक समस्याओं व प्रश्नों का इस संदर्भ में उल्लेख किया जा सकता है। आरा की "मेथेमेटिक्स इट्स मेजिक एंड मास्ट्री राउज की मेथेमेटिकल रिक्रिएशन एन्ड एसे" मेरिल की मेथेमेटिकल ऐक्सकर्शन और थोकसन की स्पीड एंडफन विथ फिगर्स भी अध्ययवेता को गणित के शुष्क प्रदेश से निकाल कर उसकी सुन्दर मनोहर वाटिका में हमें ले जाती है। सोहन लाल गुप्त की गणित मनोरमा को पढ़कर हमें दिनकर की वे पंक्तियाँ स्मरण हो जाती है जिसमें गणित को काव्य एवं संगीत की संज्ञा से संबोधित किया गया है। गणित का अधिकांश भारतीय साहित्य तो संस्कृत काव्य में ही हिन्दी में गुप्तजी का यह लघु प्रयास गणित को लोकजीवन में काव्य के माध्यम द्वारा प्रतिष्ठित कर देता है। लोक में प्रचलित गणित काव्य को लोकगीतों की तरह यदि संग्रह किया जाए तो गणित मनोरंजनका मधुर नीर जन-जन में जीवन फूंक देगा। पाइथैगोरस साध्य पर आधारित लोक में प्रचलित काव्यमय प्रश्न को इस संदर्भ में प्रस्तुत किया जाता है :—

देखा दृश्य बड़ा ही सुन्दर गाँव लोहवन अन्दर,
एक वृक्ष जिसकी चोटी पर पैठे थे दो बन्दर।
रखे आम दस हाथ दूर पर उसी वृक्ष की जड़ से,
पहला बन्दर उन आमों पर कूद पड़ा ऊपर से,
दूजा उतर मूल पर होकर जब आमों पर आया,
दोनों के चलने में अन्तर आठ हाथ का आया।
है दयाल का प्रश्न मनोरंजन की यह कविताई,
बालक कहो विचार वृक्ष की है कितनी ऊँचाई ?

इस प्रकार के प्रश्न अध्ययेता को परिगणना के लिए अपनी लेखनी उठाने की प्रेरणा दिये बिना नहीं रह सकते। गणित की अमर कहानी, गणित का इतिहास, गणित के मनोरंजन, ज्योतिषि के मनोरंजन, गणित के मनोविनोद और शिक्षण की रचनाओं द्वारा गुप्त जी ने गणित के मनोरंजक पक्ष को बल प्रदान किया है। इसी प्रसंग में हम लक्ष्मण कोठारी व ओमप्रकाश के गणित मनोरञ्जन को नहीं भूल सकते। इसमें गणित की असंगतियाँ, कठिन पहेलियाँ, मनोरञ्जनों मायावदी वर्गों आदि पर सरल और मनोरञ्जक ढंग से पहेलियाँ प्रश्न और उनके समाधान प्रस्तुत दिये गये हैं। समस्याओं को रोचक बनाने के लिए काल्पनिक परिस्थितियाँ उपस्थित की गयी हैं और अकबर बीरबल तथा अँधेरी नगरी चौपट राजा जैसे पात्रों को अपनाया गया हैं।

धर्म और दर्शन की तरह विज्ञान व गणित भी सृष्टि के धर्म को जानने में प्रयत्नशील है। विश्व भवन की विविध रूपा इटें कतिपय तत्वों के परमाणुओं से निर्मित हैं और विविध परमाणु एकमात्र शक्ति का रूपान्तर हैं इस विज्ञान के साथ इन सृष्टि के विविध कलापों व निर्माण में शक्ति का विराट रूप देख पाते हैं। एब्बट की रोमान्स इन मेनी डाइमेन्शन में हम गणित के एक नूतन सिद्धांत को देख सकते हैं। रेखा सेवा क्षेत्र व पिण्ड क्रमशः एक, द्विपरिमाणीय जगत की कृतियाँ हैं। एक परिमाणीय जीव केवल एक ही दिशा में देख सकता है। यदि द्वि अथि परिमाणीय जीव इस जगत में विचरण करे प्रथम जीव केवल द्वितीय जीव का एक बिन्दु मात्र ही देख सकेगा और उसकी सामर्थ से परे होगा कि वह द्विपरिमाणीय जीव को बन्दी कर सके। द्विपरिमाणीय जीव को त्रिपरिमाणीय भी उसी प्रकार रेखावत् प्रतीत होगा। चतुर्थपरिमाणीय जगत के जीव को क्षेत्र या छाया रूप प्रतीत होगा व प्रथम जीव उसकी बंधन सीमा से परे होगा। इस प्रकार अनेक परिमाणीय जगत कल्पना ने मनुष्य को अश्वासकार दिया है कि आत्मा शरीर अथवा त्रिपिण्डीय जगत में क्यों नहीं बन्दी बनाई जा सकती है। इस प्रकार अनेक परिमाणीय जगत की गणित ने सृष्टि के धर्म को सुन्दर ढंग से अनावृत किया हैं।

मनोरञ्जक गणित का निरन्तर विकास अनेक आशाओं से परिपूरित है और वह दिन दूर नहीं होगा जब गणित का भूत अध्ययेता से कोसों दूर भग जायगा। नई पौध अपने शाला जीवन के बाल्य काल में ही मनोरंजक गणित की महकती फुलवारी में विचरण करे इसके लिए शिक्षा शास्त्रियों व गणितज्ञों का सम्मलित प्रयास अभीष्ट है।

औषधोपयोगी पौधे—१

डा० जे० पी० तिवारी

पाश्चात्य औषधियों में पौधे से प्राप्त पदार्थ का उपयोग निरन्तर होता रहा है और आधुनिक समय में भी हो रहा है। अफीम का पौधा इस प्रकार की औषधियों में प्रथम है। अफीम को अहिफेन और आंग्ल भाषा में ओपियम (Opium) या 'पपी प्लाण्ट' कहते हैं। बनस्पति शास्त्र में इसको **पपीवर सोमिनफेरम** (Papaver sominferum) कहते हैं। इस पौधे के फल (बोड़ी) से एक प्रकार का दूध (latex) निकलता है जो सूखने पर अफीम कहलाता है। अफीम का प्रयोग कई प्रकार से किया जाता है जैसे टिंचर ओपियायी, किन्तु अफीम से कई क्षारीय पदार्थ निकाले गए हैं। इन क्षारीय पदार्थों को मारफीन, कोडीन, और पेपवरीन कहते हैं। इनमें मारफीन और कोडीन का प्रयोग अधिक होता है। मारफीन से भी कोडीन पदार्थ तैयार कर लिया जाता है क्योंकि कोडीन की खपत अधिक होती है। इन उपर्युक्त पदार्थों को ओपियम अलकलायड नाम दिया गया है। मारफीन का उपयोग अधिकतर पीड़ानाशक, धक्कों (Shock) से बचत, कब्ज उत्पन्न करने और नींद लाने में विशेष रूप से किया जाता है। यह अन्य औषधियों से श्रेष्ठ है। कोडीन पीड़ानाशक तथा खाँसी आदि रोगों में विशेष लाभकारी है। किन्तु पीड़ानाशक के रूप में मारफीन की अपेक्षा कोडीन निर्बल होती है। मारफीन हाइड्रोक्लोराइड या मारफीन सल्फेट पीड़ानाशक औषधियों में श्रेष्ठ है और कोई भी अन्य औषधि इसको विस्थापित नहीं कर सकी है।

अफीम का प्रयोग भारतीय चिकित्सा पद्धति में भी किया जाता रहा है और आजकल भी आयुर्वेद में इसका उपयोग विभिन्न रोगों के शमन हेतु किया जा रहा है। नींद लाना इस औषधि का एक विशेष गुण है। इस गुण का उपयोग ग्रामीण स्त्रियाँ अपने छोटे शिशुओं को सुलाने के लिए थोड़ी मात्रा में करती हैं। कामकाजी स्त्रियाँ भी अपने बच्चों को निद्रित करने के लिए समय-समय पर इस औषधि का उपयोग कर लेती हैं। कुछ व्यक्ति आनन्द प्राप्त करने के लिए भी अफीम का उपयोग करते हैं और कालान्तर में इसके आदी हो जाते हैं। वे इसकी मात्रा भी क्रमशः बढ़ाते जाते हैं। अफीम के प्राप्त करने में किसी भी कठिनाई को वे अनेक प्रकार से पार करने का प्रयास करते हैं। इस आदत से छूटना उनके लिए असम्भव सा ही होता है। अफीम न मिलने पर इस पौदे की ढोंडी (बोड़ी) को पानी में भिगा कर या गरम करके (काढ़ा) पीते हैं। अफीम का धुआँ भी पिया जाता है। इसको **'चण्डू पीना'** कहते हैं। पहले भारत से अफीम का निर्यात चोरी-चोरी चीन को किया जाता था। चीन में चण्डू पीने का रिवाज अत्यधिक था।

वानस्पतिक विवरण—अफीम का पौधा पेपवेरेसी वर्ग का है। इस वर्ग के अन्य प्रमुख पौधों का विवरण निम्नांकित है।

१—पेपवर आरजिमोन (Papaver argemone)—यह पौधा स्पेन में नींद लाने के कार्य में उपयोग में लाया जाता है किन्तु भारतवर्ष में बगीचों की शोभा बढ़ाने के लिए उगाया जाता है।

२—पेपवर डूबियम (P. dubium Linn)—इस पौधे से दो अलकलायड प्राप्त किए गए हैं। इन अलकलायडो के गुण 'थीवेन' के समान होते हैं। हजारा से कश्मीर तक तथा गढ़वाल में यह पौधा पाया जाता है।

३—पेपवर हाइब्रिडयम (P. hybribium)—इस पौधे की पत्तियाँ ज्वरनाशक होती हैं। इस पौधे

से रोडिन (rhoeadine) नामक अलकलायड प्राप्त होता है। यह पौधा पंजाब प्रान्त में पाया जाता है।

४—पेपवर न्यूडिक्यूल (P. nudicaule Linn)—हिमालय में उत्पन्न इस पौधे के गुण पेपवर हाइब्रिडयम के समान ही हैं।

५—पेपवर ओरियण्टिल (P. orientale Linn)—इस पौधे में भी नारकोटीन, थीवेन और आइसोथीवेन नामक पदार्थ मिले हैं किन्तु इस पौधे से मारफीन नहीं निकाली जा सकी है।

६—पेपवर रोहएस (P. rhoeas)—लाल पोस्त और रक्तपोष के नाम से विख्यात यह पौधा भारतीय बगीचों में उपलब्ध होता। इस पौधे से मारफीन पैरा मारफीन और नारकोटीन नाम के पदार्थ प्राप्त किए गए हैं।

७—पेपवर सोमिनीफेरम (P. Somuniferum Linn)—अहिफेन, अफीम अथवा अफियून का पौधा २ से ४ फुट तक ऊँचा होता है। इस में दो या तीन फल लगते हैं। इन फलों को ढोढ़ी (बोड़ी) कहते हैं। जब ढोडें अधपकी होती हैं, तो उस समय इन फलों पर दोपहर के समय खरोंचे लगा दिए जाते हैं। इन खरोचों से दूधिया पदार्थ रिसने लगता है। यह पदार्थ जमता रहता है और इसको दूसरे दिन प्रातः काल पोंछ लिया जाता है। सूखने पर मटमैला भूरा पदार्थ अफीम कहलाता है।

अफीम का संघटन

अफीम में आक्जैलिक अम्ल और लगभग पच्चीस अन्यान्य क्षारीय पदार्थ (alkaloids) होते हैं। जिनमें मारफीन, कोडीन, थीवेन तथा नारकोटीन नारसीन और पेपवरीन मुख्य हैं। मारफीन की मात्रा डोडी में ०·३५%, तने में ०·१५% और पौधे के अन्य भागों में ०·२ से ०·२५% तक होती है। पौधे या डोडों के जलीय निश्पन्द (काढ़ा) में वेनलिन, वेनलिक अम्ल, पैराहाइड्रावसी स्ट्रीन, फ्यूमेरिक अम्ल, लैक्टिक, थैलिक और हेमीपेनिक अम्ल और मिकोनीन नामक पदार्थ होते हैं।

सरकार की देखरेख में अफीम की खेती उत्तर प्रदेश, पंजाब, राजस्थान और मध्य प्रदेश में होती है। पैदा की गई सारी अफीम राज्य द्वारा खरीद ली जाती है। इस अफीम का अधिक भाग मारफीन प्राप्त करने के लिए राजकीय फैक्ट्रियों में भेज दिया जाता है कुछ भाग जनता के प्रयोग के लिए सरकारी आबकारी के ठेकों द्वारा विक्रय किया जाता है।

हेनोवर के फ्रेड्रिच डब्लू० ए० सरटूयनर नामक वैज्ञानिक ने १८०५ ई० में अफीम से मारफीन (Morphine) नाम के अलकलायड (alkaloid) को सर्व प्रथम प्राप्त किया। यह प्रथम क्षारीय पदार्थ था जो बनस्पति से निकाला गया। अफीम के अधिकतर गुण इसी पदार्थ की उपस्थिति के कारण हैं। इस पदार्थ का नाम मारफीन स्वप्न की देवी मारफस के नाम पर आधारित है।

अफीम में दो प्रकार के अलकलायड विशेष उल्लेखनीय हैं।

१—फिनैनथ्रीन श्रेणी वाले।

(अ) मारफीन

(आ) कोडीन

(इ) थीवेन

२—बेनजायल आइसोकीनोलीन श्रेणी वाले

(अ) पेपवरीन

(आ) नारकोटीन

(इ) नारसीन

(ई) लाडेनोशीन

किन्तु मारफीन ही अफीम का प्रमुख अलकलायड है और इस पदार्थ से अन्य उपयोगी औषधि कोडीन का निर्माण होता है। विभिन्न देशों की अफीम का अनुमान मारफीन की मात्रा पर निर्भर करता है। यह मात्रा १०% तक होती है।

मारफीन का संघटनात्मक सूत्र १९५२ ई० में निश्चित किया गया। इसका श्रेय रोचेस्टर विश्वविद्यालय गेट्स और टिसुडी नाम के वैज्ञानिकों को है। इन दोनों ने इस पदार्थ का संश्लेषण करके इसके सूत्र की पुष्टि की।

मारफीन में फिनोलिक हाइड्रोक्सी मूलक और एक ऐलकोहालिक हाइड्राक्सी मूलक होता है। हाइड्राक्सी मूलकों का एस्टरीकरण अथवा एलकलाइजेशन किया जा सकता है। इस प्रकार की क्रिया करने पर विभिन्न पदार्थों का सृजन होता है। फिनोलिक हाइड्राक्सी मूलक के हाइड्रोजन परमाणु को मिलाइल मूलक द्वारा विस्थापित करने पर कोडीन नामक पदार्थ बन जाता है। यह औषधि दाँत के दर्द को कम करने में विशेष उपयोगी होती है। किन्तु मारफीन की अपेक्षा पीड़ा नाशक प्रभाव इस औषधि में कम होता है, फिर भी इस औषधि के प्रयोग से आदत नहीं बन पाती है। खाँसी और कफ रोगों में यह रामबांण का कार्य करती है। मेथिल मूलक के स्थान पर एथिल मूलक होने पर डायोनिन नाम की औषधि तैयार होती है। यह औषधि कोडीन से अधिक पीड़ानाशक होती है। एलकोहालिक हाइड्राक्सी मूलक के हाइड्रोजन परमाणु को मेथिल मूलक द्वारा विस्थापित करने पर कोडीन थीबेन में परिणत हो जाता है। इसमें निद्रा लाने की शक्ति न्यून हो जाती है। एस्टिलीकरण से 'हीरोइन' नाम की औषधि तैयार होती है जो मारफीन से पाँच गुनी अधिक प्रभावशाली होती है। मारफीन से हाइड्रो मारफिनोन (डायलयुडिड) भी रासायनिक विधि द्वारा बनाया जाता है। यह भी मारफीन से पाँच गुनी अधिक प्रभावशाली होती है। रासायनिक विधि द्वारा अनेक अन्य औषधियाँ भी बनाई गई है जिनमें निद्रा लाने के साथ ही पीड़ानाशक गुण भी अधिक मात्रा में होते हैं। इनमें से मेटोपान (Metopon) उल्लेखनीय है। किन्तु मारफीन के गुण विचित्र ही होने के कारण इस औषधि का उपयोग अधिक होता है।

मारफीन के मेथिल मूलक के स्थान पर एलायल मूलक के प्रयुक्त करने पर नेलारफिन (Nalorphine) नाम का पदार्थ तैयार किया गया है। इस पदार्थ के गुण मारफीन के गुणों के विपरीत हैं और यह पदार्थ मारफीन के प्रभाव को नष्ट करने के लिए प्रयोग की जाती है। मारफीन को बन्द परखनली में तप्त करके एपोमारफीन बनाई जाती है। यह औषधि वमन (कै) कराने के लिए ही उपयोगी होती है। संश्लेषित मारफीन अफीम से निकाली गई मारफीन की अपेक्षा अधिक मँहगी पड़ती है अतएव यह औषधि आजकल भी अफीम से ही निकाली जाती है।

अफीम के लाभ

(१) इस औषधि से प्राप्त मारफीन अथवा अफीम का उपयोग अत्यन्त उग्र पीड़ा के शमन के लिए किया जाता है।

(२) अतिसार (दस्तों) को रोकने के लिए।

(३) उस खाँसी में, जिसमें कफ न निकलता हो और कोडीन फास से कोई लाभ न हो सका हो।

(४) शल्य चिकित्सा के पहले एट्रोपीन के साथ मारफीन का उपयोग होता है।

(५) शल्य चिकित्सा में रुधिर के अधिक बहने पर रक्तचाप को कम करके रक्त के निकलने में कमी करती है।

(६) कभी-कभी पीड़ा इतनी उग्र होती है कि रोगी सो नहीं सकता है। उस समय पीड़ा कम करके निद्रा लाने के लिए इस औषधि का उपयोग प्रायः किया जाता है। इसकी मात्रा १५ मिली ग्राम है। साधारणतः आठ से दस मिली ग्राम मारफीन सलफेट का उपयोग वांछनीय है। इस प्रकार का निषकर्ष लेसगना और बीचर ने १९५४ में १२२ व्यक्तियों पर औषधि परिक्षण द्वारा निकाला था।

हानियाँ

मारफीन का श्वसन क्रिया पर कुप्रभाव होता है यह क्रिया मन्द होती है किन्तु सबसे हानिप्रद है इसका आदी बनना।

कोडीन

थोड़ी मात्रा में यह औषधि मारफीन के साथ उपलब्ध होती है किन्तु इसकी मांग अधिक होने के कारण यह औषधि मारफीन से बनाई जाती है। इसका प्रयोग पीड़ा के शमन और खाँसी में कफ को निकालने के लिए किया जाता है।

हीरोइन

मारफीन के समान किन्तु अधिक बलशाली का उपयोग पीड़ा शमन में ही होता है। आदत डालने वाली शक्ति की अधिकता में उपयोग कम ही होता है। (क्रमशः)

कृत्रिम हीरे के आविष्कारक—फ्रेडरिक हेनरी मोइसन

श्याम मनोहर व्यास

कार्बन के अपररूप हीरे से कौन परिचित नहीं है ! जो रासायनिक गुण कार्बन तत्त्व में विद्यमान हैं वे ही हीरे में भी विद्यमान हैं। हीरा, कोयला, ग्रेफाइट को गर्म करने पर कार्बन डाइआक्साइड गैस प्राप्त होती है। इससे सिद्ध होता है कि ये तीनों एक ही तत्त्व के विभिन्न अपररूप हैं।

हीरा अपनी चमक दमक, सुन्दरता और कठोरता के कारण एक रत्न समझा जाता है। हीरे का आपेक्षिक घनत्व ३·५ है। कठोरता के गुण के कारण यह सीसे को भी काट सकता है। हीरा सभी द्रवों में अविलेय है। अम्लों का इस पर कोई प्रभाव नहीं होता। यह विद्युत् का भी कुचालक है। भारत में हीरा गोलकुण्डा की खानों में मिलता है। विश्व विख्यात कोहनूर हीरा इसी खान से निकला था। हीरा दक्षिण अफ्रीका, ब्राजील तथा बोर्नियो में भी पाया जाता है। कई रसायनज्ञों ने कृत्रिम हीरा बनाने का भी प्रयास किया पर असफल रहे।

अन्त में सन् १८९३ में हेनरी मोइसन ने सर्व प्रथम कोयले से कृत्रिम हीरे का निर्माण किया। मोइसन का पूरा नाम फ्रेडरिक हेनरी मोइसन था।

इनका जन्म पेरिस में जुलाई १८५२ में हुआ। बाल्यकाल से ही मोइसन को रसायन विज्ञान में विशेष दिलचस्पी थी। मोइसन ने सन् १८६४ में अपना मीक्सनगर की म्यूनिसिपल पाठशाला में नाम लिखाया। वहाँ के अध्यापक जेम्स एक बड़े योग्य व्यक्ति थे। जब उन्होंने मोइसन की प्रतिभा देखी तो उन्हें अलग से पढ़ाने का भी उन्होंने प्रबन्ध किया। आर्थिक कठिनाइयों के कारण मोइसन ने १८७० ई० में पढ़ाई छोड़ दी। तब उन्हें पेरिस में एक औषधि विक्रेता के यहाँ नौकरी करनी पड़ी।

एक बार एक व्यक्ति ने भूल से संखिया खा लिया। मोइसन ने अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय देकर उसकी जान बचाई। इससे उनकी ख्याति काफी फैली। सन् १८७३ में मोइसन ने अथक परिश्रम कर रसायन विज्ञान की डिग्री प्राप्त की। आर्थिक संकटों का ये जीवन संग्राम के एक सफल योद्धा की तरह सामना करता रहे।

मोइसन को साहित्य से भी काफी प्रेम था। इन्होंने एक नाटक भी लिखा जो काफी लोकप्रिय सिद्ध हुआ। अपने गुरु देहरें के नेतृत्व में मोइसन ने अकार्बनिक रसायन में खोज कार्य प्रारम्भ किया।

सन् १८७९ में मोइसन को क्रोमियम धातु के यौगिकों के बारे में खोज कार्य पर डाक्टर की उपाधि मिली। सन् १८८२ से मोइसन ने लियोनी नामक एक फ्रांसीसी महिला से विवाह किया। लियोनी एक धनी पिता की पुत्री थी। उसने मोइसन का आर्थिक संकट दूर कर दिया। मोइसन का गृहस्थ जीवन सुखी था। वह स्वयं कहा करते थे—"यदि मैं प्रयोगशाला में न रहूँ तो अपने घर पर रहना चाहूँगा।"

सन् १८८४ में डा० मोइसन ने फ्लोरीन (Flourine) गैस का पृथक्करण करने में सफलता प्राप्त की। इस खोज कार्य पर फ्रेंच ऐकेडमी ने मोइसन को १०००० फ्रेंक का पुरस्कार दिया।

सन् १८८८ में डा० मोइसन ने पता लगाया कि हीरे भारी दाब के फलस्वरूप ही साधारण कार्बन से बने हैं। प्रयोगार्थ उन्होंने कार्बन को लोहे के साथ मिलाकर एक विद्युत् भट्ठी में गर्म किया। ४०००° से० पर लोहा मोम की तरह पिघल गया और उसने कार्बन को अपने में घोल लिया। कुछ देर पश्चात् इस पिघले हुये मिश्रण को ठण्डे पानी में डाला गया। इससे लोहे की बाहरी सतह भीतरी भाग की अपेक्षा शीघ्र ठंडी हो गई। फलस्वरूप भीतरी भाग में जो पदार्थ द्रव रूप में था उस पर काफी दाब पड़ा। इससे भीतरी भाग में कार्बन हीरे के छोटे-छोटे टुकड़ों में परिवर्तित हो गया। ये हीरे काले रंग के थे और पारदर्शक नहीं थे पर कठोरता में हीरे के समान ही थे। इस आविष्कार ने कृत्रिम हीरा बनाने की विधि वैज्ञानिकों के लिये खोल दी। सन् १८९३ में मोइसन को इस कार्य में पूर्ण सफलता मिली।

कई समाचार पत्रों ने उनके इस अभूतपूर्व खोज कार्य की प्रशंसा में लिखा :—

"डा० हेनरी मोइसन इतनी सुगमता से हीरे बना लेते हैं कि कुछ ही समय में खाली माँगने मात्र से हीरे मिलने लगेंगे।"

मोइसन ने कार्बनिक रसायन में भी काफी खोज कार्य किया।

उन्होंने पता लगाया कि विभिन्न धातुओं के कार्बाइड पानी से क्रिया कर गैस उत्पन्न करते हैं और विभिन्न प्रकार के आक्साइड बनते हैं। मोइसन ने प्रयोगशाला में सिलिकन कार्बाइड तैयार किया था। सन् १९०० में मोइसन पेरिस विश्वविद्यालय में अकार्बनिक रसायन के प्राध्यापक नियुक्त हुये। सन् १८९६ में इनको डेवी पदक प्राप्त हुआ। सन् १९०६ में इन्हें नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

डा० मोइसन एक सफल अध्यापक, वक्ता एवं लेखक थे। उनका जीवन सादा एवं सात्विक था। मोइसन का भाषा पर पूरा अधिकार था। सन् १९०७ में इतिहास-प्रसिद्ध इस रसायनज्ञ का देहान्त हुआ।

कृत्रिम हीरे के आविष्कारक के रूप में विज्ञान के इतिहास में डा० मोइसन का नाम सदैव अमर रहेगा।

१. डाक छांटने वाला विद्युदणु यन्त्र

अमेरिका में एक ऐसे यन्त्र का परीक्षण हो रहा है, जो कुशलतम डाकिये से भी १५ गुना अधिक फुर्ती के साथ लिफाफों पर छपे पतों को पढ़ सकता है और फिर उन्हें छाँट कर अलग-अलग कर सकता है। यह यन्त्र डेट्रायट, मिशिगन, के प्रधान डाकघर में लगा है और उस चाक्षुष-परीक्षण यन्त्र का नमूना है, जो अन्त में अमेरिका के सभी बड़े-बड़े डाकखानों में प्रति घण्टे ३६ हजार पत्रों की गति से डाक को छाँटकर अलग-अलग करने के लिए स्थापित होगा।

एक वाहन-प्रणाली डाक के पत्रों को एक (टैलिविजन कैमरे जैसी) कैथोड रश्मि नलिका के पार्श्व से गुजरते हुए ले जाती है, जिसकी विद्युदणु रश्मि लिफाफे की जाँच करके उस पर लिखे पते की अंतिम पंक्ति का पता लगा लेती है और उसे विद्युदाणविक स्पन्दनों में परिवर्तित कर देती है, जो एक गणक-यन्त्र में भर दिये जाते हैं। यह गणक यन्त्र अपनी स्मृति में संचित प्रमाणित वर्णों के ६०,००० संयोगों से पते में प्रयुक्त वर्णों या अक्षरों की तुलना करके नगर, राज्य तथा जिपकोड (अमेरिका के डाक-क्षेत्रों का निर्देशन करने वाली ५ अंकों की एक संख्यात्मक प्रणाली) को पहचानता है। उसके बाद, पत्र को छाँट कर अलग करने वाला एक यन्त्र लिफाफे को प्रमुख डाक-क्षेत्रों के लिए अलग-अलग बनी २७६ टोकरियों में से एक में छोड़ आता है।

अमेरिका के पोस्ट मास्टर जनरल ने कहा कि इस यन्त्र का प्रयोग एक उतनी ही महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है, जितनी १८४७ में अमेरिका के प्रथम डाक टिकट के जारी होने की घटना थी।

२. कृत्रिम गलफड़े द्वारा साँस लेना सम्भव

अमेरिका में एक ऐसा उपकरण विकसित हुआ है, जिसकी सहायता से मनुष्य गहरे पानी के भीतर बहुत समय तक उसी प्रकार साँस ले सकता है, जिस तरह मछलियाँ साँस लेती हैं। इस उपकरण का एक प्रमुख अंग एक झिल्ली—एक 'कृत्रिम गलफड़ा'—है, जो पानी में सामान्य रूप से घुले हुए आक्सीजन को उससे खींच लेता है और उसे साँस लेने के लिए उपलब्ध कर देता है। इस उपकरण के अन्तर्गत, साँस के साथ बाहर निकलने वाली कार्बन डाइआक्साइड को ठिकाने लगाने की एक विधि भी सम्मिलित है। वह झिल्ली के बाहर पानी में घुलमिल जाती है और उसके बाद शेष गैसें साँस लेने के लिए पुनः झिल्ली में प्रविष्ट हो जाती हैं।

इस यंत्र के आविष्कारक रदरफोर्ड, न्यूजर्सी, के वाल्डरमैन ए० आयर्स हैं। उन्होंने एक घण्टे से अधिक समय तक एकमात्र इसके द्वारा साँस लेकर इसकी क्रियाविधि का प्रदर्शन किया। उन्होंने १० वर्ष से अधिक समय तक मछलियों की साँस लेने की विधि का और गोताखोरी सम्बन्धी उपकरण के सिद्धान्तों का अध्ययन करने के पश्चात् इसका निर्माण किया। इस समय वह इस यन्त्र के एक सर्वांगपूर्ण नमूने का परीक्षण कर रहे हैं। उनका यन्त्र पानी के भीतर डूब कर वैज्ञानिक अनुसन्धान करने में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

३. प्ल्युटोनियम के अत्यधिक उपयोग

अमेरिकी अणुशक्ति आयोग के अध्यक्ष, डा० ग्लेन टी० सीबोर्ग, ने अनुमान लगाया है कि १९८० तक प्लुटोनियम का उत्पादन इतनी अधिक मात्रा में होने

लगेगा कि उसके द्वारा विश्व में पर्याप्त बिजली का उत्पादन हो सकेगा, अथवा उसके विकल्प में प्रतिदिन दसों आणविक शस्त्रास्त्र बन सकेंगे। उन्होंने यह आशा व्यक्त की कि उस समय विश्व में सुरक्षा सम्बन्धी इतनी पर्याप्त व्यवस्थाएँ लागू हो जायगी, जिससे प्लुटोनियम का प्रयोग बमों का निर्माण करने के लिए न होकर केवल बिजली के उत्पादन के लिए ही होगा।

उन्होंने भविष्यवाणी की है कि अमेरिका की आणविक बिजली की वर्तमान उत्पादन क्षमता ३० लाख किलोवाट से बढ़ कर १९८० तक ८ करोड़ से ११ करोड़ किलोवाट तक हो जायेगी।

४. नया लैम्प

जब से बिजली की रोशनी का अविष्कार हुआ है तब से वैज्ञानिक इस बात को लेकर बहुत परेशान रहे हैं कि बिजली के बल्ब में पहुँचने वाली अधिकाधिक विद्युतशक्ति ऊष्मा में बदल जाती है तथा अपेक्षाकृत थोड़ी सी विद्युतशक्ति ही प्रकाश का रूप ग्रहण कर पाती है।

अमेरिकी अनुसन्धानकर्ता अनेक वर्षों से इस प्रकार बरबाद जाने वाली विद्युत-शक्ति को बचाने के उपायों की खोज करने में संलग्न रहे हैं। यद्यपि, इस दिशा में कुछ प्रगति हुई है परन्तु आधारभूत समस्या अब भी बनी हुई है। अब अमेरिका की प्रमुख बिजली कम्पनियाँ इस लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में दूसरा कदम उठा रही हैं।

जनरल-इलैक्ट्रिक कम्पनी ने १९६९ के प्रारम्भ में एक ऐसे लैम्प (बल्ब) का निर्माण प्रारम्भ किया है, जो अब तक निर्मित किए गए बल्बों में श्रेष्ठतम होगा। अब तक निर्मित बल्बों की तुलना में यह नया बल्ब विद्युत शक्ति की हर यूनिट से अधिक प्रकाश प्राप्त करने में समर्थ होगा।

इसमें खर्च होने वाली हर वाट विद्युत शक्ति से फ्लोरेसेण्ट लैम्पों की तुलना में एक तिहाई अधिक प्रकाश प्राप्त होगा। इसी प्रकार, मरकरी वैपर लैम्प की तुलना में यह प्रकाश दुगना तथा घरों में इस्तेमाल होने वाले सामान्य लैम्पों के प्रकाश की तुलना में यह प्रकाश ६ गुना अधिक होगा।

इस लैम्प के लाभ ल्यूकाललोक्स नामक सिरैमिक्स द्वारा सम्भव हुए हैं। यह सिरैमिक्स १९५९ में विकसित हुई। यह एक बारीक पाउडर से तैयार विशुद्ध अल्यूमिनियम आक्साइड है, जिसे दबा कर स्वच्छ बिल्लौरी पदार्थ में परिणत कर दिया गया है। नये लैम्प में काँच का एक लम्बा ककड़ी के आकार का बल्ब है, जिसके भीतर सिगरेट जैसी बर्तुलाकार-चैम्बर होती है, जो ल्यूकालोक्स की बनी होती है।

अभी तक सड़कों, गलियों, मैदानें, मकान के बाहरी भागों, पार्कों, दीर्घाओं और कारखानों में रोशनी के लिए केवल ४०० वाट के बल्ब तैयार हुए हैं। अंततोगत्वा, यह फर्म इसमें अधिक और कम वाट के बल्ब तैयार करेगी, जिनमें से कुछ ऐसे भी होंगे, जो घरों और दफ्तरों में, जहाँ प्रायः १५ से २०० वाट तक की बिजली की रोशनी की आवश्यकता होती है, लगाने के लिए उपयुक्त होंगे।

ल्यूकालोक्स लैम्पों में अति तीव्र विद्युत धारा प्रयुक्त होती है, जो वर्तुलाकार सिरैमिक ट्यूब के भीतर सोडियम वाष्प में से होकर गुजरती है। किन्तु, इनमें सोडियम-वाष्प लैम्पों की पीले रंग की रोशनी देने वाली बुराई नहीं होती। इसके विपरीत नये लैम्प बहुत ही सुखकर 'सुनहरा-श्वेत' प्रकाश देते हैं।

इस प्रकार की रोशनी इस लिए प्राप्त होती है कि इन लैम्पों के सोडियम-वाष्प को बहुत ही तप्त कर दिया जाता है जिससे उनका प्रकाश अपना रंग बदल देता है।

ल्यूकालोक्स के आविष्कार से पूर्व के प्रयोगों से पता चला कि ४०० वाट की बिजली पेंसिल जैसी मोटी काँच और बिल्लौर की ट्यूबों को गला देती है। नये सिरैमिक्स से पहले ट्यूबों के लिए इन वस्तुओं का प्रयोग होता था।

नये लैम्प औसत रूप से लगभग ६००० घण्टे

प्रकाश दे सकते हैं। इसकी तुलना में फ्लोरोसेण्टबल्ब १३,००० घण्टे, मरकरी बल्ब १६,००० घण्टे तथा इन्कैण्डीसेण्ट बल्ब ७५० से १२०० घण्टे औसत रूप से जल सकते हैं।

आशा की जाती है कि आगे चल रहे अनुसन्धानों के फलस्वरूप ल्यूकालोक्स बल्बों का टिकाऊपन बढ़ जायेगा और वे और अधिक समय तक प्रकाश दे सकेंगे।

५. न्यूट्रानों द्वारा केन्सर के सूक्ष्म तत्वों का नाश

केन्सर एक भयंकर रोग है, जो संसार के न जाने कितने प्राणियों की जान ले लेता है। लेकिन चिकित्सा-विज्ञान भी नित नये अनुसंधानों द्वारा उस पर विजय पाने की पूरी कोशिश कर रहा है। उसका सामना करने के लिए हाल ही में प० जर्मनी में कुछ अभूतपूर्व परीक्षण किये गये। इस वर्ष कार्लास्हू में हुई चिकित्सा कांग्रेस में एक अमेरिकन डाक्टर और एक जर्मन डाक्टर के परीक्षणों की रिपोर्टों पर विचार विमर्श किया गया। अमेरिकन डा० ली० एफ फार ने, जो ब्रुकहेवन के अणु अनुसंधान केन्द्र से सम्बंधित हैं, प्रारम्भ में ही यह स्पष्ट कर दिया कि ये परीक्षण अभी अनुसंधान व विकास के स्तर पर हैं और हो सकता है कि इसमें कुछ वर्ष लग जाय, जबकि यह सिद्धान्त व्यावहारिक चिकित्सा का महत्व ग्रहण कर सके। और जर्मन वक्ता प्रो० विल्हेल्म निगिंग ने, जो कोलोन के पास जूलिच के रिएक्टर स्टेशन के अणु क्लीनिक के प्रमुख हैं, भी यह तथ्य प्रकट किया कि उन्होंने इस अनुसंधान क्षेत्र में पशुओं पर प्रयोग के रूप में प्रवेश किया है।

यह सिद्धान्त संक्षेप में इस प्रकार कार्य करता है कि जब रिएक्टरों में से यूरेनियम पृथक होता है तो उससे जो न्यूट्रान उत्पन्न होते हैं; उनका प्रयोग यदि पशु व मानव तन्तुओं के सूक्ष्म तत्वों पर किया जाय तो उससे कोई विशेष परिवर्तन लक्षित नहीं होता। लेकिन यदि बोरान का तत्व उस सूक्ष्म तन्तुओं में प्रविष्ट करा दिया जाय तो परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगता है। तब बोरान अणु न्यूट्रान से टकराकर रासायनिक तत्व लिथियम में परिवर्तित हो जाते हैं, जिनमें छोटी-छोटी अल्फा किरणें होती हैं, लेकिन उनकी शक्ति बहुत होती है। ये छोटी-छोटी शक्तिशाली अल्फा किरणें किसी भी तन्तु से टकराकर उन्हें नष्ट करने की क्षमता रखती हैं।

केन्सर की गाँठों को यदि बोरान और न्यूट्रान के द्वारा नष्ट किया जाने लगे तो फिर आपरेशनों की जरूरत नहीं रह जायगी। लेकिन इस विधि के प्रयोग में एक कठिनाई भी है, जिसे दृष्टि से ओझल नहीं किया जाना चाहिए। अल्फा किरणों को, जिनका प्रभाव रोगी केन्सर सूक्ष्म तत्वों पर पड़ता है और वे उन्हें नष्ट करती हैं, पास के स्वस्थसूक्ष्म तत्वों पर से पृथक रखना चाहिए। लेकिन डाक्टर, बोरान को इन्टरवीनस इन्जेक्शन द्वारा केवल केन्सर के हिस्से तक पहुँचा सकते हैं। फिर उस भाग परअल्फा किरणें डाली जाती हैं, जिससे केन्सर के तन्तु नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार के बहुत थोड़े प्रयोग अभी तक किये जा सके हैं। डाक्टरों को किरण-चिकित्सा के क्षेत्र में अभी बहुत कुछ समाधान करना शेष है।

६. प० जर्मनी में प्लास्टिक के विमान

उड्डयन-निर्माण के क्षेत्र के एक पश्चिम उड्डयन फर्म ने प्लास्टिक के सफल प्रयोग किये हैं। कुछ समय पूर्व किये गये एक प्रयोग में जब 'फोइबस' नामक एक खेलकूद का विमान, जो प्लास्टिक-सामग्री से निर्मित था, एक हाई-टेन्शन तार से टकराया तो उसके चालक व मशीन को कोई क्षति नहीं पहुँची। विमानों के निर्माण में प्लास्टिक के प्रयोग की संभावनाओं पर काफी समय से परीक्षण किये जा रहे हैं, क्योंकि प्लास्टिक में प्रतिरोधात्मक शक्ति तो है ही, साथ ही उन पर खर्च भी कम आयेगा तथा उनके निर्माण में समय भी कम लगेगा।

विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका

वैज्ञानिक अनुसन्धान से सम्बन्धित हिन्दी की प्रथम शोध पत्रिका

(त्रैमासिक)

जिसमें गणित, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, प्राणि शास्त्र, वनस्पति शास्त्र तथा भूगोल शास्त्र पर मौलिक एवं शोधपूर्ण निबन्ध प्रकाशित होते हैं। भारतवर्ष की विविध प्रयोगशालाओं के उत्कृष्ट निबन्धों को इसमें स्थान दिया जाता है।

विश्व की सभी प्रमुख वैज्ञानिक संस्थाओं, पुस्तकालयों तथा विश्वविद्यालयों द्वारा यह पत्रिका है।

सामान्य सदस्यों के लिए वार्षिक शुल्क ८ रु०। 'विज्ञान' के सभ्य ४ रु० अतिरिक्त वार्षिक शुल्क देकर अनुसन्धान पत्रिका प्राप्त कर सकते हैं। यह पत्रिका अभी त्रैमासिक है किन्तु भविष्य में द्वैमासिक होने की सम्भावना है

प्रधान सम्पादक—डा० सत्य प्रकाश

प्रबन्ध सम्पादक—डा० शिवगोपाल मिश्र

मंगाने का पता

विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका,

विज्ञान परिषद्,

थार्नहिल रोड,

इलाहाबाद—२

पंजीकृत संख्या ए.—१७५९

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आंध्रप्रदेश के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों, कालिजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

'विज्ञान' में विज्ञापन की दरें

	प्रति अंक	प्रति वर्ष
आवरण के द्वितीय तथा तृतीय पृष्ठ	४० रु०	[illegible]
आवरण का चतुर्थ पृष्ठ (अन्तिम पृष्ठ)	५० ,,	[illegible]
भीतरी पूरा पृष्ठ	२० ,,	२०[illegible]
आधा पृष्ठ	१२ ,,	१२०
चौथाई पृष्ठ	८ ,,	८० ,,

प्रत्येक रंग के लिये २५) प्रति रंग अतिरिक्त लगेगा।

विज्ञापन के नियम

१—विज्ञापन के प्रकाशित करने अथवा उसके रोकने के लिये एक मास पूर्व सूचना कार्यालय में आनी चाहिए।

२—विज्ञापन का मूल्य पहले ही आ जाना चाहिये। यदि चेक द्वारा भुगतान करना हो तो साथ में बैंक-कमीशन जोड़ कर भेजा जाय।

साथ भेजे हुए ब्लाकों को परिषद् स्वीकार करेगा।

प्रकाशक—डा० बल्देव बिहारी लाल सक्सेना, प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।

मुद्रक—सरयू प्रसाद पांडेय, नागरी प्रेस, दारागंज, इलाहाबाद।

जुलाई-नवम्बर १९६६

विषय-सूची

विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुखपत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजनात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति । विज्ञानं प्रयन्त्यभिसविन्तीति । तै० उ० ३।५

भाग १०३ | आषाढ़-श्रावण २०२३ विक्र०, १८८७ शक अगस्त-नवम्बर १९६६ | संख्या ५-८

खनिज पेट्रोलियम से पोषक प्रोटीन

डा० रमेश चन्द्र तिवारी

जनसंख्या बृद्धि की समस्या केवल भारत में ही नहीं सम्पूर्ण विश्व की है। हाँ एक बात यथार्थ है कि जहाँ जनसंख्या पहले से ही अधिक है वहाँ की कुल जनसंख्या बृद्धि अन्य देशों की अपेक्षा अधिक होगी ही। हमारे देश की जनसंख्या-बृद्धि की दर अधिक है। उसका मुख्य कारण असंतुलित आहार, जलवायु व परिवार नियोजन की कमी ही कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त, वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ नवीन चिकित्सा प्रणाली तथा दवाओं के उत्पादन के फलस्वरूप छोटे-मोटे रोगों तथा भयानक महामारियों पर विजय पा लेने के कारण मनुष्य की औसत आयु में बृद्धि हो रही है अतः नवजात संतानों की संख्या मृत्यु-दर से कहीं अधिक होती जा रही है जिससे जनसंख्या में बृद्धि होती जा रही है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि यदि यह बृद्धि इसी दर से हुई तो सन् २००० तक विश्व की कुल जनसंख्या ६०० करोड़ तक पहुँच जायेगी।

परन्तु घबड़ाने की बात नहीं। जनसंख्या बृद्धि पर नियत्रंण करने के लिए वैज्ञानिक परिवार-नियोजन की आधुनिक प्रणालियों का विकाश कर रहे हैं। साथ-साथ संसार के करोड़ों मुंखों को भोजन देने के प्रबन्ध में वे अनवरत परिश्रमशील भी हैं। जितने भी मनुष्य पृथ्वी पर हैं उन सबको पर्याप्त आहार तभी मिलेगा जब

कृषि उत्पादन बढ़े। कृषि-उत्पादन में वृद्धि करने के दो ही साधन हैं, एक तो अधिक भूमि पर खेती की जाय या उतनी ही भूमि से पैदावार अत्यधिक बढ़ाई जाय। परन्तु प्रथम साधन तो सीमित है और द्वितीय साधन की भी एक निश्चित सीमा है जिसके उपरान्त अधिक उत्पादन नहीं हो सकता।

ऐसी दशा में जबकि उन्नत कृषि भी मनुष्यों का पेट नहीं भर पायेगी तो क्या होगा? प्रश्नोत्तर में हम उन नूतन वैज्ञानिक आविष्कारों को आपके सामने लाते हैं जिनके फलस्वरूप खनिज तेल *पेट्रोलियम* (ऐसे यह विष है) से आवश्यक एवं प्रत्यधिक *पोषक पदार्थ प्रोटीन* का निर्माण करके वैज्ञानिकों ने सराहनीय कार्य तथा मानव कल्याण किया है। हो सकता है यह विषय आपको आश्चर्यमय लगे परन्तु यह सत्य है कि फ्रान्स की *लावेरा पायलट योजना* अब पेट्रोलियम से *प्रोटीन* उत्पादन करने लगी है।

अब पेट्रोलियम का प्रयोग मोटरों को चलाने के लिए, घरों में प्रकाश के लिए तथा अन्य यंत्रों के शक्ति स्रोत के रूप में ही नहीं, भोजन के स्रोत रूप में भी किया जायेगा जिससे हमारी बढ़ती जनसंख्या की भोजन-समस्या कुछ सीमा तक सुलझ सकेगी। अभी तक विश्व की केवल ५० प्रतिशत जनता को प्रोटीन की पर्याप्त मात्रा तथा संतुलित आहार मिल पा रहा है, शेष मनुष्य यद्यपि अपना पेट तो भर लेते है और उन्हें अनाज, कंदों तथा साग-भाजियों से शक्ति भी मिल जाती है परन्तु प्रोटीन की पर्याप्त मात्रा नहीं मिलती। जो कुछ प्रोटीन वे अन्न से पा जाते हैं उनमें शरीर के लिए आवश्यक अमिनो अम्ल नहीं पाये जाते जिसके फलस्वरूप वे *प्रोटीन-न्यूनता रोग* के शिकार हो जाते हैं।

यह गणना की गई है कि सन् २००० में ६०० करोड़ मनुष्यों के लिए प्रतिवर्ष ६०,०००,००० टन प्रोटीन उपलब्ध होना चाहिए तभी वे स्वस्थ रह पायेंगे। जहाँ तक कृषि खाद्य पदार्थों से प्रोटीन की पूर्ति का प्रश्न है यदि खेती का उत्पादन अधिकतम हो जायेगा तो भी केवल १,०००,०००,० मनुष्यों को पर्याप्त तथा प्रोटीनयुक्त आहार मिल सकेगा। अतः क्या शेष १००००००० लोग भूखों मरेंगे? भविष्य तो यही कहता है क्योंकि उनके भोजन के अन्य साधन नहीं दिखाई पड़ रहे है। ऐसी संकटकालीन परिस्थिति में इस अनुसंधान को बढ़ावा

देकर खनिज पेट्रोलियम से प्रोटीन उत्पादन में वृद्धि करना बड़ा ही महत्वपूर्ण कदम होगा।

मनुष्यों के शारीरिक विकास के लिए २० अमिनो अम्लों की आवश्यकता पड़ती है। इनमें से ११ अमिनो अम्लों के लिए उन्हें फल, हरी साग-भाजी व अन्य वनस्पतियों पर निर्भर रहना पड़ता है; शेष ९ तो शरीर संश्लेषित कर लेता है। पेड़-पौधों में प्रोटीन निर्माण प्रकाश-संश्लेषण के उपरान्त प्राप्त कार्बनिक पदार्थों के द्वारा होता हैं। कुछ पौधों से प्राप्त तेलों से बने व्यंजन और सोयाबीन तथा अन्य दोदाल वाली वनस्पतियों में आवश्यक अमिनो अम्ल तथा प्रोटीन की संतुलित मात्रा पाई जाती है। पशु-पक्षियों के मांस से प्रोटीन प्राप्त करने वाले लोगों को भी तो वनस्पति प्रोटीन पर ही अपरोक्ष रूप से आश्रित रहना पड़ता है क्योंकि पशु-पक्षी भी यह प्रोटीन पौधों से ही पाते हैं। ऐसा पता लगा है कि १ पौ० पशु प्रोटीन प्राप्त करने के लिए उन्हें इतना भोजन (कार्बोहाइड्रेट) देना पड़ता है कि ६.५ *कैलारी* शक्ति मिले। उनका यह भोजन केवल वनस्पतियों से ही पूरा किया जाता है।

समुद्री मछलियों में भी प्रोटीन पर्याप्त मात्रा में मिलता है परन्तु कुछ ही समुद्र ऐसे हैं जहाँ खाने योग्य प्रोटीनधारी मछलियां मिल पाती हैं। इनका भोजन नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा समुद्री *प्लैकंटन* पौधा है। कुछ लोगों का कथन है इस पौधे की प्रोटीन प्रयोग की जा सकती है परन्तु इसे समुद्र से काट लेने पर मछलियों का अन्त हो जाने की संभावना है। तालाबों तथा पोखरों में कृत्रिम बिधि से मत्स्य-पालन के लिए जितना भोजन उन्हें देना पड़ेगा उससे कई लोगों का पेट भरा जा सकता है। इन सभी बाधाओं के कारण *पेट्रोलियम से प्रोटीन* निर्माण आवश्यक है क्योंकि प्रोटीन संश्लेषण का मुख्य साधन (शक्ति स्रोत) कार्बन या कार्बन युक्त पदार्थ ही हैं जिनमें सबसे अधिक कार्बन वाला तथा काफी मात्रा में प्राप्त व सस्ता पदार्थ (पेट्रोलियम) ही है। यह तो आप जानते ही हैं कि पेट्रोलियम भूगर्भ में पाया जाता है तथा कुयें खोदकर या बोरिंग करके यंत्रों द्वारा निकाला जाता है। इसी से तेल शोधन कारखानों में पेट्रोलियम, मिट्टी का तेल, डीज़ल तथा अन्य ज्वलनशील गैसों का उत्पादन होता है। इन पदार्थों के अत्यधिक ज्वलनशील होने

का मुख्य कारण इनका कार्बन है जो अत्यन्त ज्वलनशील तत्व होता है।

पेट्रोलियम में उपस्थित इसी कार्बन से प्रोटीन प्राप्त किया जाता है। यह कई वर्षों से मालूम है कि तमाम सूक्ष्म पौधे जैसे कवक (फन्जाई) तथा जीवाणु कार्बनयुक्त पदार्थों पर क्रिया करके प्रोटीन संश्लेषण करते हैं। चोटा तथा अन्य मानव खाद्य पदार्थों पर निर्भर रहकर *खमीर* (ईस्ट) कवक जीव जन्तुओं की भाँति विटामिन तथा प्रोटीन उत्पादन करते हैं। पेट्रोलियम पर सूक्ष्म जीव शीघ्रता से जनसंख्या वृद्धि करते हैं, और लगभग ५ घंटे में वे दुगनी जनसंख्या तथा भार के हो जाते हैं। इस प्रकार उनके शरीर रूप में संश्लेषित प्रोटीन की मात्रा व दर पशुओं की अपेक्षा हजारों गुना अधिक है। इसके अतिरिक्त इन्हें पशु-पक्षियों की भाँति, धूप, मिट्टी तथा वर्षा की कोई आवश्कता भी तो नहीं होती।

पहले तो इस बात पर मतभेद था कि कवक जैसे सूक्ष्म पौधे क्या कार्बोहाइड्रेट के अतिरिक्त हाइड्रोकार्बन (पेट्रोलियम) पदार्थों पर उग सकेंगे? परन्तु पेट्रोलियम वाली टंकियों की तलहटी में मोल्ड कवक की उपस्थिति इसका स्पष्ट उदाहरण है कि कवक पेट्रोलियम में सुगमता से उग सकता है। १९५२ ई० में जर्मनी के एक जीव वैज्ञानिक *फेलिक्स* जस्ट अपनी प्रयोगशाला में पेट्रोलियम पर ईस्ट (खमीर) कवक को उगाने में सफल हुए। इनके इस महत्वपूर्ण अनुसंधान से ही पेट्रोलियम पर खमीर जैसे प्रोटीनधारी कवक को उगाने का प्रयास किया गया जिसे आज कारखाने के रूप में परिणत कर लिया गया है।

पेट्रोलियम से प्रोटीन बनाने का अर्थ उस पर "खमीर" (इस्ट) का उत्पादन करना है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि इस विधि के अन्तर्गत कार्बोहाइड्रेट या अन्य शर्करा पदार्थों के स्थान पर पेट्रोलियम का प्रयोग करके खमीर उत्पादन किया जाता है। कार्बोहाइड्रेट का जल में विलयन बनाकर उसमें *नाइट्रोजन*, *फास्फोरस* तथा *पोटाश* एवं *सूक्ष्मतत्व* वाले विलेय खनिजों एवं कार्बनिक पदार्थों को मिश्रित किया जाता है। कभी-कभी इस मिश्रण में विटामिन भी मिला दिये जाते हैं। यही मिश्रण किण्वन के लिए प्रयोग में किया जाता है। इसे किण्वन-टैंकों में संग्रहीत करके उसमें वायु का निरन्तर प्रवाह किया जाता है। इससे किण्वन के लिए आवश्यक आक्सिजन बराबर मिलती

रहती है। इस मिश्रण को टैंकों में भरने के पूर्व उनमें ईस्ट (खमीर) का कुछ अंश मिला दिया जाता है। इस मिश्रण की अम्लीयता तथा ताप को नियंत्रित रक्खा जाता है। यदि उपर्युक्त सभी सावधानियाँ रक्खी जायँ तो *खमीर कोशिकाओं* (खमीर) का अधिकतम जनन होता है जिसके फलस्वरूप खमीर की अच्छी मात्रा प्राप्त हो जाती है। खमीर कोशिकाओं को खमीर-धारी इस मिश्रण से या तो छानकर अथवा अपकेन्द्रित करके पृथक कर लिया जता है। इन कोशिकाओं को अच्छी तरह धोकर, तथा सुखाकर स्वच्छ बर्तनों में संग्रहीत कर लिया जाता है। इसमें ५० प्रतिशत प्रोटीन होता है। सुगन्ध देकर, इसको आइसक्रीम, सूप तथा स्वादिष्ट भोज्य पदार्थ के रूप में प्रयोग किया जाता है।

यह विधि तो कार्बोहाइड्रेट पर खमीर उगाने की हुई परन्तु पेट्रोलियम पर खमीर उगाना अपेक्षाकृत जटिल है क्योंकि कार्बोहाइड्रेट पदार्थों में लगभग ५० प्रतिशत आक्सीजन विद्यमान रहती है जबकि पेट्रोलियम में आक्सीजन बिल्कुल अनुपस्थित रहती है। अतः पेट्रोलियम को किण्वन माध्यम बना कर उसे खमीर कोशिकाओं के प्रजनन के अनुकूल बनाने के लिए "खमीर कवक" की पर्याप्त आक्सीजन पूर्ति हेतु पेट्रोलियम किण्वन मिश्रण में कार्बोहाइड्रेट किण्वन मिश्रण की अपेक्षा तीन गुना अधिक वायु का प्रवाह करना आवश्यक हो जाता है।

इसके अतिरिक्त पेट्रोलियम जल में विलेय नहीं होता अतः इसमें उपस्थित तेल की बूँदों को ठीक से मिश्रित करने के लिए उसे निरन्तर मिलाना पड़ता है। जिसके लिए पृथक प्रबन्ध करना आवश्यक होता है। इतना ही नहीं, खमीर कोशिकाओं के प्रजनन के फलस्वरूप अत्यधिक ऊष्मा निकलती है अतः पेट्रोलियम के ताप को कम रखने के लिए उसे ठंडा रखने का प्रबन्ध करना भी आवश्यक हो जाता है।

यद्यपि पेट्रोलियम से प्रोटीन (खमीर) उत्पादन में शर्करा पदार्थों की अपेक्षा उपर्युक्त सभी कठिनाइयाँ हैं परन्तु लाभों की तुलना में ये बाधायें नगण्य हैं क्योंकि पेट्रोलियम पर खमीर की उत्पादन दर शर्करा माध्यम की अपेक्षा दुगनी है। यह देखा गया है कि अनुकूल परिस्थियों में *१ किलोग्राम पेट्रोलियम से १ किलोग्राम खमीर प्राप्त होती* है जब कि शर्करा के एक किलोग्राम से अधिकतम प्राप्ति आधा किलोग्राम ही मिल पाती है।

फ्रान्स के लावेरा प्रोटीन उत्पादक केन्द्र में *खमीर* उत्पादन के लिए पेट्रोलियम में उपस्थित मिट्टी के तेल तथा स्नेहक तेल (लूब्रिकेटिंग तेल) अंशों के मध्य पाये जाने वाले अंश गैस तेल का प्रयोग किया जाता है। प्रयोगों से यह पता चला है कि पेट्रोलियम के विभिन्न अंशों से अधिकतम प्रोटीन उत्पादन के लिए ईस्ट या खमीर की भिन्न-भिन्न जातियां उपयुक्त होती हैं। इस कारखानें में प्रयुक्त माध्यम पोषक पदार्थ लगभग उसी प्रकार है जैसे शर्करा (माध्यम) पर खमीर उगाने के लिए होता है। नाइट्रोजन पूर्ति के लिए माध्यम में अमोनियम लवण, तथा फास्फोरस व पोटाश तत्वों की पूर्ति के लिए सामान्य फास्फेटीय तथा पोटाशी उर्वरकों का प्रयोग किया जाता है। इसमें विटामिन व सूक्ष्म तत्व भी मिश्रित किये जाते हैं।

लावेरा कारखाने से उत्पादित खमीर में ५० प्रतिशत से अधिक प्रोटीन पाया जाता है। पेट्रोलियम से प्राप्त यह प्रोटीन, पशु, कुक्कुट तथा मत्स्य, पौधे तथा शर्करा पर उगे खमीर की प्रोटीन से किसी भी मानों में निम्न श्रेणी की नहीं होती। इसमें पर्याप्त विटामिन बी० पाया जाता है तथा यह प्रोटीन तमाम पोषक आवश्यक अमिनो अम्लों से संतुलित व परिपूर्ण रहता है। मुख्य रूप से इसमें उपस्थित लाइसीन अमिनो अम्ल अत्यन्त लाभकारी होता है क्योंकि अनाजों या अन्य पौध प्रोटीनों में इसका अभाव रहता है। यह ८० से ६० प्रतिशत तक पाच्य होता है। शर्करा पर उगे खमीर से प्राप्त प्रोटीन की अपेक्षा पेट्रोलियम से उत्पादित खमीर-प्रोटीन में दुर्गन्ध भी कम होती है।

मांस, मछली, सोयाबीन तथा खमीर से प्राप्त प्रोटीन की भाँति इससे भी तमाम प्रकार के भोजन तैयार किये जा सकते हैं। इसे शुद्ध बनाकर सुखाकर, चूर्ण करके, तथा स्वाद व गंध रहित बनाकर डिब्बों में बन्द करके बाजारों में भेजा जाता है। इस कारखाने के उत्पादन की गणना से यह पता चला है कि प्रतिवर्ष ४०,०००,००० टन पेट्रोलियम अंश से २०,०००,००० टन विशुद्ध प्रोटीन प्राप्त हो जाता है।

अब ऐसे कारखाने विश्व के अन्य विभिन्न भागों में निर्मित किये जा रहे हैं। पेट्रोलियम द्रव है अतः टैंकर्स व पाइप लाइन के द्वारा इसके परिवहन में भी सुविधा होती है। अवशेष के रूप में भूगर्भ में एकत्रित पेट्रोलियम भंडारों में पेट्रोलियम की अपार मात्रा विद्यमान

→शेषांश पृष्ठ १६ पर

इमारती चूना

चूना भारत का परम्परागत जोड़क पदार्थ है। इसका उपयोग मसाले, पलस्तर तथा चूना कंक्रीट के रूप में बहुत प्राचीन काल से किया जाता रहा है। इसे चूने के पत्थर को जलाकर बनाया जाता है। भिन्न-भिन्न स्थानों से प्राप्त पत्थर के गुणों में भी अन्तर होने के कारण उनसे बने हुए चूने के गुणों में भी अन्तर पाया जाता है।

पत्थर तथा उसका निस्तापन

चूने का पत्थर भारतवर्ष के लगभग सभी प्रांतों में न्यूनाधिक मात्रा में पाया जाता है। पत्थर की खानें पहाड़ियों के रूप में पाई जाती हैं जिनसे खोद कर इसे निकाला जाता है। खुदाई के काम से पहिले बारूद लगाकर, फिर हाथ से पत्थर को गिराया जाता है। कहीं-कहीं मशीनों का भी इस काम में उपयोग होता है।

पत्थर का निस्तापन मुख्यतः देशी भट्टों में किया जाता है। ये भट्टे घटिया क़िस्म की ईंटों के बने हुए होते हैं तथा वर्गाकार अथवा बेलनाकार आकृति के होते हैं। इनमें पत्थर तथा कोयला परतों में भरे जाते हैं। अग्नि-प्रवेश नीचे से किया जाता है। जलने में एक से दो सप्ताह तक लग जाते हैं। कई भट्टे निरन्तर प्रकार के होते हैं। इनमें से चूना नीचे से प्रतिदिन निकाला जाता है तथा पत्थर व ईंधन ऊपर से डाला जाता है। कई स्थानों पर शैफ्ट भट्टों का भी उपयोग किया जाता है। इसमें ताप-नियंत्रण अपेक्षाकृत उत्तम रहता है जिससे ठीक प्रकार से जला हुआ चूना प्राप्त होता है।

चूने का संग्रह

भट्टी से प्राप्त चूने को बहुत सावधानी से संग्रह करने की आवश्यकता है। यह चूना वायुमंडल से नमी तथा कार्बन-डाइ-आक्साइड सोख लेता है तथा उनसे प्रक्रिया करके कैल्सियम कार्बोनेट बना देता है। इस क्रिया में यह ढेलों से चूर्ण के रूप में परिणत हो जाता है। ऐसे चूने को हवा से *बुझा हुआ चूना* कहते हैं। इसके अच्छे गुणों का लगभग पूरी तरह

से नाश हो जाता है और इसकी आयतन-प्राप्ति भी कम आती है। इसलिए यह आवश्यक है कि अनबुझा चूना सूखा तथा सुरक्षित ही रखा जाय। इसलिए ठीक प्रकार के गोदामों का तो प्रबन्ध करना ही चाहिए, यदि संभव हो तो चूने को मोटे कागज के जलनिरोधी बोरों में रखना चाहिए। यदि यह संभव न हो सके तो अनबुझे चूने के ढेर बना कर उसे चूने के चूरे से भलीभाँति ढक देना चाहिए जिससे अन्दर हवा का प्रवेश न हो सके।

चूने का संग्रह करने के लिए सबसे अच्छा यही है कि उसे बुझा कर ही रखा जाए। बुझा हुआ चूना सूखे स्थान पर रखने से अपेक्षाकृत अधिक समय तक सुरक्षित रूप में रखा रह सकता है। इसे साधारण बोरियों में भर कर भी रखा जा सकता है।

चूने का वर्गीकरण

रासायनिक तत्वों के आधार पर चूनों को निम्न प्रकारों में बाँटा जा सकता है :—

(१) जलपका तथा अर्ध-जलपका चूना
(२) अत्यधिक कैल्सियम चूना
(३) मैगनीशी चूना

जलपका तथा अर्ध-जलपका चूना

कहीं-कहीं चूने के पत्थर में काफी मात्रा में चिकनी मिट्टी का लगभग एक-सा वितरण होता है। ऐसे पत्थर को जलाने से प्राप्त चूना *जलपका चूना* कहलाता है। भट्टी के उच्च ताप पर मिट्टी में उपस्थित सिलीकन, ऐल्युमिनियम तथा लौह के यौगिक चूने से रासानिक संयोग कर लेते हैं। इसलिए यह चूना जल से पक कर कठोर हो जाता है। इसीलिए इसे जलपका चूना कहते हैं। भारतीय मानक ने इन यौगिकों की मात्रा के आधार पर इस प्रकार के चूनों को जलपके श्रेणी ए) तथा अर्ध-जलपके (श्रेणी बी) दो भागों में बाँटा है। इन दोनों प्रकार के चूनों का उपयोग मुख्यतः चिनाई में होता है। इनसे बनाये गए मसाले शीघ्र ही तथा अच्छी सामर्थ्य प्राप्त कर लेते हैं।

अत्यधिक कैल्सियम चूना

यह अपेक्षाकृत अधिक शुद्ध चूने के पत्थर को जलाने से प्राप्त होता है। यह चूना मुख्यतः कैल्सियम आक्साइड के रूप में ही प्राप्त होता है।

इस चूने को *कली चूना* अथवा *सफेद चूना* भी कहा जाता है। भारतीय मानक में इसे *'श्रेणी-सी'* कहा गया है। इसका उपयोग अधिकतर पलस्तर के ऊपरी तल तथा पुताई के लिए किया जाता है। इस प्रकार का चूना जल के संयोग से कठोर नहीं होता, अपितु यह हवा से कार्बन-डाइ-आक्साइड सोख कर कठोर होता है। इससे बहुत कम सामर्थ्य प्राप्त होती है। कली चूने में सुर्खी आदि मिलाकर कृत्रिम जलपका चूना भी बनाया जाता है। इसमें अच्छी सामर्थ्य प्राप्त हो जाती है, इसलिए चिनाई आदि में इसका उपयोग हो सकता है।

मैगनीशी चूना

यह चूना मैगनीशी चूने के पत्थर अथवा डोलोमाइट को जलाने से प्राप्त होता है। ऐसे सभी चूने जिनमें मैगनीशियम आक्साइड की मात्र ५ प्रतिशत से अधिक हो इस श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। इनमें ऐल्यूमिनियम, सिलिकन आदि की मात्रा कम ही होती है, इसलिए ज्यादातर ये जलपके नहीं होते। इनके बुझने की प्रक्रिया धीरे-धीरे होती है तथा इससे ऊष्मा भी कम ही उत्पन्न होती है। किन्तु इससे बने हुए मसाले अत्यधिक कैल्सियम चूने की अपेक्षा अधिक कठोर हो जाते हैं तथा अधिक सामर्थ्य प्रदान करते हैं।

मैगनीशी चूना बनाने के लिए बहुत उच्च ताप वाली भट्टियों का उपयोग नहीं करना चाहिए। अधिक ताप पर मैगनीशियम आक्साइड का कुछ भाग पेरिक्लेज में परिवर्तित हो जाता है। इसके बुझने की प्रक्रिया अनेक वर्षों में जा कर पूरी हो पाती है। इससे संरचना में मसाले के प्रसार के कारण टूट-फूट हो सकती है। इसलिए कई बार वाष्प-दाब भट्टी में बुझाना भी आवश्यक हो जाता है।

भारतवर्ष में मैगनीशी चूने के अत्यन्त विशाल भंडार हैं। अत्यधिक कैल्सियम चूने का अन्य उद्योगों में उपयोग होने के कारण भवन-निर्माण में मैगनीशी चूने का उपयोग बढ़ना अवश्यम्भावी है। वैसे तो आज भी बाजार में चूने के नाम से बिकने वाला बहुत-सा चूना मैगनीशी चूना होता है।

चूने को बुझाना

भट्टों से चूना कैल्सियम आक्साइड के रूप में प्राप्त होता है। इसे उपयोग में लाने से पहिले बुझे हुए चूने अथवा कैल्सियम हाइड्राक्साइड

के रूप में बदलना आवश्यक होता है। यदि चूने का कोई अंश भली-भाँति बुझने से पहिले ही संरचना में लगा दिया जाता है तो वह धीरे-धीरे बुझता रहता है। इस प्रकार बुझने के कारण प्रसार होने से संरचना को हानि पहुँच सकती है। इसलिए चूने को बुझाने की क्रिया बहुत महत्वपूर्ण है तथा इसे बहुत सावधानी से करनी चाहिए। मसालों में भी चूने की कार्यक्षमता काफी हद तक बुझाने के ढंग पर निर्भर रहती है।

चूने को बुझाने का प्रमुख उद्देश्य ऐसा पदार्थ प्राप्त करना है जो पूर्णतः बुझा हुआ हो और जिससे अधिक आयतनी-प्राप्ति हो। ठीक प्रकार बुझे हुए चूने में छोटे-छोटे कण होते हैं तथा यह धीरे-धीरे जमता है। बुझाने के लिए चूने के ढेलों का उपयोग करना चाहिए। भट्ठी की राख अलग कर देनी चाहिए। यह भी आवश्यक है कि बुझाने के लिए न तो आवश्यकता से कम पानी का उपयोग हो, न अधिक का ही क्योंकि दोनों ही अवस्थाओं में अच्छी किस्म का चूना प्राप्त नहीं होता। भट्टों से प्राप्त चूने को जल्दी से जल्दी (७ दिन के अन्दर) बुझा लेना चाहिए।

चूने को बुझाने के लिए कई विधियों का प्रयोग किया जाता है जिनमें हौदी में अथवा चबूतरे पर बुझाना प्रमुख हैं। हौदी में बुझाने की विधि में दो हौदियाँ, जिनकी ऊँचाई में १-२ फीट का अंतर हो, काम में लाई जाती हैं। इनमें ईंटों का अन्तर होता है तथा तल इस प्रकार बनाया जाता है कि ऊपर की हौदी से द्रव बह कर नीचे की हौदी में ठीक तरह से पहुँच सके। ऊपर की हौदी में पानी भर कर अनबुझा चूना डालते हैं। पानी को साथ साथ हिलाते भी रहते हैं। चूने के बुझने से ऊष्मा निकलती है तथा पानी उबलने लगता है। जब तक चूना भलीभाँति बुझ न जाए, घोल को हिलाते रहते हैं। चूने के अच्छी तरह बुझ जाने पर इस घोल को भारतीय मानक संख्या ३२० की छलनी से छान कर निचली हौदी में बह कर जाने दिया जाता है। निचली हौदी में इसे २-३ दिन तक रहने दिया जाता है। जलपके चूने को बुझाने के लिए यह समय एक-दो दिन से अधिक नहीं होने दिया जाता। चूने के भलीभाँति बुझ जाने पर उसे काम में लाया जाता है।

चबूतरे पर बुझाने के लिए चूने की लगभग ६-७ इंच मोटी तह बना दी जाती है और इस पर फव्वारे से धीरे-धीरे पानी छिड़का जाता है। इससे चूना बुझ कर चूर्ण के रूप में हो जाता है। इस ढेरी को साथ-

साथ हिलाते भी रहते हैं। चूने के आयतन का लगभग एक तिहाई पानी डाला जाता है। आवश्यक मात्रा में पानी डाल कर चूने को एक दिन पड़ा रहने देते हैं। इसके पश्चात् इसे भा० मा० सं ३२० की छलनी से छान लेते हैं। काम में लाने तक इस चूने को ढक कर सूखी जगह रखा जाता है।

मैगनीशी चूने को भी चबूतरे पर ही बुझाना अधिक अच्छा है किन्तु इससे पहिले चूने के ढेर को बालू से ढक देना चाहिए क्योंकि इसके बुझने से ऊष्मा धीरे-धीरे निकलती है और उसका विकिरण न होने से बुझने में आसानी रहती है।

इसके अतिरिक्त तारों की नाली की डलिया में रख कर पानी में डुबाना तथा उच्च निपीड पर जलीयन करने आदि की विधियाँ भी प्रचलित हैं।

चूने के मसाले

चूने में बालू, सुर्खी अथवा सिंडर मिला कर इसके मसाले बनाये जाते हैं। ऐसा करने से चूना भी कम खर्च होता है तथा शक्ति भी अधिक प्राप्त होती है। पलस्तर तथा चिनाई के लिए लगभग एक से ही मसाले का प्रयोग किया जाता है। मसाला बनाने के लिए या तो इन वस्तुओं को आवश्यक अनुपात में मिला लिया जाता है या इन्हें चक्की में पीस कर मिलाया जाता है। मिलाने के बाद मसाले को जल्दी ही काम में ले आना चाहिए।

अत्यधिक कैल्सियम तथा अर्ध-जलपके चूने में सीमेंट का सफलता-पूर्वक मिश्रण किया जाता है। जलपके चूने में सीमेंट मिलाने की आवश्यकता नहीं होती। मैगनीशी चूने के धीरे बुझने के गुण के कारण इसमें सीमेंट मिलाने में कठिनाई होती है। अन्दर की ओर पलस्तर करने के लिए चूने में जिप्सम भी मिलाया जा सकता है। जिप्सम मिलाने की अवस्था में सीमेंट नहीं मिलाना चाहिए।

यदि आप राष्ट्रभाषा की उन्नति चाहते हैं तो विज्ञान का पठन-पाठन हिन्दी के माध्यम से कीजिये

जय-पराजय शस्त्रों से नहीं, रसायन से

● श्यामसरन विक्रम

'युद्ध' शब्द जितना पुरातन है, अस्त्र-शस्त्र का इतिहास भी उतना ही प्राचीन है। कन्दरा-निवासियों के प्रस्तर-आयुधों से लेकर विगत दो महायुद्धों तक और उससे भी आगे बढ़ कर चांद या मंगल तक पहुँचने पर वहाँ भी ऐसे पराकल्पित अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण की होड़ अवश्य चिर-नवीना है। अतः युद्धशास्त्र को समस्त शाखाओं-प्रशाखाओं सहित विज्ञान का निचोड़ कहा जा सकता है।

इतिहास और प्रागैतिहास साक्षी हैं कि युद्धास्त्रों के साथ रसायन, चोली-दामन की भाँति जुड़ा चला आया है। अधिक प्राचीन नहीं, लगभग २५०० वर्ष पूर्व के इतिहास पृष्ठ उलटें तो पायेंगे कि स्पार्टा के सैनिकों ने डेलियन की दुर्ग-प्राचीरों के नीचे कोलतार और गंधक मिलाये हुए काष्ठ-खण्ड जला रखे थे। उनसे उठते विषैले धुयें के गुब्बारों में दुर्ग-रक्षक सैनिक ऊपर से कुछ न कर पाये और अन्ततः उन्हें दुर्ग से हाथ धोना पड़ा था। विस्फोटकों का आरम्भकर्ता चीन देश माना ही जाता है। और, इसी शताब्दी की बात करें तो प्रथम विश्व-युद्ध के लिए रसायनज्ञों ने ३००० से भी अधिक नुस्खे तैयार कर रखे थे। उनमें से केवल ३२ ही उपयोग में लाए गए, जिनमें अकेले मस्टर्ड गैस ने त्राहि-त्राहि मचा दी थी।

आक्रमण, ज्ञानतंतुओं पर

फिर तो जर्मन वैज्ञानिकों ने दूसरे महायुद्ध के अन्त तक भी अपनी गुप-चुप तैयारियों का पता ही न चलने दिया। १९४०-४१ के लगभग प्रबलतम कीटविनाशक रसायन तैयार करने के बीच ही अचानक हाथ लगे ज्ञानतंतु-निष्क्रियक रसायन देकर उन्होंने संसार को चकित कर दिया। इसका एक ही मनोरंजक उदाहरण पर्याप्त रहेगा। वह यह कि घंटों परेड में थका देने वाला एक कमाण्डेन्ट जब मध्यान्तर में चाय पीने गया तो देर तक लौटा ही नहीं। देखा, तो पाया गया कि हजरत टांग फैलाये, मेजर साहब की मेज पर नशे में बुत्त, आँय-बाँय

बके जा रहे थे। निश्चय ही, उन्हें चाय में कुछ पिलाने का प्रयोग किया गया था। वही था वह रसायन, जिसे अब बड़े पैमाने पर प्रयुक्त किये जा सकने की दिशा में प्रयोग किये जा रहे हैं।

इस तंतु-निष्क्रियक रसायन का नाम है—एसिटायलकोलाइन। यह रसायन तंत्रिकाओं के सिरे पर पहुँच कर शरीर के उस अन्तःस्राव को निष्प्रभावित कर देता है जिसे कोलिएन्स्टेरेज कहते हैं और जो ज्ञान तंतुओं तथा स्नायुओं के संचालन का कार्य करता है, उन्हें नियन्त्रित रखता है। इसकी विलक्षण तीव्रता का अनुमान इसकी आवश्यक अति सूक्ष्म मात्रा से लगाया जा सकता है। अब तक की प्रसिद्ध मस्टर्ड गैस जहाँ भरपूर मात्रा में आवश्यक रहती है, वहाँ इसकी थोड़ी सी ही मात्रा वायुमण्डल में बिखेर देने पर एक वर्ग मील के युद्धक्षेत्र में बगैर मुखौटा (मास्क) पहिने हुए, खुले नाक, कान, मुंहवाले सैनिकों में से एकतिहाई को यह तौबा-तौबा बुलवा देगी और उनमें से २५ प्रतिशत तो मौत के घाट उतर ही जायेंगे। सोचिए, वह कितनी अहिंसापूर्ण हिंसा होगी, जिसमें बीसों को बस सुला दिया, ना मारा, ना खून किया। सूक्ष्मदर्शी में देख पाने योग्य तक इसकी अत्यल्प मात्रा मुंह, नाक, कान तथा खुली त्वचा से प्रवेश करके व्यक्ति को संज्ञाशून्य कर देने के लिये प्रर्याप्त है।

आरम्भ में कहा जा चुका है कि रसायन को युद्ध से पृथक् नहीं किया जा सकता। डाइनेमाइट बमवर्षा, आग के गोले फेंकना, धुयें के बादल उठाना तथा राकेट जैसे आग्नेयास्त्रों का प्रयोग करना, ये सब रसायन-युद्ध के ही तो रूप स्वरूप हैं। हाँ, मोटे तौर पर रासायनिक युद्ध उसे कह लिया जाता है, जिसमें विषैली गैसों का प्रयोग खुल कर किया गया हो। द्वितीय महायुद्ध तक मुख्यतः निम्नांकित चार प्रकारों की विष-गैसों का प्रयोग हुआ था :—

१—अश्रुकारक : इस श्रेणी की गैसों से आँखें इस प्रकार अश्रुप्लावित हो आती हैं कि सैनिक की दृष्टि ही अवरुद्ध हो जाती है और कुछ भी नजर न आ पाने के कारण वह निस्सहाय हो जाता है। उपद्रवकारी भीड़ों को तितर-बितर करने के लिए आज-कल की अश्रुगैस इसी का एक मन्द स्वरूप है। इसे बनाने के लिए जाइलाइल ब्रोमाइड तथा इथाइलआयोडोऐसीटेट प्रयुक्त किये जाते हैं।

२—फुप्फुस प्रदाहक : ये गैस फेफड़ों को तुरन्त ही प्रभावित कर देती है। इस श्रेणी की फास्जीन तथा क्लोरोपिक्रिन गैसें फेफड़ों में असहनीय जलन उत्पन्न करती हैं।

३—छींक-उत्पादक : ये गैसें आँख, नाक और फेफड़ों को पकड़ में लेकर छींकों के मारे बुरा हाल कर देती हैं। ये गैसें मुखौटे तक में प्रवेश कर जाती हैं। बस, बेचारा सैनिक छींकों से घबरा कर मुखौटा उतार फेंकता है। फिर तो इन गैसों की और भी बनती है। इन गैसों में संखिये की भी मात्रा मिश्रित रहती है, जिसके कारण इनसे प्राणहानि की भी संभावना कम नहीं। क्लोरआरसीन गैस इनमें प्रमुख है।

४—व्रणकारक : इन गैसों से शरीर पर भयंकर फफोले उठ आते हैं। बहुत बदनाम मस्टर्ड-गैस इसी श्रेणी में आती है। संखिया-मिश्रित गैस-लेविसाइट भी इसी में सम्मिलित है। इनसे उत्पन्न फफोले बड़ी पीड़ा देते हैं। यदि इनकी किंचित भी मात्रा फेफड़ों में प्रवेश कर जाए तो प्राणों पर आ बनती है। इनसे बचने के लिए मुखौटे के अतिरिक्त अन्य भी रक्षक-परिधान पहिनने पड़ते हैं।

इधर के वर्षों में अमेरिकी रसायनज्ञों ने नये-नये प्रयोग करके इन मनोबलहारी रसायनों के अनेक नये नुस्खे दिये हैं। उदाहरणार्थ, डाइमिथाइलएमाइड नामक लाइसजकि अम्ल को एरगट के अम्ल से संश्लेषित कर लिया जाता है। इस विधि से प्राप्त अम्ल को एक संक्षिप्त नाम दिया गया है। इसकी ०.०५ मिलीग्राम अत्यल्प मात्रा मस्तिष्क का सन्तुलन विच्छिन्न कर देने के लिए पर्याप्त है। यही मात्रा ५० मिलीग्राम कर देने पर घातक बन जाती है। इससे कुछ अंशों में कम प्रभावकारी है—साइलोसिन।

कांटे से कांटा निकालते हैं

वैज्ञानिकों ने इन फूलों से भी फूल चुनने के प्रयासों में कोई कसर नहीं उठा रखी है। उदाहरणार्थ, द्वितीय महायुद्ध के दौरान में एक बन्दरगाहों पर तरल मस्टर्ड भरा जहाज गोले का निशाना बन गया तो उससे वह मस्टर्ड जहाज के तरल ईंधन से मिश्रित हो कर समुद्र की सतह पर बह निकला। नाइट्रोजन-प्रचुर तो वह मिश्रण था ही। युद्धोपरान्त नित्य के सागर-स्नानार्थियों को इस मिश्रण से प्रभाविक पाया गया तो देखा कि वे शरीर में श्वेतरक्ताणुओं के अभाव से पीड़ित थे। अब तो जैव-

वैज्ञानिकों को यह सोचने का नया विषय मिल गया कि मस्टर्ड श्रेणी के रसायनिक मिश्रणों का उपयोग विपरीत अवस्था में, श्वेत रक्ताणुओं की अस्वाभाविक वृद्धि रोकने के लिए किया जा सकता है या नहीं। इन प्रयोगों को अन्ततः कुष्ट रोग के निरोध के नुस्खे ढूँढने तक बढ़ा ले जाने में अमेरिकी वैज्ञानिक प्रयत्न-रत हैं।

इसी प्रकार मिश्रणों से ऐसा भी नुस्खा तैयार किया गया है जो भोजन को विषाक्त करने के अब तक ज्ञात पांचों प्रकार को निष्क्रिय कर देने में समर्थ है। इन्हीं से एक ऐसा टीका भी तैयार किया गया है जो चौपायों को प्रायः ही हो जाने वाले और छूत द्वारा मनुष्यों को भी लपेट में ले लेने वाले गिल्टी रोग का प्रबल निरोधक सिद्ध होगा।

सुरक्षा के विभिन्न प्रकार

यह सिद्धान्त की बात है कि इलाज में सर खपाने से पहले रोग की रोकथाम तथा अपनी सुरक्षा का प्रत्येक सम्भव प्रयास कर लेना बुद्धिमानी है। अतः इन विष-गैसों के आक्रमण से सुरक्षा के लिए क्या-क्या पूर्व तैयारियाँ करना सम्भव है, इसके प्रति भी वैज्ञानिक सजग, सचेष्ट हैं। सोवियत वैज्ञानिकों के प्रयोगानुसार सैन्य-टुकड़ियों को मानो सामूहिक स्नान के रूप में सुरक्षात्मक औषधियों के झीने गैस गुब्बार से गुजारा जाता हैं। अमेरिकी वैज्ञानिक इस प्रयोग से अर्द्धसहमत हैं और शेष अर्द्धांश पर असहमति प्रकट करते हैं। उनका तर्क है कि ऐसी अवरोधक औषधियाँ इन्जेक्शन के रूप में दी जाने पर एक प्रभाव रखती हैं, और उपरोक्त प्रकार से गैस-स्नान दिये जाने पर भिन्न ही प्रभाव दिखा सकती हैं। फिर, यह भी तो निश्चित नहीं कहा गया कि उस गुब्बारे में से सैन्य-टुकड़ी को रेंग कर, चल कर, ठहर-ठहर कर या दौड़ा कर गुजारा जाए। उनके ठहरने की अवधि पर भी तो बहुत कुछ निर्भर रहेगा। अतः इसका निर्धारण हो जाने तक वे इसे इन्जेक्शन रूप में ही देने के पक्ष में हैं।

इनके अतिरिक्त कुछेक ऐसे पोर्टेबुल यंत्र भी तैयार किये जा रहे हैं, जो कैमरे की भांति गले में लटकाये जा सकते हैं। इनमें अवरक्त किरणों का प्रयोग मुख्यतः होता है। दीर्घगामी अवरक्त-रश्मि युक्त ऐसे यन्त्र को संक्षिप्त नाम-लोपेयर दिया गया है। वायुमण्डल में विषाक्त गैसों की तो बात दूर, नित्य ही छाये रहनेवाले धुन्ध, धुयें और रोगप्रसारक धूल तक की उपस्थिति, यह यन्त्र एक सूचक प्रकाश तथा ध्वनि-संकेत देकर बता देता है।

एक और, नया प्रयोग है जिबेरेलीन का। यह संश्लेषित पदार्थ पेड़-पौधों के फैलाव को नियंत्रित करता है। वैज्ञानिकों ने इसे और भी तीव्र करके वह सामर्थ्य दे दी है जो जिस पेड़ पर इसकी नजर पड़ जाए (शिव के तृतीय नेत्र की भांति) वह पत्रहीन होकर उड़ जाए-मानो कपड़े-लत्ते ही छिना बैठा। इसके वृहत् उपयोग से जंगल के जंगल छते पत्रहरण (चीरहरण ही तो) किया जा सकता है। छिप कर हमला करनेवाले गुरिल्ला छापामारों और घुसपैठियों को इसके अतिरिक्त और किस संवाद से सबसे बड़ा सदमा पहुँच सकता है ?

यह है रसायन युद्धक्षेत्र में हमारा शत्रु और हमारा मित्र भी !

पृष्ठ ६ का शेषांश

है जो शायद ही कभी खत्म होगी। ऐसी दशा में यदि संसार भर में सक्रिय लगभग ७०० तेल शोधन कारखाने इसी विधि से प्रोटीन का उत्पादन करने लगें तो संसार की खाद्य समस्या काफी सुलझ जायेगी। यद्यपि खाद्य संकट समाप्त तो नहीं हो पायेगा फिर भी मानव स्वास्थ्य में सुधार हो जायेगा और आंशिक राहत मिल जायेगी।

आशा है भारत के विभिन्न भागों में स्थित तेल शोधक कारखाने भी इसकी ओर ध्यान देगें तथा भारतीय सरकार अन्य देशों की सहायता से पेट्रोलियम से प्रोटीन उत्पादन करने के लिए कदम उठायेगी।

तारपीन का तेल तथा बिरोजा—एक सर्वेक्षण

जिया लाल

परिचय

चीड़ के वन हिमालय और शिवालिक पर्वत के ढलानों पर मुख्यतया हिमालय से निकलने वाली नदियों की घाटियों में ५०० मी० से २५०० मी० ऊँचाई तक पाये जाते हैं जो पूर्व में भूटान से पश्चिम में अफगानिस्तान तक फैले हुए हैं। पूर्वी भाग में चीड़ वन १५०० मी० ऊँचाई तक ही मिलते हैं। चीड़ स्पष्ट सामुदायिक वृक्ष है, अतः प्रत्येक स्थान पर इसके शुद्ध वन मिलते हैं। मैदानी भागों में रोपने पर इसका वृक्ष अपने को पूर्णतया वहाँ की जलवायु के अनुकूल ढाल लेता है। चीड़ के वृक्ष का औद्भिदिक नाम *पाइनस रोक्सबर्घाई* (Pinus roxburghii—सामान्य सरल) है जो भारतवर्ष में मिलने वाली सरल या पाइनस (Pinus) प्रजाति की पाँचों जातियों में सबसे महत्वपूर्ण है। चीड़ का वृक्ष सीधा, विशाल और सुन्दर होता है। इसकी पत्तियाँ सुई सी नुकीली होती हैं जो तीन के गुच्छे में एक बड़े काष्ठ शंकु (cone) से लगी होती हैं। पत्तियों की लम्बाई २५-३० से० मी० तक होती है। अप्रैल-मई में पत्तियाँ गिर जाती हैं और वृक्षों के नीचे सूखी पत्तियों का बिछौना बन जाता है। वर्षा ऋतु में पत्तियाँ गल जाती हैं। फूल बसंत ऋतु में खिलते हैं। फूलों में बड़ी मात्रा में पराग होता है। फलों के परिपाक में लगभग १५ मास लगते हैं और उनसे बीज मुख्यतया ग्रीष्म ऋतु में छिटकते हैं। भूमि पर गिरे हुए बीज अनुकूल परिस्थिति में नई फसल उत्पन्न करते हैं। यदि बनाग्नि पर नियंत्रण कर लिया जाये तो चीड़ की नई फसल स्वतः प्राप्त हो सकती है। बीजों को वांछनीय स्थान पर सीधे अथवा नरसरी में पौध तैयार कर रोपण भी किया जा सकता है।

समुपयोज्य लकड़ी देने की अवस्था तक पहुँचने में चीड़ को ७० से १५० वर्ष तक लग जाते हैं जो अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों पर निर्भर करता है। छाल २५ से ५ से०मी० मोटी होती है। रंग बाहर से भूरा-

लाल और अन्दर से गहरा लाल होता है। काष्ठ साधारण कठोर, रस काष्ठ श्वेत, सारकाष्ठ हल्की लाली लिए हुए भूरी होती है। चीड़ की लकड़ी भवन निर्माण, नौका, पेटियाँ तथा सस्ता उपस्कर बनाने के लिए उपयोग की जाती है।

वृक्ष की महत्व का उपज

चीड़ वृक्ष की मुख्य गौण उपज लीसा है। लीसा एक प्रकार का अक्रिस्टलीय वानस्पतिक उत्पादन है जो जीवित वृक्ष में चीरा लगाने पर स्रावित होता है। लीसा जल में नहीं घुलता पर अधिकांश कार्बनिक विलायकों में घुलने वाला है और आसवन द्वारा इनसे उत्पन्न तैल (Essential oil) प्राप्त होता है। चीड़ के लीसा से जल अथवा वाष्प-आसवन द्वारा तारपीन का तेल और बिरोजा (Rosin) प्राप्त होता है। उत्तर प्रदेश, जम्मू व कश्मीर, पंजाब और हिमालय प्रदेश के पर्वतीय भागों में जहाँ चीड़ के वृक्ष बहुतायत से पाये जाते हैं, लीसा निर्यासन कार्य राज्य सरकार के वन-विभाग द्वारा बड़े पैमाने पर किया जाता है। तारपीन के तेल और बिरोजा की फैक्टरी बरेली, जम्मू, होशियारपुर और नाहन में हैं। बरेली, जम्मू और नाहन के कारखाने राज सरकार द्वारा चलाये जा रहे हैं। होशियारपुर में तारपीन के तेल और बिरोजा के अनेक कारखाने कुटीर पैमाने पर चल रहे हैं। तारपीन का तेल और विरोजा देश का एक महत्वपूर्ण उद्योग है और इस पर अनेकों उद्योग आश्रित हैं।

विभिन्न प्रान्तों में तारपीन तथा लीसा का उत्पादन

प्रान्त	लीसा	तारपीन का तैल
उत्तर प्रदेश (बरेली)	२२२.८ लाख कि० ग्रा०	२७.०० लाख लिटर
जम्मू व काश्मीर	५५.७ ,, ,,	४.५० ,, ,,
पंजाब	५५.७ ,, ,,	१३.५० ,, ,,
हिमांचल प्रदेश	३७.१ ,, ,,	४.५० ,, ,,
योग	३७१.३ ,, ,,	४६.५० ,, ,,

बिरोजा का अनुमानित उत्पादन—२६० लाख कि० ग्रा० (परिकलित)

च्यावन या निर्यासन (Tapping)

चीड़ वृक्ष से लीसा प्राप्त करने के लिए एक विशेष विधि प्रयोग में लाई जाती है जिसे च्यावन या निर्यासन कहते हैं। इसके अनुसार स्वस्थ एवं पूर्ण विकसित वृक्षों में भूमि से लगभग ३० से०मी० की ऊँचाई से लगभग १० से०मी० चौड़ा, ५ से०मी० गहरा और १५ से०मी० लम्बा चीरा लगाया जाता है। नीचे टीन अथवा जस्ते की एक पतरी वृक्ष में खोंस दी जाती है। पतरी के नीचे लीसा एकत्र करने के लिए टीन का पात्र लटका दिया जाता है। कहीं-कहीं पर मिट्टी के पात्रों का प्रयोग भी किया जाता है। चीरे से लीसा स्वतः स्रावित होकर पतरी पर होता, पात्र में इकट्ठा हो जाता है। एक वृक्ष में आमने-सामने कई चीरे लगाये जाते जाते हैं। हर पन्द्रवें दिन चीरे को ऊपर की ओर लम्बाई में बढ़ाते जाते हैं और इस प्रकार चीरे की लम्बाई १ से डेढ़ मीटर तक पहुँच जाती है। प्रत्येक सप्ताह अथवा दसवें दिन चीरे के ऊपर से २-३ मि०मी० मोटी परत उतार दी जाती है। ऐसा करने से अवरुद्ध लीसा-वाहनियाँ फिर चालू हो जाती हैं और लीसा अधिक समय तक निकलता है। नवीन शोधों से ज्ञात हुआ है कि चीरे में उत्तेजक पदार्थ फुहारने से स्राव अवधि बढ़ती है तथा लीसा के उत्पादन में वृद्धि होती है। गंधकाम्ल, शोरे का अम्ल, नमकाम्ल तथा तारपीन का तैल मुख्य उत्तेजक पदार्थ हैं। एक मौसम में एक वृक्ष से लगभग ४-५ किलोग्राम लीसा प्राप्त होता है।

लीसा के शुद्धिकरण और आसवन द्वारा तैल और विरोजा प्राप्त करना

उत्तम बिरोजा प्राप्त करने के लिए जल अथवा वाष्प आसवन से पूर्व लीसे को स्वच्छ किया जाता है। स्वच्छ करने की सरल विधि में लीसे को परोक्ष ताप द्वारा गर्म करके पिघलाया जाता है और मथने पर कूड़ा-कर्कट जैसे वृक्ष की छाल, पत्तियाँ, धूल-मिट्टी, कीड़े मकोड़े आदि तली में बैठ जाते हैं। निचली तह को छोड़ कर शेष लीसा को निथार कर पात्र से अलग कर लिया जाता है। निथरे हुए भाग में तारपीन का तेल मिला कर उसे इतना पतला कर लिया जाता है कि वह सरलता से छाना जा सके। छने हुए भाग को आसवन संयंत्र में पहुँचा दिया जाता है। संयंत्र के दो भाग होते हैं, संघनित्र

(Condenser) और आसोत्र (Still) जो ग्रीवा द्वारा जुड़े रहते हैं। आसोत्र में लीसा डाल कर उसका भीतर और बाहर से वाष्पीकरण किया जाता है। आसोत्र दुहरी सतह का बना होता है। तारपीन का तैल वाष्प उड़नशील होने के कारण भाप के साथ ऊपर आता है और संघनित्र द्वारा संघनित कर लिया जाता है तथा ग्राही पात्र में एकत्र होता रहता है। तत्पश्चात् जल से तैल निथार कर अलग कर लिया जाता है। अवशिष्ट पदार्थ *बिरोजा* कहलाता है। इसे प्राप्त करने के लिए पहले इसमें विद्यमान जल को निकाला जाता है। ऐसा करने के लिए आसोत्र के बाहरी भाग में वाष्पीकरण किया जाता है। जब बिरोजा जलरहित हो जाता है तो उसे पिघली हुई अवस्था में आसोत्र से निकाल कर पेटियों में भर लिया जाता है। बड़े पैमाने पर स्थापित आधुनिक फैक्टरियों में लीसा शोधन, आसवन से तेल तथा बिरोजा निकालना, अविच्छिन्न प्रक्रिया द्वारा किया जाता है।

तारपीन के तेल और बिरोजा का श्रेणीकरण

तेल एवं बिरोजा को बाजार में पहुँचाने से पूर्व श्रेणीकरण किया जाता है। तारपीन का तेल बाजार में परिशोधित, प्रथम एवं द्वितीय श्रेणी में तथा बिरोजा १२, 'एक्स', 'डब्ल्यू डब्ल्यू' 'डब्ल्यू जी', 'एन', 'एम', 'के', 'आई', 'एच', 'जी', 'एफ', 'इ' और डी श्रेणियों में मिलता है। तेल का श्रेणीकरण न्यून्यन आसवन संयंत्र में प्रभाजी आसवन द्वारा किया जाता है। बिरोजे का श्रेणीकरण मुख्यतया रंग के आधार पर किया जाता है। एक्स से एन, एम से आइ, और एच से डी क्रमशः हल्का पीला, पीलापन लिए हुए लाल और गहरे लाल रंग के होते हैं जो क्रमशः गहरे होते जाते हैं।

रासायनिक संघटन

तारपीन का तेल लीसे का आसवन करके लगभग १५-२० प्रतिशत मात्रा में प्राप्त किया जाता है। तेल का आपेक्षिक घनत्व २० सेण्टीग्रेड पर ०·८७० से ०·८९०, वर्तनांक १·४७० से १·४७८ और प्रकाशीय घूर्णन – १·०° से –५·२° तक होता है। तेल में ३५ से ४५ प्रतिशत एल्फा और बीटा साइनीन, ४५ से ६० प्रतिशत डी-डेल्टा केरेन (d – $\triangle^3$ Carene), ३ से ५ प्रतिशत लांगिफोलीन और २ से ४

प्रतिशत केम्फीन यौगिक रहते हैं। बिरोजा ६५ से ७५ प्रतिशत की मात्रा में प्राप्त किया जाता है और तेल निस्सारण के पश्चात् लीसे का अवशिष्ट अंश है। बिरोजा अपारदर्शं, अल्प-पारदर्शं अथवा पारदर्शं भंगुर ठोस पदार्थ है। इसका रंग हल्का पीला से गहरा लाल अथवा भूरा होता है। बिरोजे का मुख्य यौगिक एबेटिक अम्ल (Abeitic acid) है।

तेल तथा बिरोजे के विविध उपयोग

तारपीन के तेल का उपयोग रंग-रोगन तथा वार्निश उद्योग में बहुत होता है। बूट पालिस तथा धातु-उद्योग में भी तारपीन के तेल का प्रयोग द्रावक के लिए किया जाता है। परिशोधित तेल का औषधि तथा औषधि निर्माण में भी उपयोग किया जाता है। लीसे से कूड़ा-कर्कट दूर करने के लिए उसे तारपीन के तेल में घोल कर छाना जाता है, इस प्रकार तारपीन का तेल एवं बिरोजा उद्योग स्वयं तेल का प्रयोग करता है। इससे निस्संक्रामक अनेक रसायन भी बनाये जाते हैं। छापे की स्याही, साबुन उद्योग तथा कपड़ों की धुलाई में भी तारपीन के तेल का उपयोग होता है। तारपीन के तेल की भाँति विरोजा भी औद्योगिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। साबुन, कागज रंग-रोगन तथा वार्निश उद्योग में बिरोजा का बहुत उपयोग किया जाता है। वस्त्र-उद्योग, वस्त्रों में माँड़ी, लाख तथा स्याही बनाने में बिरोजा प्रयुक्त किया जाता है। लिनोलियम तथा अन्य प्रकार के फर्श बिछावनों में भी बिरोजा का प्रयोग किया जाता है। इनके अतिरिक्त टाँका लगाने, वाद्य यन्त्रों के गज तथा मशीनों के पट्टों में सान लगाने में भी इसका प्रयोग किया जाता है। तेल की भाँति बिरोजा से भी निस्संक्रामक बनाये जाते हैं।

तारपीन का तेल तथा बिरोजा उद्योग देश में कुछ फैक्टरियों को छोड़कर सुव्यवस्थित ढंग से चल रहा है। वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उत्पादन भी पर्याप्त है लेकिन भविष्य में कठिनाई की आशंका अवश्य है जिसका मुख्य कारण आवश्यकताओं में वृद्धि तथा पूर्णतया वनोपज होने के कारण कच्चे माल मिलने में अस्थिरता है। साथ ही तेल तथा बिरोजा के दिन प्रति दिन नये उपयोग निकल रहे हैं। अतएव लीसे की उपज में वृद्धि के लिए निर्यासन विधि में सुधार अपेक्षित है जिससे वृक्ष को कम से कम क्षति पहुँचे तथा अधिक से अधिक लीसा प्राप्त हो और वृक्ष की आयु में वृद्धि हो, उत्तेजक पदार्थों का प्रयोग

करके अधिक उत्पादन लिया जाय और भविष्य की आवश्यकताओं का सही-सही अनुमान लगा कर चीड़ के नये बन लगाये जायें। चीड़ की अनुपयोगी लकड़ी से चीड़ तेल और काष्ठ बिरोजा उद्योग भी आरम्भ किए जाने चाहिए।

सन्दर्भ सूची

१. ए मैनुअल आफ इण्डियन ट्रीज, जे० एस० गैम्बल, पृष्ठ ७०६-७०८

२. इण्डियन आयल एण्ड सोप जर्नल, जून १९६४, पृष्ठ २८५-२९०

अपेक्षित सापेक्षवाद

सोमनाथ

डा० आइन्स्टीन का सापेक्षवाद भ्रमात्मक है क्योंकि उसमें वस्तु के विषय में "स्पेस" शब्द को दिशात्मक दृष्टिकोण वाले "दिक्" अर्थ के बजाय "स्थान" के आशय में प्रयोग किया गया है। "स्पेस" का शब्दार्थ चाहे कुछ भी हो किन्तु ब्रह्माण्ड-विज्ञान के संदर्भ में "स्पेस" का आशय वस्तु के दिकात्मक व्यवहार से है न कि स्थानात्मक व्यवहार से। "दिक" स्थानात्मक न होकर दिशात्मक ज्ञान है। 'स्थान" तो वस्तु का परिमाणात्मक स्वरूप है जो कि मात्रा का परिमाण होता है। स्थान चाहे शून्य अथवा रिक्त हो अथवा अन्यतम ही हो, सदा ही परिमाणात्मक होता है।

अतएव, "दिक्" को जो कि दिशात्मक है, यदि हम स्थानात्मक अर्थात् परिमाणात्मक मानकर चलते हैं तो हमारे भौतिक-विज्ञान के सभी परिणामों का व्यवहार अन्यतम प्रकार से वस्तु का परिमाणात्मक प्रभाव ही सिद्ध होगा। इसी प्रकार गति, वेग, इत्यादि भी पदार्थ का परिमाणात्मक स्वरूप ही है एवं कोई भी आकार, चाहे वह रेखात्मक हो अथवा वृत्तात्मक हो, सदा ही परिमाणात्मक होता है। व्यवहारिक तौर पर वास्तविक रेखाओं को हम मापते भी उन्हीं मानदण्डों से हैं जिनसे कि अंततः परिमाणात्मक व्यवहार का संबंध ही स्पष्टतया पुष्ट होता है। वेग के विषय में यदि यह कहा जाता है कि इतने मील प्रति घंटा, तो यहाँ मील प्रति घंटा अथवा घंटा प्रति मील की अनुभूति में वस्तु-इकाई के गुणात्मक परिमाण प्रति घंटा जैसी ही उत्पत्ति का व्यवहारिक स्पष्टीकरण होता है एवं वस्तु की दिशात्मक दिक का कालात्मक व्यवहार अछूता ही रहता है। "स्पेस-इंटरवल" अथवा दिकात्मक-दूरी तो वह है जो उन अंशात्मक मानदण्डों से सम्बन्धित होती है जिनका आशय दिशात्मक-कोण के व्यवहार से है।

$E = mc^2$ सूत्र से c^2 सम्बन्धित m के विषय में दी हुई मात्रा के परिमाण का परिवर्तन सर्वथा असिद्ध ही है, क्योंकि E संदर्भ से ऊर्जा

का परिमाण एवं mc^2 संदर्भ से ऊर्जा का परिमाण परिवर्तित रूपाकार से स्थिर ही सिद्ध होता है और मात्रा वह है जो कि उसका परिमाण होता है, अथवा परिमाण वह है जो कि उसकी मात्रा का पहलू है। परिमाण, चाहे वह E रूपाकार हो अथवा m रूपाकार हो, सदा ही सुस्थिर एवं अपरिवर्तित रहता है जैसा कि प्रस्तुत सूत्र के उभय-पक्षीय इकाइयों के अंकों से परिणाम की समानता से स्पष्ट है। अर्थात्, ऊर्जा एवं m परिभाषा वाली वस्तु द्रव्य नहीं, द्रव्य तो वह है जो उसका मात्रात्मक परिमाण होता है। ऊर्जा एवं m रूपाकार वस्तुएँ द्रव्य नहीं, वे तो द्रव्य अर्थात् मात्रा के रूप हैं; ठीक उसी प्रकार जैसे कि घन, द्रव, गैस, इत्यादि मात्रात्मक द्रव्य के अन्य रूप हैं। यदि मात्रात्मक परिमाण स्थिर है, जैसा कि उपरोक्त से स्पष्ट है तो इसका अर्थ यह हुआ कि द्रव्य की मात्रा सदा स्थिर एवं अपरिवर्तनशील है। परिवर्तनशील तो केवल वह है जो कि द्रव्य का रूपाकार होता है अतएव, $E = mc^2$ सूत्र का सम्बन्ध द्रव्य की मात्रा से न होकर द्रव्य के रूप से होना स्पष्ट होता है। रूप, केवल रूप जो संयोग-वियोग सम्बन्ध से संघटनशील है, परिवर्तनशील है, *और जो परिवर्तित होता है वह तो स्थिर रहता है।*

डा० आइंस्टीन महोदय के दिक-काल सम्बन्धित सापेक्ष-सिद्धान्त की एक आधारभूत धारणा यह है कि दिक् सर्वथा एक-समान होता है, अर्थात् "होमोजीनस" है जबकि दिक् कदापि एक-समान नहीं होता और जो जहाँ एक समान होता है वह वहीं असमान भी अवश्य होता है क्योंकि वास्तव में समानता के प्रति असमानता अथवा असमानता के प्रति समानता ही सापेक्ष है। अर्थात् सापेक्षता तो वह है जो समानता-असमानता से अपेक्षित है। समानता एवं असमानता सदा ही सर्वत्र सहगामिनी हैं। समानता में अपेक्षित असमानता एवं असमानता में अपेक्षित समानता स्वभावतया निहित है। अत: एक वस्तु एक दिकात्मक दिशा में यदि समान है तो दूसरी दिकात्मक दिशा के दृष्टिकोण से वही वस्तु उसी समय सर्वथा असमान है। यही वह भेद है जिससे दाँए-बाँए पेंचों वाले सिद्धान्त का स्पष्टीकरण होता है। दिक् वास्तव में समानात्मक प्रभाव वाली कदापि नहीं होती है। अ ब के समानान्तर व परिमाण अ' दिक् से यदि क ख रूपाकार है तो वही व परिमाण ब' दिक् से क ख न होकर ख क आकार वाला है।

अ' एवं ब' से अ ब के समानान्तर व परिमाण कहीं भी एक समान सिद्ध नहीं होता है। और व परिमाण की जो स्थिरतामय मात्रा है वह स्थानात्मक है जो कि अपने ही क ख अथवा ख क रूपाकार से स्वतन्त्र है।

जो स्थानात्मक रूपाकार की प्रतीति है वह यदि दिकात्मक नहीं है तो फिर वह क्या है ? वह जो परिमाणात्मक स्थानाकार है वह मात्रात्मक द्रव्य के सूक्ष्मतम रूपहीन कणों के संघातात्मक रूप का परिणाम नहीं है; वह तो मात्रात्मक द्रव्य के संघातशील कणों की संख्या का प्रभाव है और व्यवहारिक तौर पर वास्तव में हम रूपहीन कणों की संख्या के प्रभावात्मक परिमाणस्वरूप को मापते भी संख्यात्मक अंकों के संदर्भ में हैं। दिक् उस संख्या से स्वतन्त्र है। दिक् को संख्यात्मक दृष्टिकोण से स्पष्ट नहीं किया जा सकता, दिक् का विचार तो उस अंशात्मक अंक का पहलू है, जो १८०° की सरलता-वक्रता से सम्बन्धित है। (इस सम्बन्धी विचार को त्रिसरेणु-प्रभाव के स्पष्टीकरण के संदर्भ में अन्यत्र किया जावेगा।)

यदि रेखात्मक दूरी परिमाणात्मक है जैसा कि स्पष्ट है और जिसका परिमाण संख्यात्मक इकाई का गुणात्मक सम्बन्ध से है अर्थात् गुणन-फलस्वरूप है, तब तो यह भी सिद्ध है कि दिक् गत्यात्मक गुण वाला नहीं होता। दिक् विषयक अन्यान्य गुणों का विचार करने पर—(जो कि अन्यत्र किया जावेगा)—यह भी स्पष्ट है कि दिक् विभु परिमाणमय है एवं उसे रेखात्मक विचार के अनुसार काटा-छाँटा अथवा विभागीय नहीं बनाया जा सकता है। अर्थात् दिक् कोई ऐसा आधार नहीं है जो गतिशील वस्तुओं को स्थानात्मक मार्ग प्रदान करता हो (क्योंकि दिक् तो दिशा प्रदान करता है न कि स्थान।) वास्तव में "ट्रांजीटिविटी" दिक् का गुण नहीं है। "ट्रांजीटिविटी" तो अंततः गति का परिमाणात्मक सम्बन्ध ही है जो दिक् से स्वतन्त्र है। अतः "को-आर्डीनेट्स" के अन्तर्गत दिक् को काल के साथ वस्तु का परिमाणात्मक आधार मानना ठीक नहीं। काल तो परिणाम के साथ वस्तु का आधार है। अतः यदि ब स कालात्मक आधार है तो अ ब दिकात्मक आधार न होकर
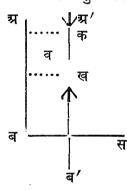
वस्तुतः वस्तु का परिमाणात्मक आधार ही है। दिकात्मक विचार तो वह है जिसके कारण विपरीत दिशाओं में परिवर्तनशील रूपाकारों के को-आर्डीनेट्स भिन्नतापूर्ण होवे हैं।

रेखा की सरलता विषयक परिभाषा भी भ्रमात्मक ही है। वैज्ञानिक लोग भी यही समझाते एवं समझते हैं कि दो बिन्दुओं की लघुतम अथवा "अपेक्षतया" लघुतम दूरी सरल होती है। ऐसा विचार अनुचित है। त्रिसरेणु-सिद्धान्त से सरलता की यह परिभाषा अनुपयुक्त है। रेखा की सरलता का सम्बन्ध दो बिन्दुओं के बीच की दूरी के परिमाण से नहीं अपितु तीन बिन्दुओं की दिशात्मक दिक् की अपेक्षित असमानता के प्रति समानता का व्यवधान है। जब परस्पर विपरीत स्वभाव वाली दिशाओं में तीन बिन्दु दिशात्मक समानता प्रदर्शित करते हैं तो रेखा सरल होती है। और अपेक्षित समानता के प्रति तीन बिन्दुओं की दिशात्मक दिक् असमानता वक्रता है। समानता-असमानता की भाँति ही सरलता-वक्रता भी अपेक्षित होती है एवं सह-गामिनी तथा सहवासिनी अर्थात् समवाय-सम्बन्धमय होती है। यहीं पर अपर गुण की सापेक्षता है। रेखा की सरलता एवं वक्रता उसके मात्रात्मक परिमाण से स्वतन्त्र है। सरलता एवं वक्रता दिकात्मक समानता एवं असमानता का प्रभाव है, दूरी त्रिसरेणु परिमाण की गुणयक गणना का प्रभाव है।

अपेक्षित सरलता एवं वक्रता समवाय हैं अतः सरल रेखात्मक गति का एक वक्रतामय समवाय सम्बन्ध भी होना चाहिए। हम देखेंगे कि डा० आइंस्टीन महोदय द्वारा पाइथागोरस सूत्र का प्रयोग, जो कि समकोणीय त्रिभुज की भुजाओं के वर्गों से सम्बन्धित है, उतना सार्वभौमिक एवं औचित्यपूर्ण नहीं है जितना कि उसे ऐसा समझा जाता है क्योंकि वह केवल उन रूपाकारों का ही सम्पादन करता है जिनका अंततः सम्बन्ध समकोण से है और सरलता के प्रति वक्रता के सम्बन्ध का जो कि π सूत्र से व्यक्त होता है, निवारण नहीं करता है।

६ सितम्बर को जिनकी २०० वीं वर्षगाँठ मनाई गई

जान डाल्टन

डा० ओंकार नाथ पर्ती

इस वर्ष वैज्ञानिक-जगत जान डाल्टन के जन्म-दिवस की द्विशताब्दी मना रहा है। यह वैज्ञानिक रसायन शास्त्र में परमाणुवाद सिद्धान्त के जन्मदाता माने जाते हैं। वास्तव में यह सिद्धान्त तो अत्यन्त प्राचीन है किन्तु इसको आधुनिक रूप में रसायन में लाने का श्रेय जान डाल्टन को ही दिया जाता है।

इस अंगरेज वैज्ञानिक का जीवन विरोधात्मक तत्वों से भरा है। रासायनिक परमाणुवाद सिद्धान्त की महत्ता को यदि सामने रखें तो ऐसा जान पड़ेगा कि हम एक महान एवम् प्रतिभावान वैज्ञानिक की बात करेंगे। वास्तव में डाल्टन न तो रसायनज्ञ सर हम्फ्रे डेवी की भाँति एक जाना-माना हुआ प्रतिभावान व्यक्ति था और न उसमें फैराडे के समान प्रयोगात्मक कौशल ही था। उनके परमाणुवाद सिद्धान्त के विषय में भी इटली की यह कहावत चरितार्थ होती है कि "जाल बुनना प्रारम्भ करने पर भगवान धागा देता है।" डाल्टन ने रासायनिक परमाणुवाद का प्रतिपादन तो किया किन्तु इस सिद्धान्त की पुष्टि एवम् विस्तार डाल्टन के प्रयोगों द्वारा न होकर अन्य वैज्ञानिकों के शोध कार्य से ही हुई।

जान डाल्टन का जन्म ६ सितम्बर १७६६ में कम्बरलैंड के गरीब जुलाहे के घर हुआ था। इनका शैशव काल छोटा सा ही था और इंगल्स फील्ड नामक गाँव में बीता। क्वेकर होने के नाते इनकी प्रारम्भिक शिक्षा कुछ अच्छी ही हुई किन्तु बारह वर्ष की आयु में ही इन्होंने जीवकोपार्जन के लिये, गाँव वालों की अनुमति से, एक झोपड़े में अपना ही स्कूल खोल दिया। इनके बड़े भाई जोनाथन केन्डल में

अपना स्कूल चलाते थे। जान की रुचि अध्यापन कार्य में देखकर उन्होंने उसे भी अपने स्कूल में बुला लिया। केन्डल में डाल्टन ने लगभग दस वर्ष तक अध्यापन कार्य किया। इस बीच इनकी मित्रता जान गाड नामक एक अन्धे दार्शनिक से हो गई। गाड के कहने पर १७९३ में जान डाल्टन को न्यू कालेज मैनचेस्टर में गणित तथा विज्ञान के अध्यापन का कार्य मिला। मृत्यु पर्यन्त जान डाल्टन मैनचेस्टर में ही रहे।

उन्हें रसायन से विशेष प्रेम न था। वास्तव में उनकी रुचि तो मौसम विषयक शास्त्र में थी। जीवन भर वह प्रतिदिन मौसम का हाल अपनी डायरियों में लिखते रहे। अन्तिम बार उन्होंने २६ जुलाई, १८४४ को मौसम का हाल लिखा था। काँपते हाथों से उन्होंने ताप तथा दाब के माप को डायरी में लिखा। हाथ काँप जाने से "किंचित वर्षा" के कालम में रोशनाई का एक धब्बा पड़ गया। दूसरे दिन ही उनकी मृत्यु हो गई थी।

१७९३ में उनकी मौसम सम्बन्धी पुस्तक "मिटिरिओलौजिकल आबजरवेसन्स एण्ड ऐस्सेज" प्रकाशित हुई। उस समय किसी ने इस पुस्तक पर ध्यान भी न दिया किन्तु वास्तव में इसके अध्ययन से थोड़ा-बहुत आभास उनके आने वाले परमाणुवाद सिद्धान्त का भी मिलता है। इस पुस्तक में उन्होंने इस समस्या पर विचार किया है कि वायुमंडल में जल-वाष्प के कण किस रूप में रहते हैं। कुछ वैज्ञानिकों के मतानुसार इस समस्या का अध्ययन करते हुए ही डाल्टन परमाणुवाद तक पहुँचा था।

डाल्टन को हम ऐसा होनहार व्यक्ति नहीं कह सकते कि जिसके प्रारम्भिक शोध-कार्य में ही उसकी प्रतिभा का आभास मिल जाये। उसका प्रथम किंचित महत्वपूर्ण लेख, नेत्रों के उस रोग के विषय में है जिसके कारण मनुष्य रंगों में भेद नहीं कर पाता है। डाल्टन स्वयं इस रोग से पीड़ित था। एक दूसरे शोध लेख में डाल्टन ने सोतों के विषय में अपने विचार व्यक्त किये हैं। उनका कथन था कि सोतों का उद्गम भूगर्भ में एकत्रित वर्षा का जल ही है। इसके बाद ही उनका सुप्रसिद्ध गैसों के दबाव विषयक विचारों का प्रकाशन हुआ। उन्होंने सिद्ध किया कि गैस मिश्रण का दबाव, अवयवी गैसों के दबाव का योग होता है। यह खोज संसार में डाल्टन के 'आंशिक दबाव नियम" के नाम से प्रसिद्ध है। लगभग इसी समय डाल्टन ने ताप-जनित गैस प्रसरण नियम भी खोज लिया था। वैज्ञानिक जगत में यह चार्ल्स का नियम कहलाता है। फ्रैंक ग्रीनावे के मतानुसार ऐसा होना

डाल्टन के प्रति अन्याय है क्योंकि डाल्टन का लेख चार्ल्स के लेख से पहले प्रकाशित हुआ था।

डाल्टन की विश्व-ख्याति उनके द्वारा प्रतिपादित रासायनिक परमाणुवाद सिद्धान्त के कारण है। संक्षेप में यह सिद्धान्त इस प्रकार है :—

"रासायनिक तत्व सूक्ष्म परमाणुओं से बने हैं तथा रासायनिक यौगिक इन्हीं परमाणुओं के साधारण अनुपात में मिलने से बनते हैं।"

यह कहना अत्यन्त कठिन है कि किस विशेष विचारधारा पर चलते हुये डाल्टन इस सिद्धान्त पर पहुँचा। डब्लू० सी० हेनरी का विचार था कि डाल्टन इस सिद्धान्त पर रिक्टर के तुल्यांक भारों का अध्ययन करने पर पहुँचा। रॉस्को के मतानुसार गैस मिश्रण का अध्ययन डाल्टन को इस ओर ले गया। ए० एन० मेल्ड्रम डाल्टन द्वारा विभिन्न नाइट्रोजन ऑक्साइड के विश्लेषण को महत्वपूर्ण मानता है। आधुनिक काल में एल० के० नैश ने डाल्टन द्वारा गैसों की घुलनशीलता के अध्ययन को मुख्य माना है। हाल ही में ग्रीनावे ने अपने विचार व्यक्त किये हैं। उनका कथन है कि डाल्टन द्वारा जल के अवयवों का अध्ययन तथा यह ज्ञान कि उसके अवयवों का परमाणु भार ज्ञात किया जा सकता है, परमाणुवाद सिद्धान्त की खोज में मुख्य रूप से सहायक था। ज्ञात सत्य यह है कि २१ अक्तूबर, १८०३ को डाल्टन ने मैनचेस्टर लिटरेरी एण्ड फिलॉसॉफिकल सोसाइटी के समक्ष गैसों की घुलनशीलता के विषय में एक लेख पढ़ा था। इसी के दौरान में उसने परमाणुवाद विचारधारा का प्रतिपादन किया। १८०७ में थामसन की 'सिस्टम आफ कैमिस्ट्री' प्रकाशित हुई जिसमें उन्होंने डाल्टन के साथ १८०४ में हुई परमाणुवाद सम्बन्धी वार्ता का वर्णन किया है। डाल्टन की पुस्तक 'न्यू सिस्टम्स आफ केमिकल फिलॉसफी' १८०८ में छपी। इसके अन्तिम अध्याय में रासायनिक क्रियाओं के अध्ययन के रूप में परमाणुवाद सिद्धान्त का वर्णन है। दो वर्ष पश्चात इस पुस्तक का दूसरा भाग प्रकाशित हुआ किन्तु तब तक परमाणुवाद सिद्धान्त का दूसरे शोधकर्ता खुल कर प्रयोग करने लगे थे और डाल्टन ने इस दिशा में कोई अन्य मौलिक विचार नहीं दिये। डाल्टन के मूल सिद्धान्त, परमाणु रासायनिक क्रियाओं की इकाई है, का प्रयोग विश्लेषणात्मक रसायन के क्षेत्र में जम कर हुआ। यह एक ऐसा क्षेत्र था कि जिसमें स्वयं डाल्टन को कभी भी विशेष मान्यता

नहीं मिली।

डाल्टन कहा करता था कि विवाह नामक विलासिता के लिये उसके पास समय नहीं है। वह जीवन पर्यन्त क्वाँरा ही रहा।

उसका जीवन सादा और आध्यात्मिक था। केवल हर बृहस्पतिवार को वह, डाग एण्ड पैट्रिज नामक सराय में बोल्स के खेल से अपना मनोरंजन करता था।

वह न तो प्रभावशाली वक्ता था और न सुचारु रूप से अधिक लिख ही सकता था। कदाचित् इसी कारण लोग कहते थे कि उसे पुस्तकों से घृणा थी। वास्तव में अपने प्रारम्भिक जीवन में उसे पुस्तकें उपलब्ध ही न थीं और जब मिलीं उसने उसका गहन अध्ययन किया।

वह क्वेकर मतावलम्बी था और धर्म के नियमों का पालन करता था। जब लार्ड ब्राहम उसे इंगलैंड के सम्राट से मिलाना चाहते थे तो एक समस्या खड़ी हो गई। राजा से भेंट करने के लिये दरबारी वस्त्र धारण करके जाने का नियम था। इस वेष भूषा में तलवार का लगाना अनिवार्य था किन्तु क्वेकर होने के नाते डाल्टन ने कोई भी हथियार लेकर चलने से इन्कार कर दिया। मित्रों के सुझाव पर यह तय पाया गया कि वह ऑक्सफोर्ड की डाक्टर उपाधि का गाउन धारण कर सकता है। जब वह गाउन पहिन कर तैयार हुआ तो किसी ने कटाक्ष किया कि क्वेकर लोगों को इस तरह का चटक लाल रंग का वस्त्र पहिनना शोभा नहीं देता। डाल्टन रंग भेद हीनता का रोगी था। उसने तुरन्त उत्तर दिया कि मेरे गाउन का रंग तो प्राकृतिक पत्तियों जैसा हरा है और आगे बढ़कर सम्राट विलियम चतुर्थ के दरबार में पहुँच गया।

जीवन के अन्तिम वर्षों में डाल्टन को बहुत सम्मान प्राप्त हुआ। ५६ वर्ष की आयु में वह रायल सोसाइटी का फेलो निर्वाचित हुआ। १८३२ में आक्सफोर्ड ने उसे डाक्टर आफ लाज की उपाधि से विभूषित किया। दो वर्ष बाद ही उसे सरकार की ओर से पेन्शन भी दी जाने लगी। उसके मित्रों तथा प्रदर्शकों ने २००० पौंड एकत्रित करके सर फ्रैंसिल शैन्ट्री द्वारा उसकी एक प्रस्तर प्रतिमा भी बनवाई।

७८ वर्ष की आयु में डाल्टन की मृत्यु हुई। उसका जनाजा बड़ी धूम धाम से निकाला गया। साथी क्वेकरों ने इस "झूठे सम्मान" की भर्त्सना भी की किन्तु लोग न माने। ४०,००० व्यक्तियों ने जनाजे का साथ दिया। इस प्रकार इस सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक का अन्त हुआ।

१. सात दिन में चन्द्रमा की वापसी-यात्रा

१९६९ का वर्ष समाप्त होने के पूर्व किसी समय, यदि कोई अप्रत्याशित बाधा या अड़चन न पड़ी, दो अमेरिकियों और चन्द्रमा का परस्पर साक्षात्कार हो जाएगा।

इस साक्षात्कार के तीन दिन पूर्व ये अमेरिकी पृथ्वी से अपनी यात्रा पर रवाना होंगे और चन्द्रमा के धरातल पर लगभग २४ घण्टे ठहरने के उपरान्त, वे वहाँ से प्रस्थान करेंगे, चन्द्रमा की परिक्रमा कर रहे तीसरे अमेरिकी अन्तरिक्ष-यात्री से आ मिलेंगे और तीन दिन बाद पृथ्वी पर वापस लौट आएँगे।

जिस सैटर्न-अपोलो अन्तरिक्ष-यान का उपयोग वे इस यात्रा के लिए करेंगे, उसमें तीन हिस्से होंगे : कमाण्ड-खण्ड; जिसमें अन्तरिक्ष-यात्री रहेंगे; सर्विस खण्ड, जिसमें मुख्य राकेट-इंजनों के अलावा नाना प्रकार के उपकरण और यन्त्र होंगे; और चन्द्रमा पर अन्वेषण करने वाला (लेम) जिस पर सवार होकर दो अन्तरिक्ष-यात्री चन्द्रमा की सतह पर उतरेंगे।

यद्यपि, इस महान अन्तरिक्ष-यात्रा की योजना अभी अन्तिम रूप से तैयार नहीं हो पाई है परन्तु 'प्रोजेक्ट-अपोलो' के आयोजनकर्ताओं ने इसकी जो रूपरेखा निर्धारित की है, वह इस प्रकार है :

विद्युदणु गणक-यन्त्र द्वारा नियन्त्रित अन्तिम गणना की समाप्ति पर चन्द्र-राकेट के ५ प्रथम खण्डीय राकेट के इंजन दाग दिए जाएँगे। दागने की क्रिया सम्पन्न होते ही राकेट इंजन इतने तीव्र वेग से सक्रिय हो उठेंगे जैसे एक ज्वालामुखी फट पड़ा हो। यह गरजता हुआ ज्वालामुखी रूपी राकेट आरूढ़ अन्तरिक्ष-यान को ७५ लाख पौण्ड की प्रारम्भिक प्रवेग क्षमता प्रदान करेगा।

यद्यपि सुनने में यह अविश्वसनीय प्रतीत होता है परन्तु इस प्रवेग के बल पर ३ हजार टन वजनी अन्तरिक्ष वाहन आसमान की ओर

बिल्कुल सीधा उठेगा और इस समय राकेटों में प्रति सेकेण्ड १५ टन ईंधन जल रहा होगा। यदि इसकी पूँछ से इतनी भयंकर गरज और अग्नि-शिखाएँ न निकलतीं तो ऐसा प्रतीत होता जैसे एक विशालकाय खिलौना-बैलून आसमान की ओर उठा जा रहा है।

१६० सेकेण्ड तक गतिशील रह कर ये राकेट-इंजन अन्तरिक्ष-वाहन को एक वक्राकार पथ पर आरूढ़ कर देंगे। इंजन बंद होने के बाद ही प्रथम खंड अन्तरिक्ष वाहन से अलग हो जाएगा। इस समय तक सैटर्न-अपोलो अन्तरिक्ष-यान ३५ मील की ऊँचाई तक पहुँच चुका होगा और उसकी गति ३५ मील प्रति घंटा होगी।

प्रथम खण्ड के अलग होते ही दूसरे खंड के राकेट दग पड़ेंगे जो ६॥ मिनट तक १० लाख पौण्ड प्रवेग प्रदान करेंगे। इसके बाद दूसरा खंड भी वाहन से अलग हो जाएगा और अपोलो-यान काफी हल्का हो जाएगा। इस समय तक वह ११० मील की ऊँचाई पर होगा और उसकी गति १५,००० मील प्रतिघंटा होगी।

२ लाख पौण्ड प्रवेग प्रदान करने वाला तीसरा राकेट इंजन दो मिनट तक जलेगा तथा यान को ११५ मील ऊँची कक्षा में भेज देगा। इस समय इसकी गति १७,५०० मील प्रति घंटा होगी। इस स्थिति में पृथ्वी की तीन परिक्रमाएँ करने के उपरान्त इस बीच अन्तरिक्ष-यात्री तथा ह्यूस्टन स्थित नियंत्रण केन्द्र आवश्यक गणनाएँ कर सकते हैं कि उन्हें चन्द्रमा की ओर अग्रसर होने के लिए कौन सा मार्ग ग्रहण करना चाहिए—उचित अवसर पर तृतीय खंडीय राकेट पुनः सक्रिय होगा और कुछ मिनट तक जलेगा तथा यान को पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति से मुक्त होने लायक गति (२४,४०० मील प्रति घंटा) प्रदान कर देगा। अन्तरिक्ष-यान का मार्ग ऐसा होगा कि यदि कोई परिवर्तन न किया जाए तो यान चन्द्रमा की परिक्रमा कर पृथ्वी को वापस लौट आएगा। यदि इस समय कोई गड़बड़ी हुई तो भी अन्तरिक्ष-यात्रियों के सही-सलामत पृथ्वी पर लौट आने की काफी सम्भावना है।

चन्द्रमा की कक्षा में स्थापित होने के लिए अन्तरिक्ष-यात्री अपोलो को उल्टी दिशा में मोड़ देंगे जिससे इंजन सामने की ओर हो जाएँ। इस स्थिति में वे इंजनों को ६ मिनट के लिए चालू कर देंगे। इस क्रिया से जब यान की गति घटकर ३,६०० मील प्रतिघंटा रह जाएगी तो यान ८० मील की ऊँचाई पर चन्द्रमा की कक्षा में स्थापित हो

जाएगा।

इसके उपरान्त दो अन्तरिक्ष-यात्री मुख्य-खंड से सरक कर 'लेम' में चले जाएँगे और उसे कमाण्ड सर्विस खंड से अलग कर लेंगे। केवल एक अन्तरिक्ष-यात्री चन्द्रमा की परिक्रमा करने वाले खंड में रह जाएगा। 'लेम' के उतरने के लिए निर्मित विशेष इंजन का उपयोग कर वे अपनी गति को घटाकर ७० मील प्रतिघंटा कर लेंगे। १० मील की ऊँचाई पर वे इंजन को पुनः चालू करेंगे।

चूँकि, अन्तरिक्ष-यान के चालक अपने यान के इंजनों की प्रवैगिक क्षमता को १ हजार पौण्ड से लेकर १०,५०० पौन्ड तक घटाने-बढ़ाने में समर्थ रहेंगे, इसलिए नीचे उतरने की गति पर उनका पूरा नियन्त्रण रहेगा। 'लेम' २०० फुट की ऊँचाई पर मँडराते रहने और आगे-पीछे हटने में समर्थ रहेगा। इससे अन्तरिक्ष यात्रियों को उतरने के लिए उपयुक्त स्थल खोजने में आसानी होगी। धरातल से १५ फुट की ऊँचाई पर इंजन बन्द कर दिया जाएगा और 'लेम' चन्द्रमा के धरातल पर उतर जाएगा।

अन्तरिक्ष-यात्री एक-एक कर 'लैम' से बाहर निकलेंगे, वहाँ के धरातल से नमूने संग्रह करेंगे, वैज्ञानिक प्रयोग करेंगे, चन्द्रमा के धरातल पर अनेक उपकरण रखेंगे तथा एक छोटे से टेलिविजन कैमरे की सहायता से चन्द्रमा के धरातल के चित्र पृथ्वी को प्रसारित करेंगे।

चन्द्रमा पर अपना कार्य पूरा हो जाने पर दोनों अन्तरिक्ष-यात्री चन्द्रमा की परिक्रमा कर रहे अन्तरिक्ष-यान से जा मिलने की तैयारी करेंगे। वे 'लेम' के ऊपर जाने वाले खंड को अलग कर लेंगे, इंजन चालू कर देंगे और निचले खंड को धरातल पर ही छोड़ कर ऊपर उठेंगे। चन्द्रमा के धरातल से ऊपर उठने वाले खंड का भार १०,००० पौन्ड (पृथ्वी के वजन के अनुसार) होगा तथा कम गुरुत्वाकर्षण शक्ति वाले चन्द्रमा के धरातल पर यह भार घट कर मूल भार का केवल १/६ रह जाएगा। चन्द्रमा की परिक्रमा करने वाले अन्तरिक्ष-यान से मिलन के लिए इंजनों को केवल ३,५०० पौण्ड की प्रवैगिक गति उत्पन्न करनी पड़ेगी।

६ मिनट तक इंजन को चालू रख कर वह ३,८०० मील प्रति घंटा की गति प्राप्त कर लेंगे और चन्द्रमा से १० मील की ऊँचाई पर पहुँच जाएँगे। इसके उपरान्त उनकी ऊँचाई बराबर बढ़ती जाएगी और कमाण्ड सर्विस यान की कक्षा की ऊँचाई पा लेने पर वह उसके साथ

अपना संगमन कर लेंगे।

दोनों अन्तरिक्षा-यात्री पुनः मुख्य यान में आ जाएंगे और 'लेम' के शेष खण्ड को यान से अलग कर देंगे। इसके बाद वे मुख्य यान के इंजन को १०० सेकेण्ड तक चलाऐंगे, ५,४०० मील प्रति घण्टा की गति प्राप्त करेंगे ताकि चन्द्रमा की कक्षा से निकल कर पृथ्वी की ओर अग्रसर हो सकें।

पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रवेश करने के १५ मिनट पूर्व अन्तरिक्ष-यात्री कमाण्ड-खण्ड को छोड़कर शेष भाग को अलग कर देंगे तथा कमाण्ड-खण्ड का रुख इस प्रकार बदल देंगे ताकि उसका भोथरा हिस्सा सामने की ओर हो जाए। पृथ्वी से ७० मील की ऊँचाई पर वायु-धाराओं से उनका पहली बार सम्पर्क होगा। इस समय उनकी गति २४,७५० मील प्रति घण्टा होगी।

इस गति से पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रवेश करने का कार्य बहुत खतरनाक और दुष्कर होगा। यदि उनके प्रवेश का कोण बहुत चौड़ा हुआ तो वे पृथ्वी के वायु मण्डल में फिसलते हुए आगे निकल जाएंगे तथा अन्तरिक्ष में विलीन हो जाएँगे और यदि उन्होंने अधिक संकुचित कोण पर वायुमण्डल में प्रवेश किया तो वे एक उल्कापिण्ड की तरह जल कर राख हो जाएँगे।

ठीक कोण से पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रवेश कर वे निरन्तर घने होते हुए वायुमण्डल में प्रवेश करते जाएँगे। इस अवसर पर यान पर चढ़े सुरक्षात्मक खोल के कारण वायु मण्डल के घर्षण से उत्पन्न ६,००० डिग्री फारेनहीट के प्रचण्ड ताप से वे सुरक्षित रहेंगे। वायुमण्डल के अवरोध के फलस्वरूप यान की गति मन्द पड़ती जाएगी। गति मन्द होने पर यान मे लगे पैराशूट खुल जाएँगे और अन्तरिक्ष-यात्री हवाई द्वीप के निकट समुद्र में सकुशल उतर जाएँगे।

२. ताजमहल को सदा के लिए सुरक्षित किया जा सकता है ?

क्या यह संभव है कि ताजमहल जैसे महान ऐतिहासिक स्मारक को सदा के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है ?

एक युवक अमेरिकी वैज्ञानिक के शब्दों में इस प्रश्न का उत्तर है "हाँ।" उसका विचार है कि यह बात कम से कम असंभव नहीं है।

उसने क्षरण को रोकने का एक सनसनीखेज तरीका ढूँढ़ निकाला है, उसने छोटी-छोटी क्षरणीय चीजों पर परीक्षण किए और यह प्रदर्शित कर दिया कि उन परीक्षणों के परिणामस्वरूप आविष्कृत नये तरीके से संगमरमर और चूने के पत्थर दोनों को नष्ट होने से बचाया जा सकता है।

इस वैज्ञानिक का नाम है डा० सेमूल जेड लेबिन। न्यूयार्क इन्स्टिट्यूट ऑफ फाइन आर्ट्स के परिक्षरण विभाग में वे काम करते हैं। उन्होंने एक रंगहीन पानी का घोल निर्मित किया है जिसमें बैरियम और यूरिया मिला हुआ है। इस घोल को यदि संगमरमर या चूने के पत्थर पर पोत दिया जाय तो वह चिरस्थायी हो जायेगा।

डा० लेविन ने बताया कि कला और पुरातत्व क्षेत्र की अनमोल वस्तुओं व इमारतों के रक्षण कार्य में लगे लोग एक लम्बे अरसे से यह महसूस कर रहे थे कि कोई रक्षण का तरीका निकाला जाय अन्यथा विश्व की कलात्मक वस्तुएँ नष्ट हो जायेंगी।

१९६४ में न्यूयार्क टाइम्स ने इसी गंभीर समस्या पर बल देते हुए विश्वव्यापी सर्वेक्षण कराया था। इस सर्वेक्षण में यह पाया गया कि वायु के दूषित होने की वजह से विश्व के अनेक खुले क्षेत्रों में निर्मित प्रस्तर कला कृतियों पर मौसम और समय का तीव्र प्रभाव पड़ रहा है और वे तेजी से नष्ट हो रही हैं।

इस सर्वेक्षण ने जनता का ध्यान इस तथ्य की ओर भी आकृष्ट किया कि कड़ाके की सर्दी से रोमन-फोरम की कलाकृत्तियों का क्षरण हो रहा है और फ्लोरेन्स में स्थिति बहुत ही विनाशकारी हो गई है। सर्वेक्षण से यह भी ज्ञात हुआ कि वेनिस नहर में चलने वाली मोटर-बोटों के धुएँ से भी वहाँ की अनमोल मूर्तियों को अपार क्षति पहुँची है।

सर्वेक्षण में एथेन्स, फ्राँस, लन्दन, ब्रुसेल्स, पश्चिमी जर्मनी, स्पेन आदि स्थानों की प्रस्तर-कलाकृतियों के क्षरण के खतरों तथा उनके कारणों पर प्रकाश डाला गया था।

१९६४ में न्यूयार्क इन्स्टिट्यूट और डा० लेविन ने इस विश्वव्यापी समस्या के समाधान की ओर ध्यान दिया। संस्थान के परीक्षण-केन्द्र में इस विषय में अनुसंधान कार्य शुरू किया गया और यह निर्देश दिया गया कि न केवल प्रस्तर मूर्तियों वरन् भित्ति चित्रों, पेन्टिंग्स तथा धातु, चमड़े और कपड़े की कलाकृतियों के रक्षण-कार्य की

गति को तीव्र किया जाय।

अपनी योजना का प्रारम्भ करते समय डा० लेविन ने पहले रक्षण की बहुत ही मौलिक बात पर ध्यान दिया। इन्स्टिट्यूट के निदेशक श्री क्रेग एच० स्मिथ ने बताया कि हम जानते थे कि विधि कोई भी हो लेकिन उसे ऐसा होना चाहिए जिससे उसका प्रयोग बड़े पैमाने पर किया जा सके और उसे अदक्ष श्रमिक कर भी सके। साथ ही उससे कलाकृति के रंग या उसकी आभा में कोई अंतर न आने पाए और वह ऐसी वस्तु हो जिससे चूने के पत्थर पर किसी भी तत्व का क्षतिकारी प्रभाव न पड़ने पाए।

डा० लेविन ने सबसे पहले सम्पूर्ण विषय का मौलिक अध्ययन किया अर्थात् पत्थर मूल रूप से बनता कैसे है और समय के प्रभावों से वह कैसे मजबूत होता या छीजता है तथा कैसे उसके रंग या उसकी आभा में परिवर्तन आता है।

उन्होंने बताया "हमने सैकड़ों परीक्षण किए। १९६४ के बड़े दिन की छुट्टियों में पहली बार सभी संकलित तथ्यों का एक साथ तुलनात्मक अध्ययन कर पाया। उसके बाद दिसम्बर के अन्तिम दिनों तक हम अपने अंतिम परीक्षण की व्यवस्था कर सके जो लगभग एक महीने तक चलता रहा।"

संस्थान के तहखाने के एक कमरे में डा० लेविन और उनके चार विद्यार्थी सहायकों ने चूने के पत्थर के कई इंच लम्बे टुकड़े लिए और उनमें से प्रत्येक में पौन इंची छेद किए। फिर, इन छेदों में चारकोल के पाउडर और चाक के चूर्णों का मिश्रण भर दिया गया। इसके बाद पत्थर के उन टुकड़ों को बेरियम जल तथा यूरिया के घोल में सिराया गया।

महीने के अन्त में डा० लेविन ने उन टुकड़ों को निकाल कर उनकी जाँच की। उनका कहना है कि छेदों में भरा गया चूर्ण ठोस पत्थर के रूप में बदल गया और ठीक अपने चारों ओर के पत्थर जैसा ही प्रतीत होने लगा। इससे स्पष्ट हो गया कि हमारी यह कल्पना सही थी कि कैल्साइट कणों के समेकन और क्रिस्टलन में द्रव का निश्चय ही एक महत्वपूर्ण योग होता है।

पुनः क्रिस्टलन प्रक्रिया में कणों ने एक दूसरे के साथ मिलने के साथ ही सायुज्यता की एक त्रि-आयामी संरचना की। इससे पत्थर और भी कठोर हो गया और उनके छीजने की संभावना और भी

कम हो गयी। इस प्रक्रिया में पत्थर के रूप-रंग या उसकी आभा में कोई अंतर भी नहीं आया।

क्षरण का प्रमुख कारण यह होता है कि कणीय या दानेदार पत्थर जब लगातार पानी के बहाव के सम्पर्क में आते हैं तो धीरे-धीरे पानी के साथ बहने लगते हैं। लेकिन डा० लेविन के सूत्र के अनुसार पत्थर के ढीले या विलीन होने वाले कण मजबूत और समेकित हो जाते हैं।

डा० लेविन ने यह भी बताया "हमने संग्रहालयों के अनेक बहुत ही भुरभुरे प्रस्तर पदार्थ ठीक किए हैं और वे शिला की भाँति ठोस और पक्के हो गए हैं।" अब उनकी योजना सभी आकारों के प्रस्तर पदार्थों का परीक्षण करने की है।

डा० लेविन के पास अनगिनत पत्र आए हैं। कुछ सरकारी एजेन्सियों के हैं जो ऐतिहासिक स्मारकों को सुरक्षित रखने का उपाय जानना चाहती हैं, कुछ दाँत के डाक्टरों के हैं जो उनके नुसखे से आदमियों के दाँतों को मजबूत बनाने की योजना बना रहे हैं और कुछ भवन-निर्माताओं के हैं जो कांकरीट के ढाँचों को और भी ज्यादा मजबूत और टिकाऊ बनाने में दिलचस्पी रखते हैं।

३. इस्पात और कांच के वस्त्र—

परिधानों के लिए सामग्री के रूप में इस्पात का महत्व पुनः स्थापित होने जा रहा है, परन्तु प्राचीन काल के सामन्तों द्वारा पहने जाने वाले कवच से इसकी कोई तुलना नहीं।

अमेरिका में ऐसी विधियाँ ढूँढ निकाली गयी हैं, जिनके द्वारा स्टेनलेस स्टील को साधित करके ·०००७ मिलीमीटर मोटे रेशे में परिणत किया जा सकता है। इस सामग्री से तैयार वस्त्र मुलायम होते हैं और कई दृष्टियों से सामान्य किस्म के हल्के वस्त्रों से मिलते-जुलते हैं। उनमें कुछ विशेष लाभ निहित हैं। उदाहरण के लिए, वे बहुत ही मजबूत हैं और उन पर स्थिर विद्युत का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

इस समय एक ही बाधा है जिसके कारण इसका प्रयोग व्यापारिक स्तर पर नहीं हो पा रहा है। वह है—इसकी अत्यधिक लागत, जो प्रति पौण्ड ६,००० डालर पड़ती है। किन्तु आशा की जाती है कि यह समस्या शीघ्र ही हल कर ली जायेगी। १९३८ में नाइलोन का आविष्कार होने के बाद, वस्त्रोद्योग में जो चमत्कार सम्भव हुए हैं, उन्हें देखते हुए, यह आशा बलवती प्रतीत होती है। नाइलोन का आविष्कार

करने के सम्बन्ध में अनुसन्धान पर १'१ करोड़ डालर व्यय करने पड़े थे और लगभग ३० वैज्ञानिकों को अधिक परिश्रम करना पड़ा था।

इसके आविष्कार से लोग रसायनों से अन्य वस्तुएँ तैयार करने के सम्बन्ध में सोचने लगे। उसके बाद तो 'पोलीमराइजेशन' के सम्बन्ध में निरन्तर अनुसन्धान होते रहे। 'पोलीमराइजेशन' की प्रक्रिया के अन्तर्गत, अति सूक्ष्म व्यूहाणुओं को इस प्रकार संयुक्त किया जाता है, जिससे वे बड़ा आकार धारण कर सकें। इससे वस्त्र-उद्योग में ऐसी क्रान्ति उत्पन्न हो गयी, जिसकी कुछ वर्ष पूर्व कल्पना भी नहीं की गयी थी।

आज, प्राकृतिक रेशों—रुई, रेशम, पटसन, ऊन—के अतिरिक्त, एक दर्जन से अधिक कृत्रिम रेशों से, जिनमें नाइलोन और रेयन भी सम्मिलित हैं, वस्त्र बनाये जा रहे हैं। इनमें से प्रत्येक को किसी अन्य कृत्रिम या प्राकृतिक रेशे के साथ संयुक्त किया जा सकता है, और प्रत्येक का निर्माण अगणित रूपों में हो सकता है।

कई दृष्टियों से कृत्रिम रेशे अपने उपनाम, 'चमत्कारी रेशों' को चरितार्थ करते हैं। मनुष्यों के शरीर को ढकने के लिए अगणित किस्म के नये और सुधरे परिधानों में इनका प्रयोग हो सकता है। उदाहरण के लिए, कुछ वस्त्र बहुत ही हल्के होते हैं, फिर भी इतने गर्म होते हैं कि ध्रुव प्रदेशों की तीव्र ठंढक में उन्हें पहना जा सकता है। इनके विपरीत, कुछ अन्य वस्त्र बहुत ही भारी हैं किन्तु उनका प्रयोग शीतोष्ण जलवायु में हो सकता है। पुनः कुछ वस्त्र रेशम जैसे मुलायम हैं फिर भी उन्हें मोटे रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

इस तरह के कपड़े अधिक मजबूत और अधिक टिकाऊ होते हैं और उन्हें भूतकाल के वस्त्रों की अपेक्षा साफ-सुथरा रखना बहुत आसान होता है। सभी तरह के परिधानों के लिये ये भिन्न-भिन्न रंगों और बनावट में उपलब्ध होते हैं।

रासायनिक इंजिनियरिंग द्वारा रेशों को निरन्तर संशोधित किया जा रहा है। उदाहरण के लिए, एक नये किस्म का रेयन भीग जाने पर रेयन के संकुचित और कमजोर होने के गुण को कम कर देता है। अभी भी उत्पादकगण नमूने के तौर पर इस रेशे का परीक्षण कर रहे हैं। आशा है कि इस वर्ष बरसात में इसे कारखानों और वस्त्र-विक्रेताओं को दिया जा सकेगा।

नवीनतम नाइलोन ७५० अंश फारेनहाइट तक ताप सह सकता

है। नाइलोन की ताप के प्रति संवेदनशीलता को देखते हुए, यह एक चमत्कार ही प्रतीत होता है। ताप-निरोधक नाइलोन अंतरिक्ष-परिधानों, पैराशूटों, छन्नियों, इस्त्री करने की मेजों और तीव्र गति से चलने वाले टायरों में प्रयुक्त हो सकता है।

उसके साथ मिश्रण के लिए एक नयी किस्म का बहु-संश्लिष्ट पदार्थ विकसित हुआ है। इस मिश्रण से तैयार सूत, स्वेटर और बुने गये कपड़ों में प्रयुक्त होता है और सुन्दर कश्मीरी पश्मीने से मिलता-जुलता है। फिर भी, वह टिकाऊ होता है और धुलाया जा सकता है।

इस प्रकार का रेशा तो केवल पैकेजों और खाद्य-पदार्थों को बाँधने के लिए ही प्रयुक्त हो रहा था, किन्तु शीघ्र ही वस्त्र के रूप में उसके व्यावहारिक लाभ प्रकट हो गये। इसका नाम 'पोली प्रौपीलिन' है। दरियों में प्रयुक्त होने पर यह फर्श पर बिछाने के लिए सस्ता और सुन्दर वस्त्र सिद्ध होता है। मोजे, बनियान, के रूप में यह नाइलोन से अधिक मुलायम और चिकना होता है और गर्मी में अधिक ठण्डा तथा जाड़े में अधिक गर्म होता है।

काँच के नये रेशे अधिक पतले होते हैं और इन्हें तरह-तरह के रंगों में रँगा जा सकता है। शीघ्र ही नवीनतम काँच के रेशों से बनने वाले वस्त्र उपलब्ध होने लगेंगे जिनका प्रयोग नयी-किस्म के टिकाऊ परिधानों में होने लगेगा।

अमेरिका के परिधान निर्माता कपड़ों को अब पका या सेंक लेते हैं, जिससे उनके इस्त्री करने की आवश्यकता नहीं रह जाती हैं। ये 'पके' हुए परिधान, जिन्हें टिकाऊ स्त्री वाले कपड़े कहते हैं, ठीक से धोने के बाद बिल्कुल नये लगते हैं और पहनने में उनमें सिलवटें नहीं पड़तीं।

इस तरह के "टिकाऊ इस्त्री" वाले पहले वस्त्र अमेरिका में १९६४ में बने। वे पुरुषों के पायजामे थे। वे इतने लोकप्रिय हैं, कि आजकल अमेरिका में ५० प्रतिशत पुरुषों और बालकों के पायजामे इसी किस्म के बनने लगे हैं।

इस समय दर्जनों कम्पनियों ने अपनी-अपनी ऐसी विधियाँ विकसित कर ली हैं कि जिनसे नर-नारियों या बच्चों के सभी प्रकार के परिधानों में इस्त्री की आवश्यकता नहीं पड़ती।

यद्यपि 'टिकाऊ इस्त्री' वाले वस्त्रों की लागत सामान्य प्रकार के असाधित वस्त्रों से १ डालर अधिक पड़ती है फिर भी वे अधिक

लोकप्रिय हैं, क्योंकि उनके कारण आगे चलकर इस्त्री करने के खर्च और समय में पर्याप्त बचत होती है।

वस्त्रों के क्षेत्र में एक नवीन वस्तु, वह वस्त्र है, जो पहनने वाले के आकार और चाल-ढाल के अनुरूप फैल सकता है। कुछ वस्त्रों में "स्पैण्डेक्स" लगे होते हैं जो रबर बैण्ड से मिलता जुलता एक कृत्रिम रेशा होता है। जब इन वस्त्रों को पहनने वाला उतार देता है, तो वे अपने-आप संकुचित होकर असली आकार में आ जाते हैं।

फैलाने और संकुचित होने वाले अन्य सामान मोजे, बनियानें और स्वेटर हैं, जो ताप-संयोजक विधियों द्वारा ऐंठे गये रेशों से तैयार होते हैं। ये वस्त्र पहनने के समय फैल जाते हैं। किन्तु पानी या गर्मी से प्रभावित होने पर वे फिर अपने मौलिक आकार में आ जाते हैं।

कभी-कभी दो वस्त्रों को परतों के रूप में चिपका देने की विधि का प्रयोग करके एक बना दिया जाता है। अब तो किन्ही भी दो वस्तुओं को इस तरह आबद्ध किया जा सकता है, ताकि हल्की से हल्की वस्तु भी भारी बन जाये। अब रेशम, तथा बहुत सी अन्य वस्तुओं को, जिनका प्रयोग पहले भीतरी वस्त्रों के रूप में होता था, इस तरह परतदार बना देते हैं कि उनका प्रयोग पुरुषों और महिलाओं की कमीजों और अन्य बाहरी परिधानों के लिए हो सकता है। इस तरह के बहुत से परतदार वस्त्र अब घरेलू प्रयोग में आने लगे हैं।

४—खोए हुए अणुयंत्र को खोजने वाली अमेरिकी पनडुब्बी : एल्विन

यह एल्विन की कहानी है—उस अप्रसिद्ध पनडुब्बी की कहानी जिसने कुछ समय पूर्व स्पेन के तट से कुछ दूर गहरे समुद्र में खोए हुए एक अणुबम के नाटकीय खोज-अभियान का नेतृत्व किया था।

पनडुब्बी परिवार की इस अप्रसिद्ध सदस्य 'एल्विन' का निर्माण अमेरिकी नौसेना द्वारा विश्व के समुद्रों का वैज्ञानिक अध्ययन करने के उद्देश्य से संचालित समुद्रगर्भीय अनुसन्धान-कार्यक्रम के फलस्वरूप सम्भव हुआ है।

यद्यपि खोज करने की सम्भावना को दृष्टि में रख कर इसकी डिजाइन तैयार नहीं की गई थी, फिर भी भूमध्यसागर के तल से

खोए हुए अणुयंत्र को तलाशने का कठिन कार्य इसे इसकी क्षमता को दृष्टि में रख कर ही सिपुर्द किया गया। यह समुद्र-गर्भ में १॥ मील की गहराई तक पहुँच सकती है तथा समुद्री जीव-जन्तुओं और समुद्र-गर्भ में स्थिति प्राकृतिक साधन-स्रोतों का निरीक्षण करने के लिए २४ घण्टे से भी अधिक समय तक पानी के नीचे रह सकती है।

जैसे ही अधिकारियों को यह सन्देह हो गया कि खोया हुआ अणुयंत्र समुद्र में गिरा है, १४ टन भारवाली यह पनडुब्बी अविलम्ब हवाई जहाज द्वारा अमेरिका से स्पेन लाई गई। समुद्रगर्भ में कई सप्ताह तक लगातार खोज करते रहने के उपरान्त पनडुब्बी के नाविकों को तल में एक ऐसी वस्तु, जिसके साथ पैराशूट जुड़ा हुआ था, दृष्टिगोचर हुई। बाद में इस वस्तु, को समुद्रतल से प्राप्त कर लिया गया और यह पहचान कर ली गई कि यह खोया हुआ अणुयंत्र ही था।

जिस स्थान से खोया हुआ अणुबम प्राप्त किया गया, (२,४६० फुट की गहराई पर) वहां जल का दाब इतना अधिक था कि कोई भी गोताखोर अथवा सामान्य पनडुब्बी उसे सहन नहीं कर सकते थे। अन्य पनडुब्बियों की क्षमता, जो इतना दबाव सहन करने में समर्थ थीं—जैसे ट्रियस्टी'—इतनी सीमित है कि खोजी वाहन के रूप में वे अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकतीं।

एल्विन २१ फुट लम्बी और ८ फुट चौड़ी है। इसके दो चालक वैज्ञानिक उपकरणों से युक्त एक ७ फुट चौड़े गोलाकार प्रेसराइज्ड कक्ष में बैठते हैं, जो १० हजार फुट की गहराई तक भारी दबाव सहन करने में समर्थ है।

यह पनडुब्बी ५ जून, १९६५ को वुड्सहोल, मेसाचूसेट्स में समुद्र में उतारी गई। वैज्ञानिक अन्वेषण के लिए इसकी उपयोगिता ने समुद्र-विज्ञान-शास्त्रियों और समुद्र जीवन विज्ञान-शास्त्रियों का ध्यान तुरन्त आकृष्ट कर लिया। इसके द्वारा काफी गहराई पर विद्यमान जीव-जन्तुओं का अवलोकन उसी प्रकार सुगमता से किया जा सकता है जितनी सुगमता से छिछले जल में गोताखोर उनको देख सकते हैं। भू-गर्भशास्त्री समुद्रतल का अवलोकन करने और वहाँ से नमूने संग्रह करने का कार्य भी इसकी सहायता से कर सकते हैं। एल्विन की सहायता से वैज्ञानिक जल का तापमान, रचना और जलगर्भीय धाराएँ, चुम्बकीय क्षेत्र, गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र इत्यादि का ठीक-ठीक अध्ययन कर सकेंगे।

यह छोटी सी पनडुब्बी 'बेथस्फियर' (यह यंत्र समुद्र धरातल से तारों के सहारे समुद्र गर्भ में लटकाया जाता है) और बैथस्केप (जो बिना किसी सहारे के समुद्रतल तक पहुँचता है) का सुधरा हुआ रूप है।

यद्यपि एल्विन की रचना बहुत अधिक गहराई तक पहुँचने की सम्भावना को दृष्टि में रख कर नहीं की गई है, परन्तु यह इतनी गहराई तक पहुँचने में समर्थ है कि समुद्रों के कुल आधे जल का, जल के समस्त जीव-जन्तुओं का तथा कुल समुद्र तल के १६ भाग का (यह चन्द्रमा के कुल क्षेत्रफल के बराबर है) अवलोकन किया जा सके।

एल्विन तीन दबाव-रोधी लेड-एसिड बैटरियों द्वारा संचालित होती है। यह तीन मील प्रतिघण्टे की गति से २० से २५ मील तक जा सकती है और इसके चालक २४ घण्टे तक पानी के अन्दर सही-सलामत रह सकते हैं।

गति और इधर-उधर मार्ग-परिवर्तन करने के लिए इसमें तीन प्रोपलर फिट हैं। स्टर्न पर फिट बड़ा प्रोपलर पनडुब्बी को उसी प्रकार संचालित कर सकता है जिस प्रकार नौका पर फिट इंजन नौका को संचालित करता है। इसके अतिरिक्त दो छोटे-छोटे प्रोपलरों को घुमा कर पनडुब्बी को किसी भी दिशा में घुमाया जा सकता है।

एल्विन के अन्दर बैठे अनुसन्धानकर्ता कक्ष में बनी चार खिड़कियों के रास्ते वे बाहर देख सकते हैं। इन पर ६.५ इंच मोटे फाइबर-ग्लास का आवरण चढ़ा है। उन्हें सोनर-प्रणाली और क्लोज्ड सरकिट टेलिविजन-प्रणाली भी सुलभ है।

समुद्र तल पर वैज्ञानिक अनुसन्धान करने के लिए एल्विन में दूर-नियन्त्रण विधि द्वारा संचालित एक यांत्रिक बाहु भी है जो कैमरा अथवा पिंसर, दोनों का उपयोग करने में समर्थ है।

समुद्र की सतह से संचार-सम्पर्क स्थापित करने के लिए एल्विन सोनर संचार-प्रणाली से भी युक्त है लेकिन सतह पर यह मैरीन-बैंड रेडियो-टेलिफोन प्रणाली का उपयोग करती है।

एल्विन की रचना करने वालों ने समुद्र-गर्भ के अन्दर चालकों की सुरक्षा के लिए हर प्रकार की सावधानी बरती है।

दूषित गैसों अथवा छिछले जल से बचने के लिए प्रेसराइज्ड कक्ष में 'स्कवा गियर' की व्यवस्था की गई है। यदि एल्विन के चालकों

को समुद्र गर्भ में कोई कठिनाई होती है तो मरकरी से भरे हुए ट्रिम टैंकों, यान्त्रिक बाहु और भारी बैटरियों को अलग कर सकते हैं। यदि सभी प्रणालियाँ बेकार हो जाएँ तो चालक गोलाकार प्रेसर-कक्ष को अलग कर सकते हैं, जो अपने आप सतह पर आ जाएगा।

अपने ढंग की पनडुब्बियों में एल्विन सर्वप्रथम है। इसी प्रकार की दो अन्य पनडुब्बियाँ निर्माणाधीन हैं जो अधिक गहराई तक जाने में समर्थ होंगी।

यद्यपि अन्य देशों को इस प्रकार की पनडुब्बियाँ उधार रूप में देने की कोई योजना नहीं हैं—क्योंकि अमेरिका में ही वैज्ञानिक अनुसन्धान-कार्यों के लिए इनकी बड़ी माँग है—परन्तु ऐसे परीक्षणों में भाग लेने के लिए विदेशी वैज्ञानिकों को भी आमन्त्रित किया गया है, जिनमें ऐल्विन का उपयोग किया जाना है।

५. समुद्र-गर्भ में क्या है ?

"नीचे क्या है ?"

यह प्रश्न बार-बार पूछा जाता है और उसके साथ-साथ मनुष्य सैकड़ों वर्षों से समुद्र-गर्भ के रहस्यों को जानने की कोशिशें भी करता रहा है।

७ मील (११ किलोमीटर) नीचे महासागर के तल के बारे में मनुष्य को जितना मालूम है उसकी अपेक्षा तारों के बारे में उसे अधिक जानकारी रही है। मनुष्य आज तक समुद्र के सबसे निचले पेंदे के जैसे फोटो प्राप्त कर सका है उसकी अपेक्षा उसने अभी हाल में चन्द्रमा के कहीं अधिक अच्छे फोटो प्राप्त किये हैं।

समस्या पानी के अपरिमित दबाव की है। हम ज्यों-ज्यों समुद्र-पृष्ठ से नीचे अधिक गहराई में चलते जाते हैं, पानी का दबाव बढ़ता जाता है और उसकी मात्रा कल्पनातीत हो जाती है।

सं० रा० अमेरिका अब एक ऐसे विशाल, दीर्घकालीन अनुसन्धान-कार्यक्रम में लगा हुआ है, जिसका उद्देश्य महासागरों के अन्तराल के रहस्यों को जानना और वैज्ञानिकों को किसी भी गहराई में सुगमतापूर्वक समुद्र का अध्ययन कर पाने में समर्थ बनाना है।

कुछ ही समय पूर्व तक अमेरिका द्वारा गहरे समुद्र के सम्बन्ध में बहुत ही कम कार्य किया गया था। अमेरिकी नौसेना और कुछ गैर-सरकारी संस्थाओं ने जल की सतह पर चलने वाले जहाजों का प्रयोग करके एक छोटे से कार्यक्रम के अन्तर्गत संसार के समुद्रों के सम्बन्ध में अनुसंधान किया था किन्तु वैज्ञानिकों के लिये, जल की सतह पर चलने वाले ये जहाज असंतोषजनक थे। उन्हें ऐसे यानों की आवश्यकता थी जो वैज्ञानिक अनुसन्धान करने के लिये अत्यन्त गहरे समुद्र-तल तक जा सकते हों।

१९५८ में, नौसेना के अनुसन्धान-कार्यालय ने गहरे समुद्र सम्बन्धी प्रसिद्ध फ्रेन्च अन्वेषणकर्ता, औगस्ट पिकार्ड से गहरे समुद्र में गोता लगाने वाला बाथीस्काफ ट्रिएस्ट नामक जलयान खरीदा।

बहुत से गोते लगाये जाने के पश्चात्, नौसेना ने ये दो तथ्य सिद्ध किये : ऐसे जहाजों का निर्माण किया जा सकता है, जो समुद्र द्वारा डाले जाने वाले अत्यधिक दबाव (लगभग १५,००० पौंड प्रति वर्ग इंच) सहन कर सकें। और ऐसे जहाज, जो वैज्ञानिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हों, पार्श्व में चलने की क्षमता रखने वाले होने चाहिए। ट्रिएस्ट कठिनता से पार्श्व में १०० फुट चल सकता था।

उसके बाद अल्युमिनौट नामक यान में नौसेना की रुचि उत्पन्न हो गई। रेनौल्ड अल्यूमिनियम कम्पनी द्वारा उस यान का डिजाइन तैयार किया गया था। १४,८०० फुट की गहराई में कार्य करने के लिये उस यान का निर्माण किया गया था और उसमें ४ व्यक्तियों के बैठने की व्यवस्था थी।

गहरे समुद्र में चलने वाले अमेरिकी जलयानों में छोटी पनडुब्बी एल्विन बहुत प्रसिद्ध है। वह जल की सतह से ६,००० मीटर नीचे २० से २५ मील की गति से २४ घंटे तक कार्य कर सकती है।

सरकारी तथा गैर-सरकारी कम्पनियों द्वारा बहुत से अन्य गोता लगाने वाले यानों का निर्माण किया जा रहा है।

गहरे समुद्रों में चलने वाले जलयानों सम्बन्धी एक अन्य अनुसन्धान कार्यक्रम 'डीप सी सबमर्जेन्स प्रोजेक्ट' द्वारा चालू है, जिसका उद्देश्य समुद्र में डूबने वाले जहाजों की खोज करने, उनके स्थान का पता लगाने, उन्हें दफनाने और बचाने सम्बन्धी विधियों और उपकरणों को विकसित करना है। यह कार्यक्रम १९६३ में थ्रेशर नामक पनडुब्बी की दु:खान्तपूर्ण क्षति के बाद उस समय विकसित हुआ, जब

यह पता चला कि उस डूबे हुए जहाज को बचाने का कोई उपाय नहीं।

गहरे समुद्रों में चलने वाले जहाजों सम्बन्धी कार्यक्रम के अतिरिक्त अमेरिका ने कई अन्य योजनाएँ भी चला रखी हैं,जो वैज्ञानिकों को महासागरों और उनमें रहने वाले जीवों के विषय में सूचनाएँ सुलभ करेंगी।

एक विचित्र जहाज का विचित्र सा नाम "फिलिप" है। पानी की सतह के ऊपर चलते सयय इसकी लम्बाई ३६० फुट है। किन्तु अनुसन्धान कार्य को पूरा करने के सम्बन्ध में इसका एक छोर पानी में डूबा रहता है, जिससे यह एकदम लम्बवत् खड़ा हो जाता है। उस समय वह डूबते समय गोता खाने वाले जहाज जैसा दिखलायी पड़ता है लेकिन फ़िलिप डूब कर समुद्र के तले में नहीं चला जाता। जिस समय वह लम्बवत् स्थिति में होता है उस समय रहने और कार्य करने के लिए उसमें स्थान निर्धारित होते हैं। इस गुण के कारण यह जहाज पानी पर नियमित चलने वाले सामान्य जहाजों से अधिक स्थिरता प्राप्त कर लेता है। इस स्थिति में उस पर सवार वैज्ञानिकों को जो लहरों की गति समुद्री जीव-विज्ञान और महासागर की अन्य प्राकृतिक विशेषताओं का अध्ययन करते हैं, अपना कार्य करने में अधिक सुविधा होती है।

अमेरिकी नौसेना द्वारा विकसित अनुसन्धान का एक अन्य उपकरण एक तैरने वाला स्थायी पीपे का पुल है, जो एक २०,००० फुट लम्बी पंक्ति को सहारा देता है, जिसके छोर पर आँकड़े संग्रह करने वाले सेंसर लगे होते हैं। यह मानव रहित पीपे का पुल स्थायी रूप से खड़ा है, और किनारे के अड्डे से निर्देश मिलने पर रेडियो द्वारा आँकड़े प्रसारित करता रहता है।

नौसेना को अपने महासागरीय अनुसन्धान में निजी उद्यमों से सहायता प्राप्त है। ये उद्यम वैज्ञानिक संस्थानों के साथ हुए करार के आधार पर प्राविधिक उपकरण विकसित करते और कार्यक्रम चलाते हैं।

इनके अन्तर्गत एक समुद्री जीव-विज्ञान कार्यक्रम शामिल है जिसके अन्तर्गत चालक शिशुमार या सुइंस का अध्ययन किया जाता है।

वैज्ञानिक न केवल उसकी सामान्य "तैराकी-क्षमता का अध्ययन करते हैं, बल्कि उसे पानी के भीतर अनेक निर्देश पूरा करने के लिए प्रशिक्षित भी करते हैं।

हाल के "सी लैब" प्रयोग के अन्तर्गत, जहाँ कई गोताखोर ४५ दिनों तक समुद्र के गर्भ में १०५ फुट की गहराई पर रहते थे एक शिशुमार को पानी के भीतर डूबे मनुष्यों तक संदेश पहुँचाने और वहाँ से सन्देश लेकर बाहर के लोगों तक पहुँचाने के लिए प्रशिक्षित किया गया।

महासागरीय अनुसन्धान से सम्बद्ध अमेरिकी सरकार की १५ एजेन्सियाँ महासागरीय जल धाराओं, पानी के घनत्व, क्षारत्व, तापमान, पानी की पट्टियाँ, तलहटी के नमूनों और महासागरों की कई अन्य विशेषताओं के विषय में जानकारी प्राप्त करना चाहती हैं।

महासागरों के गर्भ में अनुसन्धान करने वालों की सहायता के लिए कई विशेष यन्त्र विकसित हुए हैं। इसमें समुद्र के गर्भ में नमूनों को पकड़ने के लिए दूर से नियन्त्रित यांत्रिक भुजाएँ, चाप-निरोधक प्रकाश, विद्युदाणविक भा-यन्त्र, बैटरियाँ और 'सोनर गियर' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

विज्ञान वार्ता

१. कृत्रिम मानव द्वारा प्रशिक्षण

अमेरिका में चिकित्सा-विज्ञान के छात्रों के प्रशिक्षण के लिए मानव की एक ऐसी प्रतिमा का निर्माण किया गया है, जो देखने में सजीव सी प्रतीत होती है और चेतनाशून्य करने वाली ओषधि का प्रयोग करने पर बहुत कुछ उसी तरह व्यवहार करती है, जिस तरह मानव प्राणी करते हैं। इस कृत्रिम मानव का प्रयोग कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के स्कूल औव् मेडिसिन द्वारा, जिसके वैज्ञानिकों ने ही इसकी डिजायन तैयार की है, लोसएंजेलस काउण्टी जनरल हास्पिटल में किया जायेगा।

आशा की जाती है कि यह चिकित्सा-विज्ञान की दृष्टि से अभी तक निर्मित मानव-आकृति की सबसे जटिल अनुकृति होगी। पूर्ण हो जाने पर इसे शल्योपचार सम्बन्धी एक मेज पर रखा जायेगा और इसे एक गणक-यन्त्र से सम्बद्ध कर दिया जायेगा। उस अवस्था में यह कृत्रिम मानव भिन्न-भिन्न प्रकार की १० औषधियाँ की भिन्न-भिन्न खुराकों के प्रति सम्वेदनशील होगा, साँस लेगा और उसके हृदय तथा नाड़ियों में धड़कन होगी।

यह अपना मुँह खोल सकता है, अपनी जबान बाहर निकाल सकता है, अपनी भौहें तान सकता है, अपने गले की नाड़ी को फुला-पिचका सकता है, खाँस सकता है, अपने कंधे की माँस-पेशियों को मरोड़ सकता है तथा अपने रंग को गुलाबी से परिवर्तित करके नीला और भूरा बना सकता है।

शिक्षक संकट के क्षणों में छात्रों की प्रतिक्रिया की जाँच करने के लिए उस कृत्रिम-मानव को इस तरह नियन्त्रित करने में समर्थ होगा, ताकि वह संकट-ग्रस्त स्थितियों (जैसे हृदय के गम्भीर गत्यावरोध) का आभासी रूप प्रस्तुत कर सके।

कृत्रिम मानव का निर्माण सियरा पैडरे, कैलिफोर्निया की सियरा इंजिनियरिंग कम्पनी करेगी। उसके लिए यन्त्र-पुंज का निर्माण एयरो जेट जनरल कारपोरेशन करेगा, जिसने इसकी आकल्पना में भी योग दिया है।

२. जलवायु-नियन्त्रित कक्ष

बाहर का मौसम गर्म और आर्द्र हो सकता है किन्तु अमेरिका में हाल में बने एक कक्ष के भीतर हृदय रोगों से पीड़ित रोगी ऐसे कृत्रिम जलवायु में रहेंगे, जो ध्रुवप्रदेश या ग्रीष्म कटिबन्ध के जंगली क्षेत्र, या मरुस्थल या ऊँचे पहाड़ी क्षेत्र के जलवायु अथवा किसी भी अन्य प्रकार के वांछनीय जलवायु से मिलता-जुलता होगा।

इस समय 'जलवायु-कक्ष'' का परीक्षण न्यू ऑर्लियन्स लुईजियाना के चेरिटी अस्पताल में हो रहा है। इसका उपयोग टुलेक विश्वविद्यालय के चिकित्सा-विभाग के अध्यक्ष डा० जार्ज ई० बर्च और उनके सहयोगी वैज्ञानिक परीक्षण के लिए कर रहे हैं।

यन्त्रों का एक समूह, जो कक्ष के बाहर से नियन्त्रित होता है, कमरे के भीतर के तापमान, आर्द्रता तथा हवा के दबाव को नियन्त्रित करने में चिकित्सकों को समर्थ बनाता है।

रोगियों की प्रतिक्रिया को एक पार्श्ववर्ती नियन्त्रण कक्ष में अंकित किया जाता है। वहाँ पर एक ऐसा दर्पण होता है, जिसमें रोगियों का निरीक्षण हो सकता है। इसके अलावा, २० यन्त्र, जिनमें से कुछ पतले तारों द्वारा रोगियों से सम्बद्ध होते हैं, उनके हृदय और श्वास की गति, खींची गयी श्वास की मात्रा, कार्बन के श्वास के साथ भीतर जाने की दर से और शरीर सम्बन्धी अन्य आँकड़ों को अंकित करते हैं।

जलवायु-कक्ष २२ फुट लम्बा और ११ फुट चौड़ा है। वह दो रोगियों के लिए बने अस्पताल के कक्ष जैसा होता है। किन्तु इसमें कोई खिड़की नहीं होती, बल्कि एक मुहरबन्द दुहरा द्वार होता है। भोजन, कपड़े और अन्य वस्तुएँ एक नली द्वारा भीतर पहुँचायी जाती हैं।

जलवायु को परिवर्तित करके चिकित्सकगण हृदय के रोगियों पर जलवायु के प्रभावों का निर्धारण करते हैं। इस प्रकार वे यह पता लगाते हैं कि किसी रोगी के लिए किस प्रकार की जलवायु

सर्व-श्रेष्ठ होगी। उसके बाद, रोगी देश के उस भाग में जा कर रह सकता है, जहाँ की जलवायु अनुकूलतम जलवायु से मिलती-जुलती है।

ये प्रयोग डा० बर्च द्वारा २५ वर्षों के दौरान हृदय-रोगियों पर जलवायु के प्रभावों के विषय में किये गये अध्ययनों के परिणाम हैं। यूरोप में श्वास के रोगियों के अध्ययन के लिए एक जलवायु नियंत्रित कक्ष का प्रयोग हो रहा है।

३. मौसम की भविष्यवाणी सम्बन्धी नयी प्रविधि

अमेरिकी वाणिज्य विभाग के वायुमण्डलीय विज्ञान सेवा प्रशासन ने घोषणा की है कि समीकरणों के एक जटिल संयोग द्वारा अमेरिका भर में हवा के बहाव और तापमान के सम्बन्ध में श्रेष्ठतम भविष्यवाणियाँ करना सम्भव हो गया है। ये सुधरी हुई भविष्यवाणियां जेट उड़ानों के लिए विशेष रूप से लाभप्रद हैं।

ये समीकरण मौसम की भविष्यवाणी सम्बन्धी एक नवीन माडेल का निर्माण करते हैं, जो सूटलैन्ड (मैरिलेण्ड) स्थित राष्ट्रीय ऋतु-अनुसंधान केन्द्र द्वारा विकसित हुआ है। यह केन्द्र वायुमण्डलीय विज्ञान सेवा प्रशासन की मौसम परिषद का भविष्यवाणी सम्बन्धी केन्द्रीय अधिष्ठान है। इस हैसियत से वह समस्त उत्तरी गोलार्द्ध के लिए मौसम सम्बन्धी सामान्य भविष्यवाणियां तैयार करने के उद्देश्य से गणक-यन्त्रों का प्रयोग करता है। मौसम सम्बन्धी स्थानीय भविष्यवाणियां इन बड़े पैमाने की भविष्यवाणियों पर निर्भर करती हैं।

मौसम की भविष्यवाणी सम्बन्धी नया माडेल हाल में ही चालू हुआ है। इसमें गति, अनवरतता, ताप-प्रवेगिकी ऊर्जा और स्थिरता सम्बन्धी आधारभूत भौतिक नियमों का प्रतिनिधित्व करने वाले ६ समीकरण सम्मिलित हैं। यह नमूना मौसम परिषद के सी० डी० सी० ६,६०० गणक-यन्त्र से सम्बद्ध है और इस गणक-यन्त्र में विश्व के सभी भागों से प्राप्त मौसम सम्बन्धी नवीनतम आंकड़े निरन्तर भरते रहते हैं। ७० मिनट में, वायुमण्डल के ७ स्तरों पर पाये जा सकने वाले मौसम के भावी स्वरूप का मूल्यांकन ३६ घंटे पहले हो जाता है। मौसम सम्बन्धी पर्यवेक्षण होने के ५।। घंटे के भीतर भविष्यवाणियाँ पूरी कर ली जाती हैं।

राष्ट्रीय ऋतु-अनुसंधान केन्द्र के भविष्यवाणी सम्बन्धी पूर्ववर्ती माडेल में केवल ३ स्तर (६ हजार, १८ हजार और ४० हजार फुट) शामिल थे। इन स्तरों सम्बन्धी भविष्यवाणियों से अन्य स्तरों के लिए भविष्य वाणियाँ व्युत्पादित होती थीं। नया माडेल वस्तुतः समुद्र के स्तर तथा ३ हजार, १२ हजार, २० हजार, २५ हजार, ४२ हजार और ५३ हजार फुट की ऊँचाई तक मौसम सम्बन्धी स्थितियों की भविष्यवाणी करता है। अतः इनमें से प्रत्येक स्तर सम्बन्धी भविष्यवाणी अधिक सही होती है जब कि उच्चतम और निम्नतम ऊँचाइयों की भविष्य वाणियाँ विशेष रूप से सुधरी होती हैं।

३५ हजार फुट की ऊँचाई वाला स्तर (जिसे ट्रोपोपाज कहते हैं) वैमानिक उड्डयन की दृष्टि से विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि वहां आँधी की गति तीव्र और हवा की उथल-पुथल स्पष्ट होती है। ट्रोपोपाज के सम्बन्ध में मौसम सम्बन्धी सुधरी भविष्यवाणी विमान चालकों के लिए बड़ी सहायक सिद्ध होगी।

इसके अलावा, भविष्यवाणी सम्बन्धी नया मोडेल सूर्य और महासागर द्वारा वायुमण्डल में संचारित अतिरिक्त ताप पर भी विचार करता है। इसके पहले वाले माडेल में ऐसी व्यवस्था नहीं थी। यह अन्य प्रकार के आंकड़ों—जैसे आर्द्रता सम्बन्धी सूचना या उपग्रहों द्वारा किये गये विविध पर्यवेक्षणों के निष्कर्ष, आदि भी संग्रहीत करने में समर्थ है।

४. उड़ीसा अनुसन्धान-संस्थान द्वारा भारत में चावल के उत्पादन में सुधार

केन्द्रीय चावल अनुसन्धान-संस्थान, उड़ीसा, ने यह खोज की है कि ताइवान के चावल की एक नई किस्म (तइचुंग देसी—१) को बोने से इस देश में चावल की पैदावार बढ़ने की बहुत अधिक संभावना है।

इस सम्बन्ध में संस्थान ने देश में चावल की दोगली किस्म तैयार करने के आन्दोलन को चालू करने में सहायता दी है।

संस्थान के इन प्रयत्नों से यह प्रमाणित हो गया है कि चावल की पैदावार ७२०० पौंड प्रति एकड़ तक यानी राष्ट्रीय उत्पादन की अपेक्षा ७ गुनी बढ़ाई जा सकती है।

ताइचुंग देसी-१ की एक विशेषता यह है कि वह सूखे को सह सकता है। १९६५ में भारत में इतना जबर्दस्त सूखा पड़ा जितना पिछली शताब्दी में कभी नहीं हुआ था। इसके बावजूद इस किस्म के धान की खेती अच्छी रही और उसकी पैदावार बहुत अधिक हुई।

"केन्द्रीय चावल अनुसन्धान संस्थान' के निदेशक आर० एच० रिछारिया ने कहा—"प्रति-एकड़ या प्रति खेत की पैदावार बढ़ने के अलावा इस चावल की नई किस्म में प्रोटीन की मात्रा भी अधिक है। इसी तरह, धान के छिलके के प्रतिशत का भी विशेष महत्व है, क्योंकि उसी के अनुसार प्रति मन अधिक चावल निकलेगा। केन्द्रीय चावल अनुसन्धान संस्थान ने धान की ऐसी किस्में निकाली हैं जिनमें चावल की मात्रा अधिक बैठती है और वह ८२ प्रतिशत तक होती है।"

केन्द्रीय चावल अनुसन्धान-संस्थान में चावल की एक और किस्म पर अभी हाल में जोरशोर से काम शुरू किया गया है। उसमें १२ प्रतिशत प्रोटीन होती है, जबकि सामान्य किस्मों में ६-७ प्रतिशत ही होती है।

पिछली फसल के समय उड़ीसा संस्थान ने केवल दो बीजों से २६४७ पौंड धान के बीज पैदा किये थे। यह सफलता बीजों की मात्रा बढ़ाने की उस विशिष्ट विधि को अपना कर प्राप्त की गई थी जिसका विकास डा० रिछारिया ने ही किया है।

डा० रिछारिया की नई विधि के फलस्वरूप न्यूनतम अवधि में बहुत थोड़े बीजों से अभीष्ट किस्म के बीज बढ़ाने की प्रक्रिया में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया है।

इस प्रकार का मौलिक कार्य उड़ीसा चावल अनुसन्धान-संस्थान द्वारा २० वर्ष पूर्व अपने जन्म-काल से स्थापित की गई उच्च परम्परा के अनुरूप ही है।

पिछले वर्षों में चावल अनुसन्धान संस्थान को चावल उत्पादक देशों में पाई जाने वाली चावल की विभिन्न किस्मों का भंडार रखने वाली संसार की प्रमुख संस्था माना जाने लगा है।

उड़ीसा-संस्थान में विभिन्न विभाग हैं, जैसे कृषि-विज्ञान, वनस्पति शास्त्र, कृषि-रसायन, वनस्पति-क्रियाविज्ञान, पौध-निदान चावल-तकनीकी विज्ञान, कृषि-कृमि और कृषि-इंजिनियरिंग।

एक अलग कृषि-विज्ञान भी है जो उड़ीसा-संस्थान को परीक्षणों और ज्ञान विस्तार कार्यों के लिए दी गई भूमि की प्रबन्ध-व्यवस्था करता

है। संस्थान के पास पश्चिमी बंगाल के चौबीस परगना जिले में केनिंग स्थान में एक उपकेन्द्र है जहाँ भूमि में रेह लगने और चावल की फसल द्वारा रेह को सहारने की क्षमता की पड़ताल की जाती है।

उड़ीसा संस्थान की इन गतिविधियों का मुख्य प्रयोजन भारत को अधिक और बढ़िया चावल पैदा करने में समर्थ बनाना है—और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन अनुसन्धान-योजनाएं कार्यान्वित की जाती हैं।

उड़ीसा संस्थान द्वारा चावल अनुसन्धान के विभिन्न क्षेत्रों में स्नातकोत्तर प्रशिक्षण भी दिया जाता है। समय-समय पर ज्ञान-विस्तार कर्मचारियों को फिर से नई जानकारी कराई जाती है और किसानों की प्रशिक्षण-कक्षाएं लगाई जाती हैं।

इस संस्थान ने अमेरिका के कृषि-विभाग के साथ विविध अनुसन्धानात्मक गति-विधियों में निकट सम्पर्क रखा है। संस्थान को अमेरिकी सहायता कृषि-अनुसन्धान सम्बन्धी दो अनुदानों के रूप में प्राप्त हुई है : धान के फट जाने के रोग की पड़ताल के लिए १९६१ में ३२३,५८५ रु० का वर्षीय अनुदान, और कटक के आसपास चावल के पौधों में लगने वाले कीड़ों के अध्ययन के लिए १९६५ में ८५, २८५ रु० का २ वर्षीय अनुदान।

५. परीक्षण-नलिका में झंझावात

कैथोलिक विश्वविद्यालय, वाशिंगटन, डी० सी०, के डा० चाइन-चाइन चाँग ने झंझावात का निर्माण करने वाली एक मशीन तैयार की है, जिसकी सहायता से अब पहली बार प्रयोगशाला में उस विनाशकारी ऊर्ध्वमुखी पवन-प्रवाह का विस्तृत अध्ययन करना सम्भव हो सकता है, जो कुप्पी जैसे आकार के झंझावात के मध्य में उठता है।

प्रयोगात्मक ढंग पर चक्रवात को तो उत्पन्न किया गया है, किन्तु झंझावात के मध्य उठने वाले ऊर्ध्वमुखी पवन-प्रवाह का प्रतिरूप अभी तक प्रयोगशाला में उत्पन्न नहीं किया जा सका है।

यद्यपि यह मशीन वैज्ञानिकों को उन सिद्धान्तों का अध्ययन करने में समर्थ बनायेगी, जो इस तरह के पवन-प्रवाह से सम्बद्ध हैं, फिर भी इसका ५५ मील प्रति घण्टे का अधिकतम पवन-वेग वास्तविक झंझावात

के पवन-वेग से बहुत कम है, जो प्रति घण्टे ४०० मील की गति से बहने वाले पवन को जन्म देता है।

इसके अतिरिक्त, यह मशीन झंझावात के अग्रमुखी वेग को भी उत्पन्न करने में असमर्थ है, जो आम तौर पर प्रति घण्टे १० से लेकर ५० मील तक होता है।

६. अब बच्चे कुरूप नहीं होंगे !

अमेरिकी चिकित्सा अनुसंधानकर्त्ताओं ने 'रुवेल्ला' नामक रोग के लिए, जिसे 'जर्मन खसरा' भी कहते हैं, एक प्रभावकारी प्रयोगात्मक टीका विकसित किया है।

यह रोग बच्चों और प्रौढ़ों के लिए उतना हानिकारक नहीं किन्तु इसके विषाणु गर्भस्थ शिशुओं को भारी क्षति पहुँचा सकते हैं। यदि कोई गर्भिणी स्त्री गर्भ के प्रथम तीन महीनों के भीतर इस रोग का शिकार हो जाय, तो इस बात का बहुत अधिक भय रहता है कि पैदा होने वाला शिशु कुरूप हो जायेगा, अथवा उसमें कोई अन्य स्थायी शारीरिक दोष उत्पन्न हो जायेगा। इस प्रकार के बहुत से बच्चे जन्म के थोड़े ही समय बाद मृत्यु के मुख में समा जाते हैं।

रुवेल्ला की महामारी के दौरान बहुत सी औरतों को इसका छूत लग जाता है, और उसके बाद बहुत के असामान्य और विषम बच्चे उत्पन्न हो जाते हैं। सौभाग्य की बात बस इतनी है कि किसी एक व्यक्ति को यह भय प्रायः एक ही बार हो सकता है। पहली बार इस रोग के होने पर शरीर में ऐसी प्रतिक्रिया होती है, जिसमें रक्त में ऐसे तत्व उत्पन्न हो जाते हैं, जो खसरा निरोधक होते हैं। इस तत्वों के उत्पन्न हो जाने पर शरीर जीवन भर इस रोग के आक्रमण के भय से मुक्त हो जाता है।

अमेरिकी सरकार के वाशिंगटन के निकट स्थित राष्ट्रीय स्वास्थ्य संस्थान में, दो वैज्ञानिक, डा० हैरी एम० मेयर, जूनियर, और डा० माल डी० पार्कमैन, ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि रुवेल्ला के विषाणुओं के विषैलेपन को इतना कम किया जा सकता है, जिससे वे तीव्र रोग न उत्पन्न कर सकें अथवा दूसरों को यह रोग न फैला सकें, फिर भी वे इतने शक्तिशाली हों कि वे शरीर में निरोधक-क्षमता उत्पन्न करके उसे

रोगमुक्त रखें। इसी विधि द्वारा पहले शिशु पक्षाघात और खसरा के टीकों की खोज की गयी थी।

नव विकसित टीके की शुद्धता और निरापदता की जाँच के लिए प्रयोगशाला में अगणित प्रयोग किये गये। उसके बाद, अरकंसास चिल्ड्रेन्स कालोनी में, जो एक राज्यीय शिक्षण-संस्था है, एक ही कुटीर में रहने वाली ८ बालिकाओं को इसके टीके लगाये गये। इनमें से किसी भी बालिका में किसी प्रतिकूल प्रभाव के लक्षण नहीं दिखलायी पड़े। उनके रक्त के नमूनों की जाँच करने पर उनमें प्रति-पिंड तत्वों का अस्तित्व मिला। इससे यह संकेत मिला कि उनके शरीर में रोग-निरुद्धता उत्पन्न हो गयी। उस कुटीर में उनके साथ ८ ऐसी बालिकाएं भी थीं, जिन्हें यह टीका नहीं लगाया था किन्तु उनमें से किसी एक को भी इसकी छूत नहीं लगी। इसी प्रकार का एक अन्य प्रयोग ७० बच्चों पर किया गया और वह भी इसी प्रकार सफल रहा।

फिर भी अभी यह टीका बड़े पैमाने पर जन-साधारण में प्रयुक्त होने के लिए तैयार नहीं किया जा सका है। इस सम्बन्ध में अभी और प्रयोग हो रहे हैं।

इस बीच डा० पार्कमैन और डा० मेयर अपने अशक्त विषाणुओं के नमूने रुबेल्ला सम्बन्धी अनुसन्धान में दिलचस्पी रखने वाले अन्य स्थानों के वैज्ञानिकों को उपलब्ध कर रहे हैं।

दैनिक जीवन में रसायन—१

डा० शिवगोपाल मिश्र

कपड़े के धागों की पहचान

अब कपड़ों को केवल देखकर या छू करके यह बता पाना कठिन हो गया है कि वे विशुद्ध धागों से बने हैं क्योंकि नित्यप्रति नये नये प्रकार के कपड़ों का चलन बढ़ रहा है। साथ ही एक ही प्रकार के धागों का व्यवहार न करके विविध प्रकार के धागों का प्रयोग किया जाने लगा है। प्रारम्भ में जब एक ही प्रकार के धागे से, जिसे शुद्ध धागा कहा जा सकता है, कपड़े बनाये जाते थे तो उस समय उनकी पहचान कर पाना सरल कार्य था। नवीन प्रकार के कपड़ों के प्रचलन के साथ ही उनकी पहचान के लिये नयी विधियों की आवश्यकता प्रतीत हुई फलतः वैज्ञानिकों ने तमाम भौतिक तथा रासायनिक विधियाँ खोज निकाली हैं।

धागों के लिये जो परीक्षायें की जाती हैं वे निम्न प्रकार हैं—

(१) सामर्थ्य परीक्षण

(२) टूटन परीक्षण

(३) ज्वलन परीक्षण

(४) रासायनिक परीक्षण

इसके पूर्व कि हम रासायनिक परीक्षणों का वर्णन करें, अन्य तीन परीक्षणों का, जो भौतिक परीक्षण कहलाते हैं, संक्षेप में वर्णन देंगे।

सामर्थ्य परीक्षण

किसी भी कपड़े का टिकाऊपना उसकी तनन सामर्थ्य से सम्बद्ध है अतः तनन सामर्थ्य ज्ञात करके उसके टिकाऊपने के सम्बन्ध में आवश्यक सूचना प्राप्त की जा सकती है। इसके लिये निम्न परीक्षण किया जाता है।

हाथ के दोनों अँगूठों तथा तर्जनियोंके मध्य कपड़े को इस प्रकार पकड़िए कि कपड़ा अँगूठे तथा तर्जनियों के आधार से स्पर्श करता रहे। अब अँगूठों को इस प्रकार उलटिये कि वे पीछे आपस में मिल जायँ। ऐसा करने पर अँगूठों के आधार पर कपड़े की तनन के कारण बल पड़ेगा। यदि कपड़े की तनन सामर्थ्य कम होगी तो अँगूठों के दबाव से कपड़े जल्दी फट जायेंगे परन्तु तनन सामर्थ्य अधिक होने पर काफी बल लगाने पर कपड़ा फटेगा। कपड़े की तनन सामर्थ्य की परीक्षा धागों की लम्बवत् तथा आड़ी दोनों ही तरफ से की जानी चाहिए। यदि एक तरफ से यह परीक्षण किया जाय तो हो सकता है कि बुनाई के कारण उनकी तनन सामर्थ्य का ठीक पता न चल पावे। जिन कपड़ों की तनन सामर्थ्य अधिक होती है वे ज्यादा टिकाऊ होते हैं।

टूटन परीक्षण

विभिन्न प्रकार के कपड़ों के निर्माण में प्रयुक्त भिन्न-भिन्न धागों का पता लगाने के लिए टूटन परीक्षण किया जाता है। इस परीक्षण के लिए कपड़े की लम्बी तथा आड़ी दिशा में बुने के गये दो धागों को निकाल कर तथा उनके दोनों किनारों को दोनों हाथों से अलग-अलग पकड़कर झटके से खींचकर तोड़ दिया जाता है। अब विभिन्न प्रकार के धागों की परीक्षा, धागों के टूटे शिरे को देखकर की जाती है। यदि धागा *कपास* का-सूती-है तो उसके टूटे हुए दोनों शिरे खुरदुरे दिखाई पड़ेंगे। यदि कपड़ा *लिनेन* का बना है तो टूटे धागों के दोनों शिरे अनियमित होंगे और दोनों खंड या टुकड़े नुकीले नजर आयेंगे। ऊनी धागों का टूटा शिरा लहरदार होगा। यदि धागा *सिल्क* का है तो टूटे सिरे सीधे होंगे तथा धागा फैला हुआ लम्बा और चमकीला होगा। परन्तु *रेयान* के धागे टूटने पर कपास के से लगते हैं—अन्तर केवल इतना होता है कि वे चमकीले होते हैं।

ज्वलन परीक्षण—

इसके लिए कपड़े की लम्बाई तथा आड़ी दिशा में बुने धागों को निकाल कर उनकी परीक्षा अलग-अलग की जानी चाहिए। इस परीक्षण के द्वारा विभिन्न प्रकार के ऊनी, सूती, सिल्क, कृत्रिम रेयान, तथा अन्य कपड़ों की पहचान की जाती है। इससे यह भी पता चल जाता है कि कपड़े शुद्ध हैं या उपर्युक्त में से एक से अधिक प्रकार के धागों से बनाये गये हैं। यदि ऊन तथा रेयान के धागों को आपस में बट कर कपड़ा बुना गया है तो ज्वलन परीक्षण से इसकी

ठीक-ठीक पहचान नहीं हो सकती। विभिन्न कपड़ों के धागों को निकाल कर उन्हें दियासलाई अथवा मोमबत्ती की धीमी ज्वाला में जलाइये तथा एक श्वेत प्लेट पर रखकर इसी परीक्षा कीजिए।

यदि धागा *ऊनी* है तो बालों अथवा पंखों के जलने जैसी दुर्गंध निकलेगी और धागों के जलने वाले शिरे पर काला तथा चिपचिपा पदार्थ एकत्र होता जायेगा और वह धीरे-धीरे जलेगा। जलने के बाद कपास तथा रेयान की अपेक्षा अधिक राख एकत्रित हो जायेगी।

सूती तथा रेयान से धागे शीघ्र जल जाते हैं। इनसे कम दुर्गंध निकलती है तथा जलने पर राख बहुत कम मात्रा में एकत्रित होती है।

बिना बटा सिल्क का धागा धीरे-धीरे जलता है, जलने पर एक विचित्र-सी गंध देता है तथा एक छोटा काला गोला-सा रूप बन जाता है। परन्तु बटे हुए सिल्क के धागों के जलने पर ज्वाला नहीं निकलती और वे झुलसकर रह जाते हैं तथा जलने के पश्चात् उनका रूप बिना जले धागे की तरह ही रह जाता है।

रासायनिक परीक्षण—

विभिन्न प्रकार के वस्त्रों के धागों की पहचान की सर्वोत्तम विधि है उनका रासायनिक परीक्षण। विभिन्न प्रकार के धागे अम्ल, तथा क्षार से भिन्न-भिन्न क्रियायें करते हैं अतः अम्लों एवं क्षारों के साथ क्रिया करके उनकी पहचान की जाती है। यदि पशुओं अथवा जीवों से प्राप्त ऊन, सिल्क या अन्य धागों को क्षार में डाला जाय तो *वे नष्ट हो जाते हैं* परन्तु पेड़ पौधों एवं वनस्पतियों से बने धागे तनु क्षारीय विलयनों के सम्पर्क में आकर *और मजबूत हो जाते हैं*। अपने घर अथवा प्रयोगशाला में साधारण रासायनिक परीक्षण करके अन्य धागों की पहचान कर सकते हैं। परीक्षण विधियाँ निम्न प्रकार हैं।

हाइड्राक्साइड परीक्षण—किसी काँच के बर्तन या बीकर अथवा ग्रेनाइट के तसले में एक पिंट जल लेकर उसमें २ चम्मच कास्टिक सोडा घोलिए। जिस धागे अथवा वस्त्र की पहचान करनी हो, उसे इस घोल में रखकर ५ से १० मिनट तक उबालिए। ऊन तथा सिल्क के धागे घुल कर तरल रूप में आ जायेंगे परन्तु सूती, रेयान तथा लिनेन पर *इस घोल का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा*। इस विधि से शुद्ध ऊनी, सूती, सिल्क तथा रेयान की पहचान तो की ही जा सकती, साथ ही साथ यदि वस्त्रों में पशुओं से प्राप्त धागों तथा बनस्पति धागों का मिश्रण है

तो उनकी प्रतिशत मात्रा का भी ज्ञान हो सकता है। इसके लिए वस्त्र या धागों का उबालने के पूर्व तथा बाद में भार ज्ञात कर लेना आवश्यक होता है।

अम्ल परीक्षण :—ठंडे एवं सान्द्र नमक के अम्ल (हाइड्रोक्लोरिक अम्ल) में सिल्क तो धीरे-धीरे घुल जाता है जबकि ऊन के धागे अम्ल के सम्पर्क में आकर फूलते जाते हैं परन्तु नष्ट नहीं होते। सूती वस्त्र व सूती धागों पर इसका विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। वनस्पतियों तथा प्राणियों से प्राप्त धागों की पहिचान के लिए २ प्रतिशत सान्द्रता के गंधक अम्ल (सल्फ्यूरिक अम्ल) का प्रयोग किया जाता है। पहिचान के लिए प्रयुक्त वस्त्र अथवा धागों के नमूने पर इस अम्ल की एक बूँद डालिए, कुछ समय पश्चात् इसके दोनों ओर कागज के टुकड़े लगाकर उस पर गरम लोहा चला दीजिए। नमूने को निकाल कर उसकी परीक्षा कीजिए। यदि वस्त्र या धागा सूती है तो वह झुलस गया होगा और यदि धागे सिल्क अथवा ऊन के हैं तो उन पर इसका कोई *प्रभाव नहीं पड़ेगा*।

काँच की परख नली (टेस्ट ट्यूब) में वस्त्र के नमूने को रखकर उस पर शोरे के अम्ल (नाइट्रिक अम्ल) की कुछ बूँदें डालिए और कुछ क्षणों तक गरम कीजिए। ऊनी तथा सिल्क के वस्त्र अथवा धागे पीले पड़ जायेंगे, परन्तु सूती, रेयान तथा लिनेन के धागों के रंग में कोई परिवर्तन नहीं होगा।

परीक्षण के लिए प्रयुक्त वस्त्रों के नमूने को क्लोरोफार्म अथवा ऐसीटोन से उपचारित करके यह देखा गया है कि सेल्यूलोस ऐसीटेट या ऐसीटेट रेयान तो इसमें पूरी तरह घुल जाता है जबकि अन्य वस्त्रों पर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

दो परीक्षण नलिकाओं में धागों या वस्त्र के टुकड़ों को नम करके रखिये। उनमें से एक के मुँह पर लाल लिटमस कागज तथा दूसरी के ऊपर लेड ऐसीटेट से सिक्त कागज रखकर नलिकाओं को गरम कीजिए। यदि कपड़े या धागे सूती हैं तो लिटमस तथा लेड ऐसीटेट वाले कागजों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, क्योंकि उनसे किसी प्रकार का धुआँ नहीं निकलता। किन्तु यदि कपड़ा ऊनी या सिल्क का है तो लाल लिटमस का रंग नीला हो जायेगा क्योंकि इनसे अमोनिया गैस निकलती है। इतना ही नहीं, यदि वस्त्र ऊनी है तो उससे निकली सल्फाइड वाष्प

लेड ऐसीटेट से सिक्त कागज को काला कर देगी जबकि सिल्क की वाष्प का इस पर कोई प्रभात नहीं पड़ेगा।

सिल्क को अन्य धागों से पृथक करने के लिए *ऐल्सनर्स-अभिकर्मक* का प्रयोग किया जाता है। इस घोल में सिल्क पूरी तरह घुल जाता है परन्तु अन्य धागों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

उपर्युक्त विधियों के अतिरिक्त धागों का सूक्ष्मदर्शी द्वारा परीक्षण भी किया जाता है। साथ ही साथ लिनेन व सूती कपड़ों की पहचान करने के लिए भी अन्य विधियों का प्रयोग किया जाता है।

(क्रमशः)

* *एल्सनर्स अभिकर्मक*—५०० ग्राम जिंक क्लोराइड तथा २० ग्राम जिंक आक्साइड को ४२५ मिली० जल में घोलकर यह विलयन तैयार किया जाता है।

खर-पतवारों का उपयोग

महेश नारायण मिश्र तथा रास बिहारी

मानव जाति अपने जीवन निर्वाह के लिए वनस्पतियों पर निर्भर है। सम्भवतः कृषि के श्रीगणेश के साथ ही मनुष्य और पौधों में गहन और रचनात्मक सम्बन्धों की प्रतिष्ठा हुई है। खेती-बारी के दृष्टिकोण से पौधों को दो समूहों में विभक्त किया जा सकता है: —

(१) *इच्छित पौधे* (जो किसी विशेष उद्देश्य से उगाए जायें), जिन्हें सामूहिक रूप में "*फसल*" की संज्ञा प्रदान की गई है।

(२) *अनिच्छित पौधे*—जो इच्छित पौधों या फसलों के बीच बिना बोए उग आते हैं और उनके अंकुरण एवम् विकास में बाधक होते हैं, जिन्हें "*खर-पतवार*" कहा जाता है।

फसलों और खर-पतवारों की श्रेणियों के अन्तर्गत पौधों की कोई सुनिश्चित प्रजातियाँ समूहबद्ध नहीं की गई हैं। यदि फसलीय पौधा यदि अनिच्छित स्थान पर उगता है तो उसे भी खर-पतवार कहा जाएगा, और कोई भी खर-पतवार यदि किसी आर्थिक उद्देश्य से उगाया जाये तो उसे फसल की संज्ञा दी जायगी। किसी पौधे को फसल के अन्तर्गत रखा जाय या खर-पतवार की श्रेणी में समझा जाय—यह सामान्यतः उस पौधे के वानस्पतिक गुणों, प्राप्तिस्थलों एवं विशेषतः उस पौधे का अन्य पौधों के मध्य पारस्परिक एवं तुलनात्मक संबंधों पर निर्भर है।

खर-पतवार एक स्थायी समस्या के रूप में

मानव द्वारा अपनी आवश्यकताओं को कतिपय पौधों तक सीमित कर लेने से, किसी विशेष आधार के अभाव में भी, फसलों तथा खर-पतवारों के समूह वर्गीकृत हो गए हैं। फसलों तथा खर-पतवारों के मध्य संघर्ष होने से फसलें अंशतः से पूर्णतः नष्ट होती हुई देखी गई हैं। अनुमानतः इस प्रकार *प्रतिवर्ष एक अरब बासठ करोड़ रुपये की राष्ट्रीय*

हानि होती है। "अमेरिकन चेम्बर आफ कामर्स" की कृषि-कमेटी की १९३० ई० की रिपोर्ट के अनुसार कृषि-व्यवसाय को खर-पतवारों द्वारा होने वाली हानि पशु रोगों, वनस्पति रोगों एवं कीड़ों, चूहों तथा अन्य भूमि-गत जन्तुओं से पहुँचने वाली संयुक्त हानि से कहीं अधिक पाई गई है। अनुमानतः कृषि-जगत को मात्र खर-पतवारों से होने वाली हानि का मूल्य संयुक्त राज्य अमरीका में ३,७४,७०,३६,००० डालर, कनाडा में १७,९२,५०,००० डालर प्रतिवर्ष आँका गया है। इस प्रतिवर्ष होने वाली राष्ट्रीय क्षति को अंशतः अथवा पूर्णतः इन खर-पतवारों को आर्थिक उपयोग में लाकर पूरा किया जा सकता है जिसके लिए इस दिशा में पर्याप्त शोधकार्य वांछनीय है।

वास्तव में खर-पतवारों और फसलों के अनवरत संघर्ष में पड़कर, हम इनके व्यावसायिक उपयोग की दिशा में कभी विचार भी नहीं कर सके हैं। जिस क्षण हम इन खर-पतवारों के उपयोग के विषय में जान जायेंगे, कोई भी पौधा हमें बेकार और हानिकारक लगने के बजाय फसल का सहचर प्रतीत होने लगेगा। किन्तु फिर भी खर-पतवारों की समस्या तो रहेगी ही। इस प्रकार हम देखते हैं कि कृषि-जगत में खर-पतवारों की समस्या का कोई अन्त नहीं हैं। इसके निम्नलिखित कारण हैं :—

(१) कृषि योग्य भूमियों में किसी एक प्रजाति का खर-पतवार नहीं, अपितु अनेक जातियों एवं प्रजातियों के खर-पतवार पाये जाते हैं।

(२) फसलों के बीच किस एक प्रजाति के खर-पतवारों का ही उगना एक अकल्पनीय बात है।

(३) अधिकतर खर-पतवार फसल-बद्ध न होकर मौसम-बद्ध होते हैं।

(४) एक ही खेत में एक समय फसलों का खर-पतवारों के साथ उगाया जाना अवांछित बात है।

खर-पतवारों के आर्थिक उपयोग की संभावनाएँ

(अ) *फसल के बीच उगने वाले खरपतवारों का उपयोग*

जब हमारा उद्देश्य किसी विशेष फसल से उच्चतम उपज प्राप्त करने का हो, उस समय उन समस्त विजातीय पौधों की उपस्थिति जो फसल के विकास में बाधा उत्पन्न करे, एक असहनीय बात है। ऐसी

परिस्थिति में उन समस्त विजातीय पौधों को समुचित आर्थिक उपयोग की अवस्था में पहुँचने के पूर्व उखाड़ फेंकना आवश्यक हो जाता है। अतः फसलीय क्षेत्रों में खर-पतवारों का व्यवसायिक उपयोग अत्यंत सीमित है।

(ब) परती क्षेत्रों में खर-पतवारों का उपयोग

ऐसे क्षेत्रों में जहाँ कोई भी फसल नहीं उगाई जा रही हो अथवा भूमि कुछ काल के लिए परती छोड़ दी गई हो, खर-पतवारों के उपयोग का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो जाता है। फसलों के बीच उगने वाले खर-पतवारों के बीजों का तेल के लिए संग्रह यथा सत्यानाशी, भाँग, जंगली सरसों एवं छोटा धतूरा; बथुआ, चौलाई, पथरी आदि पौधों का साग के लिए संग्रह एवम् लहसुआ, मोथा, दूब, गजरी और सेंजी आदि खर-पतवारों का पशुओं के चारे के लिए उपयोग का प्रश्न ही नहीं उठ पाता क्योंकि फसल की सुरक्षा और विकास के लिए इन बेकार पौधों को जल्द से जल्द उखाड़ फेंकना आवश्यक हो जाता है। अस्तु, ऐसे क्षेत्रों से जो फसल उगाने के कार्य में नहीं लाए जा रहे हैं, खर-पतवारों को एकत्रित करके विभिन्न आर्थिक उपयोगों जैसे हरी खाद, पशुओं का चारा, मृदा-सुधारक तथा औषधियों इत्यादि के प्रयोग में लाया जा सकता है। ऐसे उपयोगों से समीप के अन्य खेतों को खर-पतवारों से आतंकित होने की संभावनाओं से बचाया जा सकता है।

अतएव ऐसे अनुसंधानों को जिनसे खर-पतवारों को उपयोग में लाया जा सके, प्रोत्साहन देना सब का कर्त्तव्य है।

खर-पतवारों के कतिपय आर्थिक उपयोग

1 औषधीय उपयोग :–संभवतः खर-पतवारों की श्रेणी में रखा जाने वाला कोई भी ऐसा पौधा न होगा जिसका कोई न कोई औषधीय उपयोग न हो। ऐसे पौधों के चिकित्सा-संबन्धी गुणों की गवेषणा एवं अनुसंधान अत्यन्त आवश्यक है। हमारी राष्ट्रीय चिकित्सा-प्रणाली—आयुर्वेद--में अधिकतर उन औषधीय गुणों से विभूषित पौधों का उपयोग होता है जिन्हें कृषि-जगत में खर-पतवार की श्रेणी प्रदान की गई है। उदाहरणार्थ तुलसी अनेक रोगों के उपचार में प्रयुक्त की जाती है। पुनर्णवा, अश्वगंधा, सर्पगंधा, आदि हजारों पौधे अधिकतम रोगों का उपचार करने में समर्थ हैं। इस दिशा में बृहत् अनुसंधान, प्राचीन

संस्कृत साहित्य का पुनरावलोकन एवं उनका नवीनतम वैज्ञानिक ज्ञान से समापन अत्यंत आवश्यक है। कुछ पौधों के औषधीय उपयोग नीचे लिखे जा रहे हैं :

(क) सर्पगन्धा :—रक्तचाप को संतुलित करता है, नाड़ी-संस्थान की उत्तेजना को, नींद लाकर, शान्त करता है, ऐंठन के दर्द और कीड़ों के विष को निर्मूल करता है।

(ख) भाँग :—उत्तेजक एवं नशा लाने वाला, आक्रान्त मस्तिष्क में तन्द्रावस्था लाता है।

(ग) बथुआ :—रक्त-शोधक, इसका तेल पेट के कीड़ों को मारता है।

(घ) ब्राह्मी :—स्मरण-शक्ति-वर्द्धक, मस्तिष्क को शान्ति देता है। चर्मरोगों एवं अंगों के सूजन को कम करता है।

(ङ) बन तुलसी :—घाव में कीड़े पड़ जाने पर इसकी पत्तियाँ पीस कर भरते हैं।

(च) असगंध :—स्नायविक थकान दूर करती है, मांसपेशियों के दर्द एवं स्मृति-विभ्रम के परिस्थितियों में उपयोगी है।

(छ) भटकटैया :—कफ, बुखार, सीने के दर्द और गुर्दे की शिकायतों में उपयोगी है।

(ज) गूमा :—सर्दी, सिर दर्द एवं सर्पदंश पर उपयोगी है।

(झ) भँगरा :—भूरे बालों को काला करती है।

(ञ) छुईमुई :—रक्त शोधक, मूत्र रोगों एवं विष दंश पर उपयोगी है।

(२) उद्यान संबंधी उपयोग

उद्यान-शास्त्र की एक प्रशाखा "फ्लोरीकल्चर" उन पौधों की विशेष रूप से ऋणी है जो एक शस्य वैज्ञानिक की दृष्टि में खर-पतवार हैं। उद्यान-शास्त्र में खर-पतवारों का निम्नलिखित उपयोग है :—

(अ) *सजावट के कार्यों में :*—उदाहरणार्थ लैण्टाना, कृष्णनील, पोर्टुलाका, पोथा तथा विभिन्न प्रकार के कैक्टस उपयोग में आते हैं।

(ब) *लॉन स्थापित करने में :*—दूब तथा अन्य कई किस्म की घासों का उपयोग होता है।

(स) *बगीचों तथा निवास स्थानों की किनारी (एज) तथा घेरा (हेज) बनाने में* :—किनारी बनाने में अंजन घास, नागफनी तथा अन्य कई वनस्पतियों एवं घेरा बनाने में बबूल, मेंहदी, इंगाडल्सिस, लैन्टाना, नीलकांटा जैसे तमाम पौधों का उपयोग होता है।

(३) खाद्य-संबंधी उपयोग

मकोय, जंगली बेर, कचरी, सूरन, जंगली कसेरू तथा विभिन्न कन्दमूल फलों का उपयोग खाने के लिए एवं चौलाई, बथुआ, प्याजी, पथरी, नुनिया, लहसुआ, चपरो तथा केसारी आदि पौधों का उपयोग तरकारियों के लिए होता है।

(४) खाद संबंधी उपयोग

(अ) *कम्पोस्ट बनाने में* :—खर-पतवारों को फार्म की अन्य बेकार वस्तुओं के साथ-साथ कम्पोस्ट बनाने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। परन्तु ऐसा करते समय यह सावधानी रखनी चाहिए कि खाद खेतों में डाले जाने से पूर्व पूरी तौर से सड़ जाय ताकि खर-पतवारों के बीज खेतों के अंकुरित होकर फसलों के लिए समस्या न बन जायें। जलकुम्भी द्वारा बनाई गई कम्पोस्ट खाद में पोटैश की पर्याप्त मात्रा में रहती है।

(ब) *हरी खाद बनाने में* :—खर-पतवारों का हरी खाद के रूप में भी उपयोग हो सकता है। इस दिशा में पर्याप्त अनुसंधान कार्य की आवश्यकता है। ऐसा माना जाता है कि धान के खेतों में खर पतवारों को पलट कर जोतने से फसल को लाभ पहुँचता है। केन्द्रीय धान अनुसंधान केन्द्र, कटक (उड़ीसा) ने अपने एक वर्ष के प्रयोग के आधार पर इस बहुप्रचलित धारणा का खंडन किया है। खंडन का आधार खर पतवारों के हरी खाद के रूप में प्रयोग किए जाने पर उनके द्वारा फसल को दिए गए खाद्य तत्वों का भूमि से अपने विकास के लिए शोषित खाद्य पदार्थों से कम होना था।

केन्द्रीय धान अनुसंधान केन्द्र, तिरुरकुप्पम्, मद्रास में एक स्थानीय खर-पतवार जंगली मिर्च (क्रोटन स्पार्सीफ्लोरस) के हरी खाद के रूप में उपयोग पर तीन वर्षों तक, १९४३-४४ से १९४६-४७, अनुसंधान कार्य हुए। इसकी मात्राएँ ४००० किलो०, ६००० किलो०, ८००० किलो० तथा १०००० प्रतिकिलो० हेक्टार रखी गई। प्रत्येक मात्रा के साथ ४००

किलो० मूँगफली की खली की खाद भी डाली गई। इस प्रयोग में प्राप्त होने वाले परिणामों की तुलना अन्य हरी खादों से की गई। ६००० किलो० प्रति हेक्टार की मात्रा सर्वोत्तम सिद्ध हुई।

पडेगाँव (महाराष्ट्र) में भी एक स्थानीय खर-पतवार पटेडा शेवरा (डेसमोडियम डिफ्यूसम) सनई, ग्वार और लोबिया की तुलना में एक सन्तोषजनक हरी खाद प्रमाणित हुआ।

जवाँस, जो कि उत्तरी भारत की परती एवं बेकार भूमियों पर गर्मी के मौसम में उगता है, तथा बायसुरी जो बलुई और दोमट भूमियों का एक सामान्य खर-पतवार है, की हरी खाद की उपयुक्तता पर शोध-कार्य की आवश्यकता है। साथ ही साथ इनकी विभिन्न अवस्थाओं पर विभिन्न फसलों के साथ दीर्घकालीन परिणामों की भी गवेषणा आवश्यक है।

(५) पशु-चारे के लिये उपयोग

खर-पतवारों की कुछ प्रजातियों को पशुओं के लिए चारे के रूप में प्रयोग की विचारधारा ने शस्य विज्ञान की एक शाखा घास-विज्ञान (*एग्रोस्टोलॉजी*), को जन्म दिया है। दक्षिण भारत में जलकुम्भी के चारे से भैंस के दूध की मात्रा और गुण में अभिवृद्धि पाई गई है। इसी प्रकार उत्तर भारत में दुधारू पशुओं के लिए मोथा घास अति उपयोगी सिद्ध हुई है। चीन में भी जलकुम्भी का शूकर-पालन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। अंजन, जंकरा, मोथा, दूब, बर्रू और इसी प्रकार के अन्य पौधे जो सड़कों के किनारे और नालियों पर प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं, हमारे पशुओं के लिए अच्छे चारे प्रमाणित हुए हैं। द्विदलीय खर-पतवार यथा अकरा, अकरी, केसारी, चपटा, पीली और सफेद सेंजी, मारवारी आदि बहुधा खेत से उखाड़ कर हरी अवस्था में या सुखाकर पशुओं को खिलाने के काम में आते हैं। कुछ खर-पतवारों को हरे चारे की उपयुक्तता पर अनुसंधान कार्य आवश्यक है।

(६) भूमि संरक्षण के कार्यों में खर पतवारों का उपयोग

(अ) भूमि-सुधार के लिए उपयोग

राष्ट्रीय वनस्पति उद्यान, लखनऊ में किये गए अनुसंधान कार्यों से यह पता चला है कि *सत्यानाशी* का प्रयोग ऊसर भूमि को सुधारने में किया जा सकता है। पिसे हुए या अत्यंत बारीक कटे हुए सत्यानाशी

पौधों के टुकड़े ऊसर भूमि में मिलाने से भूमि की क्षारता पर्याप्त रूप से कम की जा सकती है। बनथरा, लखनऊ में सत्यानाशी पौधे के चूर्ण को उगे हुए धान के खेतों में मिलाने पर उत्साहजनक परिणाम मिले हैं। धान की रोपाई से कुछ दिन पूर्व १ मेट्रिक टन सत्यानाशी के चूर्ण को भूमि में प्रति एकड़ के हिसाब से मिलाने पर औसत पैदावार (१३ क्विटल प्रति हेक्टार) से २२ प्रतिशत अधिक उपज प्राप्त हुई और यह प्रक्रिया आर्थिक दृष्टिकोण से गंधक या जिप्सम से अधिक उपादेय प्रमाणित हुई। इस पौधे के चूर्ण में गोबर की खाद से अधिक नाइट्रोजन तथा फास्फोरस मिलता है।

कौल एवं उनके साथियों (१९५८) ने लखनऊ में चकवड़, टेफ्रोसिया परप्यूरिया, आदि कई खर-पतवारों को मिट्टी में पलट कर जुताई करके भूमि को हरी खाद देने के साथ-साथ पर्याप्त मात्रा में ऊसर भूमि का शुद्धीकरण किया है।

इस दिशा में अन्य खर-पतवारों के विषय में भी अनुसंधान कार्य करना आवश्यक है।

(ब) भूमि-संरक्षक फसलों के रूप में उपयोग

अंजन घास, पैनिक घास, दूब, काँस, मूँज, नरकुल तथा सरपत आदि खर-पतवार भूमि के कटाव-बहाव अवरोधी फसलों के रूप में प्रयुक्त किये जा सकते हैं।

(स) मृदा-बंधक पौधों के रूप में उपयोग

गहरी तथा झकड़ा जड़ों से युक्त खर-पतवार हल्की तथा ढालू भूमि पर मृदा-बंधक का कार्य कर सकते हैं।

(द) घास-युक्त जल मार्गों के लिए उपयोग

भूमि का कटाव-बहाव रोकने के लिए खर-पतवार घास युक्त जल-मार्ग बनाने के कार्य में उपयोग किये जा सकते हैं।

(ई) छादन शस्य के लिए उपयोग

झरबेरी, जवास और बायसुरी सदृश खर-पतवार ग्रीष्म ऋतु में वायु तथा जल द्वारा होने वाले भूमि तथा बालू के कटाव-बहाव को रोकने के लिए छादन-शस्य का कार्य कर सकते हैं।

(फ) अवरोध पर्त के लिए उपयोग

खेतों से खर-पतवारों की कटाई करके उसका प्रयोग भूमि से वाष्पीकरण कम करने के लिए एवं जल-संरक्षण के लिए अवरोध-पर्त (मल्च) के हेतु किया जा सकता है।

(७) रेशों के लिए उपयोग

सूँज, सरपत तथा काँस जैसे अनेकों खर-पतवारों का उपयोग रेशों के लिए किया जाता है। यद्यपि इन पौधों से प्राप्त रेशे गुणात्मक दृष्टि से अपेक्षाकृत मोटे होते हैं, फिर भी उनका उपयोग रस्सी तथा चारपाई के लिए बाध बनाने में सुचारु रूप से हो सकता है।

(८) तेल के लिए उपयोग

छोटा धतूरा, सत्यानाशी, भाँग, तितली एवं जंगली सरसों सदृश खर-पतवारों के बीजों को एकत्रित करने के उपरान्त उनका उपयोग विशेषतया वारनिश, पेन्ट तथा अन्य कार्यों के लिए तेल निकालने के हेतु किया जाता है। खस का तेल सुगंधित तथा उत्तम होने के कारण उसकी माँग बराबर बनी रहती है।

(९) वानस्पतिक उद्भिजनन कार्यों में उपयोग

हमारे अधिकतर फसलीय पौधों की उत्पत्ति उन प्रजातियों से हुई है जिन्हें आजकल खर-पतवारों की श्रेणी में रखा जाता है। अब भी इनका वानस्पतिक उद्भिजनन कार्यों में महत्वपूर्ण स्थान है जैसे गन्ना-विकास में काँस का, तम्बाकू-विकास जंगली तम्बाकू का और जूट-विकास में जंगली-जूट का। धान की कुछ उन्नत किस्में भी जंगली धान के संयोग से उत्पन्न की गई हैं।

(१०) पैकिंग तथा बाँधने के कार्यों में उपयोग

रेशेदार और पत्तीदार खर-पतवारों को सुखा कर उनका उपयोग वस्तुओं को पैक करने के काम में हो सकता है। नर्सरी से पौधों को बाहर भेजते समय काँस का जूट प्रयोग किया जाता है जो मिट्टी को बाँधे रहता है।

(११) छप्पर बनाने के लिए उपयोग

काँस, सरपत, सूँज, बरू इत्यादि खर-पतवारों का उपयोग कच्चे

मकानों और बरामदों की छत के लिए छप्पर बनाने के कार्य में हो सकता है। इस प्रकार बने छप्परों का उपयोग नर्सरी में नव-अंकुरित कोमल पौधों को हवा और धूप से बचाने में तथा पौधों को जानवरों से बचाने के लिए बाड़ तैयार करने में हो सकता है।

(१२) कीट-नाशी एवं तृणघ्न औषधियों के निर्माण में उपयोग

पैगनम हारमूला, जो कि पंजाब का एक सामान्य खर-पतवार है, का उपयोग फसलों की सुरक्षा के लिए कीट-नाशी औषधियों के निर्माण के कार्य में होता है। हमारी अधिकतर कीट-नाशी औषधियाँ एवं तृणघ्न खर-पतवारों से निर्मित किये जा सकते हैं।

(१३) सुगंधित द्रव्यों, इत्र एवं रंगों के निर्माण में उपयोग

टेसू तथा नील का उपयोग विभिन्न प्रकार के रंगों के निर्माण में हो सकता है। वास्तव में जब हम कृत्रिम-रंगों से परिचित नहीं थे, उस समय हम विभिन्न प्रकार के खर-पतवारों से निकाले गए रंगों को ही काम में लाते थे। खस तथा मेंहदी का उपयोग इत्र बनाने के व्यवसाय में होता है।

(१४) ईंधन के लिए उपयोग

ककई, लैन्टाना, कैक्टस, झरबेरी जैसे अनेक खर-पतवारों एवं डंठलों का उपयोग सुखाकर ईंधन के रूप में हो सकता है।

(१५) विविध उपयोग

(अ) धार्मिक कार्यों में उपयोग

हिंदुओं के धार्मिक अनुष्ठानों में कुछ विशेष पौधों की उपस्थिति अनिवार्य मानी जाती है, उदाहरणार्थ प्रत्येक अवसर पर तुलसी, कन्या-दान के समय दूब, भातृ-द्वितीया या यम द्वितीया के अवसर पर भट-कटैया इत्यादि। पूजा-ध्यान, कथा-श्रवण और हवन के समय कुश की अँगूठी व आसन होना आवश्यक समझा जाता है। तिन्नी का चावल फलाहारी होता है। तुलसी की माला तथा कंठी बनाई जाती है।

(ब) सैन्य गतिविधियों में उपयोग

सेना में खर-पतवारों का उपयोग सैनिकों तथा सैन्य-सामग्रियों के आड़ लेने और वातावरण के अनुसार सैन्यगतिविधियों में अनुकूलता

उत्पन्न करने मे होता है जो कि युद्ध काल में आक्रमण तथा सुरक्षा के लिए अनिवार्य है।

(स) व्यवसायिक उपयोग

मूँज और नरकुल की छड़ियों का उपयोग कुर्सी-मेज, रंग-बिरंगी डोलची, डलिया, दरवाजे के लिए चिक, सूप एवं मछली पकड़ने के लिए परहा बनाने में होता है। इनसे लिखने के लिए कलम भी बनाई जाती है। झाऊ तथा काँस को सुखाकर स्ट्रा हैट तथा झाड़ू भी बनाते हैं। ग्रीष्म-ऋतु में खस की टट्टियों की बड़ी माँग रहती है जिनका उपयोग दरवाजों और खिड़कियों को आड़ देने में होता है ताकि गर्म हवा से बचा जा सके।

उपसंहार

खर-पतवारों को विभिन्न आर्थिक उपयोग में लाकर हम अंशत: अथवा पूर्णतः कृषि-जगत की हानियों की प्रतिपूर्ति कर सकते हैं। खस टट्टियों, मोथा घास से अगरबत्ती व्यवसाय, काँस से कागज, सरपत, मूँज इत्यादि से रेशा निकालने एवं छप्पर बनाने के व्यवसायों को प्रोत्साहन देने से कुटीर-उद्योग स्थापित किए जा सकते हैं। इन खर-पतवारों के आर्थिक उपयोग की दिशा में अनुसंधानों की आवश्यकता है। यदि खर-पतवारों द्वारा पहुँचने वाली हानि की प्रतिपूर्ति उनके विभिन्न प्रकार के आर्थिक उपयोग द्वारा की जा सके, तो खर-पतवारों की समस्या ही न रह जायेगी।

सूचना

''भौतिक विज्ञान'' पर ''तैलङ्ग पुरस्कार प्रतियोगिता''— १९६६ सम्बन्धी घोषणा

गत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी ''विज्ञान'' में तैलङ्ग पुरस्कार प्रतियोगिता के लिए लेख आमंत्रित किये जाते हैं। अन्य वर्षों की तरह इस वर्ष भी सर्वोकृष्ट लेख पर ३००) का पुरस्कार प्रदान किया जावेगा।

लेखों के प्रकाशित होने की अवधि विज्ञापन प्रकाशित होने के बाद से मार्च ६७ तक है।

लेखों में प्रतिपाद्य विषय का साङ्गोपाङ्ग वर्णन आवश्यक होगा। जो लेख उक्त पत्र में प्रकाशित होंगे वे अन्यत्र प्रकाशित न हुए हों, न किये जायँ।

लेखों में यदि किसी आधुनिक ''वाद'' या सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है तो वह जहाँ से लिया गया है उचित उद्धरण प्रस्तुत किया जाय।

यदि निर्धारित अवधि के अन्तर्गत लेख प्रकाशित न हुए, तो ''विज्ञान'' में प्रकाशित इस वर्ष के सर्वोत्कृष्ट लेख पर पुरस्कार प्रदान किया जा सकता है।

प्रत्येक लेखक को पुरस्कर्ता द्वारा गठित ''निर्णायक समिति'' का निर्णय मान्य होगा।

पुरस्कर्ता
बालमुकुन्द दीक्षित ''तैलङ्ग''
टीकमगढ़

लज्जाजनक किन्तु वास्तविक स्थिति

जुलाई १९६६ से 'विज्ञान' के प्रकाशित न हो पाने की लम्बी कहानी है। कहानी कहते लज्जा ग्राती है किन्तु उसे स्वीकारते हुये संकोच नहीं होता। कारण कि पाठकों को ग्रंधकार में नहीं रखा जा सकता।

५० वर्षों तक जिस पत्रिका ने हिन्दी के माध्यम से वैज्ञानिक साहित्य का सृजन एवं प्रसार किया हो, वह ग्राज हिन्दी लेखन के ग्रभाव से पीड़ित हो यह खेद का विषय है। वास्तविकता तो यह है कि विगत एक वर्ष से हिन्दी में वैज्ञानिक विषयों पर लिखने वाले लेखकों का लोप सा हो गया है। हमारे पास इतने कम लेखकों के लेख प्राप्त होते हैं कि ग्राश्चर्य होता है।

हमने इस स्थिति को समझने का प्रयास किया है। हमारी धारणा बनी है कि हिन्दी की ग्रनेक पत्रिकाग्रों एवं साप्ताहिक विशेषांकों में वैज्ञानिक लेखों की वृद्धि होने तथा लेखकों की संख्या सीमित होने के कारण ही 'विज्ञान' में प्रकाशनार्थ ग्राये लेखों में कमी हुई है। एक ग्रन्य कारण ग्रौर रहा है—पिछले एक वर्ष से हाई स्कूल तथा इण्टर बोर्ड के लिये रसायन तथा कृषि विज्ञान विषयों पर पाठ्य-पुस्तकों के लेखन में ग्रनेकानेक लेखक व्यस्त रहे हैं। पाठ्य-पुस्तकों का लेखन ग्रार्थिक दृष्टि से ग्रधिक लाभकर है फलतः विगत एक वर्ष में लेखों का नितान्त ग्रभाव रहा है।

किन्तु जिस ग्रभाव का हम उल्लेख कर रहे हैं वह 'विज्ञान' के समक्ष ही समस्या नहीं धारण कर रहा। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है "विज्ञान जगत" तथा "विज्ञान प्रगति" नामक वैज्ञानिक पत्रिकाग्रों का बन्द हो जाना। "विज्ञान लोक" का भी प्रकाशन ग्रनियमित हो गया है।

स्मरण रहे कि ऊपर जिन पत्रिकाग्रों के नाम गिनाये गये हैं उनके समक्ष ग्रार्थिक समस्या नहीं है किन्तु 'विज्ञान' को कठिन ग्रार्थिक समस्याग्रों का सामना करना पड़ता है। इस बार राजकीय सहायता

के विलम्बित हो जाने तथा प्रेस की कुव्यवस्था के कारण भी 'विज्ञान' का प्रकाशन इतना स्थगित रहा।

फिर भी हम प्रयत्नशील हैं। हम पाठकों को विश्वास दिलाते हैं कि अब विज्ञान नियमित रूप से प्रकाशित होता रहेगा। किन्तु हम लेखकों से आग्रह करेंगे कि वे भी इसमें अपना सहयोग दें।

हम समस्त लेखों पर पारिश्रमिक प्रदान करने के लिये दृढ़-संकल्प हैं किन्तु लेखों को पत्रिका के अनुकूल स्तर का होना चाहिए। आवश्यकता इस बात की है कि पुराने विषयों पर पुनः पुनः लेखन न किया जाय। देश एवं देशवासियों को नूतन से नूतन विचारधाराओं के द्वारा ही अनुप्राणित किया जा सकता है।

हमारी कामना है कि देश में नये लेखक उत्पन्न हों एवं नवीन विचार प्रसरित हों जिससे राष्ट्र का कल्याण हो।
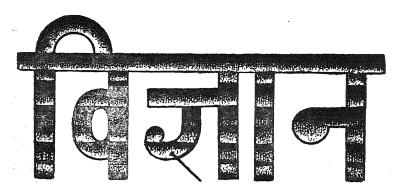
जनवरी १९६७

विषय-सूची

विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुखपत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजनात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति। विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ० ३।५

भाग १०४ | माघ २०२३ विक्र०, १८८७ तक जनवरी १९६७ | संख्या ४

मिट्टी और उसका परीक्षण

● भूसुर

खेतों में लगातार फसलें उगाते रहने के लिये यह जानना आवश्यक होता है कि उनकी मिट्टियाँ कैसी हैं। प्रायः हमारे किसान इस ओर सतर्क रहते हैं किन्तु साधनों के न जुटा पाने अथवा आर्थिक कारणों से वे कभी-कभी मिट्टियों के प्रति उदासीन हो जाते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि या तो ठीक से फसलें नहीं उग पातीं या उगीं भी तो उनमें नाना प्रकार के न्यूनता-लक्षण प्रकट होने लगते हैं। इस कुपरिणाम से बचने के लिये आवश्यक होता है कि समय-समय पर खेतों की मिट्टियों की परीक्षा होती रहे। इस प्रकार से की जाने वाली मिट्टी की परीक्षा *मिट्टी परीक्षण* (Soil testing) कहलाती है।

मिट्टी परीक्षण से प्राप्त सूचनाओं का कई प्रकार से उपयोग किया जा सकता है। उदाहरणार्थ उर्वरक डाले जाने या चूना डाले जाने की दृष्टि से मिट्टियों का वर्गीकरण किया जा सकता है, मिट्टियों में आवश्यक तत्व की पूर्ति के लिये उर्वरक की मात्रा का निर्धारण किया जा सकता है और मिट्टियों को सुधारने के लिये आवश्यक दशाओं का निश्चयन किया जा सकता है।

उत्तम मिट्टी परीक्षण—इसके लिये कई बात आवश्यक होती हैं :—

(१) प्रतिनिधि नमूनों की प्राप्ति

मिट्टी परीक्षण के लिये सदैव मिट्टी के ऐसे नमूने एकत्र किये जाने चाहिए जो किसी खेत, भू-भाग या भूखण्डों का प्रतिनिधित्व कर सकें। एक-दो नमूनों के आधार पर कोई व्यापक सुझाव नहीं दिया जा सकता। इससे तो अच्छा यही होगा कि मिट्टी परीक्षण नहीं किया जाय।

(२) नमूनों का परीक्षण

प्राप्त नमूनों का विश्वसनीय एवं सही-सही विश्लेषण अत्यन्त आवश्यक होता है। इसके लिये कुशल परीक्षक की ही आवश्यकता होती है। बेगार टालने वाले पर इतना महत्वपूर्ण कार्य नहीं छोड़ा जा सकता। साथ ही नमूनों की काफी मात्रा उपलब्ध होनी चाहिए। कम मात्रा होने से नमूनों के पूर्णतः विश्लेषण एवं परीक्षण में कठिनाई हो सकती है।

(३) परिणामों का उचित मूल्यांकन

मिट्टी परीक्षण से प्राप्त परिणामों का सही-सही मूल्यांकन शस्य विशेषज्ञ (Agronomist) ही कर सकता है; क्योंकि उसे मिट्टियों के प्रकार एवं फसलों की उपज के बीच के सम्बन्ध ज्ञात होते हैं।

(४) कृषकों से सम्पर्क

मिट्टी परीक्षण से प्राप्त परिणामों का वास्तविक उपयोग तभी हो सकता है जब कि मिट्टी-परीक्षक एवं कृषकों के मध्य पारस्परिक सम्पर्क हो। जो किसान अपनी मिट्टियों का परीक्षण करावें उन्हें चाहिए कि वे ऐसी समितियाँ बनावें जिनमें सभी लोग एकत्र होकर अपने नमूनों के सम्बन्ध में मिट्टी-परीक्षक की सही-सही राय सुन सकें।

(५) सुरुचि उत्पन्न होना

कृषकों को स्वतः इस बात के लिये इच्छुक होना चाहिए कि वे मिट्टी का परीक्षण कराकर परिणाम प्राप्त करें और जो सुझाव हों

उनके अनुसार कार्य करें। मात्र मिट्टी-परीक्षण तथा उसके परिणामों से परिचित हो जाने से कोई काम नहीं बनता। प्रत्येक किसान को अपनी मिट्टी के सम्बन्ध में उतना ही उत्सुक होना चाहिये जितना कि किसी रोगी के निरोग होने के सम्बन्ध में अथवा जितना कि क्रिकेट के खेल में 'रन' जानने के लिये उत्सुकता।

मिट्टी नमूने कैसे एकत्र किये जायँ

आजकल किसानों की सुविधा के लिये ब्लाकों में मिट्टी के नमूने स्वीकार किये जाते हैं। मिट्टी के नमूने ग्राम साथी को देने चाहिए। वह वांच्छित जानकारी को एक प्रपत्र (फार्म) में किसानों से पूछकर भरता है। यह प्रपत्र ब्लाक से प्राप्त किया जा सकता है। इसको भर कर भेजने के लिये कुछ निर्देश होते हैं जिनका पालन करना होता है। मिट्टी के नमूने की मात्रा, पात्र जिसमें नमूना भेजा जाय आदि के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करके ही खेतों से नमूने एकत्र करने चाहिए। स्मरण रहे कि यदि नमूना ठीक से नहीं एकत्र किया गया और उसके साथ की वांछित जानकारी नहीं दी गई तो चाहे उस नमूने का कितना ही सूक्ष्म विश्लेषण क्यों न किया जाय, कोई विशेष लाभ नहीं होता। इसीलिये नमूनों के एकत्रीकरण पर विशेष बल दिया जाता है।

नैत्यिक मिट्टी परीक्षण के द्वारा मिट्टी के उस मंडल अथवा संस्तर के विषय में जानकारी प्राप्त होती है जिसमें खेती की जाती है। फलतः यदि इस संस्तर में उर्वरकों के रूप में काफी तत्व मिला दिये गये हों तो उनकी प्रचुरता दिखनी स्वाभाविक है किन्तु साथ ही यह भी सम्भव है कि यदि उर्वरकों की अपर्याप्त मात्रा प्रयुक्त हुई हो तो तत्वों की न्यून मात्रा ही मिले। किन्तु मिट्टी का यह ऊपरी स्तर ही सब कुछ नहीं। इसके नीचे भी तमाम संस्तर होते हैं जिनसे भूमि की संरचना होती है। पौदों की वृद्धि इन संस्तरों पर भी निर्भर करती है किन्तु नीचे स्थित होने के कारण इन संस्तरों में प्रतिवर्ष कोई विशेष अन्तर नहीं आता।

इतने पर भी यह स्मरण रखना होगा कि जितना भी फास्फेटी उर्वरक या चूना मिट्टी में डाला जाता है वह मिट्टी की ऊपरी २-३ इंच सतह में भी रहा आता है। अतः मिट्टी नमूने को कितनी गहराई तक से एकत्र किया जाय, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि आप कितनी

गहराई तक भूमि की उर्वरता को बढ़ाना चाहेंगे। उदाहरणार्थ, यदि फास्फेट-संचय के स्तर के नीचे से मिट्टी के नमूने एकत्र किये जायँ तो उनमें फास्फेट की न्यूनता दिखेगी जिससे फास्फेटी उर्वरक डालने पर ऊपर के स्तर में, जहाँ पहले से फास्फेट संचित है, फास्फेट की मात्रा बढ़ेगी। इसका परिणाम यह होगा कि अधिक उर्वरक डालने पर भी फसल की वृद्धि पर कोई प्रभाव लक्षित नहीं होगा। यही कारण है कि कृष्य मिट्टियों से मिट्टी नमूनों को कुंड-गहराई तक या इससे एकाध इंच नीचे तक से लेना चाहिए। जिन चरागाहों में उर्वरक छींट कर डाले गये हों उनसे ऊपरी २-३ इंच स्तर से मिट्टी के नमूने एकत्र करने चाहिए।

यदि किसी विशेष दृष्टि से मिट्टी का अध्ययन करना हो तो उसी के अनुसार नमूना एकत्र करने की गहराई घटाई-बढ़ाई जा सकती है। उदाहरणार्थ लवणीय मिट्टियों में ऊपरी एक इंच में लवणों की सान्द्रता अत्यधिक होगी किन्तु सम्पूर्ण मिट्टी-संस्तरों में लवण के विस्तार को जानने के लिये प्रत्येक ६ इंच गहराई से नमूने एकत्र करने होंगे।

अधिकांश प्रयोगशालाएँ इस बात पर जोर देती हैं कि मिट्टी परीक्षण के लिये सम्मिलित नमूने एकत्र किए जायँ। सम्मिलित नमूने का अर्थ है कि जिस खेत की मिट्टी का परीक्षण करना हो उसमें से कम से १० से लेकर २० स्थानों पर छिद्र करके समान आयतन के नमूने एकत्र करके फिर उन्हें सम्मिलित करके एक प्रतिनिधि नमूना प्राप्त किया जाय। विभिन्न नमूनों को मोमजामा के ऊपर रखकर या बाल्टी में भरकर मिलाना चाहिए और फिर उसमें से १ पौंड नमूना पृथक कर लेना चाहिए।

ध्यान रहे कि चाहे एक छोटा खेत हो या बड़ा खेत या चरागाह, विभिन्न स्थलों से खोदे गये नमूने मिट्टी में तत्वों की विविधता के कारण ही लिये जाते हैं। प्रायः पाया गया है कि कुछ ही फीट की दूरी पर उर्वरकों के असमान वितरण या वनस्पतिक अवशेषों के कारण मिट्टियों में अन्तर आ जाता है। फिर भी सम्मिलित नमूने के लिये कम से कम ५ से १० एकड़ के क्षेत्रफल को आधार बनाया जाता है। वैसे किसी एक फसल के अन्तर्गत भूमि, किसी सीमा या चौहदी में बँधी भूमि या नदी, सड़क या रेल की पटरी के द्वारा पृथक भूखण्ड को सम्मिलित नमूने के लिये उपयुक्त माना जाता है। किन्तु क्या यह

सम्भव नहीं है कि कोई २५-३० एकड़ का फार्म ५ एकड़ वाले फार्म से अधिक समतल एवं समान हो। ऐसी दशा में एक ही सम्मिलित नमूने से बड़े क्षेत्र का भी काम चल जावेगा। किन्तु प्रारम्भ में ऐसी सम्भावना के लिये तैयार नहीं रहना चाहिये। उचित तो यही है कि छोटे-छोटे क्षेत्रफलों से तमाम नमूने एकत्र किये जायँ क्योंकि परीक्षण के उपरान्त ही उनमें समानता देखी जा सकती है, पहले से नहीं।

यह भी स्मरण रहे कि ऐसे क्षेत्रों या स्थलों से भी नमूने एकत्र न किये जायँ जो अन्य स्थलों से भिन्न हों। उदाहरणार्थ दलदल, मृतकुंड के स्थल, अपरदन ग्रस्त स्थल, ढाल तथा तल के बीच की रेखा आदि से पृथक से नमूने एकत्र होने चाहिए और शेष भागों से पृथक से। नमूने एकत्र करने के लिये टेढ़ी-मेढ़ी दिशाओं में चलना होगा।

नमूना एकत्र करते समय कई प्रकार के औजार प्रयुक्त किये जा सकते हैं। यथा खुरपी, फावड़ा, वेधक (borer) या आगर आदि। किन्तु यह ध्यान रखना होगा कि जिस किसी भी औजार को प्रयुक्त किया जाय उसके द्वारा वांछित गहराई तक की तथा समान आयतन की मिट्टी एकत्र हो।

फावड़े का प्रयोग करते समय V आकार का गड्ढा खोदना चाहिए और इसमें से प्रत्येक ओर से $\frac{1}{2}$ इंच मोटा चप्पा काट लेना चाहिए। कुल मिलाकर १०-२० चप्पे काट कर बाल्टी या बोरे में उन्हें भर कर मिश्रित कर लेना चाहिए।

मिट्टी नमूनों को एकत्र करने के समय के सम्बन्ध का भी ज्ञान अपेक्षित है। प्रायः जब खेत जुत कर तैयार हों तो नमूने लेने में सुविधा रहती है।

मिट्टियों की अम्लता, उपलब्ध फास्फोरस तथा पोटैशियम की मात्रायें वस्तुओं के अनुसार बदलती रहती हैं, अतः चतुर मिट्टी परीक्षक इसका ध्यान रखता है। यदि मिट्टी में लवणों की मात्रा ज्ञात करनी हो तो सदैव गर्मियों में या शुष्क मौसम के समय नमूने एकत्र करने चाहिए।

नमूने एकत्र करने के पश्चात् यदि हो सके तो उस क्षेत्र का मानचित्र खींचकर जहाँ से नमूने लिये गये हों अंकित करके नमूनों को बोरियों या पैकटों में भर कर नमूने की संख्या, स्थिति आदि लिख दें।

प्रायः ३ से ५ वर्ष बाद पुनः मिट्टी-परीक्षण की आवश्यकता होती है।

मिट्टी परीक्षा में प्रयुक्त विधियाँ

मिट्टी परीक्षण के लिये दो प्रकार की विधियाँ प्रयुक्त होती हैं:—

(१) रासायनिक

(२) जैविक

किन्तु इनमें से अधिकांशतः रासायनिक विधियाँ ही अधिक प्रचलित हैं।

रासायनिक परीक्षण में मिट्टी के कुछ ही अंश को, जो उपलब्ध अंश है उपयुक्त निष्कर्षण विलयनों द्वारा पृथक किया जाता है। ये विलयन सामान्य जल, सान्द्र-अम्ल या क्षारीय विलयन हो सकते हैं। निष्कर्षण के फलस्वरूप निकलने वाले तत्वों की मात्रा निष्कर्षण-विलयन की प्रकृति, मिट्टी की किस्म तथा निष्कर्षण की विधि पर निर्भर करती है। अभी तक कोई ऐसा सार्वभौम विलयन ज्ञात नहीं हो सका जो समस्त मिट्टियों से समान मात्रा में तत्वों को निष्कर्षित कर सके। यही कारण है कि प्रत्येक निष्कर्षण-विलयन के द्वारा प्राप्त तत्वों की तुलना क्षेत्र-प्रयोगों से करनी पड़ती है।

ये सामान्य परीक्षण जो सभी प्रगोगशालाओं में समान रूप से किये जाते हैं—पी-एच, उपलब्ध फास्फोरस तथा पोटैशियम हैं। इनके अतिरिक्त अधिकांश प्रयोगशालायें जीवांश, कैल्सियम तथा मैग्नीशियम के लिये भी परीक्षण करती हैं। कुछ प्रयोगशालाओं में विलेय लवण, मैंगनीज, नाइट्रेट आदि का भी निश्चयन होता है।

पी-एच का निश्चयन मिट्टियों की अम्लता या क्षारता ज्ञात करने के लिये किया जाता है। इसके लिये या तो पी-एच मापी यंत्र का व्यवहार होता है या एक किट (field Kit) जिसमें रंजक रहते हैं प्रयुक्त होता है। पी-एच मान का महत्व अम्लीय मिट्टियों में चूना की मात्रा ज्ञात करने के प्रसंग में है। यदि पी-एच ८.१ से अधिक होता है तो ऐसी मिट्टियाँ क्षारीय या ऊसर कहलाती हैं।

उपलब्ध फास्फोरस तथा पोटैशियम का निश्चयन पृथक-पृथक अथवा एक ही विलयन में किया जा सकता है। फास्फोरस के लिये प्रकाशमापी का उपयोग किया जाता है किन्तु अधिकांश

प्रयोगशालाओं में रंगीन चार्टों की सहायता से आँखों का प्रयोग करके फास्फोरस का निश्चयन होता है। पोटैशियम के लिये ज्वाला फोटो-मीटर का प्रयोग प्रचलित है।

विनिमयशील कैल्सियम तथा मैग्नीशियम का निश्चयन चूना-आवश्यकता के सिलसिले में किया जाता है। जीवांश की प्रतिशतता द्वारा नाइट्रोजन की उपलब्धि ज्ञात की जाती है।

जैविक विधियों द्वारा मिट्टियों के उपलब्ध भोज्य तत्वों का निश्चयन सम्भव है। इनके अन्तर्गत प्रयोगशाला में या ग्रीन हाउस में मिट्टी की अल्प मात्रा में जल्दी-जल्दी बढ़ने वाले पौदे उगाये जाते हैं। न्यूबार द्वारा प्रयुक्त विधि में राई अथवा जौ के बीजों का प्रयोग किया जाता है। कभी-कभी सूरजमुखी के बीज बोये जाते हैं। छोटे-छोटे गमलों में मिट्टी भर कर विभिन्न उर्वरकों को मिलाकर पौदों की वृद्धि देखी जाती है।

कभी-कभी जीवाणुओं के द्वारा भी तत्वों की आवश्यकता ज्ञात की जाती है। उदाहरणार्थ ऐस्परजिलस नाइजर द्वारा पोटैशियम का परीक्षण किया जाता है।

ऐसा ज्ञात हुआ है कि रासायनिक परीक्षणों की तुलना में जैविक विधियाँ अधिक विश्वसनीय नहीं हैं और उनमें अधिक समय लगता है।

परीक्षणों के बाद परिणामों की विवेचना आवश्यक होती है। यदि मिट्टी का मानचित्र उपलब्ध हो और खेत की स्थिति ज्ञात हो तो मिट्टी-परीक्षक यह बता सकता है कि भूमिसंस्तर किस प्रकार के होंगे। यदि ऊपरी स्तर में कुंड की गहराई तक तत्वों की कमी हो तो उन्हें ऊपर से डालकर पूर्ति की जा सकती है। यदि काफी गहराई पर तत्वों की कमी हो तो कुंड से नीचे उन तत्वों के डाले जाने का प्रबन्ध करना होता है।

मिट्टी के जल-निकास एवं वातन का भी पूरा-पूरा ज्ञान होना चाहिए। तुरन्त डाला गया चूना या उर्वरक एक वर्ष में नीचे नहीं जा पाता।

यदि विश्लेषक के समक्ष दो-तीन वर्ष पहले बोई गई फसलों एवं आगे के दो-तीन वर्षों में बोई जाने वाली फसलों की जानकारी प्रदान कर दी जाय तो वह खेत की उर्वरता का सही-सही अनुमान लगा सकता है।

मिट्टी परीक्षणों से प्राप्त परिणामों को दो प्रकार से व्यक्त किया जाता है—एक तो प्रति एकड़ में उपलब्ध तत्वों की मात्रा तथा दूसरे न्यून, मध्यम, उच्च मात्रा के रूप में। जिन मिट्टियों में उर्वरक डालने की ग्रावश्यकता नहीं होती उन्हें 'उच्च' मिट्टियाँ; जिनमें केवल निर्वाह के लिये उर्वरक की ग्रावश्यकता हो उन्हें "मध्यम" तथा जिनमें काफी उर्वरकों की ग्रावश्यकता होती है वे 'न्यून' उर्वरता वाली मिट्टियां कहलाती हैं।

परीक्षणों से प्राप्त परिणामों को ध्यान में रखते हुये जो संस्तुतियां की जाती हैं वे नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटैश की मात्राग्रों को प्रति एकड़ के लिये पौंडों में व्यक्त की जाती हैं। तद्नुसार उर्वरक की किस्म ग्रौर उनकी मात्रा की भी संस्तुति की जाती है। उर्वरक की उपलब्धि के ग्रनुसार ही उर्वरक की किस्म निर्धारित की जाती है। संस्तुत उर्वरकों एवं उनको डालने की विधियों का समुचित प्रबन्ध होना चाहिए।

किन्हीं-किन्हीं देशों में मिट्टी-परीक्षण करके परिणामों को सूचीबद्ध कर लिया गया है। इन परिणामों का उपयोग शोधकार्यों तथा कम्पनियों या एजेन्सियों के हित में होता है।

स्मरण रहे कि हमारे देश में मिट्टी का परीक्षण निःशुल्क किया जाता है। इसके लिये राज्य सरकार एवं केन्द्रीय सरकार की ग्रोर से प्रत्येक जिले में कम से कम एक मिट्टी परीक्षण केन्द्र की स्थापना की गई है जहाँ पर परीक्षण का कार्य वेतनभोगी विश्लेषक द्वारा किया जाता है। प्रत्येक मिट्टी के नमूने के परीक्षण के लिये उसे १०० पैसे प्राप्त होते हैं।

संस्तुति करते समय ग्रार्थिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखना ग्रावश्यक है।

निःसंदेह फार्मों की स्थापना द्वारा ग्रन्नोत्पादन में वृद्धि लाने के लिये मिट्टी परीक्षण का ग्रत्यधिक महत्व है।

● मिट्टी ही सोना है ●

जब स्मरण शक्ति भी मोल ली जा सकेगी

● श्रीहर

शायद यह कथन कि "स्मरण शक्ति भी मोल मिल सकती है" उन अभिभावकों के लिये परमानन्द की सूचना प्रतीत हो जिनके पुत्र, पुत्रियाँ या अन्य स्वजन बोदे और भुलक्कड़ हैं। प्राचीन काल से अनेक लोग उन औषधियों के प्रति श्रद्धालु रहे हैं, जिनके सेवन से लोगों की स्मरण शक्ति बढ़ती थी। विद्यार्थियों के लिये तो यह विशेष आकर्षण की बात थी। किन्तु आज के इस वैज्ञानिक युग में ऐसी बातों पर विश्वास नहीं होता।

स्मरण शक्ति या स्मृति का सम्बन्ध मस्तिष्क से है। मस्तिष्क मनुष्य की खोपड़ी के भीतर सुरक्षित २ मुट्ठियों के आकार का तन्तु लोथड़ा है जिसके भीतर स्मृतियाँ उसी प्रकार अंकित हैं जिस प्रकार कि पुस्तक के छपे पृष्ठ। ये स्मृतियाँ कई प्रकार की हैं—सुई चुभाने पर पीड़ा का अनुभव, साइकिल की सवारी में बिना देखे पावों द्वारा उसका चालन, ५० वर्ष पूर्व की घटनाओं का यथातथ्य चित्रण, गणित के प्रश्न का हल आदि। इन सभी क्रियाओं में विभिन्न प्रकार से मस्तिष्क को कार्य करना पड़ता होगा क्योंकि ये सर्वथा पृथक क्रियाये हैं किन्तु आश्चर्य होता है कि एक साथ इतनी स्मृतियाँ मस्तिष्क में कैसे संजोई हुई हैं? इससे भी आश्चर्यजनक बात यह है कि आवश्यकता पड़ने पर क्षण भर में ही ये स्मृतियाँ कार्य-रूप में परिणत होने लगती हैं। वस्तुतः ये ऐसी पहेलियाँ हैं जिनके सम्बन्ध में मनुष्य प्रारम्भ से ही उत्सुक रहा है।

यदि यह कहा जाय कि मनुष्य ही मस्तिष्क से युक्त प्राणी है तो यह असत्य कथन होगा क्योंकि छोटे प्राणियों में यहाँ तक केंचुये में भी स्मरण शक्ति पाई जाती है।

यदि मस्तिष्क सम्बन्धी प्राचीन मान्यताओं पर दृष्टिपात किया जाय तो पता चलेगा कि अरस्तू के भी पहले ग्रीकवासियों का विश्वास था कि जन्म के समय मनुष्य मन से शून्य होता था किन्तु वय

के साथ ही स्मृतियाँ पटल पर अंकित होती रहती थीं। उनका यह भी मत था कि हृदय ही मन का संचालक था और मस्तिष्क रक्त को शीतल करने वाला होता था। इस प्रकार मन तथा मस्तिष्क में सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास था।

१७वीं शती में फ्रांस के दार्शनिक-वैज्ञानिक रेने डेस्कार्टे ने मस्तिष्क को सोचने-विचारने का अंग माना। बीसवीं शती के प्रारम्भ में रिचार्ड साइमान नामक एक फ्रेंच वैज्ञानिक ने यह कल्पना की कि स्मरण शक्ति सूक्ष्म कणों से बनी हुई है जिन्हें उसने 'इनग्राम' (engram) की संज्ञा प्रदान की। यदि यह सत्य है तो मस्तिष्क के कुछ अंशों को कतर-ब्योंत कर स्मृति में कमी की जा सकनी सम्भव है। यह देखा गया कि यद्यपि शल्योपचार द्वारा स्मृति नष्ट की जा सकती है, किन्तु 'इनग्राम' को पहचान पाना कठिन है। चूहों के साथ किये गये प्रयोगों से यह ज्ञात हुआ कि स्मृति-विनाश मस्तिष्क में से काटे गये अंश के ऊपर निर्भर करता है और इनग्राम पूरे मस्तिष्क पर विस्तीर्ण प्रतीत होता है।

ज्यों-ज्यों नवीन यंत्र एवं नवीन विधियाँ विकसित होती रहीं वैज्ञानिकों ने मस्तिष्क के सम्बन्ध में सूक्ष्म जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया। इसी बीच जीवन को नियन्त्रित करने वाले भीम अणुओं की संरचना-प्रोटीन अणुओं-के संश्लेषण पर विशिष्ट कार्य हुआ। यह सिद्ध किया गया कि डी० एन० ए० (डेआक्सीरिबोन्यूक्लीइक अम्ल) आनुवंशिकता के लिये उत्तरदायी है। यही नहीं, रिबोन्यूक्लीइक अम्ल (आर० एन० ए०) के सम्बन्ध में भी जानकारी प्राप्त की गई। फलस्वरूप एंजाइमों, हार्मोनों तथा अन्य प्रोटीनों के संश्लेषण के साथ ही जीवित प्राणियों में अनुकूलन की प्रवृत्ति पर भी प्रकाश पड़ा।

दो प्रकार की शोधों से स्मरण-शक्ति के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त हुई है। एक तो तन्त्रिका प्रणाली से सम्बद्ध शोध। दूसरे न्यूक्लाइक अम्ल से सम्बन्धित शोध। भूलने वाली स्मृतियाँ ऐसी वैद्युत कम्पनें हैं जो पूरी तन्त्रिका प्रणाली में चक्कर लगाती हैं किन्तु जो स्मृतियाँ स्थायी हैं वे रासायनिक कोड (code) के रूप में संचित होती रहती हैं। ऐसी सम्भावना है कि ये वैद्युत कम्पन आर० एन० ए० या प्रोटीनों पर कुछ चिन्ह छोड़ जाते हैं। इस प्रकार एक बार वैद्युत रूप में स्मृति के रासायनिक स्मृति में परिणत हो जाने पर वह प्राणी के जीवन में

बारम्बार स्मरण आती रहती है। डी० एन० ए० के द्वारा स्मृति का आनुवंशिक स्थानान्तरण सम्भव है।

किन्तु यदि यह मान भी लिया जाय कि स्मृति सम्बन्धी यह रासायनिक सिद्धान्त सत्य है तो भी कुछ प्रश्न ज्यों के ज्यों अनुत्तरित रहे आते हैं—स्मृति आर० एन० ए० में संगृहीत है अथवा प्रोटीन या उसके खंडांश में ? क्या ये पदार्थ पंच कार्ड की भाँति हैं ? अथवा ये यौगिक स्विच की भाँति हैं, जो वैद्युत कम्पनों को जिधर चाहें मोड़ सकें।

सन् १९५३ में टेक्सास विश्वविद्यालय के दो युवावैज्ञानिकों-मैकानेल तथा थाम्सन ने जल-कीटों पर प्रकाश के प्रयोग द्वारा यह आशा की थी कि जब जब उन पर प्रकाश पड़ेगा तब तब वे सिकुड़ेंगे क्योंकि प्रत्येक बार शाक (धक्का) लगेगा किन्तु उन्होंने देखा कि अन्ततः वे कीट बिना धक्का का अनुभव किये ही सिकुड़ते रहे। बाद में जब इन कीटों को खण्ड-खण्ड कर दिया गया तो भी वे जीवित रहे—प्रत्येक खण्ड पूर्ण कीट में विकसित हो गया जिनमें प्रकाश के प्रति वैसा ही संवेदन था। आश्चर्य का ठिकाना तो तब न रहा जब इन्हीं में से कुछ खण्डों को जंगली कीटों को खिला देने पर उनमें स्मृति सम्बन्धी गुण स्थानान्तरित हो गये फलस्वरूप वे भी प्रकाश के सम्मुख सिकुड़ते देखे गये।

इसके बाद यह जानने के लिये प्रयोग हुये कि मस्तिष्क ही स्मृति के लिये उत्तरदायी है या आर० एन० ए०। फलस्वरूप कीटों के सिर तथा पुच्छ भाग के खण्डों को राइबोन्यूक्लियेस ऐंजाइम की उपस्थिति में जल में डाला गया। यह ऐंजाइम आर० एन० ए० को अक्रिय बनाता है। इस प्रयोग में सिर वाला भाग प्रकाश के प्रति संवेदी देखा गया किन्तु पुच्छ भाग निश्चेष्ट रहा। उससे यह सिद्ध हुआ कि या तो मस्तिष्क या आर० एन० ए० स्मृति के लिये उत्तरदायी हैं। किन्तु ये कीट प्रयोग चूहों या मनुष्यों में सत्य नहीं उतरे।

एक वर्ष पूर्व जैकोबसन ने चूहों से सम्बन्धित अपने प्रयोग किये। चूहों को इस प्रकार प्रशिक्षित किया गया कि जैसे ही ध्वनि हो वे उस प्याले की ओर दौड़ें जिसमें खाने की एक गोली आ गिरती थी। जब वे पूर्णतः प्रशिक्षित हो गये तो उन्हें मार करके उनके मस्तिष्क निकाल लिये गये और उनसे आर० एन० ए० निकाल करके अप्रशिक्षित चूहों के पेटों में इंजेक्शन द्वारा प्रविष्ट कर दिया गया। इससे अत्यन्त रोचक परिणाम मिला—ये चूहे भी प्याले की ओर ध्वनि होने पर

दौड़ते थे। यदि इसी प्रकार से प्रकाश के प्रति संवेदी चूहों के मस्तिष्क निकाल कर उनके अवयवों को अप्रशिक्षित चूहों में प्रवेश किया जाय तो वे प्रकाश संवेदी पाये गये। किन्तु विचित्र बात यह रही कि प्रथम कोटि के चूहे न तो द्वितीय कोटि के चूहों की स्मृति पा सके और न द्वितीय कोटि के प्रथम कोटि की स्मृति।

अब कई प्रकार के प्रयोग प्रारम्भ हो चुके हैं जिनमें चूहे के स्थान पर कबूतरों को लिया गया है।

कुछ वैज्ञानिकों ने मस्तिष्क-निष्कर्ष इंजेक्ट न करके मस्तिष्क को मन्द बनाने का यत्न किया है। यथा ऐसे पदार्थ इंजेक्ट करना जिनसे आर० एन० ए० तथा प्रोटीन पर उल्टा प्रभाव पड़े। प्यूरोमायसिन ऐसा ऐंटीबायटिक है जो आर० एन० ए० द्वारा प्रोटीन संश्लेषण को रोकता है।

ऊपर दिये गये स्मृति पुनर्जनन सम्बन्धी प्रयोगों में अब भी कुछ कमियाँ हैं—यथा कभी-कभी स्मृति का स्थानान्तरण न हो पाना तथा सीमित पशुओं पर ही इन प्रयोगों की पुष्टि। पशुओं पर विभिन्न दशाओं के मानकीकरण की भी आवश्यकता बनी हुई है।

डेनमार्क, जेकोस्लोवैकिया तथा अमरीका में स्मृति-स्थानान्तरण सम्बन्धी प्रयोग हो रहे हैं जिनसे यह आशा बँधने लगी है कि भविष्य में हमारे बच्चे बड़े-बड़े ग्रंथों को बात की बात में रट लेंगे। किन्तु वैज्ञानिकों को अब भी बहुत सा कार्य करना शेष है। उन्हें मस्तिष्क के शुद्ध निष्कर्ष प्राप्त करने में न जाने कितना श्रम लगाना पड़े।

तब शायद स्मृति की पुड़ियाँ मोल ली जा सकेंगी। जो सबसे प्रतिभावान पुरुष होगा उसके मस्तिष्क की पुडियाँ न जाने किस भाव बिकेंगी। शायद ऐसे पुरुषों का जीवन दूभर हो जावेगा, उनकी दिन दहाड़े चोरी हो जावेगी। किन्तु उनकी समग्र प्रतिभा के अनेक प्रतिरूप उत्पन्न किये जा सकेंगे। तब प्रतिभा का समान विभाजन होगा।

किन्तु वे दिन दूर हैं—शायद स्वप्न लोक की भाँति।

मन शरीर का राजा है

[क्रमशः]

दैनिक जीवन में रसायन—३

● डॉ० शिवगोपाल मिश्र

हैंड लोशन तथा क्रीम

वे गृहणियाँ जिन्हें दिन में बारम्बार बर्तन धोने पड़ते हैं तथा कपड़े साफ करने पड़ते हैं उनके हाथ की चमड़ी सिकुड़ने लगती है और खुरदरी हो जाती है। विशेषतः साबुन के क्षार से चमड़ी की मृदुता जाती रहती है। फलतः यदि हाथों को मुलायम तथा आकर्षक बनाये रखना हो तो हैंड लोशन तथा क्रीम का व्यवहार करना चाहिए। पहले तो यह ध्यान रखना चाहिए कि जितनी बार भी पानी में हाथ डुबाया जाय, प्रत्येक बार १० मिनट से अधिक तक पानी के भीतर न रहे और फिर प्रत्येक बार हाथ को भलीभाँति सुखा लिया जावे। आलस्य से काम बिगड़ सकता है। इसके बाद हाथों में लोशन तथा क्रीम मल ल। इनके द्वारा हाथ को चिकनाई बनी रहती है और चमड़ी सिकुड़ती या चिटकती नहीं।

हैंड *लोशनों* में ग्लिसरीन लोशन सर्वप्रमुख हैं। इसमें ग्लिसरीन तथा गुलाब जल मिले रहते हैं। कभी-भभी बोरिक अम्ल भी मिला दिया जाता है।

यह विचित्र बात है कि जब ग्लिसरीन त्वचा को सुखाती है तो वह उसे मुलायम कैसे कर सकती है? किन्तु नहीं, यह देखा गया है कि अन्य पदार्थों के मिलाने से ग्लिसरीन प्रभावशून्य हो जाती है।

कुछ पुरुष एवं महिलायें शीतलीकारक लोशन से हाथ धोना पसन्द करते हैं क्योंकि वे जल्दी सूखते हैं किन्तु स्मरण रहे कि जल्दी वाष्पित होने के कारण ये हाथ की चमड़ी को शुष्क एवं खुरदरा बनाने वाले होते हैं।

हाथ के लिये प्रयुक्त होने वाली क्रीम मुखक्रीम की ही भाँति है। इसमें भी लैनोलिन एक प्रमुख अवयव होता है। यही त्वचा को मुलायम रखता है। क्रीम को हाथ में मलना चाहिए, तभी हाथ मुलायम रह सकते हैं।

अतः हाथों को मुलायम रखने का सर्वोत्तम उपाय यह है कि आप लैनोलिन या जैतून के तेल को खरीद कर रखें और रात्रि में सोने के पूर्व हाथों में ठीक से मालिश करके सोवें। कभी भी अधिक मँहगे लोशन या क्रीम के पीछे न जायँ।

नाखून पालिश

कुछ लोग अपने हाथ के नाखूनों की परवाह नहीं करते जिससे वे भद्दे हो जाते हैं। शारीरिक सौंदर्य में नाखूनों का महत्व है अतः उन्हें सुन्दर बनाये रखने के लिये किसी न किसी नाखून पालिश का व्यवहार करना उपयोगी होगा। ये नाखून पालिश कई प्रकार की हो हो सकती हैं—

नाखून पालिश, उपत्वचा (कुटिकल) अपसारक, नाखून श्वेत, पालिश अपसारक तथा नाखून विरंजक।

कुछ वर्ष पूर्व जो नाखून पालिश प्रयुक्त होती थी उसमें केवल टिन आक्साइड तथा टैल्क मिले होते थे। इसके प्रयोग से नाखूनों में कान्ति आ जाती थी। किन्तु आजकल की पालिश सर्वथा भिन्न अवयवों से तैयार की जाती है। उसके चार अंग होते हैं—

(१) कोई क्षार पदार्थ यथा नाइट्रोसेल्यूलोस या पाइरोक्सिलिन
(२) विलायक यथा ऐसीटोन या ऐल्कोहाल
(३) प्रसारक यथा एमाइल ऐसीटेट
(४) कोई भी वांछित रंग

इस प्रकार आज की नाखून पालिश नाइट्रोसेल्यूलोस लैकर है। कुछ लोगों का विचार है कि ऐसी पालिशों के लगाने से नाखूनों की श्वसन क्रिया रुक जाती है किन्तु स्मरण रहे कि नाखूनों द्वारा श्वसन क्रिया होती ही नहीं। यह भुठकावा है।

उपत्वचा अपसारक पोटैशियम हाइड्राक्साइड, ग्लिसरीन तथा जल को मिलाकर तैयार किये जाते हैं। चूँकि कैंची से नाखूनों का काटना सुविधाजनक नहीं होता अतः इन अपसारकों का प्रयोग किया जा सकता है किन्तु स्मरण रहे कि तुरन्त ही अँगुलियों को सिरके में डुबो कर क्षार को उदासीन कर लें तथा नाखूनों में जैतून का तेल लगा लें।

नाखून श्वेत में श्वेतकारक पदार्थ मिले रहते हैं। इनमें जिंक आक्साइड अथवा टाइटैनियम आक्साइड का प्रयोग होता है।

नाखून पालिश को छुटाने के लिये *नाखून पालिश अपसारक* का प्रयोग किया जाता है। इसमें ऐसीटोन या ऐथिल ऐसीटेट के साथ कोई तेल तथा कोई एक सुगंधि मिली रहती है। इन तीनों को निम्नांकित अनुपात में मिलाकर काम में लाया जा सकता है—

एथिल ऐसीटेट	१ औंस
ऐसीटोन	३ औंस
जैतून का तेल या अंडी का तेल	३० बूँद

नाखून विरंजकों में हाइड्रोजन पराक्साइड, आक्सैलिक अम्ल, सिट्रिक अम्ल तथा हाइड्रोक्लोरिक अम्ल प्रमुख हैं। किन्तु इनमें से आक्सैलिक अम्ल विषैला होता है और हाइड्रोक्लोरिक अम्ल संक्षारक (काट देने वाला) होता है अतः इन दोनों का व्यवहार वर्जित है। नींबू का रस सिट्रिक अम्ल से पूर्ण होता है अतः उसका उपयोग किया जा सकता है। किन्तु यह क्षीण विरंजक है फलतः बारम्बार रगड़ कर नाखून पालिश छुड़ानी पड़ती है।

रूप-सज्जा के लिये प्रयुक्त सामग्रियाँ

पाउडर ही रूप-सज्जा के लिये पर्याप्त नहीं है। सिने तारिकाय, युवतियाँ तथा अन्य स्त्रियाँ होठों को भी रंजित करती हैं। फलतः होठों की लाली, रूज तथा मस्कारा का प्रयोग रूप सज्जा के लिये किया जाता है। होठों की लाली वास्तव में क्रीम या मोम है जिसमें उपयुक्त रंग मिला रहता है। ये रंग मरक्यूरोक्रोम, ऐनिलीन रंजक, लाक्षायें तथा ब्रोमो अम्ल होते हैं। स्मरण रहे कि मरक्यूरोक्रोम में उपस्थित मरकरी (पारद) विषैला होता है अतः लगातार इसे लगाने से हानि की सम्भावना बनी रहती है। ब्रोमो अम्ल के कारण लाली का रंग छूटता नहीं किन्तु जिन युवतियों के होठों की त्वचा सुकुमार होती है उनके होठों पर उत्तेजना (खुजली) होने लगती है। ऐनिलीन रंजक विषैले होते हैं अतः जिन लालियों में ये रंजक हों उन्हें सावधानी के साथ प्रयोग में लाना चाहिए। कटे-फटे होठों पर इनको कभी नहीं लगाना चाहिए। लाक्षायें हानिरहित होती हैं।

होंठ की लाली में प्रयुक्त होने वाले अवयव अत्यन्त सस्ते होते हैं किन्तु आश्चर्य है कि बाजारों में दो या ढाई से लेकर १५-२० रुपये तक की लाली-डिबियाँ मिलती हैं।

रूज (गालों की लाली) कई रूपों में मिलता है—क्रीम, पाउडर अथवा बट्टी के रूप में। क्रीम या पाउडर के साथ वांछित रंग मिलाने से संगत रूप बनता है। बट्टी बनाने के लिये पानी मिलाया जाता है। स्मरण रहे कि पारद के लवणों से खुजलाहट होती है अतः अपनी प्रकृति के अनुसार ही रूज का चुनाव करें। रूजों का मूल्य मुख-पाउडर से कुछ ही अधिक होता है।

मस्कारा को सुरमा कहते हैं। इसे पलकों में लगाया जाता है। इससे आँख की सुन्दरता बढ़ती है। किसी मोम या वैसलीन में काला रंग मिलाकर मस्कारा बनाया जाता है। ध्यान रहे कि यदि ऐनिलीन रंजक या सिल्वर नाइट्रेट डालकर यह रंग लाया गया तो सदा के लिये आँख की रोशनी चौपट हो जावेगी। केवल कजली मिश्रित मस्कारा ही सर्वोत्कृष्ट होता है।

दंत-मंजन

दंत-मंजनों में से पेस्ट, पाउडर तथा कुल्लियाँ प्रसिद्ध हैं। दंत-मंजनों से दाँत की सफाई होती है, और उनमें चमक आती है किन्तु बिनाका टूथ पेस्ट के जैसे चमत्कारी विज्ञापन पत्रों या रेडियो द्वारा होते हैं उनमें कोई सत्य नहीं होता। विज्ञापनों का यह दावा कि दंत मंजनों से मुँह के कीटाणु नष्ट होते हैं, पायरिया रोग दूर होता है या बुरी गंध दूर होती है सरासर भ्रामक है। यदि कोई ऐसे रोगों को दूर करने के लिये बहकावे में आकर दंत-मंजन का प्रयोग करता है तो उसे भारी संकट का सामना करना पड़ेगा। कारण कि ऐसे रोगों की दवा डाक्टरों के पास है न कि दंतमंजन के विज्ञापनों में।

दंत-मंजनों का कोई गुप्त नुस्खा नहीं होता। सबों में समान रूप से खडिया (चाक) रहती है, जिसमें साबुन, शर्करा, सैकरीन या सुगन्धियाँ मिली रहती हैं। इनसे पाउडर बनता है। यदि इसमें जल, ग्लीसरीन तथा शहद मिला दिये जायँ तो पेस्ट प्राप्त होगा।

कुल्लियाँ तरल रूप में प्राप्त होती हैं। इनमें सल्फोनेटित उच्च ऐल्कोहलों के सोडियम लवणों का ऐल्कोहलीय विलयन रहता है। जिसमें कुछ रंग तथा सुगन्धि वाले पदार्थ मिला दिये जाते हैं। इस प्रकार ये कुल्लियाँ साबुन-रहित साबुन हैं जिनमें कोई अनोखी विशिष्टता नहीं पाई जाती।

यदि कोई यह कहे कि उपर्युक्त में से कोई एक मंजन दूसरे से श्रेष्ठ है तो यह निराधार बात होगी। यदि किसी बात की आवश्यकता है तो इतनी ही कि मंजन को दाँतों में ब्रश द्वारा ठीक से दिन में कम से कम दो बार मला जाय।

दंत-मंजनों में सबसे आवश्यक गुण यह होना चाहिए कि सफाई करने वाला अवयव दांतों में खुरच न उत्पन्न करे। इस दृष्टि से खड़िया का चूर्ण श्रेष्ठ है। जो लोग दांतों को मिट्टी, बालू या अन्य खुरदुरी चीज से रगड़कर चमक लाना चाहते हैं वे दाँतों के साथ अन्याय करते हैं। अतः ऐसा मंजन कभी काम में न लायें जो चिकना न हो।

अच्छा तो यह होगा कि आप किसी भी प्रकार का मंजन न खरीद कर अपने हाथों से उसे तैयार कर लें। उदाहरणार्थ २ भाग नमक तथा एक भाग खाने का सोडा मिलाकर प्रयोग करें। अन्यथा किसी दूकान से खड़िया का चूर्ण खरीद लें। एक उपयोगी दंत-मंजन की संरचना निम्न प्रकार होगी :—

अवक्षेपित खड़िया	४ भाग
मैग्नीशियम कार्बोनेट	३ भाग
चूर्णित शर्करा	१ भाग
पिपरमिन्ट का तेल	७ बूँद

यदि पेस्ट बनानी हो तो जल तथा ग्लीसरीन मिला दें।

हजामत बनाने के लिये सामग्री

हजामत बनाते समय साबुन, क्रीम, लोशन आदि का प्रयोग किया जाता है। किन्तु शायद आपको ज्ञात न हो कि देहातों में अब भी कुछ लोग बालों को केवल पानी से भिगोकर क्षौर-कर्म करते हैं। धीरे-धीरे साबुन का प्रचलन हुआ जिसमें से झाग उठाकर उसे दाढ़ी पर लगाया जाने लगा। इसके लिये साबुन, ब्रश तथा पानी के लिये बर्त्तन की आवश्यकता पड़ती है। लोगों को हजामत-दक्सा अपने साथ ले जाना पड़ता है। किन्तु अब जो ऐसा करते हैं वे पुरानियाँ माने जाते हैं। अब पुरानी साबुन के स्थान पर नई-नई साबुनें बाजारों में बिकती हैं। किन्तु यदि उनकी रासायनिक संरचना का पता लगाया जाय तो उनमें किसी प्रकार का अन्तर नहीं मिलेगा। हाँ इतना जरूर है कि प्रत्येक हजामत की कीमत बढ़ जाती है।

हजामत की क्रीम वास्तव में पाउडर ही है जिसे ग्लीसरीन या लैनोलीन में सान लिया जाता है। आजकल ब्रश के बिना लगाई जाने वाली क्रीम का प्रचलन है। इसमें स्टियरिक अम्ल, तैल, ग्रीस तथा पोटैशियम हाइड्राक्साइड मिला रहता है। यदि ठीक से तैयार की जाय तो इसके लगाने से किसी प्रकार की हानि नहीं होती किन्तु सामान्य क्रीम की अपेक्षा यह महँगी अवश्य रहती है।

लोशन की आवश्यकता रेजर से दाढ़ी बनाने के बाद चमड़ी में होने वाली खुजलाइट या दर्द को दूर करने के लिये पड़ती है। यदि उचित प्रकार का लोशन लगाया जाय तो खुले हुए छिद्रों का मुख संकुचित होगा, कटी त्वचा निर्जर्मित होगी और मुँह की चमड़ी शीतल हो जावेगी।

लोशन में बोरिक अम्ल, ऐल्कोहल, ग्लीसरीन तथा जल मिले रहते हैं। यदि किसी प्रकार का लोशन न हो तो ठंडे-जल से ही काम चलाया जा सकता है।

कटे हुये भाग में फिटकरी की डली को पानी में डुबोकर लगाने से काफी लाभ होता है। कभी-कभी भुनी फिटकरी का चूर्ण भी काम में लाया जाता है।

ऐसा विश्वास है कि लगातार रेजर से दाढ़ी बनाते रहने से चमड़ी कड़ी पड़ जाती है। अतः इस दोष से बचने के लिये आजकल बिजली से हजामत की जाने लगी है। इससे क्या लाभ और क्या हानियाँ होती हैं इसके विषय में मतभेद जान पड़ता है।

टायलेट साबुन

स्वास्थ्य के लिये सफाई कितनी आवश्यक है यह सभी मानते हैं। शायद सफाई के सम्बन्ध में विज्ञान ने 'साबुन' बना कर मानव मात्र की जो सेवा की है वह अद्वितीय है। फिर भी कुछ लोगों को सारे शरीर में साबुन रगड़ने और पानी से धोने में समय का अपव्यय प्रतीत होता है फलतः ऐसे पदार्थ की खोज की जा रही है जो बिना किसी प्रकार के प्रयास के ही सारे शरीर को साफ कर सके परन्तु दुर्भाग्यवश अभी तक ऐसा पदार्थ नहीं मिल सका। इसके कारण साबुन ही सर्वोत्कृष्ट सफाई की साधन बनी हुई है।

साबुन तैयार करना

साबुन है क्या ? वनस्पतिक या पशु वसा या तेल के साथ किसी

क्षारक या हाइड्राक्साइड की अभिक्रिया से प्राप्त पदार्थ। संक्षेप में
वसायें + क्षार = ग्लिसरीन + साबुन

प्रमुख वसायें एवं तेल, जिनका प्रयोग साबुन में बनाने में होता है वे हैं—जैतून का तेल, ताड़ का तेल, बिनौले का तेल, पशु-चर्बी, नारियल का तेल, रेंडी का तेल। यदि *मुलायम साबुन* बनानी होती है तो पोटैशियम हाइड्राक्साइड नामक क्षार प्रयुक्त किया जाता है किन्तु यदि *कठोर साबुन* की आवश्यकता हुई तो सोडियम हाइड्राक्साइड का व्यवहार होता है।

नहाने की उत्तम साबुन (टायलेट सोप) में आवश्यक गुण यह होना चाहिए कि उसमें तेल तथा क्षार की उपयुक्त मात्रायें मिली हों। यदि क्षार की मात्रा तनिक भी अधिक हुई तो चमड़ी में खुजलाहट एवं घाव हो सकते हैं।

स्मरण रहे कि साबुन के अवयवों का मूल्य अधिक नहीं होता फलतः अधिक मँहगी साबुन उत्तम कोटि की होगी, यह धारणा निर्मूल है। कम्पनी वाले प्रमाणित वस्तु न देकर उसका मूल्य अधिक ले लेते हैं।

पारदर्शक साबुन या तैरने वाले साबुन में कोई चमत्कारी गुण नहीं होते। यदि साबुन बनाते समय ग्लीसरीन मिला दी जाय तो वह पारदर्शक हो जाती है। इसी प्रकार यदि उसमें वायु प्रविष्ट कर दी जाय तो वह तैरने लगती है।

साबुन में गर्द साफ करने के अतिरिक्त निर्जर्मीकारक गुण भी होते हैं फलतः खाना खाने के पूर्व मुलायम साबुन से हाथों को धो लेना ठीक रहता है।

केश के लिये सामग्री

लम्बे केशों वाली स्त्रियाँ सुन्दरी मानी जाती हैं किन्तु क्या वे केशों की उचित देखरेख से परिचित हैं? शायद जिनके केश छोटे या खराब होते हैं वे ही लम्बे केश के महत्व से ईर्ष्यालु होती हैं।

केशों की रक्षा के लिये कम से कम प्रत्येक सप्ताह नहीं तो पखवारे में एक बार उनकी शम्पी की जानी चाहिए। सिर की मालिश तथा बालों में कंघी करना दूसरा कर्तव्य है। इससे सिर में रक्त का परिभ्रमण ठीक से होता है और केश बढ़ते हैं। केशों के ऊपर चुस्त हेट न लगाना, साफ कंघे-कंघी या ब्रश से बाल सँवारना एवं उत्तम आहार करना—

ये उपयोगी बातें हैं जिन पर ध्यान रखना होता है। स्मरण रहे कि खोपड़ी में होने वाले रोग छूत जन्य हैं फलतः न तो किसी की टोपी लगावें और न दूसरे की कंघी ही काम में लावें।

केशों या बालों की सुरक्षा के लिये तथा उन्हें आकर्षक बनाने के लिये कई प्रकार की सामग्रियाँ बाजारों से खरीदी जा सकती हैं। इनमें प्रमुख हैं शम्पू, टानिक, रंजक तथा तैल।

शम्पू का प्रयोग बालों को ठीक से साफ करके उन्हें मुलायम एवं चमकीला बनाने के लिये होता है। आखिर शम्पू साबुन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसमें ऐल्कोहल मिला रहता है। पहले बादाम का तेल, जैतून, नारियल के तेल और पोटैशियम हाइड्राक्साइड से मुलायम साबुन तैयार की जाती है।

शम्पू का एक प्रकार "साबुनहीन साबुन" है जिसमें तेलों को पहले गंधकाम्ल के साथ अभिकृत करके उन्हें जल में विलेय बना लिया जाता है। कभी-कभी मिट्टी का तेल भी मिला रहता है। इन शम्पूओं से झाग नहीं उठता। कुछ अन्य प्रकार के भी शम्पू बनाये जाते हैं जो कठोर जल वाले प्रान्तों में उपयोगी सिद्ध हुये हैं क्योंकि वहाँ साबुन के साथ कोई झाग नहीं बनता।

कभी-कभी बाल साफ करने के बाद नींबू के रस या सिरके से मिले पानी से उन्हें धोया जाता है। इससे यह लाभ होता है कि बालों में लगा साबुन या अधिक तेल छूट जाता है जिससे बाल मुलायम तथा फूले हुये प्रतीत होते हैं।

केशों के टानिकों का प्रयोग सिर के 'गंजापन' को दूर करने के लिये किया जाता है। यदि यह गंजापन किसी रोग के कारण है तब तो इन टानिकों का कुछ उपयोग होता है अन्यथा जिनका गंजापन आनुवंशिक है वे बहकावे में आकर ही गंजापने को दूर करने के लिये नाना प्रकार की टानिकें लगाते हैं। स्मरण रहे कि आनुवंशिक गंजापने की कोई दवा नहीं है अतः उसमें अनेकानेक बहुमूल्य टानिकों के लगाने से धन की बेकारी के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं आता।

अधिकांश केश टानिकों में कोई न कोई निर्जमीकारक रहते हैं यथा रिसार्सिनाल, आर्सेनिक के यौगिक अथवा सैलिसिलिक अम्ल। इनके साथ ही उनमें ऐल्कोहाल, सुगंधि तथा तेल मिले रहते हैं। कभी-कभी ऐसे टानिकों के लगाने से लाभ के बजाय हानि हो सकती है।

खिजाबों के प्रयोग से लोग बहुत काल से परिचित हैं। इनका प्रयोग दो उद्देश्यों से किया जाता है—अधिक उम्र में भी नौजवान दिखाई पड़ना तथा अपने रूप को आकर्षक बनाना। कुछ लोग जिनकी भरी जवानी में ही बाल सफेद होने लगते हैं वे उन्हें काला बनाने के लिये अनेक विरंजक पदार्थों एवं रंजकों का व्यवहार करते हैं। शायद वे भूल जाते हैं या अनभिज्ञ रहते हैं कि अन्ततः इनका क्या परिणाम होगा।

विरंजक पदार्थों में सर्वाधिक प्रयुक्त होने वाला नुस्खा है हाइड्रोजन पराक्साइड तथा अमोनिया का मिश्रण।

प्रथम बार प्रयोग करने से इसका चमत्कारी प्रभाव होता है किन्तु बारम्बार लगाते रहने से अन्ततः बाल कड़े तथा भंगुर हो जाते हैं और उनमें विचित्र पीलापन आ जाता है। विरंजक की क्रिया उनसे उत्सर्जित आक्सीजन के कारण होती है जो बालों के रंग को बदल देती है।

बालों में कई प्रकार के रंजकों का व्यवहार किया जा सकता है—वनस्पतिक रंजक, धात्विक रंजक अथवा ऐनिलीन रंजक। यद्यपि वनस्पतिक रंजक न्यूनतम हानि पहुँचाने वाले हैं किन्तु ये प्रभावशाल नहीं हैं। धात्विक रंजक तो आर्सेनिक, पारद या ताम्र के यौगिक है जो अत्यन्त घातक होते हैं। इसी प्रकार कोलतार से प्राप्त होने वाले ऐनिलीन रंजक भी विषैले होते हैं। कुछ लोगों की चमड़ियाँ इन रंजकों के प्रति अत्यन्त सम्वेदनशील होती हैं अतः पृथक से चमड़ी पर उनकी परीक्षा करके बालों में उनका प्रयोग करें।

स्मरण रहे कि रंजक चाहे जैसा हो *घातक* है अतः कभी उन विज्ञापनों के चक्कर में न पड़ें जो भूरे बालों को काला करने की गारन्टी देते हैं। ऐसे सभी पदार्थ इन्हीं रंजकों के तनु रूप होते हैं।

रंजकों से तो अच्छा है कि उन केश तैलों को चुनें जो शुष्क बालों को सजीव बना देते हैं। ऐसे तेलों में मिट्टी का तेल, मीठा बादाम का तेल, खनिज तेल आदि प्रमुख हैं।

दुर्गंधहारी

हाथों के नीचे की बगलों, जाँघों के बीचों में पसीने के कारण बदबू आने लगती है। प्राचीन काल में इस दुर्गंध को छिपाने के लिये इत्रों का प्रयोग किया जाता था किन्तु आज के युग में इत्रों से देह महकाना

बुरा माना जाता है। फलतः दुर्गंध को छिपाने के लिये टैल्कम पाउडर का प्रयोग किया जाता है। चाहें तो सोडियम बाइकार्बोनेट तथा बोरिक अम्ल को बराबर बराबर जल में मिलाकर बगलों में लगा कर दुर्गंधि से छुटकारा प्राप्त किया जा सकता है।

ऐल्यूमिनियम क्लोराइड के घोल को लगाकर सूखने दिया जाय और फिर उसे साबुन से धो दिया जाय तो बगल की दुर्गंधि नहीं आवेगी। आजकल ऐल्यूमिनियम क्लोराइड अथवा जिंक आक्साइड से तैयार की गई क्रीम भी प्रयुक्त होने लगी है।

हेयर रिमूवर या बालसफा

बेरियम सल्फाइड, कैल्सियम सल्फाइड या स्ट्रांशियम सल्फाइड से युक्त पाउडर या क्रीम द्वारा बालों को साफ करने का कार्य लिया जाता है। इनमें सड़े अंडे की सी गंध आती है। किन्तु एक ओर जहां ये बालों को साफ कर देते हैं वहीं उनसे त्वचा को भी क्षति हो सकती है। सबसे घातक बालसफा वे हैं जिनमें थैलियम ऐसीटेट रहता है। इससे १२-१८ मास तक बाल नहीं उगते। यह कभी-कभी अन्धता, पक्षाघात आदि बीमारियों का कारण बन जाता है।

शरीर के दृश्य अंगों में उगने वाले रोवों या बालों को दूर करने की अनेक विधियाँ प्रचलित हैं। देहाती लोग उन्हें उखाड़ देते हैं किन्तु यह कष्टकारक क्रिया है। मोम को पिघला कर बालों को उखाड़ने से कम कष्ट होता है। रेजर द्वारा बाल सफा करना हितकर नहीं क्योंकि बाद में फिर से कड़े कड़े बाल निकल आते हैं। कुछ लोग बालों को हटाते नहीं बल्कि विरंजकों द्वारा उनका रंग बदल देते हैं।

बालों को हटाने के दो ही सरल उपाय हैं—एक्स किरणों द्वारा तथा विद्युत सूचिका द्वारा। एक्स किरणें चमड़ी पर घातक प्रभाव डालती हैं अतः कोई भी उनके द्वारा बाल नहीं साफ कराना चाहेगा। इसी प्रकार बिजली की सुई से अपार कष्ट होने के कारण यह विधि अनुपयोगी है।

तात्पर्य यह कि रसायन विज्ञान ने मानव-सौंदर्य को समृद्ध करने में प्रचुर योग दिया है। वह मानव मात्र के लिये अपरिहार्य बन चुका है। ●●

शरीर के सौंदर्य को स्थायी रखा जा सकता है

कीटों की रंगीली दुनियाँ

● प्रेमानंद चंदौला

सृष्टि के इन नन्हें प्राणियों से मानव का परिचय तभी से हो जाता है, जब बच्चे भौंरों व तितलियों को फूलों पर मंडराते देखकर उनके पीछे दौड़ते हैं। इसी परिचय के आधार पर ही तो हम वातावरण में गूँजती हुई विशेष ध्वनि को सुनकर कह सकते हैं कि कहीं मधुमक्खी, मच्छर या बर्रं उड़ रहे हैं। पढ़ते समय रात को लैंप या रोशनी के इर्द-गिर्द चक्कर काटते हुए तथा मरकर गिरे हुए पतंगों से भी कोई अपरिचित नहीं ! यों तो पतंगें भी कीट ही हैं ; परंतु चूँकि ये मनचले, आवारा और रात्रिचर होते हैं, इसलिए इन्हें पतंगों या परवानों के विशेष नाम से पुकारा जाता है।

कुछ कीड़े हमारे मित्र होते हैं और कुछ शत्रु। मित्र वे जो हमें लाभ पहुँचाते हैं, और शत्रु वे जो रोगकारी के रूप में या अन्य किसी प्रकार हमें, हमारी फसलों, पौधों, जानवरों, मवेशियों आदि को हानि पहुँचाते हैं। लाभदायक कीड़ों में मुख्य हैं—शहद की मक्खी, रेशम का कीड़ा, लाख का कीड़ा, तितली, भौंरे, फूलों में परागण करने वाले कीट-पतंगे एवं हानिकारक कीड़ों को नष्ट करने वाले कीट। वैज्ञानिक व औद्योगिक उन्नति के द्वारा कृत्रिम रूप से हम रेयान, नाइलान, ड्रेलान, टेरिलिन, डैक्रान आदि कितने ही वस्त्र क्यों न बना लें, लेकिन इन सबमें रेशम की-सी बात कहाँ ?

किन्तु उपयोगी कीड़ों से अधिक भरमार हानिकारक कीड़ों की है, जिसमें टिड्डी, टिड्डे, मक्खी, मच्छर, खटमल, जूं, पिस्सू, भृंग (बीटल), भुनगे, वेधक, इल्ली, चींटी, दीमक, बर्रं, ततैया आदि की हरकतों से सभी भली-भाँति परिचित हैं।

'कीड़े' कहने पर हमारे मन में किसी अतिसूक्ष्म जीव की ही कल्पना होती है; पर बड़े कीड़ों की भी कमी नहीं। हमारे अपने देश के 'एटलस' नामक पतंगे के पंखों का फैलाव १२ इंच के लगभग होता है। वस्तुतः सुई के छेद में से पार हो जाने वाले सूक्ष्म भृंगों (बीटल) से

कुछ शाकाहारी होने के कारण केवल पत्तियाँ ही चरते हैं। कुछ की रुचियों में शैशव व प्रौढ़ावस्था में जमीन-आसमान का अंतर होता है। प्रौढ़ बर्रें तो फूलों के मकरंद का ही सेवन करके अघा जाते हैं; परंतु शिशु बर्रों का यह हाल है कि बिना गोश्त खाये इन बिगड़े नवाबों को तृप्ति ही नहीं होती। कहीं मियां-बीवी की रसोई अलग-अलग पकती है। मच्छर महाशय तो मकरंद पीकर ही तृप्त रहते हैं, पर मच्छरी जी का यह हाल है कि उनकी प्यास तब तक नहीं बुझती, जब तक कि वे हमारा खून नहीं चूस लेतीं।

कीटों में वर्ग भेद

मनुष्यों की भाँति कीटों में भी शिकारी, बहेलिये, किसान, सेठ, मेहतर व मिस्त्री आदि अनेक तबके होते हैं। 'राबर फ़्लाई' अपने चुस्त पंखों की सहायता से, छोटे उड़नेवाले कीटों पर बाज की तरह झपट्टा मारती है और फिर आराम से बैठकर उनका भोग लगाती है। शिकारी कीटों में सबसे मनोरंजक है मेन्टिस, जिसे अंग्रेजी में 'प्रेइंग मेन्टिस' कहते हैं। अंग्रेजी में 'प्रेइंग' शब्द दो अलग हिज्जों से लिखा जाता है, जिनमें एक का अर्थ 'शिकार करने वाला' और दूसरे का 'प्रार्थना करने वाला' है। मेन्टिस पर ये दोनों ही अर्थ लागू होते हैं। हरे रंग का होने के कारण हरी पत्तियों व घास के बीच अपने को छिपाकर और बगैर हिले-डुले यह चुप पड़ा रहता है। इसकी अगली टांगें आगे की ओर इस प्रकार रखी रहती हैं कि मानों यह भगवान से प्रार्थना कर रहा हो। ऐसे में यदि कोई कीड़ा भूले-भटके उधर आ निकलता है, तो यह तुरंत बिजली की चुस्ती से अपनी चिमटीनुमा मजबूत टांगों से उसे जकड़ लेता है और जबड़ों के हवाले कर देता है।

कैरियन नाम के बीटल की घ्राणशक्ति इतनी तीव्र होती है कि मीलों दूर से यह मरे हुए जानवरों की गंध सूँघ लेता है और आकर मुर्दे को सफा-चट कर डालता है। ग्राइलोटैल्पा या छछूंदरी झींगुर जमीन खोदकर मिट्टी के अंदर रहता है। इसलिए प्रकृति ने उसका सिर नुकीला बनाया है। चींटियों की कुछ जातियां जमीन के नीचे अपने घरों में वनस्पति पदार्थों को बिछा कर उस पर एक प्रकार की फफूंदी या कवक उगाती हैं और उससे अपना भोजन तैयार करती हैं। ब्लैकमार्केट करने वालों की तरह ये जमीन के नीचे अपने गोदामों में अनाज आदि भोज्य पदार्थों को भी जमा करती हैं।

कीटों का सारा आचार-व्यवहार संस्कार-चालित होता है। वस्तुतः इनका जीवन-काल इतना छोटा होता है कि उस अवधि से में इतना समय कहां कि ये बेचारे कुछ सीख सकें। कागज बनाने वाले बर्रे के उदाहरण से यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है। ये बिना किसी से ट्रेनिंग पाये ही कोठों का निर्माण करते हैं, बड़े करीने से अंडे देते हैं और नन्हें शिशुओं के पालन-पोषण का ध्यान रखते हैं।

कीड़े जब थक जाते हैं तो रात में या अंधेरे में हमारी तरह सो भी जाते हैं, परंतु आंखें खुली रखकर। कुछ प्रकार के राबर-फ्लाई रात में पैरों के नखों के बल लटककर सोते हैं। लेकिन परवाने बेचैनी में रात-भर सोते नहीं। शमा पर इनके कुर्बान हो जाने की वैज्ञानिक व्याख्या यह है कि इनकी आंखों पर जितनी तेजी से रोशनी गिरती है, उतनी ही तेज इनकी अनुचेष्टा होती है। फलस्वरूप इनकी पेशियाँ भी उतनी ही तीव्रता से उत्प्रेरित होती हैं और ये बेचारे अपने को रोक नहीं पाते और शमा की ओर लपक पड़ते हैं।

विभिन्न अंग

कीटों की आँखें दो प्रकार की होती हैं, जिन्हें साधारण और संयुक्त नेत्र कहते हैं। साधारण नेत्र केवल अंधेरे व प्रकाश के बोध के लिए और संयुक्त नेत्र देखने के लिए होते हैं। इनके एक नेत्र में हजारों लेन्स और छोटी-छोटी इकाइयां होती हैं; और प्रत्येक इकाई 'नेत्रक' कहलाती है। प्रत्येक सूक्ष्म नेत्रक दिखने वाली वस्तु के भिन्न-भिन्न भागों का बिंब ग्रहण करता है और अंततः सब नेत्रकों के बिंबों से मिलकर वस्तु का संपूर्ण बिंब बनता है। हमारी तरह नहीं कि एक आंख से ही पूरी आकृति एकबारगी दिख जाये।

आंखों की बात से याद आया। पानी के बीटलों को मानो प्रकृति ने ऐनक पहना दी है। उनकी आंख की रचना बाइफोकल ऐनक जैसी होती है। यानी आंख दो भागों में बँटी होती है। ऊपरी भाग हवा में देखने के लिए होता है और निचला पानी में।

सूंघने का काम कीड़े सिर में स्थित शृंगिकाओं द्वारा करते हैं। ये संख्या में दो होती हैं और लंबे सींगों की तरह निकली होती हैं। रेशम के कीड़ों में नर कीटों की शृङ्गिकाएं इतनी गजब की होती हैं कि वे मादा कीड़ों की गंध को मीलों दूर से अनुभव कर लेते हैं।

हमारी तरह कीड़ों को ध्वनि का बोध होता है। परंतु उनके ध्वनिग्राही अंग उच्च प्राणियों के कानों से बिलकुल भिन्न होते हैं। टिड्डे व टिड्डियों के श्रवण-अंग उदर के पार्श्व में होते हैं। झींगुर के 'कान' अगली टांगों के जोड़ में और कुछ तितलियों में पंखों के आधार पर स्थित होते हैं। इनके अतिरिक्त शरीर के रोम भी ध्वनि-कंपन ग्रहण करने में सहायक होते हैं। कीड़ों में ध्वनि-उत्पादन मुंह से नहीं होता, बल्कि टांग, पंख व पेशियों में अवस्थित विशेष संरचनाओं की रगड़ से होता है।

कीटों की स्वाद-इंद्रियां कुछ मुख में और कुछ अन्य उपांगों में पायी जाती हैं। भोजन के स्वाद का उन्हें सूक्ष्म ज्ञान होता है। तितलियां नमक व चीनी के स्वाद का अनुभव हमारी अपेक्षा २०० गुना अधिक बारीकी से कर सकती हैं।

श्वसन की क्रिया कीटों में श्वास-नलिकाओं द्वारा होती है। इन नलिकाओं की बहुत-सी शाखाएँ होती हैं। बाहरी सतह पर स्थित बारीक श्वासरंध्रों द्वारा वायु इन श्वास-नलिकाओं में अंदर खींची जाती है। रुधिर इनके शरीर में शिराओं व धमनियों में से होकर नहीं बहता, बल्कि खुले स्थानों से होकर बहता है। रुधिर हमारी तरह लाल रंग का नहीं, बल्कि रंगहीन, या ठीक से कहें तो हल्का हरा या पीला-सा होता है। इसलिए उसे 'रक्त' कहना ठीक न होगा।

कीटों का स्वभाव

एक कीट दूसरे कीट को संकेतों द्वारा अपनी बात समझाता है। कुछ नर कीट मादाओं को अपनी ध्वनि द्वारा आकर्षित करते हैं, क्योंकि जिसका संगीत सुरीला होता है, उसकी तरफ ही मादा खिंची चली जाती है। मादा झींगुर अथवा मादा टिड्डे को यदि टेलिफोन के रिसीवर के नजदीक रख दिया जाये और दूर ट्रांसमिटर से नर की ध्वनि उत्पन्न करायी जाये, तो उसे सुनते ही मादा रिसीवर की ओर लपक पड़ेगी।

रात के अंधकार में जुगनू अपने उदर के चमकनेवाले भाग के ठंडे प्रकाश से और चींटियां अपनी शृंगिकाओं के अजबोगरीब संचालन से इशारे करती हैं। इसी तरह अन्य कीटों को भी अपनी-अपनी छद्म-भाषाएं हैं, जिन्हें तार बाबुओं की तरह वे ही समझ सकते हैं।

कुछ कीड़ों की स्मरण-शक्ति बहुत ही तेज पायी गयी है। मधु-मक्खियां, शिकारी बर्रे और चीटियां याददाश्त के मामले में अपना सानी नहीं रखतीं। चींटियों पर भूलभुलैये वाले प्रयोग करके देखा गया है कि वे घूम-फिरकर फिर अपने स्थान पर पहुँच ही जाती हैं। किंतु सामान्य मक्खियों की स्मरण-शक्ति बहुत कमजोर होती है।

कीटों की आयु

उम्र के मामले में सब कीड़े एक समान नहीं होते। प्रौढ़ 'मेफ्लाई' की जीवन-अवधि प्रायः कुछ घंटे की या अधिक से अधिक एक दिन की होती है। इसलिए उसे 'दिवस-जीवी' कहते हैं। सिकैडा नामक कीट का जीवन-इतिहास १७ वर्ष से भी अधिक लम्बा चलता है। कुछ कीड़े जाड़ों में कुंभकर्ण के वंशज बन जाते हैं। जाड़ों में वे चुपचाप बगैर हिले-डुले शीत-निष्क्रियता (हाइबर्नेशन) में चले जाते हैं और कुछ भी खाते-पीते नहीं। बस पहले के अर्जित किये हुए भोजन पर ही आश्रित रहते हैं।

इसका सबसे अच्छा उदाहरण है आपके चिर-परिचित खटमलों का। वे सर्दियों में दीवारों, दरारों, चारपाई के पायों व छेदों में पतले कागज जैसे बनकर चुपचाप पड़े रहते हैं; लेकिन गर्मी आने पर आपका खून चूसने के लिए भूखे भेड़ियों की तरह टूट पड़ते हैं।

कीड़ों के निरालेपन की हमने काफी चर्चा कर ली; अब जरा रंगों के बारे में भी जान लें। इस लेख का शीर्षक भी तो हमने रखा है—"कीड़े—कितने रंगीले, कितने निराले"। प्रायः कीड़ों में यह गुण होता है कि वे जिस वातावरण में रहते हैं, वैसे ही रंग के हो जाते हैं। यह खूबी उनकी आत्मरक्षा में सहायक होती है। कीड़ों के रंग प्रायः कुछ वर्णकों पर निर्भर होते हैं, जो उन्हें भोजन से प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिए कई इल्लियाँ पत्ते खाकर उनके पर्णहरित (क्लोरोफिल) के कारण हरे रंग की हो जाती हैं।

[नवनीत से साभार]

कीट हमारे शत्रु हैं और मित्र भी। अतः इनसे परिचित प्राप्त कीजिये।

कठोर लोहा पेड़-पौधों का मुख्य भोजन है

● डा० रमेशचन्द्र तिवारी

जब मनुष्य पशु पक्षी तथा अन्य मुँह दाँत वाले जीव-जन्तु लोहा नहीं खा सकते तो भला मुखविहीन कोमल वनस्पतियां क्या इस कठोर धातु का सेवन करती हैं। यह सम्भव है ? जी हाँ, तभी तो उनके शरीर में ०.१ से ६.० प्रतिशत तक लोहा पाया जाता है। गेहूँ, जौ, मक्का, चावल, मटर, आलू, तथा गाजर के सूखे पौधों में क्रमशः ०.०३, ०.०३, ०.०६ ०.०४, ०.०७; ०.२० तथा ०.२७, प्रतिशत लोहा मिलता है जबकि टमाटर, अंगूर, सेव तथा संतरा जैसे फलों के सूखे पौधों में प्रति १० लाख भाग में क्रमशः ४.४०, ६.७, ६.० तथा १०.० भाग लोहा उपस्थित रहता है। ये आँकड़े यह सिद्ध करते हैं कि पेड़ पौधे लोहा खाते हैं।

डाक्टरों को प्रायः आपने ऐसी औषधियों का प्रयोग करने की राय देते सुना होगा जिनमें लोहा काफी मात्रा में रहता है क्योंकि रक्त की कमी में तथा इसको अशुद्ध के समय लोहा अतिआवश्यक होता है। पशुओं तथा पालतू जानवरों को पर्याप्त मात्रा में लोहा मिलना आवश्यक होता है। चूंकि मनुष्य तथा जीव जन्तुओं का मुख्य आहार वनस्पतियां या उनके उत्पाद ही हैं अतः वनस्पतियों में पाया जाने वाला लोहा ही मानव स्वास्थ के लिए एकमात्र लोहे का साधन है। जहाँ वनस्पतियाँ मानव व पशुओं की लोहे की पूर्ति नहीं कर पातीं वहाँ तमाम प्राणी न्यूनता रोग के शिकार होते हैं जिसके निवारणार्थ उन्हें लोहधारी औषधियों की सहायता लेनी पड़ती है। मनुष्यों तथा अन्य प्राणियों के रक्त में पाये जाने वाले हेमोग्लॉबिन अणु में ३—५ प्रतिशत लोहा पाया जाता है। यदि रक्त में लोहे की इस मात्रा में कमी हो जाय तो शक्ति के लिए प्रयुक्त तथा नष्ट हो रही लाल रक्त कोशिकाओं की पूर्ति के लिए नवीन लाल रक्त कोशिकाओं का निर्माण रुक जाये जिससे शरीर में खून की कमी— "एनिमिया"—हो जाये। इस रोग का निवारण, शरीर में लोहा

पहुँचा कर ही किया जा सकता है अतः लोहधारी औषधियों का प्रयोग करना पड़ता है। यदि हमारे आहार में सम्मिलित खाद्यान्न तथा सागभिजियों में लोहे की कमी न रहे तो एनिमिया जैसे रोगों से सर्वदा मुक्ति रहेगी। इसके लिए पेड़-पौधों को लोहे की पूर्ति करने का ध्यान रक्खा जाना चाहिए। हो सकता है आपके किचेन गार्डेन (घरेलू बागवानी) में उगी साग-भाजी ही कहीं लोहे की कमी से कुप्रभावित न हो जिसके सेवन से लोहे की कमी रोग उत्पन्न होने की सम्भावना रहेगी।

विभिन्न जाति के छोटे-बड़े पौधों में लोहे की अलग-अलग मात्रायें पाई जाती हैं। यदि एक ही पौधे के विभिन्न अंगों में लोहे की मात्रा का निर्धारण किया जाय तो उनमें लोहे की भिन्न-भिन्न मात्रायें मिलेंगी। इतनी ही नहीं एक ही जाति व किस्म का पौधा यदि दो विभिन्न प्रकार की भूमियों पर उगाया जाय तो उनमें भी लोहे की मात्रा पृथक-पृथक होगी। चूंकि पौधे लोहे का अवशोषण केबल भूमि से ही करते हैं जो कि उनके लिए लोहे का एकमात्र साधन है अतः विभिन्न भूमियों की लोहे की अलग-अलग मात्रा की उपस्थिति के कारण उन पर उगे पौधों में कम या अधिक लोहा होगा। उदाहरण के लिए, लाल मिट्टी में उगे ज्वार के पौधे में दुमट मिट्टी पर उगे ज्वार के पौधे की अपेक्षा अधिक लोहा पाया जाता है।

प्रश्न यह उठता है कि लोहे की कितनी मात्रा पौधों के लिए आवश्यक होती है? इसका एक निश्चित उत्तर नहीं है क्योंकि विभिन्न जाति के पौधों के लिए लोहे की अलग-अलग मात्रा चाहिए परन्तु इतना ज्ञात है कि नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश, चूना, मैगानीसियम, कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सिजन तथा गंधक की अपेक्षा पौधों को लोहे की कम मात्रा आवश्यक होती है जबकि आवश्यक सूक्ष्म तत्वों (ताँबा, जस्ता, कोबाल्ट मालिब्डेनम आदि) की तुलना में पौधे कुछ अधिक लोहा चाहते हैं। कभी-कभी पौधों के शरीर में लोहे की आवश्यकता से अधिक मात्रा पाई जाती है क्योंकि अन्य भोज्य तत्वों के अवशोषण के समय जड़ें लोहा भी अवशोषित कर लेती हैं। जबकि यह देखा गया है कि लोहे की सूक्ष्म मात्रा ही पौधों के लिए पर्याप्त होती है। इसका अर्थ यह नहीं की यदि पौधों को लोहे की वह सूक्ष्म मात्रा न मिले तो कोई हानि नहीं होगी। यदि पौधों के आहार में लोहा अनुपस्थित हो जाय तो उनकी तमाम शरीर क्रियायें अस्त-व्यस्त, अधूरी तथा

अनियमित हो जायेंगी जिससे पौधा अस्वस्थ होकर बिना फल फूल दिये मर जायेगा।

पौधों की नवविकसित कलियों तथा वृद्धिगत अग्रस्थ कलिका व अन्य नवीन कोमल अंगों में लोहे की अधिक मात्रा पायी जाती है। इनके हरे रंग वाले पदार्थ पर्णहरित का संश्लेषण लोहे की उपस्थिति में ही सम्भव है। यह तो आप जानते ही हैं कि पर्णहरित के बिना पौधों का भोजन निर्माण करने वाला कारखाना निष्क्रिय हो जाता है। यही पर्णहरित या पेड़ पौधों का हरा रंग उनके भोजन कारखाने का मुख्य भाग है, और यदि इसका अभाव हुआ तो पौधों का जीवन असंभव ही होगा। अतः लोहा अपरोक्ष रूप से पौधों के जीवन का मूल स्रोत भी कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त लोहा पौधों के शरीर में हो रही तमाम जटिल आक्सीकरण-अपचयन क्रियाओं से भी सम्बद्ध होता है। इन्हीं क्रियाओं के फलस्वरूप पौधों की वृद्धि होती है। उपर्युक्त सभी कारण यह स्पष्ट कर देते हैं कि लोहा पौधों के लिए अत्यन्त आवश्यक होता है।

आइये हम आपको पौधों में लोहे की कमी के लक्षण तथा न्यूनता रोगों का परिचय भी करा दें। जिन पौधों में लोहे की कमी होगी उनकी पत्तियाँ पीली दिखाई पड़ेंगी। पत्तियों के ऊपर उभरी नसें या शिरायें तो गाढ़े हरे रंग की होंगी परन्तु उनका शेष भाग पीला होगा। पौधों की फुनगी हल्के रंग की तथा मुरझाई सी रहेगी। पौधा कमजोर और बौने आकार का होगा। यदि लोहे की कमी अधिक है तो कुछ पत्तियाँ पौधों से अलग होकर गिर गई होंगी अथवा गिर जायेंगी। कभी-कभी तो पूरा पौधा सूख जाता है।

लोहा, पौधों के *लोहा-पार्फिरीन-प्रोटीन-जटिल* को भी प्रभावित करता है। इस जटिल यौगिक का मुख्य कार्य, आक्सीजन को सक्रिय रखना, उसका वाहन, हाइड्रोजन-पर-आक्साइड का विघटन तथा इलेक्ट्रानों का स्थानान्तरण होता है। चूँकि ये सभी क्रियायें पौधों की शरीर क्रियाओं में मुख्य स्थान रखती हैं, जिनके फलस्वरूप ही पौधा स्वस्थ रह सकता है, अतः लोहा पौधों के जीवन का एक मुख्य आवश्यक साधन माना जाता है।

पेड़-पौधों को लोहा केवल भूमि से ही प्राप्त होता है। अतः बीज बोने और पौधा रोपने से पूर्व भूमि की परीक्षा करके, पौधों को लोहे की उपलब्धि का पूरा प्रबन्ध कर देना चाहिए। भूमि में लोहा अधिकतर

अघुलनशीलन रूप में पाया जाता है। जो भूमियां अम्लीय होती हैं उनमें लोहे की ऐसी अवस्था विद्यमान रहती है जिसे पौधे सुगमता से प्रयोग कर लेते हैं जब कि क्षारीय या ऊसर भूमियों में चाहे जितना लोहा उपस्थित हो, उसका प्रयोग नाममात्र के लिए भी नहीं कर पाते हैं। भूमियों में कार्बनिक पदार्थ, कार्बोनेट, बाइकार्बोनेट तथा चूना की मात्रा और उसके पी-एच० (अम्लीयता एवं क्षारीयता स्तर) आदि पर पौधों को लोहे की पूर्ति निर्भर करती है। कार्बोनेट तथा बाइकार्बोनेट की उपस्थिति में अम्लीय मिट्टियों में लोहा अधिकतर घुलनशील अवस्था में रहता है जबकि ऊसर मिट्टियों में इनकी उपस्थिति लोहे को अविलेय बनाती जाती है।

सभी भूमियों में लोहा पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है परन्तु उपर्युक्त परिस्थितियाँ उसे उपलब्ध तथा अनुपलब्ध अवस्था में परिवर्तित करती रहती हैं। यदि भूमि में लोहा है और पौधे नहीं ले पा रहे तो उस भूमि में ई. डी. टी. ए. नामक रसायन की थोड़ी मात्रा मिलाने से लोहा विलेय होकर पौधों को मिलने लगता है। इसके अतिरिक्त लोहे की कमी से प्रभावित भूमियों में लोह-धारी रसायन या खनिजों को चूर्ण करके मिलाकर उन्हें ठीक किया जा सकता है। जो पेड़-पौधे लोहे की भूख के कारण रोगग्रस्त हो रहे हैं या सूख रहे हैं उनकी जड़ के पास भूमि में फेरस सल्फेट नामक रसायन मिलाइये अथवा उनकी पत्तियों पर १०० पौ० जल में १-२ पौ० फेरस सल्फेट घोलकर भलीभाँति छिड़क दीजिए। यदि इससे भी कोई लाभ न हो तो उनके तनों में लोहे के घोल की सूई लगाइये अथवा तनों में गड्ढे बनाकर लोहे का फास्फेट लवण (आयरन फास्फेट, जो बाजारों में मिलेगा) भर दीजिये। पेड़ों के मोटे-मोटे तनों में लोहे के छोटे-छोटे टुकड़ों को गाड़ देने से भी वे घुलकर पौधों की लोहे की भूख शान्त कर सकते हैं। जिन मिट्टियों में लोहा अघुलनशील अवस्था में है उनमें गंधक, अमोनियम सल्फेट तथा अन्य अम्लीकारक रसायनों को मिलाकर उन्हें अम्लीय बनाइये। इससे भूमि में उपस्थित लोहा घुलकर पौधों को सुगमता से अपने आप मिलने लगेगा।

अत: पौधों को लोहे की पर्याप्त पूर्ति का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक होता है। जितना ध्यान उनकी सिंचाई तथा नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश या अन्य तत्वों की पूर्ति का रक्खा जाय उतना ही लोहे की पूर्ति पर भी रखना होगा। तभी पौधे स्वस्थ सुडौल रह सकेंगे।

● ●
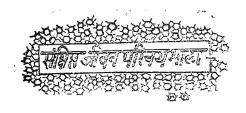
सर आइजक न्यूटन

●अरुण कुमार सिंह

सर आइजक न्यूटन का नाम गुरुत्वाकर्षण तथा अन्य वैज्ञानिक खोजों के कारण संसार के इतिहास में सदा अमर रहेगा। इनका जन्म १६४२ ई० में (जिस साल गेलीलियो की मृत्यु हुई थी) लिनकालन शायर के वूलसथोर्प स्थान में हुआ था। इनके पिता एक साधारण कृषक थे जो इनके पैदा होने से पहले ही मर चुके थे। बचपन से ही इनको चीजें बनाने का शौक था परन्तु यह ज्यादा परिश्रमी नहीं थे। पन्द्रह-सोलह साल की आयु में ही वह वैज्ञानिक प्रयोग किया करते थे। सन् १६५८ के भारी तूफान में यह हवा की दिशा में और उसके विपरीत कूदकर हवा के बल का अनुमान लगाया करते थे। इन्होंने एक जल घड़ी बनाई और अपने मकान में एक धूप घड़ी बनाई जो "रॉयल सोसाइटी" के कमरे में अभी तक रखी हुई है। न्यूटन की शिक्षा 'ट्रिनिटी कॉलेज कैम्ब्रिज' में हुई जहाँ पर उन्होंने गणित का विशेष अध्ययन किया। इसी समय उन्होंने द्विपद सिद्धान्त (Binomial Theorem) और चलन-कलन की खोज की और चन्द्रमा के चारों ओर होने वाले परिवेशों (Haloes) का कारण ज्ञात करने का प्रयत्न किया। सन् १६६५ ई० में इन्होंने बी० ए० की डिग्री प्राप्त की।

इसी समय महान प्लेग के कारण यूनीवर्सिटी बन्द हो गयी और न्यूटन को वूलसथोर्फ आना पड़ा।

यहाँ पर उन्होंने ग्रहों के घूमने पर गहन चिन्तन किया। इनको केपलर के नियम तो मालूम थे, परन्तु यह सोचते थे कि अपकेन्द्र बल (Centrifugal force) के कारण ग्रह उड़कर आकाश में क्यों नहीं

चले जाते हैं। बहुत मनन के बाद उन्होंने गुरुत्वाकर्षण (Gravitation) का नियम निकाला।

सन् १६६६ में केवल २७ साल की उम्र में न्यूटन की नियुक्ति उनके अध्यापक बैरो के स्थान पर गणित के लुकेजियन प्रोफेसर के पद पर हो गयी। उस समय उनको सप्ताह में केवल एक व्याख्यान गणित, भौतिक विज्ञान तथा खगोल विज्ञान पर देना पड़ता था। इसलिए अनुसन्धान-कार्य के लिए बहुत समय मिलता था। इन्होंने पहले वर्ष में ही प्रकाश में आश्चर्यजनक अन्वेषण किये और सन् १६७२ ई० में वे 'रॉयल सोसाइटी के 'फेलो' चुन लिये गये। इन्होंने प्रिज्म की मदद से सूर्य के प्रकाश को सात रंगों में तोड़कर स्पेक्ट्रम की व्याख्या की और इन्द्र धनुष के पड़ने का कारण ढूँढ़ निकाला। इन्होंने परावर्ती सैक्सटैन्ट का आविष्कार किया और प्रतिबिम्बों पर काम किया। प्रकाश के कणिका सिद्धान्त के जन्मदाता न्यूटन ही हैं। इन्होंने गति के तीन नियम के बारे में व्याख्या की।

सन् १६६५ ई० में वे 'वारडन आफ दी मिन्ट' पद पर चले गये। दो वर्ष बाद मास्टर हो गये। सन् १७०२ में वह रायल सोसाइटी के प्रेसीडेन्ट हो गये और सन् १७०५ में आपको 'सर' की उपाधि मिली। इन्होंने जीवन भर शादी नहीं की।

जीवन भर अथक परिश्रम के बाद ८५ वर्ष की अवस्था में २० मार्च १७२७ को उनका देहान्त हो गया।

न्यूटन संसार के महान व्यक्तियों में से हैं। उन्होंने अनेकों अनुसन्धान करके अपनी असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया, परन्तु उनको अपने काम पर तनिक भी अभिमान न था। वह प्रकृति की महत्ता को समझते थे और कहा करते थे—

"I know not what the world would think of my labours., but to my-self it seems that I have been but a child playing on the sea shore now finding some pebble rather more polished, while the immense ocean of truth extended itself unexplored before me."

●●

१. भारतीय संस्कृति के अन्धकार-युग पर नवीन प्रकाश

● संकलित (साइंस रिपोर्टर के आधार पर)

पुरातत्व सम्बन्धी खोजों से प्राप्त प्राचीन अवशेषों की तिथियाँ जानने के लिये "रेडियोकार्बन तिथि अंकन" विधि का प्रयोग होता है जिसके जन्मदाता हैं नोबेल पुरस्कार विजेता डब्लू० एफ० लिब्बी। सन् १९६१ में टाटा इंस्टीच्यूट आफ फंडामेंटल रिसर्च, बम्बई के अन्तर्गत भारतीय पुरातात्विक सामग्री की तिथियाँ जानने के उद्देश्य से एक C^{14} प्रयोगशाला की स्थापना की गई है।

यद्यपि हम यह घोषित करते रहे हैं कि हमारी सभ्यता प्राचीनतम है किन्तु उसे सिद्ध करने के कोई ठोस प्रमाण नहीं थे। सन् १९२३ में हडप्पा की खुदाई के फलस्वरूप यह ज्ञात हुआ कि प्राचीनकाल में लोग शहरों का निर्माण करते थे। पाश्चात्य संदर्भों से इस सभ्यता को २५००-१५०० ई० पू० माना गया। किन्तु इस काल से लेकर महात्मा बुद्ध के अवतार तक का युग नितान्त अन्धकारपूर्ण रहा है। किन्तु सन् १९४७ के पश्चात् की गई खुदाइयों से इस अन्धकार युग से सम्बन्धित अनेक सामग्रियाँ प्राप्त हुई हैं।

अतीत को क्रमबद्ध ढंग से जानने के लिये आवश्यक है कि तिथियाँ ठीक से ज्ञात हों। उदाहरणार्थ यह ज्ञात होना चाहिए कि हडप्पा-सभ्यता के बाद कौन सी सभ्यता आई। लिखित इतिहास के अभाव में इन तिथियों को जानने के लिये सामग्रियों पर निर्भर करना पड़ता है। C^{14} विधि द्वारा न केवल तिथियों का ठीक-ठीक पता चलता है वरन् उस दीर्घ विस्तार का—जिस तक अन्धकार युग विस्तृत रहा पता चलता है।

स्मरण रहे कि C^{14} विधि द्वारा अनन्त प्राचीन तिथियों का पता

नहीं चल सकता। यह ४०,००० वर्षों से पूर्व की तिथियों का परिचय नहीं बता सकता। परिणाम-स्वरूप प्रस्तरयुगीन सभ्यता के विषय में इससे आंशिक जानकारी ही मिल पाती है। हाँ, नवीन प्रस्तर-युग के बाद की जानकारी संभव है।

दक्षिण भारत में ब्रह्मगिरि तथा चन्द्रावली में की गई खुदाइयों के फलस्वरूप व्हीलर ने नवीन प्रस्तर-युग की कुछ सामग्री प्राप्त की। उसके पश्चात् अन्य स्थलों पर खुदाइयाँ की गई हैं जिनसे प्राप्त सामग्रियों का परीक्षण C^{14} द्वारा हुआ है। ये २३००-१५०० ई० पू० की ज्ञात हुई हैं। यहाँ से सबसे अर्वाचीन सामग्री ९०० ई० पू० की मिली फलस्वरूप दक्षिणी भारत का नवीन प्रस्तर-युग २३०० ई० पू० से लेकर ९०० ई० पू० तक प्रसारित रहा। स्मरण रहे कि इसी काल में उत्तरी भारत में पंजाब, राजस्थान तथा सिंध में हड़प्पा सभ्यता विकास पर थी।

हड़प्पा सभ्यता का कालांकन C^{14} विधि से किया जा चुका है। यह २३०० ई० पू० से १७५० ई० पू० तक रही। जब तक C^{14} विधि से परीक्षण नहीं हुये थे यह सभ्यता २५००-२००० ई० पू० तक मानी जाती थी। अर्वाचीन अन्वेषणों के अनुसार मोहनजोदड़ो के शहर का ध्वंस उस मिट्टी पटने के कारण हुआ जो लगातार १०० वर्षों तक झील द्वारा चलता रहा। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि हड़प्पा सभ्यता ५०० वर्ष से अधिक तक चल नहीं पाई।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि विश्व के प्रमुख तीन सभ्यता केन्द्रों में जो ३००० ई० पू० विकसित हुये उनमें भारत भी एक था।

हड़प्पा सभ्यता के बाद राजस्थान की बाणस् संस्कृति का उदय हुआ। सम्भावना यही है कि वैदिक आर्यों के आगमन के समय यही संस्कृति विद्यमान थी। भूरे रंगे बर्तनों का प्रयोग इस काल की विशिष्टता बताई जाती है किन्तु इन बर्तनों में लोह की उपस्थिति इस धारणा को पुष्ट नहीं कर पाती क्योंकि उत्तरी तथा दक्षिणी भारत में लोह का प्रयोग १००० ई० पू० ही हुआ होगा।

२. दाँतों की सुरक्षा

शायद आपने फ्लोरीन का नाम सुना हो। यह एक तत्व है जो अत्यल्प मात्रा में हमारे भोज्य पदार्थों में पाया जाता है। किन्तु यह देखा गया है कि जल तथा मिट्टी में इस तत्व की भिन्नता होने के

कारण एक ही प्रकार का भोजन करने वाले विभिन्न क्षेत्रों के लोगों को इस तत्व की कम या अधिक मात्राएँ उपलब्ध हो पाती हों। आज तक ऐसा कोई भोज्य पदार्थ नहीं पाया गया जिसमें इसकी न्यूनता कही जा सके।

यह सूक्ष्ममात्रिक तत्व हमारे रक्त का भी एक अवयव है। प्रति ७० लाख भाग में इस तत्व का १ भाग पाया जाता है। इस सूक्ष्मतम मात्रा से यही अर्थ निकलता है कि यह किसी अत्यन्त महत्वपूर्ण दैहिकी क्रिया से सम्बद्ध है। किन्तु यह भी सम्भव है कि अस्थियों में उपलब्ध फ्लोरीन के साथ इसका सन्तुलन हो।

इस तत्व का सबसे उल्लेखनीय प्रभाव दाँतों पर देखा गया है। ऐसा अनुमान है कि यूरप तथा उत्तरी अमरीका के २१ वर्ष से कम आयु वाले अधिकांश बालक दाँत के रोगों से किसी न किसी प्रकार से ग्रस्त हैं। यद्यपि यह ज्ञात है कि दंत रोगों के लिये भोज्य पदार्थों की अधिक शर्करा एवं अम्ल उत्पादक वस्तुएँ ही उत्तरदायी हैं किन्तु ऐसा सोचना तर्कसंगत होगा कि भोजन में कुछ आवश्यक तत्वों का अभाव ही इसका प्रमुख कारण हो सकता है। इन तत्वों में कैल्सियम, फास्फोरस प्रमुख देखे गये किन्तु फ्लोरीन भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। ऐसा देखा गया है कि जहाँ इस तत्व की न्यूनता है वहाँ इसकी अधिकता वाले क्षेत्रों की अपेक्षा दाँत के रोगों की बहुलता है।

इंगलैंड के स्कूली बच्चों के पेय जल में प्राप्त फ्लोरीन की मात्रा का प्रभाव बच्चों के दाँतों पर देखा गया। इससे यह निष्कर्ष निकाला गया कि प्रति दस लाख अंश जल में १ अंश फ्लोरीन उपयोगी है। यदि इससे कम मात्रा में फ्लोरीन रहे तो दाँत के रोगों की सम्भावना २½ गुनी अधिक है किन्तु यदि १½ अंश फ्लोरीन हो तो रोगों की सम्भावना ३ गुनी हो जाती है। किन्तु सामान्यतः अधिक फ्लोरीन होने पर बच्चों के ऊपर ऐसा प्रभाव नहीं पड़ता कि वह सरलता से लक्षित होता हो। अत्यधिक मात्रा (१६ अंश फ्लोरीन) होने पर दाँतों के ऊपर काली तह जमने लगती है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि फ्लोरीन की न्यूनता तथा अधिकता इन दोनों के ही कारण दाँतों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। फलतः जिन क्षेत्रों में जल में फ्लोराइड की मात्रा कम हो वहाँ इसे मिलाने की आवश्यकता होगी किन्तु जिन क्षेत्रों में पेय जल में फ्लोराइड अधिक होगा वहाँ उसे जल से दूर करना होगा।

भारतवर्ष जैसे गर्म देश में बच्चों तथा बुड्ढों को इतनी अधिक मात्रा में जल पीना पड़ता है कि न्यून फ्लोरीन वाले जल से भी आवश्यक मात्रा की पूर्ति हो सकती है किन्तु जहाँ फ्लोरीन पहले से अधिक हो वहाँ उसे कम करने का तुरन्त उपाय करना होगा।

जल में से अधिक फ्लोरीन को दूर करने के कई उपाय ज्ञात हैं— हड्डी का चूरा (जली हड्डी), ट्राइकैल्सियम फास्फेट, विनिमेय रेजिनें, मैग्नीशियम, ऐल्यूमिना। ये विधियाँ वृहद् पैमाने पर जल के परिष्करण के लिये प्रयुक्त हुई हैं।

यह भलीभाँति ज्ञात है कि हड्डियों में फ्लोरीन के लिये विशेष बन्धुता है। वास्तव में हड्डियों में ऐपैटाइट तथा हाइड्राक्सी ऐपैटाइट रहता है जो फ्लोराइड आयनों को आकर्षित करके स्थिर कर लेता है। यही कारण है कि जली हुई हड्डी का चूरा जल में से अधिक फ्लोराइड को दूर कर सकता है। किन्तु हड्डी के चूरे की महक जल में व्याप्त हो जाती है फलतः अन्य विधियों का प्रयोग उचित समझा जाता है।

ट्राइकैल्सियम फास्फेट में भी फ्लोरीन को ग्रहण करने की अद्भुत शक्ति है किन्तु इस पदार्थ की क्षति (घुलने के कारण) होती रहती है अतः मँहगा पड़ता है।

ऋणायन विनिमेय रेजिनें फ्लोराइड को ग्रहण कर लेंगी किन्तु सम्भावना यही है कि उनके द्वारा जल के अन्य उपयोगी ऋणायन भी अवशोषित हो जायँ।

मैग्नीशियम हाइड्राक्साइड के अवक्षेपण के समय भी फ्लोराइड की प्रचुर मात्रा विलग हो सकती है। भर्जित ऐल्यूमिना द्वारा भी फ्लोराइड अवशोषित हो जाता है। १ क्यूबिक मीटर ऐल्यूमिना द्वारा १ किलोग्राम फ्लोराइड अवशोषित हो सकता है।

घरों में जल में से अधिक फ्लोरीन दूर करने के लिये हड्डी के जले चूरे या ऐल्यूमिना का प्रयोग किया जा सकता है। हड्डी के चूरे के प्रयोग करने की विधि यह है कि पहले सूक्ष्म कणों को अलग करके फेंक दें। फिर शेष पदार्थ को गरम करके निर्जीमित कर लें। इसके लिये चाहें तो हड्डियों के चूरे को लेकर किसी बन्द पात्र में भर कर भट्टी में रखकर गरम करें। इससे यह काला पड़ जावेगा। बाजारों में जो पशु-चारकोल मिलता है वह भी हड्डी का चूरा होता है। अब किसी रंग खेलनेवाली बोतल में जिसमें नीचे भी छेद हो, इस चूर्ण को

भर कर ऊपर और नीचे जालीदार कपड़े, रुई आदि की कार्क लगा लें। अब इसे प्लास्टिक की नली द्वारा जल की टोंटी से बाँध दें और पीने के पानी को उसमें से होकर बहने दें। नीचे से निकले जल को पीने के लिये काम में लावें।

इस विधि से ९२-९८% तक फ्लोरीन विलग हो जाता है। परीक्षणों से यह ज्ञात हुआ है कि १ किलो हड्डी का चूरा २०० लीटर जल से ४-५ अंश फ्लोरीन विलग किया जा सकता है।

३. मिस्र के ऐतिहासिक देवालयों की रक्षा

मिस्र में अस्वान बाँध के पीछे बढ़ रहे पानी से प्राचीन अबू सिम्बेल देवालयों की रक्षा का नाटकीय प्रयास अन्ततः पूरा हो चुका है, और अब सारे प्रयत्न दो वर्ष के भीतर इन विशाल स्मारकों के लिए नया वातावरण बनाने का कार्य पूरा करने की दिशा में निर्दिष्ट हो रहे हैं।

इन ऐतिहासिक देवालयों को सुरक्षित रखने के लिए अनेक योजनाओं पर विचार किया गया, किन्तु अव्यावहारिक या अत्यधिक व्ययसाध्य होने के कारण उन्हें एक-एक करके अस्वीकार कर दिया गया। अन्त में जिस योजना को चुना गया, उसके अन्तर्गत, देवालयों को ३,००० खण्डों में, जिनमें से प्रत्येक का वजन लगभग ३० टन है, उखाड़ना, और उन्हें उनके पुराने स्थान से २११ फुट की ऊँचाई पर स्थित एक चट्टान पर जोड़ कर खड़ा करना सम्मिलित था।

देवालयों को हटा कर इतनी ऊँचाई पर ले जाना इंजीनियरिंग सम्बन्धी एक अद्भुत सफलता थी। उन्हें टुकड़े-टुकड़े करके हटाने का नाजुक काम इतनी सफाई से किया गया कि इन अमूल्य निधियों को किसी तरह की कोई गम्भीर क्षति नहीं पहुँच सकी।

किन्तु, सबसे विचित्र बात यह है कि इंजीनियरिंग सम्बन्धी यह महान सफलता एक साधारण किस्म के सरेस से सम्भव हुई, जिसे 'एपौक्सी' कहते हैं। इस सरेस के निर्माण का सूत्र अमेरिकी वैज्ञानिकों द्वारा विकसित हुआ है।

बाजार में घरेलू कारखाने की बनी एक गोंद मिलती है, जो ट्यूबों में आती है। जब प्रत्येक की समान मात्राओं को मिश्रित कर दिया जाता है, तो उससे एक 'सरेस' बन जाता है, जो इतना मजबूत

होता है कि 'उपचारित' होने पर—जैसा कि इसके निर्माताओं का दावा है—इसकी एक बूँद ही किसी लटकती हुई मोटरगाड़ी के वजन को संभाल लेगी।

यह सरेस पुरुभाज रसायन विज्ञान की उपज है, और उसी रसायन-परिवार की अन्य गोंदों के साथ मिल कर, वस्तुओं को एक दूसरे के साथ चिपका देने की प्रक्रिया में क्रान्तिकारी परिवर्तन उत्पन्न कर रहा है। धातुओं तथा अन्य पदार्थों को सही अर्थ में एक-दूसरे से जोड़ कर, संयोजक तत्वों के इस नये (१९५० से) परिवार ने न केवल सैकड़ों नये उत्पादों को जन्म दिया है, बल्कि दर्जनों पुराने उत्पादनों में सुधार भी किया है।

जहाँ किसी समय घरेलू और औद्योगिक कामकाज में जोड़ाई करने के अधिकांश छोटे-मोटे कार्य, पशुओं से उत्पन्न पदार्थों से तैयार विभिन्न प्रकार के सरेस द्वारा सम्पन्न होते थे, वहाँ कल-पुर्जों को जोड़ कर अमेरिकी अतिस्वन विमान खड़ा करने जैसे इंजीनियरिंग सम्बन्धी अति जटिल कार्य भी अब नये एपोक्सी सरेस द्वारा सम्पन्न हो रहे हैं। एपोक्सी सरेस एक द्रव पदार्थ (थर्मोप्लास्टिक) है, और यदि इसे अकेले छोड़ दिया जाय तो सदैव द्रव ही बना रहेगा। किन्तु जब इसमें कोई तथाकथित कठोरता उत्पन्न करने वाला तत्व मिला दिया जाता है, तो द्रव सरेस १० घण्टे से भी कम समय में एक अभेद्य ठोस पदार्थ में परिणत हो जाता है, जो सदैव उसी अवस्था में बना रहेगा। कठोरता उत्पन्न करने वाला यह तत्व वस्तुतः एपोक्सी सरेस का एक अविच्छिन्न अंग बन गया है—दोनों का मिश्रण उपचारित होते समय तप्त हो जाता है। किन्तु कड़ा होकर यह पुनः तप्त करने पर पिघल नहीं सकता। दो वस्तुओं के बीच प्रविष्ट कर देने पर यह सही अर्थ में उन्हें आपस में जोड़ देता है।

और, अबू सिम्बेल की कहानी यहीं पर प्रस्तुत होती है।

यह बात निर्विवाद थी कि यदि अबू सिम्बेल के प्राचीन देवालयों को अस्वान बाँध और नासेर जलाशय के निर्माण के कारण आयी नील नदी की बाढ़ से बचाना था, तो उन्हें वहाँ से हटाना आवश्यक था। विवादास्पद बात केवल उन्हें सुरक्षित रखने की विधि थी।

एक फ्रांसीसी योजना यह थी कि उन्हें एक बाँध से सुरक्षित कर दिया जाये। एक ब्रिटिश योजना के अन्तर्गत वे छने स्वच्छ पानी के

बीच खड़े होते, ताकि उन्हें पानी के भीतर बने गलियारों से देखना सम्भव होता। इटली वालों ने देवालयों को काट कर ढीला कर देने का सुझाव दिया था, ताकि उन्हें दो विशाल पिण्डों में उच्चतर सतहों पर उठाया जा सके।

अन्त में जिस योजना को प्राविधिक, सौन्दर्य-संगत और वित्तीय कारणों से स्वीकार किया गया, वह यह थी कि रैमेसेस द्वितीय और उनकी रानी नेफरतारी के ३,००० वर्ष प्राचीन देवालयों को चट्टान में से काट कर निकाल लिया जाय। यह कटाई कई खण्डों में होनी थी। कटाई के बाद उन खण्डों को नासेर जलाशय के भावी स्थल से २११ फुट ऊपर एक स्थान पर ले जाकर पुनः जोड़ कर खड़ा कर देना था।

इसका ठेका एक अन्तर्राष्ट्रीय समिति को दिया गया, जिसका प्रबन्ध पश्चिमी जर्मनी की एक भवन-निर्माण कम्पनी के हाथ में था।

१९६४ के प्रारम्भ में, १,२०० फुट का एक संरक्षक बाँध बना दिया गया, ताकि वह अब तक आयी पानी की बाढ़ से स्मारकों की रक्षा कर सके। मूर्तियों के खुले हुए भागों को सुरक्षित रखने के लिए कई टन बालू अन्दर लाया गया। अन्त में, देवालयों की चारों ओर से ऊपर से ढकी मिट्टी की पर्तों और लगभग ५० लाख घन फुट ठोस चूने की चट्टान को काट कर निकाल दिया गया, जिससे देवालयों की दीवारें और केवल २ से २॥ फुट तक मोटी छत ही शेष रह गयीं। १९६५ में, जब उस देवालय की छत को हटा दिया गया, तो भीतर की मूर्तियाँ पहली बार ऊपर से प्रकाश में दृष्टिगोचर हुईं।

किन्तु, अपने आकार के बावजूद, वे बड़ी मूर्तियाँ वस्तुतः इतनी जर्जर और कमजोर हो गयी थीं कि उनके सम्बन्ध में आगे के कार्य को करना कठिन हो गया। गठीला पत्थर एक चूना-मिश्रित पदार्थ द्वारा क्षैतिज पर्तों में चिपके बिल्लौरी बालू का बना होता है, और इसकी संयुक्त बने रहने सम्बन्धी क्षमता अत्यन्त न्यून होती है।

व्यापक परीक्षणों के पश्चात्, इंजीनियरों ने प्रत्येक ३० टन वजनी प्रस्तर-खण्ड में से होकर १॥ से १३/४ इंच तक व्यास में दो सूराख खोदने का निश्चय किया। प्रत्येक सूराख में उन्होंने इस्पात की दो गठीली छड़ें छोड़ीं, और फिर एपोक्सी-सरेस का मिश्रण, जिसे 'एरालिडट एपोक्सी-हार्ड' कहते हैं, उड़ेला ताकि वह छड़ों को सूराख के भीतर रोक रखे।

सरेस को २४ घण्टे तक उपचारित होने के लिए छोड़ दिया गया। फिर, ३,००० खण्डों में से प्रत्येक को एक विशाल क्रेन पर चढ़ाये गये एक विशेष खम्भे से सम्बद्ध कर दिया गया। जब ३० टन वजनी खण्डों को उठा कर सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दिया गया, तो इस्पात की छड़ों को, जो साफ सरेस की सतह में जमा दी गयी थीं, काट कर खण्डों के सिरों के समान स्तर पर ला दिया गया।

आज नये, सुरक्षित स्थान पर देवालयों के पुनर्निर्माण का कार्य जारी है। इस बार फिर, बालुकामय पत्थर में पड़ गयी दरारों को भरने, खण्डों को एक-दूसरे से सम्बद्ध करने और देवालयों की पुनर्स्थापना करने के लिए रासायनिक सरेसों का प्रयोग हो रहा है।

इस प्रकार, आधुनिक रसायन विज्ञान द्वारा, जो अभी कुछ ही दशाब्द पुराना है, ३२ शताब्दी प्राचीन कलाकृतियों को सुरक्षित रखना सम्भव हो गया है।

अनेक लोग और देश अपूर्व कलाकृतियों को भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखने के प्रयास में हाथ बँटा रहे हैं। इस योजना पर कुल ३·६ करोड़ डालर व्यय होने की सम्भावना है। संयुक्त अरब गणतन्त्र और अमेरिका में से प्रत्येक ने १९६३ में १·२ करोड़ डालर इस व्यय को पूरा करने के लिए देने का वचन दिया। संयुक्त राष्ट्र-संघ ने ५० लाख डालर अन्य राष्ट्रों से उगाहा। अमेरिका और संयुक्त अरब गणतन्त्र में से प्रत्येक ने शेष ७० लाख डालर में आधा-आधा देना स्वीकार किया है।

रैमसेस द्वितीय और उनकी रानी नेफरतारी की मूर्तियों में प्रयुक्त एपोक्सी सरेस कब तक टिकी रहेगी ?

इंजीनियरों का कहना है कि जब तक ये स्मारक कायम रहेंगे, उससे भी बहुत समय आगे तक सरेस रहेगी। एक ने तो यहाँ तक कहा है कि ये मूर्तियाँ आज जितनी मजबूत हैं, उतनी उस समय भी नहीं थीं, जब कई हजार वर्ष पूर्व उन्हें अछूती चट्टानों से काट कर बनाया गया था। क्या सदैव ? सम्भव है ऐसा ही हो; किन्तु 'सदैव' एक बहुत लम्बे काल का द्योतक है।

●●

१. रुद्रसागर के तेल कूप में अग्नि

गत ४ जनवरी १९६७ से गोहाटी के रुद्रसागर तेल-कूप नं० २५ में आकस्मिक आग लग गई जो २३ जनवरी तक लगातार जलती रही। इतने दिनों तक अग्नि को वश में करने के लिये अनेक ज्ञात यत्न किये गये किन्तु कोई सफलता नहीं मिली। अन्त में रूसी इंजीनियरों की सहायता से अग्नि पर विजय प्राप्त हुई।

ज्ञात समाचारों के अनुसार तेल की लपटों से आस-पास के तेल-कूपों में अग्नि के प्रसरित होने की आशंका हो गई थी। चारों ओर लपटें ही लपटें थीं। वहाँ के निवासियों तथा पशुओं के लिये टिक पाना समस्या थी।

२४ जनवरी को ही इस भीषण अग्नि पर विजय प्राप्त कर ली गई। किस विधि से अग्नि बुझाई गई इसका उल्लेख प्राप्त नहीं होता।

२. फोटो-फिल्म का कारखाना

प्रधान मन्त्री इन्दिरा गांधी ने ७ जनवरी को 'हिन्दुस्तान फोटो फिल्म्स फैक्टरी' का उद्घाटन किया। यह एशिया में अपनी किस्म का सबसे बड़ा और आधुनिकतम कारखाना है। यह कारखाना उटकमण्ड के निकट इन्दुनगर में १२ करोड़ रुपये की लागत से खड़ा किया गया है और इसकी स्थापना में अमेरिका की सुप्रसिद्ध फर्म 'मिनेसोटा माइनिंग एण्ड मैन्यूफैक्चरिंग कम्पनी' ने सहायता की है।

भारत-सरकार के मन्त्री डा० संजीवैया ने कहा है कि इस कारखाने से विदेशी मुद्रा की पर्याप्त बचत और आय हो सकेगी। उन्होंने कहा कि हम इस समय प्रतिवर्ष साढ़े चार करोड़ रुपये मूल्य की फिल्में मँगा रहे हैं और चौथी योजना के दौरान माँग में होने वाली वृद्धि को ध्यान में रखते हुए हम यह आशा कर सकते हैं कि हम विदेशों को काफी मात्रा में अपनी फिल्में भेज सकेंगे।

यह कारखाना जब चौथी योजना के दौरान पूरा उत्पादन करने लगेगा तो वह भारतीय फिल्मोद्योग की सारी आवश्यकताएँ पूरी कर सकेगा। फिल्मोद्योग में इस समय भारत का स्थान संसार में दूसरा है।

३. ग्रीष्मकालीन गोष्ठियाँ

अमेरिकी सरकार ने भारत को विज्ञान की शिक्षा के सुधारकार्यक्रम में सहायता देने के लिए १ करोड़ २० लाख डालर (९ करोड़ रुपये) का ऋण देने की घोषणा की है।

यह ऋण विशेषकर भारत के (ग्रीष्मकालीन) विज्ञान गोष्ठियों विषयक अत्यधिक प्रभावकारी कार्यक्रम और उसके साथ-साथ चलने वाले सहायक प्रयत्नों में मदद देने के लिए दिया गया है।

इस ऋण से भारत प्रयोगशाला में प्रयुक्त होने वाले आधुनिकतम उपकरण, पुस्तकें, तकनीकी मार्ग-निर्देशिकाएँ तथा हाईस्कूलों, पोलिटैक्नीक संस्थाओं और विज्ञान, गणित, इंजीनियरिंग तथा तकनीकी विद्या की शिक्षा देने वाले कालेजों के अध्यापकों की आवश्यकता की शिक्षण-सामग्री प्राप्त कर सकेगा।

४. आग से जले अंगों का पुन:संस्थापन

पिछले सप्ताह मणिपाल (मैसूर) के कस्तूरबा मैडिकल कालेज में जलने से अशक्त हुए व्यक्तियों को फिर काम-काज लायक बनाने और उनके प्रबन्ध के लिए एक अनुसन्धान-केन्द्र का उद्घाटन हुआ। अमेरिकी सरकार ने इस केन्द्र के लिए १० लाख रुपये का अनुदान दिया है।

भारत में जलने के कारण आकृतियाँ बिगड़ जाना, विकलांग हो जाना और मृत्यु का शिकार हो जाना आम बातें हैं। इस समय जलने वाले व्यक्तियों के लिए दक्षिण में कोई केन्द्र नहीं है।

मणिपाल केन्द्र जलने वाले रोगियों को अलग करके और वार्ड में रोग-उत्पादक जीवाणुओं को कम करने के बारे में विशेष कदम उठा कर मृत्यु-संख्या को कम करने का प्रयत्न करेगा। जलने वाले व्यक्तियों को फिर काम-काज लायक बनाने के एक व्यापक कार्यक्रम के अन्तर्गत मांसपेशियों को ठीक करने और रोगियों के स्वास्थ्य को पुन: सामान्य बनाने का प्रयत्न किया जायेगा।

५. चावल की नई किस्में

नई दिल्ली के 'भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान' और उसके पूसा (बिहार) स्थित उपकेन्द्र में की जाने वाली खोजबीन के परिणाम-स्वरूप शायद चावल की अधिक उपज वाली नई किस्में तैयार हो सकेंगी। इस पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत 'भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान' के निदेशक डा० एम० एस० स्वामीनाथन् की देखरेख में खोजबीन की जायेगी। अमेरिकी सरकार ने इस कार्य के लिए ४,५०,००० रुपये की सहायता दी है।

डा० स्वामीनाथन् और उनके साथी अनुसन्धानकर्ता उत्तर प्रदेश, पंजाब, और भारत की उत्तर-पूर्वी पहाड़ियों में बोये जाने वाले और अपने आप उगने वाले चावल की किस्मों की पड़ताल करेंगे और उनका संग्रह करेंगे। वे इस बात की भी छानबीन करेंगे कि उनमें रोगों तथा कीड़ों का प्रतिरोध करने की कितनी क्षमता है।

वे चावल की जंगली किस्मों में परिवर्तन लाने के लिए उन पर विकिरण और रासायनिक द्रव्यों का उपयोग करेंगे। इसका उद्देश्य खेती के लिए उपयुक्त नई किस्मों का विकास करना है। वैज्ञानिकों को ये किस्में चावल की अधिक उपज वाली और रोगों का मुकाबला कर सकने वाली नई किस्में तैयार करने के अपने कार्यक्रमों में प्रयुक्त करने के लिए उपलब्ध की जायेंगी।

६. चन्द्रमा के बारे में नई जानकारी

वैज्ञानिकों का कहना है कि आर्बिटर २ से लिये गये चित्रों से चन्द्रमा के बारे में नई जानकारी मिली है। अन्तरिक्ष-युग से पूर्व यह समझा जाता था कि साढ़े चार अरब वर्ष पूर्व जब चन्द्रमा की रचना हुई थी तब से उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है और सौर मण्डल के आदि काल से उसकी सतह जैसी की तैसी रही है।

अब चन्द्रमा भी भौतिकदृष्टि से पृथ्वी जैसी ही समझा जा सकता है जहाँ मौसम से पर्वतों का धीरे-धीरे क्षय होता रहता है और आन्तरिक उपद्रवों (भूकम्पों और ज्वालामुखी के फटने) के कारण भूमि का रूप बदल जाता है और नये पहाड़ बन जाते हैं।

वैज्ञानिकों का कहना है कि 'ऑर्बिटर' ने चन्द्रमा के ऊपर उड़ते हुए उसका नक्शा तैयार करने के जो प्रयत्न किये, उनकी उन

प्रयत्नों से कोई तुलना नहीं की जा सकती, जो रूसी यान 'लूना' ने किये हैं। 'लूना-१२' ने १९६६ के अन्त में पृथ्वी पर चन्द्रमा के ३ चित्र भेजे थे। ये चित्र चन्द्रमा से ६३ मील की दूरी से लिये जाने के कारण इतने अच्छे नहीं थे।

७. शरीर में बी-१२ विटामिन

यह ज्ञात किया गया है कि मनुष्य के यकृत में सर्वाधिक बी १२ विटामिन रहता है। वृक्क, हृदय तथा पित्ताशय में क्रमशः न्यून मात्रायें पाई गई हैं। ज्यों-ज्यों आयु बढ़ती जाती है त्यों-त्यों शरीर में इस विटामिन की मात्रा बढ़ती जाती है। कुछ रोगियों में इस विटामिन की मात्रा अत्यधिक हो जाती है तो कुछ में अत्यन्त न्यून।

८. प्याज के कारण कंठमाला

आयोडीन की न्यूनता के कारण कंठमाला रोग होता है अतः ऐसे भोज्य पदार्थ जिनमें आयोडीन की कमी हो या ऐसे एंजाइम हों तो उसकी सक्रियता को कम करें इस रोग के जनक होते हैं। प्रयोगों द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि क्रुसीफेरी कुल के पौदों में थायोसायनेट तथा थायोक्सैजोलीडोन नामक दो अवयव पाये जाते हैं जो कंठमाला की वृद्धि में सहायक बनते हैं। प्याज ऐसी ही तरकारी है। लेबैनान के पहाड़ी क्षेत्रों में अत्यधिक प्याज उगाई और खाई जाती है। वहाँ पर कंठमाला का प्रसार भी अत्यधिक है अतः वैज्ञानिकों को यह विश्वास हो गया कि प्याज के कारण कंठमाला रोग फैलता है। प्याज में प्रोपिल डाइसल्फाइड पाया जाता है जो थायराइड ग्रंथि के कार्य में बाधक बनकर कंठमाला की उत्पत्ति में सहायक होता है।

९. रूस द्वारा कृषि को सहायता

ज्ञात हुआ है कि अगले वर्ष तक रूसी सरकार भारत को ४००० ट्रैक्टर प्रदान करेगी। भारतीय कृषि के विकास में यह महत्वपूर्ण कदम है।

●●

नया वर्ष : नई प्रतिज्ञाएँ

१९६७ का वर्ष सारे देशवासियों के लिए चिर मंगलकारी हो—ऐसी शुभकामना करना हमारा कर्त्तव्य है। किन्तु जैसी स्थितियाँ हैं उन्हें देखते हुये विश्वास नहीं हो पाता कि पूरा वर्ष सुख और शान्ति से व्यतीत होगा।

फरवरी मास में देश भर में आम चुनाव होंगे, फिर नई सरकार बनेगी—इस क्रिया में आधा वर्ष बीतेगा। फिर आधे वर्ष क्या होगा ?

इस समय दैनिक आपदाओं ने देश के किसानों को निस्सहाय बना दिया है। सरकारी कर्मचारी देशव्यापी मँहगाई से त्रस्त हैं। विद्यार्थी-वर्ग में पिछली जुलाई से जो असन्तोष की लहर फैली हुई थी वह ज्यों की त्यों बनी हुई है। तो फिर नये वर्ष में शान्ति-चैन की गुंजाइश कहाँ ?

कहते हैं, आवश्यकता आविष्कार की जननी है। विज्ञान की प्रगति ने मानवता को प्रकाश दिखाया गया है। यही कारण है कि हम नये वर्ष में नई प्रतिज्ञाएँ करने को दृढ़-संकल्प हैं। प्रत्येक वैज्ञानिक अथवा विज्ञान-प्रेमी प्रतिज्ञा करें कि

- देश के हित के लिये वह सदैव चिन्तित रहेगा।
- अपनी राष्ट्र-भाषा में ऐसा उपयोगी वैज्ञानिक साहित्य लिखेगा जिससे तुरन्त लाभ हो।
- प्राचीन वैज्ञानिक परम्पराओं को प्रश्रय दिया जावेगा।
- वैज्ञानिक शोधों में जितना भी धन-व्यय हो रहा है उसका दुरुपयोग नहीं होगा।
- कृषकों, उद्योगपतियों तथा मजदूरों के हितों को ध्यान में रख कर शोधें की जावेंगी।
- वैज्ञानिक क्षेत्र को परम स्वतन्त्र रखने के लिये राजनीतिक रुकावटों का उच्छेद किया जावेगा।
- बालकों को वैज्ञानिक बनाने के लिये सभी प्रयास किये जावेंगे।

जय हिन्द : जय हिन्दी : जय विज्ञान :

फरवरी १९६७

विषय-सूची

विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुखपत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजनात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति। विज्ञानं प्रयन्त्यभिसविन्तीति। तै० उ० ३।५

भाग १०४ | माघ २०२३ विक्र०, १८८७ तक फरवरी १९६७ | संख्या ५

विज्ञान तथा राष्ट्र का हित

(प्रो० शेषाद्रि के अध्यक्षपदीय वक्तव्य के आधार पर)

भारतीय वैज्ञानिकों के लिए साइंस काँग्रेस का वार्षिक अधिवेशन बड़ा ही महत्वपूर्ण है। इसकी स्थापना लगभग ५० वर्ष पूर्व कुछ वैज्ञानिकों के संगठन द्वारा की गई थी जिनमें भारत में कार्य करने वाले कुछ अंग्रेज कर्मचारी भी सम्मिलित थे। इस काँग्रेस की स्थापना इस उद्देश्य से की गई थी कि भारतीय वैज्ञानिक तथा अनुसंधानकर्ता एकत्र होकर आपस में विचार विनिमय करके वैज्ञानिक शोध कार्यों का स्तर ऊँचा उठायें। पहले तो इस संस्था में विश्वविद्यालय के छात्र व अध्यापक ही भाग लेते रहे परन्तु कुछ समय पश्चात् सरकारी संस्थाओं ने उसके क्रियाकलापों में महत्वपूर्ण योग दिया जिसके फलस्वरूप सामान्य लोग भी इसमें रुचि रखने लगे। इस प्रकार एक छोटी सी समिति से प्रारम्भ कर वर्तमान काँग्रेस एक वृहत रूप धारण कर चुकी है। यद्यपि इसके कार्यों की आलोचना भी की जाती है परन्तु ये आलोचनायें निराधार हैं। किन्तु फिर भी इस साइंस काँग्रेस में कुछ कमियाँ हैं, जिन पर समिति को ध्यानपूर्वक विचार करना है। स्थापना के समय यह सम्पूर्ण भारत की एक प्रतिनिधि संस्था थी जिसे विज्ञान की समस्त शाखों के अवसर प्रदान करना पड़ता था धीरे-धीरे तमाम समितियाँ पथा उपसमितियाँ इसके अन्तर्गत भाग लेने लगीं। इसी के तत्वावधान में तमाम अन्य वैज्ञानिक संस्थायें तथा समितियाँ अपनी-अपनी गोष्ठियाँ करने लगीं। यह संस्थान विश्व की अन्य वैज्ञानिक संस्थाओं की तरह कार्य

करता है। इसके वार्षिक अधिवेशन देश के विभिन्न नगरों में नगर निगम तथ विश्वविद्यालयों के उपकुलपतियों के सहयोग से सम्भव किये जाते हैं। डा० शेषाद्रि ने सुझाव रखा ऐसी योजना बनाई जाय कि इन वार्षिक अधिवेशनों में वैज्ञानिक तथा साधारण जन समुदाय उपस्थित हुआ करें तथा इसमें ऐसे विषयों पर विचार-विमर्श किये जायँ जो जन कल्याण एवं राष्ट्रहित की दृष्टि से लाभप्रद सिद्ध हों। साथ ही साथ अत्यन्त गूढ़ विषयों की विवेचना को कम महत्व देकर, स्कूलों एवं विद्यालयों में शिक्षा पाने वाले छात्रों के लिये उपयोगी वैज्ञानिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये जायँ तथा विशेष विषयों पर वक्तव्य, शिक्षाप्रद चलचित्र तथा प्रदर्शनियों का आयोजन किया जाय।

डा० शेषाद्रि ने कहा—क्यों न हमारी एक ऐसी भाषा हो जो राष्ट्र-स्तर पर प्रयोग की जाय, भले ही वह विदेशी भाषाओं से अलग हो। लिपि का प्रश्न भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना भाषा का। "साइन्स एण्ड कल्चर" में प्रकाशित प्रो० एस० के० चटर्जी के वर्णमाला से सम्बन्धी लेख की प्रशंसा करते हुए उन्होंने इसके राष्ट्रव्यापी प्रयोग की आशा व्यक्त की तथा इन्डियन स्टैन्डर्ड इन्स्टीट्यूट से इस सम्बन्ध में सहयोग का सुझाव भी दिया। इस बात की भी नितान्त आवश्यकता है कि राजकीय वैज्ञानिक नीति पर भी विचार किया जाय कि इससे विज्ञान शिक्षा, वैज्ञानिक तथा राष्ट्रहित पर क्या प्रभाव पड़ रहा है। उन्होंने कांग्रेस के भूतपूर्व मंत्री डा० आत्माराम द्वारा इस सम्बन्ध में रुचि लेने की प्रशंसा करते हुए यह आशा व्यक्त की कि यह कार्य निकट-भविष्य में ही पूर्ण हो जायेगा।

डा० शेषाद्रि ने भारत के प्रधान मंत्री को अधिवेशन के उद्घाटन तथा उनकी उपस्थिति के लिए धन्यवाद देते हुए कहा—"मुझे आशा है कि जिस प्रकार इनके प्रतिष्ठित स्वर्गीय पिता जी प्रधान मंत्री का पद सम्हालने के पश्चात् एक भी अधिवेशन में अनुपस्थित नहीं हुए और उन्होंने वैज्ञानिक प्रगति को जो प्रचुर योगदान दिया उसी प्रकार आप भी इसके उत्थान व प्रगति में यथोचित रुचि रक्खेंगी।" हमारा राष्ट्र इस समय खाद्यान्न, स्वास्थ्य, जनसंख्या वृद्धि तथा प्रतिरक्षा की जिन कठिन परिस्थितियों का सामना कर रहा है उसका एकमात्र समाधान विज्ञान, तकनीकी तथा औद्योगिक विकास से ही सम्भव है। उन्होंने कहा कि प्राचीन काल में संकट पर जनता साधु-संतों के पास दौड़ती थी परन्तु आजकल संकट-समाधान के लिए लोग वैज्ञानिकों की ही बाट जोहते हैं। अतः तकनीकी तथा औद्योगिक विकाश के अतिरिक्त समस्याओं के हल के लिए विज्ञान की सहायता आवश्यक है।

विज्ञान एवं अध्यात्म

यद्यपि यह वैज्ञानिक युग है परन्तु सभी लोग इसका उद्देश्य नहीं समझ पाते। सामान्य ग्रामीण या तो विज्ञान से परे हैं अथवा यह समझते हैं कि यह उनकी समझ के बाहर का विषय है। विद्यार्थी इसे शैक्षिक योग्यता के रूप में, सामान्य जनता ही

वृहत यांत्रिकी या तकनीकी के रूप में, समाज सेवक इसे विलासिता, उद्योगपति इसे अपने भविष्य का आय स्रोत तथा राष्ट्र एवं शासन इसे आय कर का साधन समझते हैं। कुछ लोग परमाणु बम के नाम पर इसे विध्वंसकारी कहते हैं। विज्ञान से प्राप्त तमाम वस्तुयें लाभकारी और कुछ हानिकारक मानी जाती हैं। यह व्यक्तिगत विचार-धारा पर निर्भर करती है। अधिकांश व्यक्ति यह कहते सुने जाते हैं कि विज्ञान के विकास के साथ-साथ धर्म का लोप हो रहा है। उनका यह कहना निराधार है। हाल ही में कलकत्ता रामकृष्ण मिशन संस्था के अध्यक्ष स्वामी रंगनाथानन्द, जिन्हें धर्म का अध्यापक माना जाता है, जनवरी १९६४ ई० में संसद के धार्मिक तथ्यों पर विचार करने के लिए आयोजित अधिवेशन में एक शोध-पत्र प्रस्तुत किया था जिसका शीर्षक था "स्वामी विवेकानन्द का विज्ञान एवं धर्म संश्लेषण" और वह एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित भी हो चुका है। समयाभाव के कारण इसमें वर्णित तथ्यों एवं आँकड़ों का मैं विस्तृत वर्णन नहीं कर पाऊंगा परन्तु इसका सारांश इस प्रकार है :—

"प्राचीन धार्मिक विचार एवं धर्म तथा विज्ञान में गहरा सम्बन्ध है। धर्म की खोज तथा वैज्ञानिक अन्वेषणों की विधियाँ लगभग समान पाई गई हैं। धर्म तथा विज्ञान दोनों ही सत्य के प्रतीक हैं। उपसंहार के रूप में उन्होंने यह व्यक्त किया है कि विज्ञान तथा धर्म में कोई भेद तथा संघर्ष नहीं है। दोनों ही का मुख्य उद्देश्य मानव में अध्यात्म जागृत करना है। दोनों के इस साथ-साथ विकास से प्राप्त अध्यात्म शक्ति द्वारा मानव संस्कृति के उत्थान में योगदान मिलेगा।"

अन्य महामुनियों एवं अध्यात्मवादी महापुरुषों का भी यही विचार है कि अध्यात्मवाद से ही राष्ट्र की एकता तथा उत्थान सम्भव है। स्वर्गीय गांधी जी हमारी नई पीढ़ी के एक उदाहरण के रूप में आये जिन्होंने राजनीति को आध्यात्मिक रूप में बदलने का प्रयास किया। अतः क्या ये समस्त विचार विज्ञान एवं आध्यात्मिकता को परस्पर निकट नहीं लायेंगे ?

विज्ञान एवं संस्कृति

प्राचीन काल से ही विज्ञान एवं संस्कृति में एक सम्बन्ध रहा आया है। संस्कृति का प्रत्यक्ष सम्बन्ध मस्तिष्क से है और साथ ही साथ इसमें अन्य कारक भी सम्मिलित हैं जिनमें प्रत्येक को स्पष्ट करना सुगम नहीं है। विज्ञान पर ही मस्तिष्क एवं बुद्धि आधारित है। मस्तिष्क अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा शक्तिशाली होता है अतः इसे स्वस्थ एवं सुचारु अवस्था में रखने के लिए विज्ञान के अतिरिक्त अन्य आकर्षण नहीं हैं। प्राचीन संस्कृति में भी गणित तथा ज्योतिष विज्ञान का महत्व रहा है जो कि विज्ञान के मुख्य अंग हैं। इनका आकर्षण वर्तमान में भी उसी प्रकार नियमित है। इनके साथ-साथ भौतिकी तथा रसायन एवं आणविक जैविकी भी अब महत्व रखने लगी हैं।

संरचनात्मक रसायन

हम अणु एवं परमाणु शब्दों का प्रयोग करते हैं। ये विभिन्न तत्वों एवं पदार्थों के सूक्ष्म रूप हैं जो उसके गुणों का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा अदृश्य होते हैं। अभी तक पदार्थों का ज्ञान अधूरा है और दिन प्रतिदिन इनके परिपूर्ण अध्ययन का प्रयास किया जा रहा है। इनके सम्पूर्ण अध्ययन के पश्चात् ही इनके वास्तविक रूप तथा प्रयोग का पता लग सकेगा।

गाजर तथा पौधों की पत्तियों में एक लाल रंग का पदार्थ कैरोटीन पाया जाता है जिससे उनमें लाल रंग आ जाता है। यह विटामिन 'ए' का मुख्य स्रोत है तथा इसे **प्रोविटामिन 'ए'** कहते हैं। साधारण मनुष्य इसे लाल क्रिस्टलीय पदार्थ कहेगा जिसको वह तेल तथा घी में रंग लाने के लिए तथा खाद्य पदार्थ के रूप में भी प्रयोग कर सकेगा। परन्तु एक रसायनशास्त्री के लिए इसका अधिक महत्व है। इसके अनुसार कैरोटीन के अणु यद्यपि सूक्ष्म होते हैं परन्तु अत्यन्त जटिल भी। इनका अणु सूत्र $C_{४०}H_{५६}$ होता है जिसमें ९६ परमाणु होते हैं जिनके मध्य एक लम्बी शृंखला होती है। अभी तक यह ज्ञात था कि इसमें उपस्थित इलेक्ट्रान प्रकाश के प्रभाव से गतिमान होकर रंग देते हैं परन्तु अब यह पता चला है कि कार्बन तथा हाइड्रोजन के परमाणु संस्पंदन करते हैं मानों श्वास ले रहे हों। ये अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं जिन्हें आँख से नहीं देखा जा सकता परन्तु स्पेक्ट्रम द्वारा इनका ज्ञान हो जाता है। यह स्पेक्ट्रम न केवल दृश्य प्रकाश बल्कि पराबैंगनी तथा अवरक्त प्रकाश में लिया जा सकता है। इसी के अध्ययन के लिए **रमन स्पेक्ट्रम** एक महत्वपूर्ण विधि थी परन्तु अब **'न्यूक्लियर-मैगनेटिक रिजोनेन्स स्पेक्ट्रम'** विधि का प्रयोग किया जाता है।

इस प्रकार अब कैरोटीन अणु की न केवल परमाणु संरचना, इलेक्ट्रानों की गति तथा परमाणुओं के स्पंदन का पता चला है बल्कि प्रोटानों के अनुगमन का भी ज्ञान सम्भव हो गया है।

परमाणु से भी सूक्ष्म कण

हाल ही के कुछ वर्षों में परमाणु से भी छोटे रूपों का अविष्कार किया गया है। प्राचीन काल में केवल पंच तत्वों का ही नाम लिया जाता था परन्तु रसायन विज्ञान के विकास के पश्चात् तमाम रसायनिक तत्वों का पता चला है। प्रकृति में ९२ तत्व मिले जिन्हें आवर्त सारिणी में वर्गीकृत किया गया। इसी शताब्दी के आरम्भ में उप-परमाणु, इलेक्ट्रान, प्रोटान तथा न्यूट्रान का अविष्कार हुआ। लगभग ३० वर्ष पूर्व परमाणुक नाभिकी के अवयव न्यूट्रान तथा प्रोटान के चित्र प्राप्त किये गये तथा ऐसी धारणा बनी की पदार्थ के सबसे सूक्ष्म कण यही हैं। इसके पश्चात् डा० शेषाद्रि में मेसॉन, बेरियॉन एन्टीबेरियॉन और विकरण, इलेक्ट्रानों तथा न्युक्लियान इत्यादि की भी चर्चा की। विगत १० वर्षों में नवीन त्वरकों, दोहरे कक्षों, गणक विधियों के

विकास के उपरान्त लगभग १०० प्रकार के कणों का पता चला है जो रसायनिक तत्वों की संख्या के लगभग बराबर है। हाल ही में विभिन्न प्रकार के कणों में सम्बन्ध तथा उनकी संरचना एवं समूहों का ज्ञान हुआ। जिस प्रकार रसायनिक तत्वों को समूहबद्ध करने से नये तत्वों के अविष्कार में सहायता मिली है, आशा है उसी प्रकार कणों के गुणों के अनुसार समूहबद्ध हो जाने पर नये कणों के अविष्कार में सहायता मिलेगी। परमाणुक तथा अणु क्षेत्र के ज्ञान से हमें घूर्णन, स्पंदन तथा अनुगमन का पता चला तथा उप-परमाणु के अविष्कार से तीव्र परिवर्तनों का परिचय हुआ। कण-परिवार के सदस्यों के न्यूक्लियॉन, इलेक्ट्रान तथा विकिरण-क्वांटा से हम अधिक परिचित हैं क्योंकि ये साधारण ताप पर अपरिवर्तनशील होते हैं। इससे यह सिद्ध हो जाता है विश्व में उपस्थित विभिन्न पदार्थ विनाशी हैं या परिवर्तनशील भी।

इसमें संदेह नहीं कि इस प्रकार के वैज्ञानिक विकास हमारी संस्कृति तथा विज्ञान की वृद्धि में सहायक सिद्ध हो रहे हैं। वैज्ञानिक उपलब्धियों का उतना ही महत्व है जितना कि संगीत तथा नाटक, साहित्य, कला तथा शिल्पकला का। साथ ही साथ विज्ञान की कुछ उपलब्धियों का व्यावहारिक उपयोग है। उदाहरणार्थ, संरचनात्मक रसायन से सम्बन्धित संश्लेषित औषधियाँ रंग तथा कीटनाशी रसायन पदार्थ।

यद्यपि वैज्ञानिक अध्ययन पहले सस्ता था—यहाँ तक कि रमन प्रभाव का आविष्कार ही लीजिये जो कि कुछ हजार रुपयों की लागत से सुसज्जित प्रयोगशाला में सम्पन्न किया गया था परन्तु आजकल वैज्ञानिक विकास इतना खर्चीला एवं महँगा हो गया है कि केवल धनी देश ही इसको अपना सकते हैं। अन्तरिक्ष सम्बन्धी शोधकार्य, कण भौतिकी तथा आनुवंशिक अनुसंधान कार्यों के लिए अत्यधिक धन चाहिए। इसका हानिकारक प्रभाव तो तब पड़ता है जब न्यून आय वाले देश इसे अपना लेते हैं फलतः आर्थिक सहायता न मिल पाने से शोध-कार्य अधूरा रह जाता है तथा राष्ट्र की आर्थिक स्थिति पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

विज्ञान एवं समाज

इसके पहले कि हम संरचनात्मक रसायन तथा अन्तरिक्ष सम्बन्धी शोध-कार्यों का प्रारम्भ करें यह आवश्यक है कि अपने वस्त्र, भोजन, स्वास्थ्य, शिक्षा, प्रतिरक्षा का समुचित प्रबन्ध कर लें। यह तभी हो सकता है जब राष्ट्रीय धन को संरचनात्मक रसायन या उच्चस्तरीय अनुसंधान में न व्यय करके उसका व्यावहारिक प्रयोग करें। उदाहरण के लिए, उद्योग-धंधों तथा कृषि उत्पादन में विस्तार व वृद्धि करके औषधियों कीटनाशी, तथा कवकनाशी पदार्थों का उत्पादन एवं विभिन्न कार्यों के लिए रेडियो टेलीविजन, विटामिन, जेट तथा वायुयान और अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण करके पहले उपर्युक्त समस्याओं का समाधान कर लें, फिर इनसे प्राप्त अधिक धन इसी उच्च स्तरीय वैज्ञानिक विकास में व्यय करें। तब हमारी दशा सुधर सकती

यदि भारत को इस दिशा में उन्नति करना है तो अनुसंधान तथा विकास के निमित्त कुल राष्ट्रीय आय का कम से कम १ प्रतिशत धन व्यय किया जाय। द्वितीय यह कि अभी तक राज्य एवं केन्द्र सरकार का वैज्ञानिक अनुसंधान में लगभग १०० करोड़ रुपया व्यय हो रहा है जिसमें विश्वविद्यालयों को प्रदत्त धन अलग से है, तो क्या व्यय हो रहे धन के अनुसार अनुसंधानों से समुचित लाभ हो रहा है या नहीं ?

दुर्भाग्य से मूल्य वृद्धि के कारण वैज्ञानिक शिक्षा पर भी आज बहुत धन व्यय होने लगा है अतः यह एक जटिल समस्या है कि धन कहाँ से आये ? इसके लिए एक ही रास्ता है कि धन संचय तथा धन का सदुपयोग किया जाय।

इतना ही नहीं, धन एवं साधन से ही वैज्ञानिक अनुसंधान की उन्नति सम्भव नहीं। इसके लिए कुशल वैज्ञानिकों की नितान्त आवश्यकता है। कुशल वैज्ञानिक तभी उपलब्ध हो सकेंगे जब उनकी शिक्षा-दीक्षा एक सुधरी शिक्षा-प्रणाली के अनुसार हुई हो। स्वस्थ तथा प्रखर मस्तिष्क के विकास के हेतु यम, नियम तथा राजयोग इत्यादि का अनुसरण करना नितान्त आवश्यक है। उपर्युक्त नियमों के अन्तर्गत सत्य, अहिंसा, स्वावलम्बन, ईश्वर पर आस्था व विश्वास, स्वच्छता, चोरी न करना, संतोष तथा अतिथि सम्मान में निपुणता इत्यादि का पालन एवं अनुकरण करना सम्मिलित है। इन्हीं नियमों का पालन एक स्वस्थ मस्तिष्क के विकास में योगदान करता है। इसमें संदेह नहीं कि स्वस्थ मस्तिष्क को सत्य दृष्टिगोचर होता है और वही मस्तिष्क विज्ञान का लाभ उठा सकता है। जैसा मस्तिष्क होगा विज्ञान का उपयोग भी उसी प्रकार किया जायेगा। एक दुर्बुद्धि मस्तिष्क विज्ञान का घातक प्रयोग करेगा।

वर्तमान वैज्ञानिक अनुसंधान संस्थाओं का उद्देश्य यही है कि कुशल, बुद्धिमान विशेषज्ञ तथा सामाजिक क्षेत्र में नेतृत्व करने वाले सभी प्रकार वैज्ञानिकों को सहयोग के साथ, आयोग के रूप में विचार विमर्श करके कार्य करने का अवसर दिया जाय।

अन्त में डॉ० शेषाद्रि ने कहा कि मनुष्य जीवन का उद्देश्य केवल धन प्राप्त करने तक ही सीमित नहीं होना चाहिए। हमारा कर्त्तव्य है कि पहले व्यक्तिगत उत्थान करें तथा जन कल्याणकारी कार्यों में रत हो जायें। विज्ञान मस्तिष्क विकास तथा आध्यात्मिकता का एक ऐसा साधन है कि मानव सफलता के शीर्ष को छू सकता है। यदि वैज्ञानिकों के मस्तिष्क में विश्वास तथा सत्यता की भावना जागृत हो जाय तो उनका स्तर भी उठ जायेगा और प्राचीन वैदिक प्रार्थना, जो वर्तमान विज्ञान के उद्देश्य रूपी प्रार्थना, के समान है पूर्ण रूप से चरितार्थ हो जायगी :—

असतो मा सत गमय्।
तमसो मा ज्योतिर्गमय्॥
मृतो मा अमृत गमय्॥।

खाद्य समस्या : एक गम्भीर पहेली

● भूसुर

विगत तीन पंचवर्षीय योजनाओं में, अर्थात् पिछले १५ वर्षों से लगातार हमारी सरकार यही आश्वासन देती आई है कि हम खाद्य-सामग्री के मामले में आत्म-निर्भर हो जावेंगे किन्तु आशा के विपरीत प्रत्येक बार असफलता ही हाथ लगी है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि जहाँ हमारे देश में आयात खाद्य सामग्री की मात्रा घटनी चाहिए थी वहाँ वह लगातार बढ़ती हुई ऐसी स्थिति पर पहुँच गई है कि हम यह सोच ही नहीं पा रहे कि उसे किस प्रकार कम किया जाय। आखिर इतनी मात्रा में अन्न का आयात हमारी आर्थिक अवस्था से ही तो सम्बद्ध है ? प्रति वर्ष हमें ३०० करोड़ रुपये का अन्न आयात करना पड़ रहा है। पहले अमरीका ने कुछ छूट दे रखी थी किन्तु अब तो अवमूल्यन के बाद हमें अन्न की कीमत डालरों में चुकानी पड़ रही है।

हमारी खाद्य समस्या देश की जनसंख्या से जुड़ी हुई है। इस समय देश की कुल जनसंख्या लगभग ४५ करोड़ है। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अन्त तक यह ५६ करोड़, पंचम पंचवर्षीय योजना के अंत तक ६३·५ करोड़ तथा षष्ठम पंचवर्षीय योजना (अर्थात् १९८१) तक यह ७० करोड़ हो जावेगी। इस बढ़ी हुई जनसंख्या को भोजन की व्यवस्था करने के लिये खाद्य-सामग्री में क्रमशः ८·६%, ५·५% तथा ४·३% की वृद्धि प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में करनी होगी। प्रश्न यह है कि क्या इतनी वृद्धि सम्भव है ? क्या यह अधिक सामग्री आयात द्वारा पूरी की जा सकती है ?

उत्तर होगा, कदापि नहीं। यदि विगत १५ वर्षों के कृषि उत्पादन पर ध्यान दिया जाय तो पता चलेगा इस काल में अन्नोत्पादन में २·८% की दर से वृद्धि हुई जिसमें आधी वृद्धि अधिक भूमि को कृषि के अन्तर्गत लाने के फलस्वरूप हुई। दुर्भाग्यवश कृषि योग्य भूमि के क्षेत्रफल को अब और बढ़ा पाना कठिन है और यदि पैदावार का यही स्तर स्थिर रहा तो यह सच है कि प्रतिवर्ष बढ़ने वाली जनसंख्या के लिये अन्न उत्पन्न कर पाना असम्भव होगा।

अन्नोत्पादन एवं जनसंख्या के परस्पर जुड़े होने के साथ ही देश की पशुसंख्या भी उसी के साथ जुड़ी हुई है। ऐसा अनुमान है कि मनुष्यों की जनसंख्या की ही भाँति पशुओं की संख्या भी भारत में सर्वाधिक है। विश्व भर की पशुसंख्या की

हमारे देश में है जिसमें से गायों तथा भैंसों की संख्या ८ करोड़ है। इतने पर भी यह विचित्र बात है कि हमारे देश में प्रति व्यक्ति को दूध की जितनी औसत मात्रा प्राप्त हो सकती है वह उन्नत राष्ट्रों की तुलना में १/४ या इससे भी कम है। यही नहीं, पशुओं से प्राप्त माँस, अंडे या मछली जैसे खाद्य पदार्थों की उपलब्धि तो और भी कम (१/२०) है।

स्पष्ट है कि जनसंख्या अधिक होने के कारण तथा अन्नोत्पादन एवं दुग्धादि में न्यूनता के कारण हमारे देश की अधिकांश जनता या तो कम भोजन पाती है या ऐसा भोजन पाती है जो संतुलित नहीं होता। इसके परिणाम-स्वरूप देश में भुखमरी तो है ही, भुखमरी के साथ ही निकृष्ट भोजन मिलने से नाना प्रकार के न्यूनता रोगों से जनता ग्रसित है।

स्वस्थ मानव के लिये प्रतिदिन कम से कम ३५०० किलो कैलारी ऊर्जा प्राप्त होनी चाहिए। किन्तु हमारे देश में औसतन १९७० किलो कैलारी ही उपलब्ध है। इतनी ऊर्जा ६०० ग्राम भोजन पदार्थ से प्राप्त होती है। इस तथ्य से परिचित होने के कारण ही हमारी सरकार अगले कुछ वर्षों में ऊर्जा-मान को २३७० करना चाहती है अर्थात् प्राय: १३ % वृद्धि करना चाहती है।

किन्तु केवल ऊर्जा बढ़ाने से काम नहीं चलेगा। हमें यह भी देखना होगा कि भोज्य तत्वों में से किन अवयवों की नितान्त आवश्यकता है। निस्सन्देह अभी हमारी अधिकांश ऊर्जा की प्राप्ति अन्नों से होती है। दूध, फल तथा तरकारियों आदि पर विशेष बल नहीं दिया जाता क्योंकि ये अत्यन्त मँहगे हैं। किन्तु शरीर की समुचित वृद्धि, शरीर के सुचारु ढंग से कार्यशील रहने, मानसिक विकास आदि के लिये इनका उपयोग आवश्यक है। भोज्य अवयवों में से प्रोटीन अवयव हमें दूध या दालों से ही प्राप्त हो सकता है और यही उपर्युक्त कार्यों के लिये लाभकर है अत: पहला उद्देश्य होना चाहिए प्रोटीनयुत पदार्थों की वृद्धि। अभी दाल या दूध से जितना प्रोटीन प्राप्त हो पाता है उसमें ड्यौढ़ी या दूनी वृद्धि की जानी है।

दालों की वृद्धि कृषि द्वारा ही सम्भव है किन्तु दुग्ध की वृद्धि पशुधन पर निर्भर करेगी।

प्राप्त आँकड़ों से ज्ञात होता है कि देश में दुग्ध उत्पादन १९५१ से आज तक स्थिर रहा है। परिणामस्वरूप यदि दुग्ध उत्पादन में वृद्धि करनी है तो पशुओं की नस्ल में सुधार करने के साथ ही साथ पशुओं के लिये उत्तम चारे का प्रबंध करना होगा। आखिर यह चारा कहाँ से आवेगा? इसके लिये भी तो भूमि चाहिए? अन्नोत्पादन के लिये आवश्यकता से भूमि अधिक नहीं है तो चारा कहाँ बोया जाय? यह सच है कि चारे की भी उन्नत किस्में विकसित हो चुकी हैं किन्तु उन्हें भी भूमि में ही उगाना पड़ेगा।

दुग्ध-पशुओं की नस्ल में सुधार करके ३-४ गुना दूध उत्पन्न किया जा सकता है किन्तु चारे के अभाव में यह सम्भव नहीं है। दूध के लिये हरे चारे और दाने अत्यावश्यक हैं। हमारे देश में हल जोतने के लिये बैलों तथा भैंसों का रखना आवश्यक है। स्वस्थ रखने के लिये उपलब्ध चारे का अधिकांश इन्हें ही खिला दिया जाता है जिससे गायों-भैंसों के लिये बहुत कम चारा मिल पाता हैं। ऐसी दशा में अधिक दुग्ध उत्पादन सम्भव नहीं। यह तभी सम्भव है जब (१) पशुओं की संख्या कम हो (२) चराई की प्रथा में सुधार करके नये सिरे से चरागाह स्थापित हों।

पशुओं की संख्या में कमी करने के कई उपाय हो सकते हैं—बछड़ों की संख्या कम की जाय तथा बछियों के पालन-पोषण पर ध्यान दिया जाय। कुछ ही बछड़ों को उत्तम भोजन देकर बैल के रूप में अधिक कार्य लिया जाय। यदि सम्भव हो तो कम से कम बैल रखकर खेती की जाय और अच्छा तो यह हो कि कृषि को यंत्रों की सहायता से जोता-बोया जाय। इससे बैलों की आवश्यकता नहीं रह जावेगी। तब उनके स्थान पर गायों को महत्व प्रदान किया जा सकता है। एक और उपाय है—वह है बूढ़ी तथा न दूध देने योग्य गायों, भैंसों आदि का वध। अवश्य ही हमारे देश की जनता इसे जघन्य पाप समझती है किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे पशुओं को चारा खिलाना या देखरेख करना भारस्वरूप तो होता ही है, दुधारू पशुओं का उचित पालन-पोषण नहीं हो पाता। कुछ कृषि अर्थशास्त्रियों का तो यह अभिमत है कि चमड़े तथा हड्डी के उद्योगों की स्थापना होने से आर्थिक लाभ भी हो सकेगा। किन्तु हमारे देश की अधिकांश जनता खाद्य समस्या से इस समस्या को पृथक मानकर ही गो-वध का विरोध करती है। धार्मिक दृष्टि से यह ठीक है किन्तु आर्थिक तथा भौतिक पहलू इसको ठीक नहीं मानता।

शायद भारतीय किसान इस समस्या पर विचार नहीं करते कि लगातार सूखा पड़ने से चारा की कमी हो जाने पर वे आखिर जानवरों को सस्ते दाम पर बेचते हैं तो उनका होता क्या होगा ?

पशु-संख्या को कम करके तथा पौष्टिक चारों को उगाकर ही दूध-घी की वृद्धि की जा सकती है। इससे हमारी भोज्य समस्या का एक अंग पूरा होता है।

जहाँ तक अनाजों की उपज में वृद्धि का प्रश्न है वह भी दो प्रकार से सम्भव है (१) उन्नत जाति की फसलों को उगाकर (२) अधिकाधिक उर्वरकों का प्रयोग। धान, गेहूँ, मक्का, ज्वार तथा बाजरे की अनेक उन्नत जातियाँ परीक्षित की जा चुकी हैं जिनमें जलवायु की विषमताओं को सहने, रोगों के प्रति प्रतिरोधकता तथा अधिक उपज देने के गुण पाये गये हैं। उदाहरणार्थ इस समय बाहर से प्राप्त तैचुंग, तैनान-३ आदि धान के बीज बोने के लिये उपलब्ध हैं। मेक्सिको से प्राप्त गेहूँ की सोनारा ६४ तथा लर्मा रोजो प्रजातियाँ परीक्षित हो चुकी हैं। किन्तु इन प्रजातियों से अधिक

उपज के लिये नाइट्रोजन उर्वरकों की अधिकाधिक मात्रा काम में लानी होगी फलतः उर्वरकों के उत्पादन में भी देश को प्रगति करनी है।

अब एक पहलू और शेष रह जाता है—और वह है जनसंख्या में वृद्धि पर रोकथाम। यदि जनसंख्या बढ़ती रही तो अन्नोत्पादन बढ़ाने या पशुधन को घटाने के जो भी प्रयास किये जावेंगे वे निष्फल होते रहेंगे। सौभाग्यवश हमारी राष्ट्रीय सरकार इस ओर जागरूक है। लूप तथा टिकियों के प्रयोग द्वारा जन्म-दर को १९७६ तक $\frac{1}{3}$ तथा १९८१ तक $\frac{1}{2}$ कर देने का लक्ष्य बनाया गया है। किन्तु तब भी भोजन की कमी बनी रहेगी क्योंकि मृत्यु-दर में भी ह्रास होता रहेगा। ऐसा अनुमान है कि किसी भी दशा में वर्तमान जनसंख्या-वृद्धि (२·५%) १९७६ तक १·८% तथा १९८१ तक १·३% रहेगी।

अतः यह सिद्ध हुआ कि सभी प्रकार के यत्नों को करते रहने पर भी अगले १५ वर्षों तक देश में भोजन की समस्या एक प्रमुख समस्या बनी रहेगी। यदि जीवित रहना है और यदि ढंग से रहना है तो या तो भोज्य समस्या के समस्त पहलुओं पर विचार करते हुए कार्य करना है या फिर बाहर से अन्न मँगाकर उसकी पूर्ति करनी होगी। शायद हमारा देश इतना धनी नहीं कि वह लगातार अन्न मँगाता रहे।

कुछ उपयोगी आँकड़े

कृषि के अन्तर्गत विश्व भर का क्षेत्रफल = $\frac{1}{10}$

चरागाहें ,, ,, = $\frac{1}{5}$

जंगल = $\frac{3}{10}$

भारत की भूमि का क्षेत्रफल ८०·८ करोड़ = ३२·७ करोड़ हेक्टार

बोया जाने वाला क्षेत्रफल ३५ करोड़ एकड़ = १४·२ करोड़ हेक्टार

सिंचित क्षेत्रफल (१९५०-५१) = ५·६ करोड़ एकड = २·३ करोड हेक्टार

(१९६५-६६) = ८·८ ,, ,, = ३·६ ,, ,,

= संयुक्त राज्य अमरीका की सिंचित भूमि का ३ गुना

= विश्व की $\frac{1}{2}$ सिंचित भूमि

प्रति परिवार भूमि = ७ एकड = ३ हेक्टार

भोज्य ऊर्जा का मूल्य

अन्न	३५०० कैलारी/किग्रा०	१०० पैसे
चीनी	३८७२/ ,, ,,	१५० पैसे
आलू	७००/ ,, ,,	५० पैसे
मांस	२५००/ ,, ,,	४०० पैसे
तेल, वसा	८८००/ ,, ,,	५०० पैसे

दुग्ध-पशुओं की नस्ल में सुधार करके ३-४ गुना दूध उत्पन्न किया जा सकता है किन्तु चारे के अभाव में यह सम्भव नहीं है। दूध के लिये हरे चारे और दाने अत्यावश्यक हैं। हमारे देश में हल जोतने के लिये बैलों तथा भैसों का रखना आवश्यक है। स्वस्थ रखने के लिये उपलब्ध चारे का अधिकांश इन्हें ही खिला दिया जाता है जिससे गायों-भैसों के लिये बहुत कम चारा मिल पाता हैं। ऐसी दशा में अधिक दुग्ध उत्पादन सम्भव नहीं। यह तभी सम्भव है जब (१) पशुओं की संख्या कम हो (२) चराई की प्रथा में सुधार करके नये सिरे से चरागाह स्थापित हों।

पशुओं की संख्या में कमी करने के कई उपाय हो सकते हैं—बछड़ों की संख्या कम की जाय तथा बछियों के पालन-पोषण पर ध्यान दिया जाय। कुछ ही बछड़ों को उत्तम भोजन देकर बैल के रूप में अधिक कार्य लिया जाय। यदि सम्भव हो तो कम से कम बैल रखकर खेती की जाय और अच्छा तो यह हो कि कृषि को यंत्रों की सहायता से जोता-बोया जाय। इससे बैलों की आवश्यकता नहीं रह जावेगी। तब उनके स्थान पर गायों को महत्व प्रदान किया जा सकता है। एक और उपाय है—वह है बूढ़ी तथा न दूध देने योग्य गायों, भैसों आदि का वध। अवश्य ही हमारे देश की जनता इसे जघन्य पाप समझती है किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे पशुओं को चारा खिलाना या देखरेख करना भारस्वरूप तो होता ही है, दुधारू पशुओं का उचित पालन-पोषण नहीं हो पाता। कुछ कृषि अर्थशास्त्रियों का तो यह अभिमत है कि चमड़े तथा हड्डी के उद्योगों की स्थापना होने से आर्थिक लाभ भी हो सकेगा। किन्तु हमारे देश की अधिकांश जनता खाद्य समस्या से इस समस्या को पृथक मानकर ही गो-वध का विरोध करती है। धार्मिक दृष्टि से यह ठीक है किन्तु आर्थिक तथा भौतिक पहलू इसको ठीक नहीं मानता।

शायद भारतीय किसान इस समस्या पर विचार नहीं करते कि लगातार सूखा पड़ने से चारा की कमी हो जाने पर वे आखिर जानवरों को सस्ते दाम पर बेचते हैं तो उनका होता क्या होगा ?

पशु-संख्या को कम करके तथा पौष्टिक चारों को उगाकर ही दूध-घी की वृद्धि की जा सकती है। इससे हमारी भोज्य समस्या का एक अंग पूरा होता है।

जहाँ तक अनाजों की उपज में वृद्धि का प्रश्न है वह भी दो प्रकार से सम्भव है (१) उन्नत जाति की फसलों को उगाकर (२) अधिकाधिक उर्वरकों का प्रयोग। धान, गेहूँ, मक्का, ज्वार तथा बाजरे की अनेक उन्नत जातियाँ परीक्षित की जा चुकी हैं जिनमें जलवायु की विषमताओं को सहने, रोगों के प्रति प्रतिरोधकता तथा अधिक उपज देने के गुण पाये गये हैं। उदाहरणार्थ इस समय बाहर से प्राप्त तैचुंग, तैनान-३ आदि धान के बीज बोने के लिये उपलब्ध हैं। मेक्सिको से प्राप्त गेहूँ की सोनारा ६४ तथा लर्मा रोजो प्रजातियाँ परीक्षित हो चुकी हैं। किन्तु इन प्रजातियों से अधिक

उपज के लिये नाइट्रोजन उर्वरकों की अधिकाधिक मात्रा काम में लानी होगी फलतः उर्वरकों के उत्पादन में भी देश को प्रगति करनी है।

अब एक पहलू और शेष रह जाता है—और वह है जनसंख्या में वृद्धि पर रोकथाम। यदि जनसंख्या बढ़ती रही तो अन्नोत्पादन बढ़ाने या पशुधन को घटाने के जो भी प्रयास किये जावेंगे वे निष्फल होते रहेंगे। सौभाग्यवश हमारी राष्ट्रीय सरकार इस ओर जागरूक है। लूप तथा टिकियों के प्रयोग द्वारा जन्म-दर को १९७६ तक $\frac{1}{3}$ तथा १९८१ तक $\frac{1}{2}$ कर देने का लक्ष्य बनाया गया है। किन्तु तब भी भोजन की कमी बनी रहेगी क्योंकि मृत्यु-दर में भी ह्रास होता रहेगा। ऐसा अनुमान है कि किसी भी दशा में वर्तमान जनसंख्या-वृद्धि (२·५%) १९७६ तक १·८% तथा १९८१ तक १·३% रहेगी।

अतः यह सिद्ध हुआ कि सभी प्रकार के यत्नों को करते रहने पर भी अगले १५ वर्षों तक देश में भोजन की समस्या एक प्रमुख समस्या बनी रहेगी। यदि जीवित रहना है और यदि ढंग से रहना है तो या तो भोज्य समस्या के समस्त पहलुओं पर विचार करते हुए कार्य करना है या फिर बाहर से अन्न मँगाकर उसकी पूर्ति करनी होगी। शायद हमारा देश इतना धनी नहीं कि वह लगातार अन्न मँगाता रहे।

कुछ उपयोगी आँकड़े

कृषि के अन्तर्गत विश्व भर का क्षेत्रफल = $\frac{1}{10}$
चरागाहें ,, ,, = $\frac{1}{5}$
जंगल = $\frac{3}{10}$

भारत की भूमि का क्षेत्रफल ८०·८ करोड़ = ३२·७ करोड़ हेक्टार
बोया जाने वाला क्षेत्रफल ३५ करोड़ एकड़ = १४·२ करोड़ हेक्टार
सिंचित क्षेत्रफल (१९५०-५१) = ५·६ करोड़ एकड = २·३ करोड हेक्टार
(१९६५-६६) = ८·८ ,, ,, = ३·६ ,, ,,
= संयुक्त राज्य अमरीका की सिंचित भूमि का ३ गुना
= विश्व की $\frac{1}{2}$ सिंचित भूमि

प्रति परिवार भूमि = ७ एकड = ३ हेक्टार

भोज्य ऊर्जा का मूल्य

अन्न	३५०० कैलारी/किग्रा०	१०० पैसे
चीनी	३८७२/ ,, ,,	१५० पैसे
आलू	७००/ ,, ,,	५० पैसे
मांस	२५००/ ,, ,,	४०० पैसे
तेल, वसा	८८००/ ,, ,,	५०० पैसे

स्पष्ट है कि १ रुपये में अन्न द्वारा सर्वाधिक कैलारी प्राप्त की जा सकती है जबकि मांस, वसा आदि से कैलारी की प्राप्ति अधिक मँहगी पड़ेगी।

भारतीय भोज्य पदार्थों के पोषकता-मान

प्रति १०० ग्राम पर

	कैलारी	प्रोटीन	कैल्सियम	विटामिन ए
अन्न	३५०	८—६ ग्राम	३० मिग्रा०	४५ इकाई
चीनी	३५०	—	—	—
दालें	३१५	२०	११०मिग्रा०	१०० इकाई
फल, तरकारी	४०	—	३५ मिग्रा०	१२०० इकाई
दुग्ध	८५	३.७	१३० मिग्रा०	१४० इकाई
तैल, वसा, मक्खन	८८०	—	—	—

अन्य देशों की तुलना में हमारे देश का भोज्य-स्तर

	कैलारी	सम्पूर्ण प्रोटीन	पशु प्रोटीन सम्पूर्ण प्रोटीन का %
१. भारत	१९७०	५१	११.८
२. एशिया, अफ्रीका लैटिन अमरीका	२१९०	६०	१६.७
३. यूरप, उत्तरी अमरीका तथा दक्षिणी अमरीका	३०६०	९०	४८.९

ऐसा अनुमान है कि यदि देश के वासी प्रोटीन में धनी भोजन करते हैं तो अन्ततः उनकी लैंगिक क्षमता में ह्रास होने के कारण जनसंख्या में कमी आ सकती है। चूहों पर किये गये प्रयोग इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। यही नहीं, जन्म दर तथा प्रोटीन-उपभोग के बीच सम्बन्ध स्थापित किया गया है। उदाहरणार्थ जिन राष्ट्रों में सर्वाधिक प्रोटीन खाया जाता है वहाँ की जन्म दर सबसे कम है। उदाहरणार्थ सर्वाधिक प्रोटीन स्वीडन, अमेरिका, आस्ट्रेलिया में खाया जाता है (प्रतिदिन ५०-६० ग्राम)। यहाँ प्रति सहस्र व्यक्ति पर जन्मदर १५ से लेकर १८ है। जहाँ ४०-५० ग्राम प्रोटीन खाया जाता है वहाँ यह दर २० तक है किन्तु जापान, भारत तथा फारमोसा में जहाँ४-११ ग्राम प्रोटीन मिलता है जन्मदर २६-४६ तक है। स्पष्ट है कि ८-१० गुना अधिक प्रोटीन उपलब्ध होने पर हमारे देश की जनसंख्या में आशातीत कमी हो सकती है।

कुछ लोगों का विचार है कि यदि देश में औद्योगीकरण हो जाय तो कम लोग खेती करेंगे जिससे उपज में वृद्धि सम्भव है। अमरीका में प्रति दस व्यक्ति के पीछे एक व्यक्ति खेती करता है और वह इतनी उपज करता है कि उससे २५ व्यक्तियों का भरण हो सकता है।

काश कि भारत ऐसा कर पाता। ●●

सूर्य की नाभिकीय ऊर्जा

●श्याम मनोहर व्यास

सूर्य सदैव से वैज्ञानिकों के लिए अन्वेषण का विषय रहा है। अनन्त ऊर्जा का उत्पादक सूर्य क्यों चमकता है? इतने वर्षों तक बरावर उष्मा और प्रकाश देता आ रहा सूर्य ठण्डा क्यों नहीं पड़ गया? इन प्रश्नों का हल खोजने के लिये वैज्ञानिकों ने कई परिकल्पनायें प्रस्तुत कीं। किसी ने सूर्य की तुलना जलते कोयले के ढेर से की तो किसी का विचार था कि सूर्य उल्काओं के आघात के परिणामस्वरूप चमकता है। कई वैज्ञानिकों की यह भी मान्यता थी कि सौर-पदार्थ गुरुत्व के दाब से जलते हैं। पर आधुनिक वैज्ञानिक युग में इन सब कल्पनाओं को त्यागना पड़ा।

सूर्य से हर सेकेन्ड अनन्त ऊर्जा की धारा प्रवाहित होती है जिसके कारण ही अन्य ग्रहों-उपग्रहों पर प्राणियों का जीवित रहना सम्भव है। आज विज्ञान ने पदार्थ के सूक्ष्मतम कणों की गति के नियमों का पता लगा लिया है। द्रव्य जगत्के गुप्ततम नियमों के ज्ञान ने सूर्य के युगों पुराने रहस्य का द्वार खोल दिया।

सूर्य दीप्तमान पिंड है, यह पृथ्वी से तीन लाख गुना बड़ा है। हमारी पृथ्वी के गर्भ में प्रति वर्ग इंच पर दस करोड़ पौंड का दाब है। सूर्य के गर्भ में यह दाब १ लाख गुना और अधिक होगा। सूर्य के गर्भ का ताप एक करोड़ ५० लाख डिगरी है। इतने ऊँचे ताप का आप अनुमान भी नहीं कर सकते।

● बिजली की भट्ठियों का ताप ३००० डिगरी ही होता है। सूर्य की बाहरी सतह पर ताप ६००० डिगरी का है।

● सूर्य दो अरब वर्षों से चमक रहा है।

● सूर्य मुख्यतः हाइड्रोजन और हीलियम का बना है।

● सूर्य के आन्तरिक भाग में ३५ प्रतिशत के लगभग हाइड्रोजन है।

आधुनिक वैज्ञानिकों के मतानुसार सौर-ऊर्जा नाभिकीय ऊर्जा है, इसका स्रोत फ्यूजन की प्रक्रिया हल्के परमाणुओं के नाभिकों का भारी परमाणुओं के नाभिकों के साथ संश्लेषण है।

संहृति और ऊर्जा का पारिस्परिक सम्बन्ध आइन्स्टीन के समीकरण से विदित है।

$$E = mc^2$$

इसमें E का अर्थ पदार्थ में विद्यमान कुल ऊर्जा है, m उसकी संहृति है और c प्रकाश का वेग है। यह समीकरण यह भी बताता है कि किसी वस्तु में कितनी विशाल शक्ति विद्यमान है।

परमाणुओं के विखण्डन से अनन्त मात्रा में ऊर्जा उत्पन्न की जा सकती है।

सन् १९३० में वैज्ञानिक एटकिन्सन ने बताया कि सूर्य में परमाणुओं के नाभिकों वाली प्रक्रियायें हो रही हैं। सूर्य के गर्भ में गैसें सामान्य रूप में नहीं हैं।

सूर्य के आन्तरिक भाग में परमाणु तीव्र गति से दौड़ते और टकराकर चूर-चूर हो जाते हैं।

परिणामस्वरूप भौतिक तत्व ठोस, द्रव या गैस के रूप में नहीं होते बल्कि एक भिन्न रूप में रहते हैं जिसे प्लाज़्मा कहते हैं। यह प्लाज़्मा वस्तुतः तत्व का चौथा रूप है। ठोस, द्रव गैस से पूर्णतः भिन्न रूप।

सूर्य के गर्भ में हाइड्रोजन के परमाणुक नाभिक प्रोटान प्रायः एक दूसरे से तीव्र गति से टकराते रहते हैं।

ये प्रोटान कम अवसरों पर ही एक दूसरे से टकराते हैं—कारण जब वे पारस्परिक विद्युतीय प्रतिकर्षण के प्रतिरोध से गुजर सकें।

जब इस प्रकार दो प्रोटान निकट आते हैं तो एक प्रोटान न्यूट्रान में परिवर्तित हो जाता है। तदनन्तर न्यूट्रान और प्रोटान संयुक्त होकर ड्यूट्रान (भारी हाइड्रोजन) के नाभिक का निर्माण करते हैं।

इस प्रक्रिया के दौरान नये हल्के धन-आवेश से युक्त पाजिट्रान और अनेक न्यूट्रिनों उत्पन्न होते हैं।

न्यूट्रिनों की कोई संहति नहीं होती, कोई आवेश नहीं होता और यह प्रकाश की चाल से चलता रहता है।

ये न्यूट्रिनो सूर्य की ऊर्जा का पाँच प्रतिशत स्वयं ले लेते हैं।

यदि प्रोटान की संहति १·००७५८ और न्यूट्रान की संहति १·००८९८ है तो ड्यूटेरियम की संहति केवल २·०१४२७ होगी!

संहति में ·००२२९ की कमी आई।

संहति की यह मात्रा ऊर्जा में परिणत हो गई!

सूर्य के गर्भ में अनन्त प्रोटान हैं और इस प्रकार भारी हाइड्रोजन के परमाणुओं का निर्माण होता रहता है।

इस प्रकार बनी भारी हाइड्रोजन का परमाणु अधिक काल तक नहीं रहता। केवल छः सेकेण्ड के भीतर ही वह एक और मुक्त प्रोटान के साथ मिलकर हल्की हीलियम गैस के नाभिक का निर्माण करता है।

हल्की हीलियम के नाभिक भी संयुक्त रूप में एक होकर सामान्य हीलियम का परमाणु बनाते हैं। दो प्रोटान इस प्रक्रिया में पृथक हो जाते है!

डा० बेथे के मतानुसार सूर्य के गर्भ में नाइट्रोजन व कार्बन भी पर्याप्त मात्रा

में विद्यमान है जो उत्प्रेरक का कार्य करते हैं। इनकी उपस्थिति में हाइड्रोजन आसानी से हीलियम में परिवर्तित होती रहती है।

प्रक्रिया के फलस्वरूप द्रव्य में जो कमी आती है उससे इतनी ऊर्जा बनती है कि जिसके कारण सूर्य कभी ठण्डा नहीं होने पाता।

परमाणु विखण्डन की इस क्रिया के फलस्वरूप मुक्त ऊर्जा का परिमाण इस प्रकार है :—

$_1H^1 + {}_1H^1 \rightarrow {}_1D^2$ + [४·६ लाख इलेक्ट्रान वोल्ट ऊर्जा उत्पन्न होती है]

$_1D^2 + {}_1H^1 \rightarrow {}_2He^3$ + ५४·९ ,, ,,

$_2He^3 + {}_2He^3 \rightarrow {}_2He^4 + 2\ {}_1H^1$ + १२८·५ ,, ,,

प्रति ग्राम हीलियम संश्लेषण से १७५·०० किलोवाट अवर ऊर्जा उत्पन्न होती है।

सूर्य के गर्भ में उष्मा नाभिकीय इंधन हाइड्रोजन का अक्षय भण्डार है।

सूर्य से धीरे-धीरे हाइड्रोजन का क्षय हो रहा है अतः सम्भव है भविष्य में एक न दिन अवश्य सूर्य बुझ जायगा।

ताप नाभिकीय परिवर्तन की गति सक्रिय तत्व की मात्रा पर निर्भर नहीं करती बल्कि ताप पर भी निर्भर करती है। इसके अनुसार सम्पूर्ण सूर्य नष्ट होने में काफी समय लगेगा।

सूर्य की आयु का अनुमान लगभग २ × १०^१२ वर्ष लगाया गया है। हरबर्ड स्पेंसर जौन के मतानुसार पृथ्वी २२००० लाख भाग में से केवल एक भाग सौर-ऊर्जा का प्राप्त करती है।

आप यह न समझें कि सूर्य ही ऊर्जा का उत्पादक है और वह ही आग का गोला है। हमारे ब्रह्माण्ड में भी बहुत से ऐसे तारे हैं जिनके समक्ष सूर्य ठण्डा माना जायगा। इन तारों में हाइड्रोजन गैस बराबर हीलियम बन रही है। यह क्रिया इन तारों के आन्तरिक भाग में होती है। यदि समस्त हाइड्रोजन का ९० प्रतिशत एकदम हीलियम में बदल जाय तो ये तारे फूल उठेंगे। तब प्रत्येक तारा आगे चलकर दानव तारा (Red-Giants) बन जायगा जो अपने आस-पास के आकाशीय पिंडों को निगल जायगा। सूर्य में भी यदि यही क्रिया हो तो वह भी अपना सामान्य रूप छोड़कर तेजी से फूल उठेगा और एक-एक करके कई ग्रहों को निगल जायगा। पहले बुध विलीन होगा, फिर शुक्र इत्यादि। तीसरे नम्बर में हमारी पृथ्वी सूर्य का आहार होगी।

यह तभी सम्भव है कि सूर्य की सारी हाइड्रोजन एकदम हीलियम में परिणत हो जाय। पर अभी ऐसी कोई सम्भावना नहीं है अतएव भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं। अभी तक सूर्य उष्मा व ऊर्जा प्रदान कर हमारा जीवनदाता ही बना हुआ है। ●●

दवायें एवं औषधियाँ

●डा० शिवगोपाल मिश्र

औषधि एवं शल्य चिकित्सा में जितनी भी प्रगति हुई है वह रसायन विज्ञान के बिना असम्भव होती। आखिर हम क्यों बीमार पड़ते हैं - यही न, कि शरीर ठीक से कार्य नहीं करता। और यह शरीर एक मशीन के सदृश है—एक रासायनिक मशीन के सदृश फलतः शरीर क्रियाओं के रसायन का ज्ञान आवश्यक है। यही कारण है शरीर के भीतर कार्य शील अनेक क्रियाओं एवं प्रक्रमों के क्रमवद्ध अध्ययन से शरीर की व्याधियों को दूर करने में सफलता प्राप्त हुई है। यह सफलता नाना प्रकार की औषधियों एवं दवाओं को बनाकर ही प्राप्त की गई है।

आज बड़े बड़े अस्पतालों में रोगियों का जिस प्रकार आपरेशन किया जाता है उसे देखकर यही विचार उठता है कि रसायन के द्वारा यदि इस्पात तथा अन्य संकर धातुओं का पता न चला होता तथा सम्मोहन एवं मूर्छा लाने वाली औषधियाँ न बन पाई होतीं तो न तो कठिन रोगों से ग्रस्त मनुष्यों को काल के गाल से छुड़ाया जा सकता था और न ही उन्हें पुनः स्वस्थ किया जा सकता था।

हर प्राणी स्वस्थ रहना चाहता है किन्तु वह ऐसा नहीं रह पाता क्योंकि उसे ठीक से रहने नहीं आता। अस्वथ होने पर वह तुरन्त अच्छा हो जाना चाहता है। इसके लिये वह तिक्त से तिक्त औषधि का सेवन कर सकता है। कारण यह है कि हर एक प्राणी को जीवन प्रिय है। इसीलिये अत्यन्त प्राचीन काल से बीमार होने पर वह ओझा या वैद्यों की शरण में जाता था। ऐसा विश्वास था कि कुछ रोग प्रेतात्माओं की कुदृष्टि के कारण होते थे अतः उनके भागने का कार्य ओझा लोग करते थे। वैद्य लोग नाना प्रकार की जड़ी बूटियाँ देते। कुछ से लाभ होता तो कुछ से नहीं। कितने लोग उनसे मर जाते थे—इसका कोई भी विवरण प्राप्त नहीं होता किन्तु इतना स्पष्ट है कि रोगों को ठीक से समझने का प्रयास नहीं हुआ था।

चिर यौवन की कामना तथा संजीवनी बूटी की खोज ये दो मूलभूत समस्यायें काफी काल तक लोगों के मस्तिष्कों पर घर किये रहीं। इन्हीं के परिणामस्वरूप

विज्ञान का विकास हुआ। विशेषतः रसायन का सम्पूर्ण विकास इसी पृष्ठभूमि में हुआ।

यहाँ पर हमारा उद्देश्य न तो अनेकानेक रोगों के लक्षणों को बताना है और न रोगियों के लिये दवाओं के नुस्खे ही देना है। हमारा अभिप्राय सामान्य पाठक को रोगों के कारण, औषधियों की रासायनिक प्रकृति, औषधियों को प्रयोग करते अथवा खरीदते समय आवश्यक बातों का उल्लेख मात्र है। परिणामस्वरूप नित्यप्रति व्यवहार में आने वाली तमाम दवाओं एवं औषधियों को विभिन्न वर्गों में विभाजित करके उनके सम्बन्ध में अपेक्षित सूचना प्रदान करना है। रोगों की दृष्टि से तथा देश में पैदा की जाने वाली एवं उपलब्ध औषधियों की दृष्टि से ऐसी जानकारी उपयोगी है।

(१) सरदर्द तथा अन्य दर्दों की दवायें
(२) जलने की दवायें
(३) जुकाम, खाँसी की दवायें
(४) निर्जर्मीकारक
(५) मृदुरेचक (Laxative)
(६) मूर्छाकारी, संवेदनहारी औषधियाँ
(७) उत्तेजक (Stimulants)

सर दर्द

जरा रेडियो सीलोन से व्यापार विभाग के विज्ञापन सुनें—सरदर्द की अनेक रामबाण दवाओं के नाम सुनने को मिलेंगे—सारिडान, ऐसपरीन, ऐस्प्रो, आदि। आयुर्वेद की भी अनेक औषधियाँ बहुविज्ञापित हैं—वेदना निग्रह रस, अमृतांजन आदि। किन्तु क्या इन दवाओं को लगाकर या खाकर कुछ काल के लिये पीड़ा से मुक्ति पा लेना ही पर्याप्त है? बुद्धिमान व्यक्ति इतने से संतुष्ट नहीं होगा। वह जानना चाहेगा कि आखिर सरदर्द होता क्यों है और उसके बारम्बार होने से क्या हानियाँ हो सकती हैं?

यह निश्चित समझें कि सर में दर्द रहना इस बात का सूचक है कि शारीरिक यंत्र ठीक से कार्य नहीं कर रहा।

कई कारणों से सर में दर्द हो सकता है।

(१) कुछ व्यक्ति कतिपय भोज्य पदार्थों के प्रति अत्यन्त संवेदी होते हैं अतः ऐसा भोजन करने से जिसके कुछ अवयव प्रकृति के प्रतिकूल हों, या तो स्नायविक ऐंठन या सरदर्द उत्पन्न होने लगता है।

(२) कोष्ठबद्धता—पेट ठीक से साफ न होने पर भी सरदर्द हो सकता है।

(३) **नेत्रों पर बल**—अधिक पढ़ने या लगातार किसी ओर देखते रहने से आँखों में जोर पड़ता है जिससे सर दर्द होने लगता है।

(४) **अत्यधिक थकान**—अधिक कार्य करने के फलस्वरूप थकान हो जाती है। कभी-कभी सरदर्द भी होने लगता है।

(५) **कम सोना**—रात्रि में कुछ ही घंटे सोने के कारण सरदर्द होने लगता है। कभी-कभी कमरे में वातन का प्रबन्ध न होने से भी सर चकराने लगता है।

(६) **चिन्तायें**—चिन्ताग्रस्त पुरुष के भी सरदर्द उत्पन्न हो सकता है।

(७) **शारीरिक अवयवों का ठीक से कार्य न करना**—यदि आमाशय, गुर्दे आदि अपने-अपने कार्य सुचारु रूप से नहीं चला पाते तो भी सरदर्द हो सकता है।

सरदर्द ऐसी पीड़ा है जो अल्पकालिक है अतः यदि ठीक से विश्राम किया जाय, सोया जाय एवं ठीक समय से संतुलित भोजन किया जाय तो सरदर्द जाता रहता है। किन्तु कभी-कभी वह उग्र रूप धारण कर लेता है। ऐसी दशा में उससे मुक्ति पाने की आवश्यकता उठ खड़ी होती है। रसायन विज्ञान की महती कृपा से ऐसी अनेक वेदनाहारी औषधियाँ प्राप्त हैं जिनके प्रयोग से सरदर्द में तुरन्त लाभ होता है।

ऐसी औषधियाँ जो पीड़ा या दर्द को हर लें पीड़ाहारी या वेदनाहारी कहलाती हैं।

सर दर्द को दूर करने वाली औषधियाँ ऐसे रासायनिक पदार्थ हैं जो स्नायुओं एवं स्नायु-केन्द्रों पर अवनमनकारी प्रभाव डालते हैं फलतः किसी भी पीड़ाहारी औषधि का प्रयोग खतरे से खाली नहीं होता। यही कारण है कि बिना डाक्टर की राय के कोई भी पीड़ाहारी औषधि का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

किन्तु डाक्टर भी आपकी पीड़ा को नहीं देख सकते। वे कोई न कोइ औषधि बता ही देंगे। उदाहरणार्थ ऐस्पिरीन के व्यवहार का आम प्रचलन है। इसे प्रयोग करने से कम से कम खतरा है क्योंकि यह कोलतार से प्राप्त किये गये सैलिसिलिक अम्ल का ऐसीटिक अम्ल एस्टर है। यह पाँच-ग्रेन की टिकियों में बिकता है। किन्तु यह दवा भी सर्वथा निर्दोष नहीं क्योंकि कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो इस रासायनिक औषधि के प्रति अत्यन्त संवेदी (allergic) होते हैं। ऐसे व्यक्तियों पर घातक प्रभाव पड़ सकता है।

बार्बिटुरिक अम्ल, ऐसेट ऐनीलाइड, ऐंटीपाइरीन, फीनैसेटिन, ट्रिपल ब्रोमाइड, ऐमिनोपाइरीन तथा कैफीन भी किसी न किसी रूप में वेदनाहारी औषधि के रूप में प्रयुक्त हो सकते हैं। किन्तु ये वेदनाहारी पदार्थ निद्राकारी भी होते हैं और इन सबका बुरा प्रभाव हृदय पर पड़ता है अतः बाजारों में बिकने वाली अनेकानेक सरदर्द की दवाओं का तब तक प्रयोग न करें जब तक उनके ऊपर लिखी संरचना से परिचित

न हो लें। अन्धानुकरण द्वारा अथवा लोगों के मुखों से किसी वेदनाहारी औषधि के गुणों को सुन कर न तो ललचें और न क्षणिक आवेग में बह जायें। ऐसी दवायें डाक्टर की सलाह के बिना न लें। ध्यान रहे कि ऐसी दवायें खाते रहने से लत पड़ जाती है और फिर बिना इनके नींद नहीं आती।

जलना

आग से पास सावधानी से न रहने पर आग से जलने की सतत सम्भावना रहती है किन्तु केवल आग से जलना ही जलना नहीं है। अन्य प्रकार से भी त्वचा जल सकती है। उदाहरणार्थ गरम वस्तुओं को छूने से, कुछ घातक रसायनों के पड़ने से, गरम द्रव गिर जाने से, अथवा लगातार तीव्र सूर्य की किरणें पड़ने से। इन सभी प्रकारों से जलने के अनुभव प्राय: प्रत्येक व्यक्ति को होते हैं।

जलने के फलस्वरूप शारीरिक अंगों को विभिन्न गहराई तक क्षति पहुँच सकती है। क्षति की तीव्रता के अनुसार जलने को **तीन प्रकारों** में विभाजित किया गया है :

(१) **प्रथम कोटि**—इसमें जलने के फलस्वरूप त्वचा लाल पड़ जाती है।

(२) **द्वितीय कोटि**—इसमें छाले या फफोले पड़ जाते हैं।

(३) **तृतीय कोटि**—त्वचा के नीचे के ऊतक नष्ट हो जाते हैं और कभी-कभी तो झुलस जाते हैं।

जलने से उत्पन्न क्षति (घाव आदि) के अनुसार ही उनका उपचार होना चाहिए।

आग से जलने पर तुरन्त फफोले पड़ सकते हैं और वे फूट सकते हैं। इससे भीषण दर्द होता है और फफोलों से लगातार द्रव बहता रहता है। यदि फफोला टूटा न हो तो उसे छेड़ें नहीं क्योंकि उसके टूटने से संक्रमण (infection) की सम्भावना रहती है। यदि किसी अग्निकाण्ड में आधे से अधिक शरीर जल गया हो तो तुरन्त उपचार की आवश्यकता पड़ती है और डाक्टर की शरण लेनी चाहिए किन्तु यदि किसी एक अंग का कम स्थान ही जला हो तो आप स्वयं कुछ उपचार कर सकते हैं। उदाहरणार्थ जले हुये अंग को शीतल जल के भीतर प्रविष्ठ कर दें। इससे आराम मिलेगा। जले अंश पर ठंडे जल तथा खाने वाले सोडे की लेई बनाकर लगावें और जब तक उसमें जलन रहे उसे सिक्त करते रहें।

ध्यान रहे कि जले हुये अंश **पर आयोडीन नहीं लगावें**। जहाँ तक सम्भव हो पकाया हुआ गाज ही जले भाग में रखें। कभी भी रुई का व्यवहार न करें क्योंकि इसके रेशे चिपक जाते हैं जिससे रुई निकालते समय कष्ट होता है।

तुरन्त आराम पाने के लिये जले हुये भाग के ऊपर टैनिक अम्ल से सिक्त गाज

रखें। ५ चम्मच टैनिक अम्ल चूर्ण को एक गिलास खौलते पानी में डाल कर विलयन बनावें और इसी का व्यवहार करें। यदि टैनिक अम्ल उपलब्ध न हो तो चाय को उबालकर गाढ़ा रस निकाल कर उसका प्रयोग करें। इसमें टैनिक अम्ल रहता है।

बाजार से पिक्रिक अम्ल गाज खरीद कर प्रयोग में लाना चाहिए।

जले हुये अंग पर कई प्रकार के मलहम लगाने से भी आराम मिलता है। यदि वैसलीन के साथ जिंक आक्साइड मिलाकर लेप किया जाय तो आराम मिलता है। मक्खन, चर्बी, मिट्टी का तेल आदि के लगाने से भी क्षणिक लाभ होता है। बर्नोल एक चमत्कारी औषधि है जिसका प्रयोग जलने पर करना चाहिए। स्मरण रहे कि द्वितीय तथा तृतीय प्रकार की क्षति होने पर इन मलहमों का प्रयोग न किया जाय क्योंकि डाक्टरों को इन मलहमों को साफ करने से रोगी को कष्ट होगा।

रासायनिक पदार्थों से जलना आग से जलने से कुछ भिन्न होता है। अम्ल तथा क्षार से जलना बड़ा ही घातक होता है। यदि कोमल अंगों पर अम्ल या क्षार पड़ जाय तो सदा के लिये वह अंग बेकार हो जाता है। शायद आप अम्ल (तेजाब) फेंक कर दुश्मनी भँजाने के कुपरिणामों से परिचित होंगे। आँखें फूट जाना, मुँह पर सफेद गहरे धब्बे पड़ जाना, हड्डियों का गल जाना—आदि भयंकर एवं वीभत्स कुपरिणाम देखे जाते हैं।

प्रयोगशाला में काम करने वाले छात्रों, या कर्मचारियों तथा अम्ल उत्पादक कारखानों में काम करने वाले व्यक्तियों के लिये अम्ल से जलना सामान्य घटना है। प्राय: अम्ल कपड़ों पर बिखर जाता है या शरीर के किसी अंग पर। ऐसी दशा में जो कार्य तुरन्त ही करना चाहिए वह है जले स्थान को जल से धोना। इसके बाद उस अंग पर अमोनिया या सोडियम बाइकार्बोनेट का विलयन डालना चाहिए। इससे अम्ल उदासीन हो जावेगा। चूने का पानी भी प्रयुक्त किया जा सकता है।

यदि दुर्भाग्य से अम्ल के छींटे आँख में पड़ें तो आँख को पर्याप्त पानी से धोकर तुरन्त ही सोडियम बाइकार्बोनेट के विलयन को लगाना चाहिए।

यदि चूषिका द्वारा, अम्ल मुँह तक पहुँच जाय तो जल से तुरन्त कुल्ला करके सोडियम बाइकार्बोनेट से गरगरा करना चाहिए।

यदि अम्ल किसी प्रकार पेट तक पहुँच जाय तो सोडे के घोल को पीना चाहिए।

नाइट्रिक अम्ल तथा सलफ्यूरिक अम्ल के जलने से अत्यन्त घातक प्रभाव पड़ता है।

अम्ल की ही भाँति तीव्र क्षार भी दाहक होते हैं। कास्टिक सोडा, कास्टिक पोटैश, चूने की कली तथा तीव्र अमोनिया--ये सभी अत्यन्त दाहक हैं। इनके पड़ने से

कपड़ा गल जाता है, जूते पर दाग पड़ जाते हैं और शरीर की त्वचा पर घाव हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि इनमें कार्बनिक पदार्थों को घोलने की क्षमता पाई जाती है।

यदि किसी वाह्य अंग पर क्षार गिरे तो पहले उसे पानी से धोकर उस पर तनु अम्ल—यथा सिरका या ऐसीटिक अम्ल डालना चाहिए।

यदि आँख में क्षार चला जाय तो बोरिक अम्ल से धोना चाहिए।

यदि पेट के भीतर क्षार चला जाय या यदि धोके से कोई क्षार पी ले तो तुरन्त सिरका पिलाना चाहिए और फिर जितना शीघ्र हो सके डाक्टर को बुलाना चाहिए।

क्षार को अम्ल द्वारा उदासीन कर लेने पर जले हुए अंग पर वैसलीन, टैनिक अम्ल या पेट्रोलेटम लगाया जा सकता है।

धूप में काम करने वाले किसान, नंगे रहने वाले बालक या कपड़े के बाहर निकले हुये अंग प्राय: श्याम वर्ण के हो जाते हैं। यह श्यामता एक प्रकार से धूप के द्वारा जलना है किन्तु यह जलना प्रथम कोटि का है। शायद ही धूप से जलने के कारण तीव्र घाव होते हों। किन्तु यदि आतशी दर्पण द्वारा सूर्य की किरणों को शरीर के किसी भाग में पड़ने दिया जाय तो गहरे घाव हो सकते हैं। ऐसी दशा में आग से जलने जैसा उपचार करना चाहिए। टैनिक अम्ल का प्रयोग सर्वोत्तम होगा।

जुकाम तथा खाँसी

शायद ही ऐसा व्यक्ति हो जो जुकाम या खाँसी से पीड़ित न हुआ हो। जब ये रोग उग्र रूप धारण करते हैं तो रोगी की दशा खराब हो जाती है। अनुमान है कि ७५% जनसंख्या साल में कई बार इस रोग से पीड़ित होती है। इसका प्रकोप ३ दिनों तक रहता है। १७८३ ई० में ही डा० बुकन (Buchan) ने यह घोषित किया था कि इस रोग की कोई दवा नहीं है। जुकाम ही खाँसी में परिणत हो जाती है। जुकाम के लिये कोई ऋतु विशेष निर्दिष्ट नहीं की जा सकती। यह सभी ऋतुओं में होती है।

इतना व्यापक रोग होने पर भी जुकाम होने के कारण ठीक से ज्ञात नहीं। कुछ लोगों का विचार है कि यह जर्म (germ) के द्वारा फैलती है किन्तु आज तक जुकाम के जर्मों का पृथक्करण नहीं किया जा सका। ऐसा अनुमान है कि ये जर्म शीत अवस्थाओं में ही वृद्धि करते हैं। १९१४ ई० में लीपजिग के वाथर क्रसे (Wather Kruse) ने जुकाम को 'वाइरस' द्वारा उत्पन्न बताया। ये फिल्टरित जीवाणु हैं और सूक्ष्मदर्शी द्वारा भी दृष्य नहीं होते। ये वाइरस नाक की झिल्ली से द्रव निकालने लगते हैं जिनमें अन्य जीवाणु पलते हैं। इससे सरदर्द तथा बुखार हो जाता है।

आजकल नगरों में सड़कों, कार्यालयों, घरों आदि में जितनी भीड़ रहती है उसके कारण इन जर्मों को वायु द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचने में सुगमता होती है। ये जर्म साँस द्वारा भीतर पहुँच जाते हैं। फिर ग्रसित लोगों के द्वारा विभिन्न पदार्थों को छूने से ये जर्म स्वस्थ मनुष्यों तक पहुँच जाते हैं। प्रायः इन बातों से लोग अपरिचित हैं फलतः जुकाम या ठंड रोग सरलता से फैलता है।

मौसम में परिवर्तन, शरीर अंगों का एकाएक गरम या ठंडा पड़ना, अधिक थकी आदि भी जुकाम के उत्पन्न होने में सहायता पहुँचाते हैं। ऐसा अनुमान है कि जुकाम के जर्म शीतकालीन कपड़ों में रहे आते हैं। ये तीन वर्ष तक जीवित रहते हैं।

यदि यह मान लिया जाय कि जुकाम जर्मों द्वारा फैलती है तो यह मानना होगा कि जो व्यक्ति स्वस्थ होंगे उन पर जुकाम का आक्रमण सरलता से नहीं होगा किन्तु जो व्यक्ति पहले से अस्वस्थ होंगे, वे जुकाम से जल्दी प्रभावित होंगे। बात भी ऐसी ही है।

जुकाम के द्वारा शरीर के विभिन्न अंग प्रभावित होते हैं यथा गला या फेफड़े। सर में भी ठंड लगती है अतः अंगों के अनुसार जुकाम को सर, गले की जुकाम, फेफड़े की जुकाम या सर की जुकाम कहते हैं।

तो क्या जुकाम का कोई रामबाण उपचार है? अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कोई भी एक दवा सभी रोगियों को समान रूप से लाभ पहुँचाती हुई नहीं पाई गई। यही नहीं कोई दवा जो एक बार किसी व्यक्ति को लाभ पहुँचा चुकी है दूसरी बार वह लाभदायक सिद्ध नहीं हो सकती।

व्यवहार में जुकाम के उपचार के लिये अनेक औषधियाँ प्रचलित हैं—कुछ लोग काढ़ा बताते हैं, कुछ नमकीन पानी पीने कहते हैं, कुछ सरसों का तेल लगाने, कुछ तुलसी या अदरक की चाय पीने, कुछ अवलेह चाटने, शहद चाटने, घाम में बैठने अथवा संयमित आहार की राय देते हैं। बहुत से लोगों को इनसे लाभ भी होता है। कुछ लोगों का यह विश्वास है कि प्राकृतिक चिकित्सा ही ठीक है। जुकाम होने पर किसी प्रकार की औषधि नहीं करनी चाहिए। वह अपने आप धीरे-धीरे ठीक हो जावेगी। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि यदि जुकाम होने पर डाक्टर की सलाह ली जाय तो वह अधिक काल तक चलती है किन्तु उसे ऐसे ही छोड़ देने पर शीघ्र ठीक हो जाती है। जुकाम में अफीम को लाभदायक बताया गया है।

जुकाम पर विजय पाने पर रसायन विज्ञान ने यथेष्ठ कार्य किया है। कुछ ऐसी दवायें ढूँढ निकाली गई हैं जिनसे लाभ होता है। किन्तु जो विज्ञापन कतिपय दवाओं को चमत्कारी कह कर घोषित करते हैं, वास्तव में वे अतिशयोक्ति का सहारा लेते हैं।

उदाहरणार्थ रेडियो सीलोन द्वारा सर्दी-जुकाम दूर करने के लिये 'विक्स एवो पैरम' का धुआँधार प्रचार किया जाता है। किन्तु जिन्होंने इसका बारम्बार या कदाचित प्रथम बार प्रयोग करके जो निराशा प्राप्त की है उससे आप यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि यह औषधि रामवाण नहीं कही जा सकती। यही कारण है कि ऐसे विज्ञापनों को सदैव सन्देह की दृष्टि से देखना चाहिए।

जुकाम की ५ प्रकार की औषधियाँ प्राप्त हैं :—

(१) **कुल्लियां**—इनमें थाइमाल, यूकैलिप्टस तेल, मेंथाल तथा ऐल्कोहल-जल में घुला जिंक क्लोराइड प्रमुख हैं। इन कुल्लियों को स्वादिष्ट बनाने के लिये या तो आयल आफ विंटरग्रीन या सिनैमान मिला रहता है। कभी-कभी कोई रंगीन पदार्थ भी मिला दिया जाता है।

ऐसा कहा जाता है कि ये कुल्लियाँ मुँह तथा गले के जर्मों को नष्ट कर देती हैं किन्तु प्रयोगों से ऐसा सिद्ध नहीं हुआ। यही कारण है कि ऐसी कुल्लियाँ विशेष लाभकर नहीं होतीं है।

(२) **बूँद** (Cough drops) : शुष्क गले को आराम पहुँचाने की दृष्टि से मिश्री की डली या चेरी अथवा नींबू के रस से बनी गोलियाँ (Lemon drops) चूसी जाती हैं किन्तु रोगी को इनसे कोई लाभ नहीं होता।

(३) **टिकियाँ तथा चूर्ण**—जुकाम की जो भी टिकियाँ प्रचलित हैं उनमें तीन प्रकार के अवयव रहते हैं—(१) वे जो पीड़ाहारी हैं—यथा ऐसीटैनीलाइड या ऐस्पिरिन। (२) वे जो क्षारीय हैं—यथा सोडियम बाइकार्बोनेट तथा (३) वे जो मृदुरेचक हैं—यथा फीनाप्थैलीन। कुछ टिकियों में क्विनीन अथवा विटामिन (सी) भी मिले रहते हैं। सल्फा दवायें तथा ऐंटीबायटिक भी जुकाम में लाभ पहुँचाते हैं।

किन्तु इससे यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिये कि ऐसे चूर्ण या ऐसी टिकियाँ जिनमें उपर्युक्त अवयव हों वे जुकाम के लिये समान रूप से लाभकर होंगी। बिना डाक्टर की राय के किसी प्रकार की टिकिया लेना ठीक नहीं।

(४) **सूँघने वाली औषधियाँ**—ऊपर हमने 'विक्स' का उल्लेख किया है। इसे लगातार सूँघने के लिये एक ट्यूब मिलती है। इस प्रकार की और भी दवायें हैं।

ऐसी दवाओं में मेंथाल, कपूर, थाइमाल या बेंजेड्रीन जैसे रासायनिक पदार्थ रहते हैं जो पेट्रोलेटम में घोल कर सूँघने के काम में लाये जाते हैं। इन पदार्थों के सूँघने से उत्तेजना उत्पन्न होती है और गले की श्लेष्म झिल्ली में संकुचन उत्पन्न होता से। किन्तु डाक्टरों का कहना है कि इन औषधियों के बारम्बार प्रयोग से फेफड़ों में तेल पहुँच सकता है जिससे शोथ तथा न्यूमोनिया जैसे भीषण रोग उत्पन्न हो सकते हैं।

(५) **मलहम**—सूँघने वाले पदार्थों में से कुछ भारी अर्द्धतरल पेट्रोलेटम में मिलाकर मलहम बना लिये जाते हैं। इन्हें छाती या गले में मल कर के उस अंग को

कपड़े से ढक दिया जाता है। इससे मलहम से वाष्पीकरण करने वाले अवयव रक्त नलिकाओं में प्रसरण उत्पन्न करते हैं जिससे कुछ उसासी मालूम होती है।

इन औषधियों के अतिरिक्त जुकाम न होने देने के लिये घरों के कमरों को निर्जमित करने की विधि विकसित की गई है। यदि कमरे के भीतर अल्पमात्रा में प्रोपिलीन ग्लाइकाल को वाष्पीकृत किया जाय तो इसकी वाष्प जर्मों (जीवाणुओं) के शरीर (भित्ति) के भीतर प्रविष्ट हो जाती है। यह ज्ञात है कि ये वाष्पें निर्जली-कारक हैं अत: ये जर्मों के शरीर के भीतर पाये जाने वाले जल का शोषण करके उन्हें नष्ट कर देती हैं।

जुकाम के रोगी की सुश्रूषा के लिये कुछ उपयोगी बातें बताई जा रही हैं।

(१) रोगी को चाहिए कि बिस्तर में लेट कर आराम करे। इससे उसके शरीर में दृढ़ता आवेगी और रोग का सामना कर सकेगा। यही नहीं, उसके जर्म दूसरे व्यक्ति तक नहीं पहुँचेंगे।

(२) यदि रोगी कब्जियत का शिकार हो तो पेट साफ करने के लिये उसे मृदु रेचक पदार्थ दिये जाने चाहिए।

(३) यदि जुकाम के साथ बुखार (ज्वर) भी हो तो गरम पानी से शरीर को तौलिये द्वारा मलना चाहिए। इससे आराम मिलेगा। ऐसी दशा में अच्छे (पौष्टिक) भोजन की व्यवस्था होनी चाहिए क्योंकि बुखार के समय शरीर के ऊतकों का तेजी से क्षय होता है।

(४) ज्वर होने पर काफी प्यास लगती है अत: खूब पानी पीना चाहिए। यदि सम्भव हो तो लेमोनोड या नारंगी का शर्बत पीना चाहिए। इससे जल की पूर्ति हो जाती है।

जो लोग यह कहते हैं कि जुकाम का वैक्सीन लगाया जा सकता है वे गलती करते हैं। वास्तविकता तो यह है कि अभी तक जुकाम पर कोई भी टीका लाभकर सिद्ध नहीं हुआ। इसका कारण यह है कि लगभग ७०-१०० प्रकार के वाइरस जुकाम के लिये उत्तरदाई हैं अत: कोई भी वैक्सीन रामवाण नहीं हो पाता।

फिर भी न्यूआर्लियन्स (लुइसियाना) स्थित टुलैन मेडिकल स्कूल के प्रोफेसर डा० वियम जे० मोगावगैव का कथन है कि ४ वर्ष के अध्ययन से जिसमें १००० विद्यार्थियों पर प्रयोग किये गये यह ज्ञात हुआ है कि ७५% सर्दी-जुकाम के रोगी ७ प्रकार के विषाणुओं से प्रभावित थे जिन्हें एक ही किस्म की वैक्सीन द्वारा प्रभावहीन किया जा सकता है।

[क्रमश:]

चावल की आवश्यकता और उसकी पूर्ति के उपाय

एस० वी० एस० शास्त्री

यह एक असंगत सी बात है कि हमारे देश में चावल की कमी रहती है जब कि भारत का स्थान धान की खेती के क्षेत्रफल की दृष्टि से संसार में तीसरा है। इस कमी के कई कारण हैं। मुख्य कारण यह है कि इस देश में धान की खेती सुसिंचित क्षेत्रों जैसे नदी-घाटियों और समुद्र-तट के इलाकों से लेकर उत्तरी-पूर्वी और मध्य-भारत के निचले क्षेत्रों में विपरीत स्थितियों में होती है। बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और असम में, जहाँ देश का धान की खेती का लगभग ७३ प्रतिशत क्षेत्र है, धान की खेती बरसात के सहारे होती है या बाढ़ में डूबती रहती है। ये दोनों ही बातें अच्छी पैदावार के लिए अनुकूल नहीं हैं। इसीलिए इन राज्यों में धान की औसत पैदावार मद्रास और आन्ध्र प्रदेश की औसत पैदावार से काफी कम है। मद्रास और आन्ध्र प्रदेश में धान की खेती अधिकांशतः ऐसे क्षेत्रों में होती है जहाँ सिंचाई का अच्छा प्रबन्ध है।

दक्षिण-पूर्वी एशिया के अधिकांश देशों की भाँति भारत में धान की खेती का क्षेत्रफल बढ़ने के कारण उपज जितनी बढ़ी है उतनी प्रति एकड़ पैदावार बढ़ने के कारण नहीं। दूसरे महायुद्ध से पहले भारत में धान का क्षेत्रफल लगभग ६ करोड़ २० लाख एकड़ था और धान की प्रति हैक्टेयर पैदावार लगभग ०.५५ टन थी, जबकि सन् १९६५ में भारत में धान की खेती का क्षेत्रफल बढ़ कर ८ करोड़ ४० लाख एकड़ हो गया, परन्तु धान की प्रति हैक्टेयर औसत पैदावर ०.४५ टन ही रही। यह स्थिति ताइवान से बिल्कुल उल्टी है। ताइवान में दस वर्षों में (अर्थात् सन् १९५२ और सन् १९६३ के बीच) धान की पैदावार में जो वृद्धि हुई है उसका मुख्य कारण पैदावार का प्रति हैक्टेयर बढ़ना है। इस अवधि में वहाँ धान की प्रति हैक्टेयर पैदावार १.६ टन से ३.४५ टन तक बढ़ गयी। इस अवधि में भारत में धान की पैदावार ३४ प्रतिशत बढ़ी। इसमें से १० फीसदी बढ़ोतरी तो धान का क्षेत्रफल बढ़ने से हुई है। पर अब कुछ समय से यह ढर्रा बदल रहा है।

भारत में चावल की कमी रहने का दूसरा कारण यह है कि हमारे यहाँ चावल का उपयोग प्रति आदमी बहुत ज्यादा है। पश्चिमी बंगाल में यह मात्रा सबसे अधिक है। वहाँ औसतन एक व्यक्ति ३१४ पौंड चावल खाता है। असम, मद्रास, मध्य प्रदेश और केरल में चावल के उपयोग की प्रति व्यक्ति मात्रा क्रमशः ३०५ पौंड, २५६, २२२ पौंड और १५७ पौंड है। उत्तर प्रदेश और पंजाब में, जहाँ अधिकांश लोगों का मुख्य भोजन गेहूँ है, चावल के उपयोग की मात्रा प्रति व्यक्ति क्रमशः

७४ पौंड और २० पौंड है। देश को चावल के मामले में आत्मनिर्भर बनाने के लिए हमें चावल का उत्पादन बढ़ाने के साथ-साथ अपनी भोजन की आदतों में भी थोड़ा-सा परिवर्तन करना होगा और जनसंख्या की वृद्धि को रोकने के लिए उचित कदम उठाने होंगे।

भारत में कृषि-सम्बन्धी विज्ञान के विकास के कारण खाद्यान्नों की किस्मों में तेजी से सुधार हो रहा है। पिछले पाँच वर्षों में धान, गेहूँ, मक्का, ज्वार और बाजरा की अधिक उपज देने वाली किस्में किसानों को दी गई हैं। इन किस्मों से पैदावार में प्रति एकड़ काफी वृद्धि हुई है। आशा है खाद्यान्नों की इन सुधरी हुई किस्मों से अनाजों की खेती के क्षेत्रफल पर भी असर पड़ेगा। इससे ऊँचाई वाले क्षेत्रों में धान की खेती बन्द हो जायगी। इसके बजाय वहाँ वर्षा की मात्रा के अनुसार मक्का, ज्वार या बाजरा की संकर किस्म उगायी जायगी। आन्ध्र प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र और मद्रास में यह परिवर्तन आ चुका है। देश में धान की प्रति एकड़ कम पैदावार और विभिन्न राज्यों में धान की प्रति एकड़ औसत पैदावार में बड़ी असमानता है। इससे पता चलता है कि धान की खेती यहाँ कितनी अनुपयुक्त और प्रतिकूल परिस्थितियों में होती है। देशी किस्मों और सुधरी हुई किस्मों की पैदावार में काफी अन्तर होने से घटिया जमीनों में धान की खेती बन्द हो जाएगी। इस तरह यह भूमि दूसरी फसलों की खेती के काम आने लगेगी। इससे खाद्यान्नों की कुल पैदावार में वृद्धि होगी और धान की प्रति एकड़ पैदावार भी बढ़ेगी। इस परिवर्तन का फल यह होगा कि भूमि का ठीक तरह से उपयोग होगा और पशुपालन के धन्धे का विस्तार होगा। इससे लोगों की खुराक का स्तर सुधरेगा।

धान के उत्पादन को प्रभावित करने वाली बातें

सिंचाई—धान की पैदावार बढ़ाने के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात पर्याप्त वर्षा या सिंचाई है। वर्षा की अनिश्चितता के कारण वर्षा पर निर्भर क्षेत्रों की अपेक्षा निश्चित सिंचाई वाले क्षेत्रों में हमेशा उपज अधिक मिलती है। धान की अधिक पैदावार लेने के लिए नदी-घाटी योजनाओं और ट्यूबवेलों द्वारा सिंचाई से सहायता मिल सकती है। पुराने तालाब मरम्मत करके सुधारे जा सकते हैं और उनसे जरूरत के समय धान की सिंचाई की जा सकती है। सिंचाई की सुविधाएँ बढ़ाने के लिए सभी राज्यों में संतोषजनक गति से विकास कार्य हो रहा है और सिंचाई के क्षेत्रों में निरन्तर वृद्धि हो रही है। कुछ नदी-घाटी योजना के क्षेत्रों में पानी निकासी की समस्या बड़ी कठिन है। इससे अधिक पैदावार होने में बड़ी बाधा पड़ती है। परन्तु इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया जा रहा है। बाढ़ वाले, खारी और गहरे पानी वाले क्षेत्रों में धान की उपज कम मिलने की सदा आशंका रहती है। जैसा कि

पश्चिमी बंगाल, असम, बिहार और केरल, मद्रास और आन्ध्र प्रदेश के कुछ भागों में होता है। वर्तमान दशा में इन क्षेत्रों में धान की पैदावार ज्यादा बढ़ने की आशा नहीं की जा सकती। ये कम उपज वाले क्षेत्र रहेंगे। मद्रास और आंध्र प्रदेश के कुछ भागों में जहाँ वर्षा कम होती है ऊँचे क्षेत्रों में उगने वाली धान की किस्में उगाई जा रही हैं। यहाँ पैदावार बहुत कम होती है। इन क्षेत्रों को यदि उत्पादक क्षेत्र बनाना है तो वहाँ सिंचाई की सुविधाएँ बढ़ानी होंगी और दूसरी फसलें यदि यह सम्भव नहीं तो वहाँ धान की फसल की जगह ज्वार उगाना हितकर होगा।

कृषि-क्रियाएँ—यद्यपि उष्ण कटिबंधीय एशिया की जलवायु ऐसी है कि यहाँ साल में धान की कई फसलें उगायी जा सकती हैं तथापि भारत के अधिकांश क्षेत्रों में धान की एक ही फसल उगायी जाती है। देखा गया है कि मध्य प्रदेश, बिहार और असम राज्यों में गर्मी और जाड़े के महीनों में धान के बहुत से खेत परती पड़े रहते हैं। इन क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधाओं की कमी है। यह तो समस्या का एक अंग मात्र है। वास्तव में इन क्षेत्रों में खेती के लिए मशीनों आदि का अभाव है। इन क्षेत्रों में धान की खेती के कुछ काम जब तक मशीनों से नहीं होने लगेंगे तब तक इस दिशा में अधिक प्रगति नहीं हो सकती। धान की खेती करने वाले किसानों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है इसलिए उनके लिए यह संभव नहीं है कि वे अपनी धान की खेती के लिए ट्रैक्टर जैसी कीमती मशीनें खरीद सकें। पर किसान यदि सहकारी समितियाँ बना लें तो सहकारी समितियाँ ऐसी मशीनों की व्यवस्था कर सकती है। समितियों के सदस्य मशीनों और औजारों का प्रयोग किराये पर कर सकते हैं। ऐसी व्यवस्था होने से धान की खेती के सारे काम बहुत जल्दी हो सकते हैं। इससे धान की कई फसलें उगायी जा सकती हैं। धान की रोपाई और कटाई के समय मजदूर बड़ी कठिनाई से मिलते है और यदि मिलते भी हैं तो बहुत महँगे मिलते हैं। मध्य प्रदेश जैसे क्षेत्रों में, जहाँ धान की फसल सीधी खेतों में ही बोई जाती है, बुआई से पहले खेत अच्छी तरह नहीं तैयार किये जाते। इसीलिए यहाँ बुआई के यन्त्रों से काम नहीं लिया जा सकता। ऐसी स्थिति में इन खेतों की तैयारी के लिए ट्रैक्टरों का उपयोग कारगर हो सकता है। खेती की दूसरी मशीनों में शक्ति से चलने वाले हल अधिक उपयोगी हैं।

उर्वरक—कम पैदावार देने वाली किस्मों की जगह अब अधिक उपज देने वाली किस्में उगायी जाने लगी हैं और उर्वरक भी आसानी से मिलने लगे हैं, इसलिए धान की पैदावार निश्चय ही बढ़ेगी। देश में धान की पैदावार को सुधारने और बढ़ाने के लिए उर्वरकों में उत्पादन बढ़ाने को प्राथमिकता मिलनी चाहिए। आजकल उर्वरकों का इस्तेमाल बहुत कम अर्थात् ४·५ किलोग्राम प्रति हैक्टेयर है। इस अभाव को दूर करने के लिए भारत सरकार उर्वरकों का उत्पादन बढ़ाने के लिए कदम उठा रही है।

अधिक उपज देने वाली किस्में

धान उगाने के लिए अधिक उपज देने वाली किस्मों को चुनना चाहिए। धान की न गिरने वाली और अच्छे पौधों वाली किस्मों का प्रचलन धान की खेती के इतिहास में एक अपूर्व घटना है। ये किस्में देश भर में बहुत जल्दी लोकप्रिय हो गयीं। इनके बारे में यह शिकायत सुनने में आयी है कि इनसे पुआल कम मिलती है, चावल कुछ घटिया होते हैं पर किसान इन बातों को अधिक महत्व नहीं देते। अधिकांश नयी बढ़िया किस्में ऐसी हैं जिनसे पुआल कम नहीं मिलती और यदि कम भी हो तो वह धान की अधिक पैदावार के सामने नगण्य है।

अधिक उपज देने वाली किस्मों का बढ़ावा मिलने के कारण खेती में अनेक परिवर्तन सामने आये हैं जैसे क) अधिक उपज मिलने की आशा से फसल का अच्छा प्रबन्ध, (ख) उर्वरकों का अच्छा उपयोग, (ग) पौधों की रक्षा के लिए कारगर उपाय अपनाना, (घ) साल में एक से अधिक फसलें उगाने की आशा, और (ङ) बीज कार्यक्रम का संगठन। पहले प्रति हैक्टेयर धान की आठ टन पैदावार बहुत बड़ी बात समझी जाती थी, परन्तु आजकल सुधरे तरीके से धान की उन्नत किस्में उगा कर किसान आसानी से इतनी पैदावार ले सकता है।

धान की अधिक उपज देने वाली किस्मों में ताइचुंग नेटिव—१, ताइचुंग—६५, ताइनान—३ और ए डी टी- २७ खासकर उल्लेखनीय हैं। इसके आलावा कुछ विशेष किस्में विभिन्न राज्यों में उगायी जा रही है। इनमें से केवल ए डी टी—२७ नामक किस्म को छोड़कर शेष सभी किस्में ताइवान से देश में लायी गयी हैं।

ताइचुंग नेटिव १—ताइचुंग नेटिव—१ प्रायः सभी जगह उग सकती है। यह न गिरने वाली, मजबूत तिनके की और अधिक उपज देने वाली किस्म है। यह विभिन्न प्रकार के झुलसा रोगों और अधिकांश व्याधियों को सहन कर सकती है, पर पत्तियों की गलन रोग का शिकार बन जाती है। धान की नयी किस्में विकसित करने वाले वैज्ञानिक को रुचि इस किस्म में हाल में सन् १९६५ से हुई है। सन् १९६५ में इसे तीन अनुसंधान केन्द्रों में अधिक उपजाऊ मिट्टी वाले छोटे-छोटे खेतों में उगाया गया और इससे सात से आठ टन प्रति हैक्टेयर तक उपज मिली। इस अनुभव के बाद यह किस्म सन् १९६५-६६ मे आंध्र प्रदेश और उड़ीसा में लगभग १२ हजार एकड़ में उगायी गयी और वहाँ इससे छः टन से आठ टन प्रति हैक्टेयर तक पैदावार मिली। राष्ट्रीय बीज निगम (नेशनल सीड्स कारपोरेशन) ने इन क्षेत्रों से बीज लिया। सन् १९६६ के खरीफ के मौसम में ५ लाख एकड़ भूमि में उगाने के लिए इसके बीजों को धान उगाने वाले सभी राज्यों को दिया गया। इसके बारे में कुछ शंकाओं के बावजूद धान की कोई दूसरी किस्म ऐसी नहीं है जो इतने कम समय मे इतने अधिक क्षेत्र में उगायी जाने लगी हो। इन किस्मों की उपयोगिता के बारे में कुछ आशंका इस आधार पर

प्रकट की गई है कि यह किस्म पत्तियों की गलन रोग का बहुत जल्दी शिकार हो जाती है। सौभाग्य से 'पत्तियों की गलन' रोग से रबी के मौसम में इतना ज्यादा नुकसान नहीं पहुँचता। धान की अधिक पैदावार लेने के लिए रबी का मौसम ही अनुकूल रहता है। खरीफ के मौसम में भी धान की खेती करने वाले किसानों ने इस किस्म से ५,००० किलो० प्रति हैक्टेयर से भी अधिक पैदावार ली है। अतः धान की अधिक पैदावार देने वाली क़िस्में उगाने के कार्यक्रम के अन्तर्गत भारत के विभिन्न राज्यों में बड़े पैमाने पर इस किस्म की खेती करने से आगामी वर्षों में धान का उत्पादन बढ़ाने में काफी सहायता मिलेगी।

ताइनान ३ : ताइनान ३ एक पोनलाई किस्म है। अब तक यह केरल राज्य में ही लोकप्रिय हुई है। केरल में यह किस्म उसी तरह उगायी जा रही है जिस तरह दूसरे राज्यों में। ताइचुङ्ग नेटिव १, ताइचुङ्ग ६५ भी एक अन्य पौनलई किस्में हैं। यह मैसूर राज्य में ताइचुङ्ग नेटिव १ से ज्यादा पसंद की जाती है। वहाँ उपजाऊ खेतों में इससे प्रति हैक्टेयर सात टन तक पैदावार मिली है। चैनान-२ एक पोनलाई किस्म है। यह आन्ध्र प्रदेश के समुद्र तटवर्ती क्षेत्रों में मध्य मौसम में उगाने के लिए उपयुक्त होने के कारण एक महत्वपूर्ण किस्म बन गयी है। मारूतेरू कृषि अनुसंधान केन्द्र, में साल भर में एक खेत से तीन फसलें लेने की योजना के अनुसार पहली फसल ताइनान—३ की, दूसरी फसल चेनान—२ की और तीसरी फसल ताइ-चुङ्ग नेटिव—१ की उगाकर प्रति हैक्टेयर १२ टन से भी अधिक पैदावार ली गयी है।

मद्रास राज्य की अधिक उपज देने वाली किस्मों में ए डी टी-२७ सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यह किस्म जल्दी तैयार हो जाती है और इसके चावल बढ़िया होते हैं। इससे प्रति हैक्टेयर ५·५ टन तक उपज मिली है। यह किस्म पकने के दिनों में गिर जाती है और झुलसा रोग की बहुत जल्दी शिकार होती है। इसलिए इसे ऐसी भूमि में उगाना चाहिए जिसमें नाइट्रोजन की मात्रा प्रति हैक्टेयर ६०-८० किलो० से कम हो। इससे प्रति हैक्टेयर ५-६ टन पैदावार मिलने की आशा की जाती है।

अधिक उपज देने वाली किस्मों की उपयोगिता और समस्याएँ

धान की अधिक उपज देने वाली किस्मों से कौन सी किस्म चुनी जाए, इस सम्बन्ध में बहुत बहस की जाती है। पहले से उगायी जा रही धान की सुधरी किस्मों और अधिक उपज देने वाली किस्मों में बहुत अन्तर है। धान की अधिक देने वाली किस्मों से सामान्य परिस्थितियों में प्रति हैक्टेयर पाँच टन से अधिक और सर्वोत्तम दशाओं में प्रति हैक्टेयर आठ टन से भी अधिक पैदावार लगातार मिलती रहती है। ताइचुंग नेटिव, ताइचुंग-६५ और ताइनान-३ किस्मों के बारे में भी यही बात लागू है। बीज कार्यक्रम में राष्ट्रीय पैमाने पर ताइचुंग नेटिव को चुना गया है। इसका कारण यह है कि यह किस्म प्रायः सभी जगह उगायी जा सकती है। पोनलाई किस्म

के चावलों से इसके चावल अधिक पसन्द किये जाते हैं। खेती की अच्छी व्यवस्था होने पर इससे काफी उपज मिल सकती है। ताइचुंग नेटिव-१ के ये गुण अलग-अलग चाहे महत्वपूर्ण न हों, पर कुल मिलाकर यह किस्म अन्य किस्मों से बढ़िया है, इसमें कोई संदेह नहीं। ताइचुंग-नेटिव-१ के विरुद्ध एक ही बात कही जाती है कि इस पर पत्तियों की जीवाणुजनित गलन का बहुत जल्दी असर होता है। इस समस्या का हल निकालने के लिए धान परियोजना (राइस प्रोजेक्ट) में धान के लगभग ३०० विदेशी नमूनों की जाँच की जा रही है। धान के ये नमूने अन्तर्राष्ट्रीय धान अनुसंधानशाला से मिले हैं। ताइचुंग नेटिव-१ के समान ही अधिक उपज देने वाली किस्मों के संकर पौधे हैं। आशा है कि इनमें से कुछ पौधे अधिक उपज देने के कारण ही नहीं बल्कि पत्तियों की गलन के रोगरोधी होने के कारण ताइचुंग नेटिव-१ का स्थान ले लेंगे। इन नमूनों में से एक आई आर ८-२८८-३ किस्म से ताइचुंग नेटिव-१ की तुलना में लगातार अधिक पैदावार मिल रही है। इसीलिए देश में इसका संवर्धन किया जा रहा है। अधिक उपज देने वाली किस्मों का प्रसार बड़ा महत्वपूर्ण काम है। कम पैदावार देने वाली और गिरने वाली किस्मों से अधिक पैदावार देने वाली और न गिरने वाली किस्मों की ओर किसानों की रुचि मोड़ने के लिए यह आवश्यक है। अतः किसी किस्म में यदि कोई कमी भी है तो उसकी टीका-टिप्पणी करके इस कार्य की सफलता को किसी भी प्रकार कम न होने देना चाहिए।

प्रायः यह प्रश्न पूछा जाता है कि क्या सीमित क्षेत्र में अधिक उपज देने वाली किस्मों को उगाकर अधिकतम पैदावार लेना ही राष्ट्र के लिए अधिक हितकर है, या इस समय उगायी जा रही धान की किस्मों को बिना बदले सबको उर्वरकों की भरपूर सप्लाई और खेती की उन्नत विधियों के उपयोग की पूरी सुविधा देकर धान की पैदावार बढ़ाना ? अधिक उपज देने वाली किस्मों की खेती पर आने वाली लागत और लाभ के बारे में इस समय हमारे पास कोई ब्यौरा तो नहीं है, पर यह बात विश्वासपूर्वक कही जा सकती है कि अधिक पैदावार देने वाली किस्में उगाकर ही किसान अधिक संख्या में खेती की वैज्ञानिक तकनीकों का ज्ञान प्राप्त करते हैं और अपनी खेती की पैदावार के बारे में सावधान रहते हैं। इस प्रकार खेती में जो सुधार होता है उससे धान की पैदावार लगातार अधिक मिलती रहती है। कम उपज देने वाली किस्मों की जगह अधिक उपज देने वाली किस्में उगाने से क्या लाभ होगा इसका मूल्यांकन भारतीय कृषि अनुसंधानशाला कर रही है। इस वर्ष राष्ट्रीय पैमाने पर खेती के प्रदर्शनों का जो आयोजन किया था, इसका ब्योरा इसी प्रयोजन से एकत्र किया जा रहा है।

अखिल भारतीय समन्वित चावल सुधार परियोजना (आल इंडिया कोर्डिनेटस राइस इम्प्रूवमेंट प्रोजेक्ट) ने नवम्बर, १९६५ में संकर किस्में तैयार करने का एक

कार्यक्रम बनाया था। इस कार्यक्रम के अंतर्गत धान की भारतीय सुधरी किस्मों का ताइचुंग नेटिव—१ तथा दूसरी बौनी किस्मों के साथ संकरण किया जा रहा है। आशा है कि इनसे तीन-चार साल में धान की बौनी किस्मों के काफी नमूने जाँच के लिए चुन जाएँगे। यह प्रायः निश्चित है कि इनमें से कुछ नमूने ताइचुंग नेटिव-१ के दोषों से मुक्त होंगे और उससे भी अधिक उपज देने वाले सिद्ध होंगे।

पौधों की रक्षा

अनुमान लगाया गया है कि लगभग बीस प्रतिशत खेती की पैदावार को कीड़े और रोग बरबाद कर देते हैं इसलिए यदि धान की पैदावार बढ़ानी है तो धान की ऐसी किस्में विकसित की जायँ जो रोगरोधी हों और कीड़े जिन्हें नुकसान न पहुँचा सकें। इसके साथ ही फसलों को कीड़ों और रोगों से बचाने के उपाय भी काम में लाने होंगे। धान की फसल को हानि पहुँचाने वाले प्रमुख कीड़ों में तनाछेदक कीड़ा धान उगाने वाले सभी क्षेत्रों में पाया जाता है। यह धान की फसल को बड़ी हानि पहुँचाता है। धान की कुछ किस्में ऐसी भी हैं जिनमें यह कीड़ा नहीं लगता, पर वे भी इससे बिल्कुल अछूती नहीं रहतीं। अतः कीड़ों से बचाव के लिए फसल और पौधों की रक्षा के उपाय करना बहुत जरूरी है। हाल ही में अन्तर्राष्ट्रीय धान अनुसंधानशाला से खबर मिली है कि यदि सिंचाई के पानी में गामा बी-एच-सी घोल कर धान की फसल में दिया जाय, तो तनाछेदक कीड़ों से पूरी तरह बचाव हो जाता है। इस कीटनाशक दवा की उपयोगिता सिद्ध करने के लिए योजनाएँ तैयार की जा रही हैं। देश में बड़े पैमाने पर इस दवा को बनाने की तैयारी की जा रही है।

दूसरी प्रमुख कीट-व्याधि गाल-मिड्ज है जो कुछ क्षेत्रों में धान की फसल को बहुत हानि पहुँचाती है। इससे धान की पैदावार बहुत घट जाती है। इन क्षेत्रों में पानी की कमी के कारण धान की रोपाई आमतौर पर देर से होती है और उन्हीं दिनों इन कीड़ों का जोर होता है। ये पौधों को बहुत हानि पहुँचाते हैं और इस तरह फसल की पैदावार काफी कम हो जाती है। सौभाग्यवश सिंचाई के पानी में गामा-बी० एच-सी मिलाकर खेत में देने से तनाछेदक के साथ-साथ गाल-मिड्ज कीड़ों से भी फसल का बचाव हो जाता है।

भारत के धान उगाने वाले कुछ क्षेत्रों में धान का झुलसा रोग भी गंभीर समस्या है। परन्तु सिंचाई के पानी में गामा बी-एच-सी घोल कर देने से इस रोग से भी छुटकारा मिल सकता है।

—कृषि समाचार सेवा से साभार

१. समुद्र या कामधेनु

स्थल के ७५% भाग में समुद्र फैले हुये हैं किन्तु ये केवल खारे पानी के कोष ही नहीं हैं। तमाम खनिजों एवं भोज्य पदार्थों के लिये वैज्ञानिकों ने अब समुद्रों को अपना कार्यक्षेत्र चुना है।

समुद्रों का खारा जल अनेक रासायनिक यौगिकों का भण्डार है। उदाहरणार्थ सामान्य लवण, मैग्नीशियम लवण, ब्रोमीन, पोटैश आदि की प्रचुर मात्रायें खारी जल से प्राप्त की जाती हैं। इनके अतिरिक्त गंधक, बोरैक्स तथा फ्लोरीन भी पाया जाता है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि १ घन मील समुद्री जल में ८० लाख टन मैग्नीशियम सल्फेट, २ करोड़ ७० लाख टन मैग्नीशियम क्लोराइड, ३६.५ लाख टन मैग्नीशियम ब्रोमाइड, १२ करोड़ टन सोडियम क्लोराइड ५६·५ लाख टन कैल्सियम कार्बोनेट, २५ टन सोना, ७ टन यूरोनियम होगा।

इसके अतिरिक्त समुद्र की सतह पर न जाने कितना खनिज एकत्रित होगा। उदाहरणार्थ फास्फोराइट के अपार भण्डार छिछली सतहों पर पाये गये हैं जबकि अधिक गहरे समुद्रों की तली पर मैंगनीज, निकेल, कोबाल्ट, ताम्र आदि धातुओं के अनन्त भण्डार हैं।

कुछ देशों में हीरे, कहीं लोह खनिज तथा कहीं मोनाजाइट समुद्र के तटों पर ही पाये जाते हैं।

यही नहीं तेलों के कूपों के भी अनन्त भण्डार समुद्र ही हैं। इस प्रकार यदि यह कहें कि समुद्र कामधेनु है तो अतिशयोक्ति न होगी।

किन्तु अभी तक सन्तोषप्रद ढंग से खनिजों का उत्खनन सम्भव नहीं हो पाया।

प्रायः आज से १०० वर्ष पूर्व इस दिशा में कार्य प्रारम्भ हुआ किन्तु जल के भीतर कार्य करने वाली क्षरणहीन यान्त्रिक विधियों के ठीक से विकास न होने तथा समुद्री सतह का ठीक-ठीक सर्वेक्षण न हो सकने से ये खनिज-स्रोत अभी तक अनदुहे रह गये हैं। ऐसा अनुमान है कि गहराई पर कार्य करने के लिये ड्रेजर जैसे यंत्र उप-

योगी होंगे किन्तु १००० फीट से अधिक गहराई पर हाइड्रालिक तथा चूषण ड्रेजर ही कार्य कर सकेंगे।

अमरीका, जापान, ब्रिटेन तथा रूस में समुद्रों के खनिजों को ठीक-ठीक से से निकालने के लिये समुद्री पोतों में विभिन्न प्रकार के यन्त्रों से सज्जित करके अनुसन्धान किये जा रहे हैं। कुछ पनडुब्बियाँ भी कार्यरत हैं।

यदि यह कहा जाय कि अन्तरिक्ष यात्रा जितनी लोमहर्षक है उससे अधिक लाभप्रद समुद्रों के नीचे की यात्रा है तो उचित ही होगा। निस्सन्देह मानवमात्र का सर्वश्रेष्ठ पालक समुद्र ही है।

२. पनडुब्बी की कहानी

पहली व्यावहारिक पनडुब्बी सन् १६२१ में एक डच डाक्टर कार्नेलिस फान डबल ने बनाई थी। यह चप्पू से खेई जानेवाली साधारण किस्म की एक बड़ी सी नौका थी जिसे ऊपर से चमड़ा जड़ कर बंद कर दिया गया था। यह चप्पू जल की सतह पर अथवा नौका के पार्श्व में किये गए छेदों में से बाहर की तरफ निकले हुए थे। इन छेदों में से पानी के नौका में घुसने को रोकने के लिए चमड़े के फ्लैप लगाए गए थे।

अठारहवीं शती में विभिन्न किस्मों के अनेक जल के भीतर चलने वाले यानों का विकास किया गया था। उसी शती के अंतिम चरण में अमेरिकी स्वातंत्र्य युद्ध के दौरान पनडुब्बी का पहली बार युद्ध में इस्तेमाल हुआ। सन् १७७६ में डेविड बुशनेल नाम के एक प्रतिभाशाली आविष्कारक ने टर्टिल नाम की अपनी पनडुब्बी में बैठ कर ब्रिटिश जंगी जहाज ईगल को डुबाने की कोशिश की। यह विचित्र यान खड़े हुए अंडे की तरह लगता था। इसमें केवल एक ही आदमी बैठ सकता था। इसके ऊपरी सिरे में कब्जेदार ढक्कन था जिससे होकर इसका चालक इसमें से घुसता निकलता था। इसमें आठ छोटे-छोटे झरोखे बने थे जिससे प्रत्येक दिशा में देखा जा सकता था।

जब यान को जल में डुबाना होता था, चालक एक स्प्रिंग पर पैर रख देता था। इससे यान के निचले भाग में बने एक कोष्ठ में लगी टोंटी खुल जाती थी और कोष्ठ में पानी भरने लगता था। सतह पर उठने के लिए चालक भरे हुए कोष्ठ को हाथ से चलने वाले पम्पों द्वारा खाली कर देता था।

टर्टिल को गति देने के लिए उसमें दो प्रोपेलर लगे हुए थे। एक खड़ी धुरी पर लगा था जिससे गहराई पर नियंत्रण रखा जाता था और दूसरा पड़ी-धुरी पर जिससे इसे आगे को गति दी जाती थी। ये प्रोपेलर भी हाथ से चाबी घुमाकर चलाए जाते थे। ईगल को डुबाने के लिए बुशनेल की योजना यह थी कि वह ईगल के पेंदे में फ्यूज लगा हुआ एक बारूदी विस्फोटक पेंच से कस देगा। वह ईगल तक पहुँच

तो गया मगर उसके पेंदे में लगी मजबूत तांबे की चादर में पेच नहीं घुमा पाया। टर्टिल को विफल लौट आना पड़ा। विस्फोटक तो छोड़ा गया मगर उससे कोई हानि नहीं हुई।

अठारहवीं शती के अंतिम वर्षों में राबर्ट फुल्टन ने एक यान बनाया जिसे पानी के भीतर चलाया जा सकता था। उसने इस यान का नाम नाटिलस रखा। बाद में इसी राबर्ट फुल्टन ने भाप से चलने वाली सफल नौका का विकास किया। नाटिलस में कुछ ऐसे कल-पुर्जे भी थे जो आज की पनडुब्बियों में पाए जाते हैं। इसमें निर्देशन बुर्जी (कानिंग टावर) थी, क्षैतिज तल में लगे नियंत्रण आज के जलपटलों (हाइड्रोप्लेन्स) की ओर संकेत करते हैं। इसमें यान को विभिन्न स्तरों पर स्थिर रखने के लिये जल की टंकियाँ और पम्प भी लगे थे। इस पर एक कब्जेदार मस्तूल भी लगा हुआ था। जब यान सतह पर होता था तो उसे चलाने के लिए मस्तूल खड़ा कर दिया जाता था और उसमें पाल लगा दिया जाता था। जल के अन्दर होने पर यान के चलाने के लिये दो ब्लेड वाले प्रोपेलर का इस्तेमाल होता था जो हथपहिये से जुड़ा होता था। डुबका होने की दशा में साँस लेने के लिए संपीडित वायु की एक टंकी में भी इसमें रखी जाती थी। साँस लेने के लिए संपीड़ित वायु की एक टंकी भी इसमें रखी जाती थी।

फुल्टन ने नाटिलस में बैठकर अनेक सफल गोते लगाए। एक बार नौ वह लगातार छः घंटे तक पानी में डुबका रहा। जनगत परीक्षणों में उसे पहले तो फ्रांस और बाद में ब्रिटेन से काफी प्रोत्साहन मिला किन्तु वह दोनों में से एक को भी इस बात पर राजी नहीं कर पाया कि उसके द्वारा विकसित पनडुब्बी को वे युद्ध के हथियार के रूप में अपना लें।

अमेरिकी गृह-युद्ध में हाथ से चलने वाली छोटी-छोटी कई पनडुब्बियाँ बनाई गईं। इन्हें विड्स कहते थे। इनमें से हण्डले नामक एक पनडुब्बी ने संगठनवादियों के हाउसेटानिक नामक एक जहाज पर आक्रमण किया जो कि चार्ल्सटन बंदरगाह की नाकाबन्दी किये हुआ था। इस पनडुब्बी की अगवाड़ (बो) में एक लम्बी छड़ लगी रहती थी जिसके दूसरे सिरे पर तारपीडो लगा रहता था। इस तारपीडो ने हाउसेटानिक को गर्क कर दिया। लेकिन हण्डले भी अछूती नहीं रही। उसके एक खुले मोखे में से पानी अंदर भरने लगा और इसने अपने ९ कर्मियों सहित जलसमाधि ग्रहण की। पनडुब्बी द्वारा डुबाया जाने वाला सबसे पहला युद्धपोत हाउसेटानिक ही था।

सन् १८८० में एक अंगरेज पादरी जी० डब्ल्यू० गैरेट ने ऐसी पनडुब्बी बनाई जो कोयले से जलने वाले वाष्पित्र (बायलर) की भाप से चलती थी। यान में सिमट जाने वाला एक धूम्र-निकास भी लगा हुआ था। यान जैसे जैसे सतह पर आगे बढ़ता

था इसका वाष्प-दाब भी बढ़ाता जाता था। जब आवश्यक दाब उत्पन्न हो जाता गैरेट आग बुझा देता, धूम्र निकास को सरकने वाले ढक्कन से बन्द कर देता और भट्ठी को इस तरह कस कर बन्द करता कि उसमें से वायु कतई न निकल पाती। तब यह अपने यान को डुबाता। एकत्र वाष्प-दाब यान को जल के अन्दर कई मील तक गति देता। जब भाप का दाब कम हो जाता तो गैरेट यान को सतह पर लाता, धूम्र-निकास को खड़ा करता और फिर वाष्प-दाब बढ़ाने में जुट जाता। स्वीडन के एक इंजीनियर थॉर्स्टन डब्ल्यु नार्दनफेल्ट ने गैरेट की पद्धति का और भी विकास किया। उसकी पनडुब्बी १४ मील तक जल के भीतर चल लेती थी।

उधर फ्रांस में पनडुब्बी को बिजली से चलाने के प्रयोग हो रहे थे। फलस्वरूप सन् १८८८ में जिमनोट नामक यान का जल-प्रवाह हुआ। यह यान ३०·६ टन भार का था और इसे गति देने वाला स्क्रू प्रोपेलर बिजली की मोटर से चलता था। इस मोटर को ५६४ सेल की एक बैटरी से करेंट पहुँचाया जाता था। इससे ५५ अश्वशक्ति के तुल्य ऊर्जा बनती थी। इन्हीं सिद्धान्तों पर गुस्तेव जीदे नाम का एक बड़ा यान विकसित किया गया। उसमें अनेक बार परिवर्तन तथा सुधार करके अन्ततः एक व्यावहारिक रूप में सफल यान बना लिया गया। सन् १९०१ तक फ्रांस सरकार ने बिजली से चलने वाली २९ पनडुब्बियाँ बना ली थीं।

अमेरिका में जान पी. हालैण्ड ने सन् १८५७ में एक सफल पनडुब्बी बना ली थी। अगले कुछ वर्षों में उसने और भी कई पनडुब्बियाँ बना कर उसके द्वारा विकसित पेट्रोल से चलनेवाली पनडुब्बी के एक नमूने को सन् १९०० में अमेरिकी सरकार ने स्वीकार कर लिया और नौसेना के लिये वैसी अनेक पनडुब्बियाँ बनवाईं। बिना किसी संदेह के यह कहा जा सकता है कि इस समय के बाद से पनडुब्बी प्रयोग अवस्था को पार कर गई। अनेक शक्तिशाली देश अपनी नव-सेनाओं के लिए हालैण्ड-किस्म की पनडुब्बियाँ बनवाने लगे।

इसी काल में साइमन लेक नाम का एक अमेरिकी पोत-शिल्पी हालैण्ड नमूने की पनडुब्बियों से मुकाबला करने लगा। उसने कई नमूने पेश किये। उसकी पनडुब्बियाँ युद्ध में नहीं अपितु शांतिकाल में काम आने वाली थीं—खासकर डूबे हुए जहाजों का उद्धार करने के लिए लेक के यानों में ऐसी वायुरोधी व्यवस्था थी कि जब यान समुद्रतल पर उतर चुका हो एक आदमी उसमें से आ-जा सकता था। बाद में लेक ने भी अमेरिकी नौसेना के लिए पनडुब्बियाँ बनाई।

(विज्ञान समाचार सेवा से साभार)

अन्तरिक्ष यात्रियों की दुखद मृत्यु

अन्तरिक्षयात्री वर्जिल के० ग्रिसम, एडवर्ड एच० ह्वाइट और रोजर बी० चैफी २१ फरवरी को अपने 'अपोलो' अन्तरिक्षयान पर सवार होकर १४ दिन की अन्तरिक्ष यात्रा पर जाने वाले थे। अकस्मात् आग लग जाने के कारण २७ जनवरी को उस समय मृत्यु ने उन्हें हमसे सदा के लिए छीन लिया जब अन्तरिक्षयान के प्रक्षेपण के लिए की जा रही नकली गणना के समाप्त होने में केवल १० मिनट शेष थे।

४० वर्षीय अन्तरिक्षयात्री श्री ग्रिसम अमेरिका के 'मरकरी' अन्तरिक्ष-अन्वेषण कार्यक्रम में भाग लेने वाले प्रसिद्ध अन्तरिक्ष-यात्री थे। अमेरिका के अन्तरिक्ष-अनुसन्धान कार्यक्रम में भाग लेने के लिए उन्हें १६५६ में चुना गया था। २१ जुलाई, १६६१ को उन्होंने अमेरिका की दूसरी समानव अन्तरिक्ष-यात्रा में भाग लिया था। उनकी यह अन्तरिक्ष-यात्रा १५ मिनट की थी।

फिर, २३ मार्च, १६६५ को ग्रिसम ने नौसेना के कमाण्डर जीन यंग के साथ जैमिनी-३ अन्तरिक्षयान पर सवार होकर पृथ्वी की तीन परिक्रमाएँ की थीं।

३६ वर्षीय एडवर्ड ह्वाइट ने जैमिनी-४ की ऐतिहासिक अन्तरिक्षयात्रा में २१ मिनट तक अन्तरिक्ष में संचरण किया था। अन्तरिक्ष-संचरण करने वाले यह प्रथम अमेरिकी अन्तरिक्षयात्री थे। यह वायुसेना के लेफ्टि० कर्नल जेम्स ए० मैकडिविट के साथ मिल कर चार दिन तक अन्तरिक्ष में रहे थे।

३१ वर्षीय चैफी अमेरिकी अन्तरिक्ष-यात्रियों की उस तीसरी टोली में शामिल थे, जिसका चुनाव १६६३ में किया गया था। यह अपनी पहली अन्तरिक्ष-यात्रा की प्रतीक्षा कर रहे थे।

समस्त संसार को इन तीनों अन्तरिक्ष-यात्रियों की मृत्यु से भारी आघात पहुँचा है। यह अत्यन्त विडम्बना की बात है कि उनकी मृत्यु उस समय हुई जबकि अन्तरिक्ष-यान पृथ्वी पर ही मौजूद था। अन्तरिक्षयात्रियों की इस प्रकार मृत्यु होने की किसी ने कल्पना तक नहीं की थी।

नई किस्म की चीनी मिट्टी

डॉ० रिचर्ड सी० ऐण्डर्सन ने चीनी मिट्टी की नई किस्म निकाली है। इस नये पदार्थ का नाम 'इट्रालौक्स' है और वह काँच की तरह ही पारदर्शक है, किन्तु जितने तापमान पर अधिकांश काँच मुलायम पड़ जाते हैं उससे दुगने से भी अधिक तापमान को यह संहार सकता है।

कृत्रिम अरुणोदय का आयोजन

अमेरिका के वैज्ञानिक जून मास में कृत्रिम विधि से अरुणोदय करने की योजना बना रहे हैं। इस कृत्रिम भोर से वैसी ही जगमगाहट होगी जैसी पूर्णिमा के चाँद से होती है।

वालप्स आइलैण्ड (वर्जिनिया के परीक्षण-केन्द्र के ऊपर वायुमण्डल को प्रकाशमान करने की योजना की घोषणा अमेरिका के 'राष्ट्रीय उड्डयन एवं अन्तरिक्ष प्रशासन' की ओर से की गई है। यह योजना ऐरोबी राकेट द्वारा कई सौ मील की ऊँचाई पर ले जाये गये एक छोटे से इलैक्ट्रोन एक्सेलेरेटर के द्वारा क्रियान्वित की जायेगी। एक्सेलेरेटर नीचे वायुमण्डल की ओर विद्युदणुओं की एक धार छोड़ेगा। जब वे ऑक्सीजन और नाइट्रोजन के अणुओं से टकरायेंगे तो आकाश में कुछ क्षण के लिए लाल और हरे रंग की बहुत कुछ वैसी ही चमक दिखाई देगी, जैसी भोर होने पर उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव के निकट आकाश में दिखाई देती है।

उषा काल में दिखाई देने वाली लालिमा अन्तरिक्ष के विद्युताविष्ट कणों के वायुमण्डल से टकराने से होती है, लेकिन इस बारे में बहुत कम जानकारी है कि इन कणों की उत्पत्ति कैसे होती है। 'राष्ट्रीय उड्डयन एवं अन्तरिक्ष प्रशासन' ने बताया कि वर्जिनिया के परीक्षण से लगभग पाँच मिनट तक आध मील से लेकर पाँच मील तक के व्यास में रंग-बिरंगी रोशनी होगी।

भारत में साइक्लोट्रान

७० लाख इलेक्ट्रोन वोल्ट वाला अमेरिकी साइक्लोट्रोन हरियाना स्थित कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में एक नया जीवन प्रारम्भ करने के लिए तैयार है। इसी यन्त्र ने सबसे पहले यह प्रदर्शित किया था कि अणु का विखण्डन करने के लिए प्रोटान एक प्रभावशाली आणविक प्रक्षेपान्तक है।

प्रारम्भ में न्यूयार्क राज्य के रोचेस्टर विश्वविद्यालय में इस उपकरण का निर्माण किया गया था। वहाँ यह ३० वर्ष तक निरन्तर प्रयोग में आता रहा और इसके द्वारा एक स्पृहणीय रेकार्ड कायम किया गया। अब इस उपकरण से संसार के

इस भाग में रहने वाले छात्रों के लिए आणविक भौतिक विज्ञान के परीक्षणों की रूप-रेखा तैयार करना और उन्हें कार्यन्वित करना सम्भव हो जायेगा।

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में भौतिक विज्ञान के दो शिक्षाशास्त्रियों— विभागीय अध्ययन प्रोफेसर एच० एस० हंस और डॉ० इन्द्र एम० गोविल—ने १९६५ में कई सप्ताह तक रोचेस्टर में रह कर उस साइक्लोट्रोन को उखेड़ने के कार्य का निरीक्षण किया, जिसे १९६७ के प्रारम्भ में भारत लाया गया है। इससे बहुत से कार्यक्रमों को सहायता दी गई थी। १९४० के बाद के दशाब्द में रोचेस्टर के भौतिक-विज्ञान के अन्य प्रोफेसर हेनरी डब्ल्यू० फुलब्राइट द्वारा एक परिवर्तनशील गति-उपकरण के रूप में इसका पुनर्निमाण किया था।

जैसे ही यह लघु साइक्लोट्रोन कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के अनुसन्धान-केन्द्र का अंग बन जायेगा, एक नये टेण्डेम-वान-द-ग्राफ लिनियर एक्सेलेरेटर द्वारा रोचेस्टर विश्व विद्यालय में इसका कार्य जारी रहेगा, जो विश्वविद्यालय की दूसरे विश्व-युद्ध से पूर्व साइक्लोट्रोन के शिक्षकों और छात्र-अनुसन्धान कार्यक्रमों की सहायता केवल विश्व-विद्यालय द्वारा ही की जाती थी।

युद्ध के दौरान और युद्ध के बाद अमेरिकी अणुशक्ति-कमीशन द्वारा उसके न्यूक्लियर स्ट्रक्चर रिसर्च लेबोरेटरी का प्रमुख उपकरण है। यह नया एक्सेलेरेटर, जो उत्तरी अमेरिका में अपनी किस्म का चौथा उपकरण है कणों की धारा प्राप्त करने वाला दूसरा उपकरण था।

यू० पी० गर्वनमेंट प्लास्टिक फैक्ट्री

यह ज्ञात हुआ है कि इटावा स्थित प्लास्टिक फैक्ट्री को इसलिये बन्द किया जा रहा है कि उसे संचालित करने के लिये ऐसा निपुण वैज्ञानिक नहीं प्राप्त हो पाया जिसे व्यापारिक अनुभव भी प्राप्त हो। ज्ञात हो कि यह फैक्ट्री १९५७ ई० में स्थापित की गई थी।

भारतीय शोध संस्थानों में कुव्यवस्था

पश्चिमी जर्मनी के मैक्स प्लांक संस्थान के सुप्रसिद्ध जीव वैज्ञानिक प्रोफेसर जार्ज मेल्चर ने भारतीय शोध संस्थानों का निरीक्षण करने के पश्चात् यह अभिमत व्यक्त किया है कि यहाँ के कुछ शोध संस्थानों में पूर्व योजना का नितान्त अभाव है जिसके फल-स्वरूप वहाँ पर ऐसी शोधें हो रही हैं जो वर्षों पूर्व अन्यत्र हो चुकी हैं और जिनके परिणाम ज्ञात हैं। प्रो० मेल्चर का कथन है कि विभिन्न शाखाओं के वैज्ञानिकों के परस्पर मिलकर कार्य न करने का ही यह परिणाम है। फिर भी वे हैदराबाद, तथा दिल्ली के शोध संस्थानों से प्रभावित हुये।

सम्पादकीय

लोक सभा में वैज्ञानिकों का प्रतिनिधित्व

हाल ही में काउंसिल आफ सांइटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च के डाइरेक्टर जनरल डा० आत्माराम ने यह अभिमत प्रकट किया है कि लोकसभा में वैज्ञानिकों का प्रतिनिधित्व आवश्यक है। इसके लिये वयोवृद्ध एवं अनुभवी वैज्ञानिकों को चुनाव लड़ना चाहिए। तरुण वैज्ञानिकों के लिये अभी समय नहीं आया कि वे राजनीति में भाग लें। डा० आत्माराम का यह विश्वास है कि वैज्ञानिकों के प्रतिनिधित्व से देश में वैज्ञानिक जागरूकता आवेगी।

इस सम्बन्ध में न तो वैज्ञानिक ही एकमत होंगे और न राजनीतिज्ञ ही। शायद नोबेल पुरस्कार विजेता अमरीकी वैज्ञानिक डा० पॉलिंग की स्वस्थ विचारधारा से प्रेरित होकर डा० आत्माराम भारत में भी वैज्ञानिक विचार धारा द्वारा देश की राजनीति को परिवर्तित करना चाहते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इस सदुद्देश्य की सभी प्रशंसा करेंगे किन्तु क्या यह सम्भव है? डा० पॉलिंग उन वैज्ञानिक क्रान्तकारियों में है जो परमाणु बम के प्रयोग या नाभिकीय ऊर्जा के दुष्प्रयोग की खुलकर भर्त्सना करते हैं।

किन्तु हमारे देश के सभी कांग्रेसी राजनीतिज्ञ यही दुहराते रहे हैं और हमारे देश की नीति शांतिपूर्ण ढंग से नाभिकीय ऊर्जा के सम्प्रयोग की है। ऐसी दशा में वैज्ञानिकों के द्वारा लोकसभा में कोई नूतन वातावरण बनाने या सफलता प्राप्त कर पाने में सन्देह है। हाँ, देश के बुद्धिजीवी वर्ग में से वैज्ञानिक-जन अभी तक देश की राजनीति से किसी प्रकार का अनुराग नहीं रखते थे। किन्तु समय आ गया है कि वे भी अपने कर्त्तव्य के लिये सचेष्ट बनें। बिना प्रयत्न किये राजनीतिक क्षेत्र में किसी भी प्रकार की सफलता प्राप्त कर पाना कठिन कार्य है। किन्तु यह कथन कि केवल वयोवृद्ध या ख्यातिप्राप्त वैज्ञानिक ही लोकसभा के प्रत्याशी हों, कम ही लोगों को रुचेगा। एक बार जब कोई अवगुण्ठन हटे तो फिर उसमें किसी प्रकार की रोकथाम नहीं होनी चाहिए। शायद युवा वैज्ञानिक वयोवृद्धों की अपेक्षा अधिक कार्य कर दिखावें। यही नहीं वे वैज्ञानिक जो ख्याति प्राप्त कर चुके हैं, जिनका कार्य महत्वपूर्ण हैं, वे

अपने कार्य में लगे रहें तो देश का अधिक कल्याण हो। राजनीति का क्षेत्र तो असफल लोगों के लिये नवीन कार्यक्षेत्र बन सकता है, अहर्निश कार्य करने वाले तपस्वी वैज्ञानिकों के लिये नहीं।

यह शुभ लक्षण है कि वैज्ञानिक क्षेत्र में नवीन जागरण हो रहा है। अगले बीस वर्षों में देश की राजनीति में, उसके रूप-निर्धारण में वैज्ञानिक का काफी हाथ रहेगा, अब ऐसी आशा होने लगी है।

कृषि विद्यालय

भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् ने यह प्रस्ताव रखा है कि देश के समस्त कृषि विद्यालय सरकारी नियन्त्रण में ले लिये जायँ और उनमें एक समान पाठ्यक्रम रखा जाय। इससे देश में कृषि-शिक्षा का स्तर उन्नत होगा और आवश्यकतानुसार 'कृषि सेवा' स्थापित किये जाने में सरलता भी होगी।

उत्तर प्रदेश में गैर सरकारी विद्यालयों की अधिकता है। अतः नवीन योजना के अनुसार हमारी सरकार उन्हें अपने नियन्त्रण में लाकर कितनी सफलता प्राप्त करेगी—यह विचारणीय है।

हमारा देश कृषि-प्रधान देश है। यहाँ के अधिकांश छात्र गैर सरकारी कृषि विद्यालयों में कृषि की शिक्षा सुगमता से प्राप्त कर सकते हैं और आवश्यकतानुसार उसका उपयोग अपने व्यक्तिगत कार्यों के चलाने या कृषि-विभागों में नौकरी करके करते हैं। किन्तु जब सभी विद्यालय सरकारी नियन्त्रण में हो जावेंगे तो छात्रों की संख्या में भारी कमी होगी। इसका परिणाम यह होगा कि घोर निराशा छा जावेगी।

यदि सरकार को कृषि-शिक्षा में सुधार करना है तो वह कुछ नये कृषि-विद्यालयों की स्थापना द्वारा करे न कि उन विद्यालयों को तोड़कर जो कृषि की शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि शिक्षित-बेकारों की संख्या इस देश में अधिक है किन्तु कृषि-शिक्षा से सम्पन्न युवक नौकरी न पाकर भी खेती तो करा ही सकते हैं। खेतिहर देश के लिये ऐसी शिक्षा एवं ऐसे शिक्षित युवक वरदान सिद्ध हो सकते हैं। हाँ, उनके उपयोग की विधि ज्ञात होनी चाहिए।

हमारा सुझाव है कि हमारे राज्य में कृषि विद्यालयों को और भी समुन्नत बनाने के लिये आवश्यक अनुदान दिए जायँ, कृषि-विभाग में नौकरी दिये जाने की और भी अच्छी व्यवस्था हो तथा विश्वविद्यालयों में कृषि अनुसन्धान पर अधिक बल दिया जाय।

मार्च-अप्रैल १९६७

विषय-सूची

विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुखपत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजनात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति। विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ० ३।५

भाग १०४ | चैत्र २०२३ विक्र०, १८८७ शक
मार्च-अप्रैल १९६७ | संख्या ६-७

पूर्व वैज्ञानिक काल में भौतिकवाद का उत्थान
[२००० ई० पू०—१५०० ई०]

● सुरजीत सिंह तथा गुलशन राय

मानवता के शैशव काल से ही मनुष्य प्राकृतिक रहस्यों को जानने के लिये उत्सुक रहा है। रात्रि और दिवस का चक्र, ऋतुओं का परिभ्रमण, नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य, भूकम्प, जन्तु तथा वनस्पति साम्राज्य की अभिवृद्धि—सब ने उसे आश्चर्य चकित तथा आकर्षित किया। इस जिज्ञासा के परिणामस्वरूप उसके दर्शन का अभ्युदय हुआ।

प्रकृति के अनंत रहस्यों पर सर्वप्रथम दृष्टिपात करने वाले ग्रीस तथा मिश्र के दार्शनिक थे। ग्रीक दार्शनिकों से पूर्व ही बेबीलोनिया (मिश्र का एक नगर) के दार्शनिक गणित तथा खगोल शास्त्र में पर्याप्त प्रगति के कारण सर्व विदित थे। उन्होंने ऐसी अनेक यांत्रिक कलायें तथा ऐसे प्रसाधनों का आविष्कार कर लिया था जो पिरामिड आदि के निर्माण हेतु आवश्यक थे। उन्हें दैनिक समय की दीर्घता, सप्ताह के दिवसों की संख्या तथा वर्ष के महीनों की संख्या के बारे में पर्याप्त ज्ञान था। वस्तुतः मिश्र का खगोल वेत्ता सौसीजेनेस (Sosigenes) ही वह प्रथम व्यक्ति था जिसने कैलेन्डर के समय में प्रेक्षित त्रुटियों की पूर्ति के लिये प्रत्येक चार वर्ष के

पश्चात् ३६६ दिवसीय लीप वर्ष (Leap Year) का प्रस्ताव किया। वस्तुतः यही प्रस्ताव जूलीयन कैलेन्डर (Julian Calendar) (जो रोम के सम्राट जूलियस सीज़र के नाम पर प्रचलित हुआ) का आधार स्तंभ है।

मिश्र निवासियों का दर्शन कदाचित् उनके संप्रदायों, अंधविश्वासों, धर्म तथा दार्शनिक पद्धतियों से प्रभावित होकर अप्रगतिशील तथा मौलिकताहीन हो गया था। प्राकृतिक दर्शन की एक सुनियमित पद्धति के निर्माण हेतु प्रथम प्रयास का सूत्रपात ग्रीस निवासियों ने किया। यद्यपि प्राचीन ग्रीक लोग साहित्य, कला तथा कल्पनावाद (Mythology) में अधिक रुचि रखते थे तथा उनके वैज्ञानिक कार्यों में प्रायोगिक तथ्यों का अभाव था तथापि हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि प्राकृतिक प्रकरणों के चिंतन तथा शोध की हमारी वर्त्तमान विधि इन्हीं ग्रीक लोगों के कारण है। पूर्व वैज्ञानिक काल के प्राकृतिक दर्शन का अधिकांश भाग, जो वर्तमान गणित तथा भौतिक विज्ञान की ओर ले जाता है इन्हीं ग्रीक लोगों की देन है।

ईसा से लगभग ६ शताब्दी पूर्व (6¨0 B. C.) महर्षि कणाद ने सर्वप्रथम अपने दर्शन ग्रंथ "वैशेषिक दर्शन" में पदार्थ के परमाणुवाद का सिद्धांत प्रस्तुत किया तथा परमाणुओं को सूक्ष्मतम एवम् अविभाज्य बतलाया। ग्रीक दार्शनिक एनक्सागोरस (Anaxagoras) ने, जिसका जन्म ५०० ई० पूर्व (500 B. C.) हुआ था, पदार्थ के वर्तमान परमाणुवाद की आधार शिला रखी। डेमोक्राइटस एवम् ल्युक्राइटस ने एनक्सागोरस के विचारों का समर्थन किया तथा उन्हें अधिक सुनिश्चित रूप प्रदान किया। वस्तुतः "एटम" Atom शब्द (=परमाणु) ग्रीक शब्द "Atemno" से लिया गया है जिसका तात्पर्य है—अविभाज्य। यद्यपि यह सत्य है कि इन दार्शनिकों को इस बात का पूर्ण आभास नहीं था कि परमाणु कितना सूक्ष्म, कितना रहस्यपूर्ण तथा कितना सामर्थ्यवान् है तथापि उनकी विचार धारा में वर्तमान परमाणु-संरचना के 'जीवाणु' जिस पर अब तक की सम्पूर्ण वैज्ञानिक प्रगति आधारित है, अंतर्निहित थे।

तत्कालीन लोकप्रिय मत के विपरीत एनक्सागोरस का यह मत था कि सूर्य, चन्द्र तथा ग्रह 'देवता' नहीं हैं वरन् पृथ्वी की ही भाँति पिण्ड मात्र हैं। सभी ग्रह, जिनमें से एक पृथ्वी भी है, सूर्य के परितः वृत्ताकार पथों में परिक्रमा करते हैं। सैमोस के अरिस्टारकस (Aristarcus of samos) तथा इरैस्टोस्थैनीस (Eratosthenes) उन व्यक्तियों में से थे जिन्होंने इन विचारों का समर्थन किया और कहा कि पृथ्वी गोल है जैसा कि ग्रहण के समय इसकी छाया से प्रमाणित होता है तथा यह एक अक्ष के परितः परिक्रमा करती है। इस प्रकार के विचार जन-समुदाय को स्वीकार नहीं थे। परिणामस्वरूप इन विचारों का प्रवर्त्तन तथा अनुसरण करने वाले निर्भीक

व्यक्तियों का उपहास किया जाता तथा दंडित किया जाता था। वस्तुतः एनाक्सागोरस को विवश होकर एथेन्स से पलायन करना पड़ा था।

'ब्रह्माण्ड' की धारणा का सूत्रपात ग्रीक दार्शनिक अरस्तू (प्लेटो का शिष्य) तथा टोलेमी (Ptolemy) द्वारा हुआ। यद्यपि उत्तोलकों (Levers) पिण्डों की पृथ्वी पर गति तथा ग्रहों की अधिचक्रों (Epicycles) में गति के विषय में उनके विचार अपरिपक्व तथा अपर्याप्त हैं तथापि उनके सिद्धान्तों पर दो सहस्र वर्षों तक किसी ने शंका नहीं की। इनके व्यक्तित्वों में सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि उन्हें प्राकृतिक नियमों की धारणा थी और इन धारणाओं को इन्होंने गणितीय रूप में व्यक्त करने का प्रयास किया।

यूक्लिड (Euclid ३२३-२८४ ई० पू०) का कार्य यहाँ विशेष उल्लेनीय है क्योंकि इसने निरूपणात्मक ज्यामिति (Demonstrative Geometry) का सूत्रपात किया जिसने वैज्ञानिक विचारों की पाश्चात्य प्रगति में निश्चयात्मक योगदान दिया। यूक्लिड के कार्य की अत्यंत सराहना की जाती थी और यह कहा जाता है कि प्लेटो ने अपने घर के प्रवेश द्वार पर निम्न पंक्तियाँ लिख रखी थीं—

ज्यामिति से जो भी अनभिज्ञ,
उसका यहाँ प्रवेश निषिद्ध।[1]

प्रायोगिक भौतिकवाद में सर्वप्रथम योगदान आर्कमिडीज ने दिया जिसे उचित रूप से ही 'प्रायोगिक विज्ञान का जन्मदाता' कहा जाता है। कहा जाता है कि साइराक्यूज (Syracuse) के शासक ने आर्कमिडीज को एक स्वर्ण मुकुट में निहित चाँदी की प्रतिशत मात्रा इस प्रकार निकालने की आज्ञा दी कि मुकुट नष्ट न हो। एक जलागार में स्नान करते समय आर्कमिडीज ने वह अनुभव किया कि द्रव में डुबोये जाने पर कोई भी वस्तु अपने द्वारा विक्षेपित द्रव के भार के बराबर भार को 'खो' देती है।' कहा जाता है कि इस विचार के आते ही वह उछल पड़ा और 'यूरेका, यूरेका' (पा लिया! पा लिया!) कहते हुये साइराक्यूज की सड़कों पर भागता चला गया।

आर्कमिडीज द्वारा आविष्कृत उत्प्लावन सिद्धान्त (Principle of buoyancy) विज्ञान में अत्यधिक प्रायोगिक महत्व का है। इस आविष्कार ने प्रयोग एवम् प्रेक्षण द्वारा प्राकृतिक नियमों के सुनियमित शोध कार्य एवम् आप्तनिर्णय से रहित होकर उसके निष्पक्ष विवेचन के एक नवीन युग का प्रचलन किया। पुनः आर्कमिडीज ही वह पहला ग्रीक था जिसने गणित को प्रायोगिक महत्व प्रदान किया। इस समय तक ग्रीक लोग गणित को गणितीय रूप में ही प्रयोग करते थे और इस क्षेत्र में उन्हें

१. मूल आलेख का हिन्दी भाषान्तर

आशातीत सफलताएँ भी प्राप्त हो चुकी थी। पाइथागोरस साध्य इसका एक उदाहरण है। आर्कमिडीज के वैज्ञानिक योगदान अनेक थे तथा उसके निजी समय से वे कहीं अधिक प्रगतिवादी थे। एक रोमन सैनिक के हाथों आर्कमिडीज की मृत्यु के उपरान्त वैज्ञानिक क्षेत्र में ग्रीक अधिपत्य का अंत-सा हो गया। ग्रीक लोग रोमन लोगों के साथ संघर्ष-रत हो गये। साइराक्यूज के निवासियों की वैज्ञानिक प्रतिभा और आर्कमिडीज द्वारा निर्मित युद्ध इंजन रोमन पराक्रम के सम्मुख परास्त हो गये। ग्रीस के पतन के पश्चात् अधिकांश बौद्धिक प्रतिभा लुप्तप्राय हो गयी जिसका पुनरुद्धार लगभग १५ शताब्दी पश्चात् कोपरनिकस (ग्रीक दार्शनिक) द्वारा हुआ।

इस मध्यांतरकाल में विज्ञान एवम् गणित का उदय भारत, अरब देशों एवम् इटली में मुख्य रूप से हुआ। प्रथम नौ संख्याओं (१,२...९) के लिये चिह्नों का जन्म भारतवर्ष में हुआ। इनमें से प्रायः सभी उन भारतीय शब्दों के विकृत रूप हैं जिनका प्रयोग इन संख्याओं को व्यक्त करने के लिये किया जाता था। तथाकथित अरब ब्रह्मगुप्त संख्याओं का आविष्कार ब्रह्मगुप्त (६०० ई०) ने किया। गणित एवम् विज्ञान 'शून्य' के आविष्कार से, जो कि भारत में ही हुआ, अत्यन्त लाभान्वित हुए।

भारतीयों ने योग, ऋण, गुणन एवम् भाग आदि प्राथमिक गणितीय प्रक्रियाओं के लिये कदाचित् अपरिपक्व चिह्नों एवम् विधियों का भी आविष्कार कर लिया, जैसा कि भास्कराचार्य द्वारा लिखित 'लीलावती' से ज्ञात होता है। यद्यपि ये चिह्न अधिक लोकप्रिय नहीं हुये तथापि प्राथमिक नौ संख्याओं एवम् शून्य के माध्यम से गणना करने की भारतीय विधि को अरब, इटली तथा तत्पश्चात् सम्पूर्ण सभ्य संसार के लोगों ने स्वीकार कर लिया। भास्कराचार्य द्वारा लिखित एक अन्य पुस्तक "बीज-गणित" में १३वीं शताब्दी ई० के ख्यातिप्राप्त गणितज्ञ श्रीधराचार्य द्वारा वर्णित युग्मत् समीकरण (Quadratic Equation) को हल करने की विधि का वर्णन आया है। यह बात उल्लेखनीय है कि इन्हीं दिनों ग्रीस के निवासियों ने वर्णमाला के अक्षरों द्वारा संख्याओं का निरूपण करके अपनी सांख्य-पद्धति का आविष्कार कर लिया था। रोम-निवासियों ने भी I, V, X, L, C, D आदि का प्रयोग क्रमशः १, ५, १०, १००, ५०० तथा १००० के निरूपण के लिये किया।

गणित में भारतीयों एवम् ग्रीसवासियों की इन उपलब्धियों का अधिकतम लाभ अरबवासियों ने उठाया। ग्रीक मुख्यतः प्राकृतिक नियमों के ज्ञान एवम् उसके गणितीय-करण में अधिक रुचि रखते थे। आर्कमिडीज को छोड़कर अन्य किसी भी ग्रीक दार्शनिक ने अपने ज्ञान को उपयोगितावाद की दृष्टि से नहीं देखा। अरबवासियों की 'पारस पत्थर' एवम् अमृत आदि में रुचि के दो कारण थे—एक तो उनकी चमत्कारों

एवम् अंधविश्वासों में निष्ठा तथा दूसरा ग्रीक लोगों की अपेक्षा उनका निम्न आर्थिक स्तर ।

पूर्व वैज्ञानिक काल का पश्च भाग रोगर बेकन, लियोनार्डो डा विन्सी तथा निकोलस कोपरनिकस जैसे ख्यातिप्राप्त व्यक्तियों द्वारा अत्यधिक समृद्ध हुआ । इनमें कॉपरनिकस का योगदान सर्वाधिक महत्व का है, इसलिये नहीं कि उसके विचार किसी निरपेक्ष तात्पर्य में सत्य थे वरन् इसलिये कि इस महान् वैज्ञानिक द्वारा ग्रीक लोगों के सूर्य केन्द्रीय सिद्धान्त (Heliocentric Theory) का पुनरोद्धार ही तत्कालीन वैज्ञानिक प्रतिभा का केन्द्र विन्दु बना ।

रोगर बेकन (१२१४-१२९४ ई०) एक अंग्रेज दार्शनिक था जो प्रायोगिक विज्ञान में अत्यन्त सिद्धहस्त था । प्रकाश-विज्ञान में उसका कार्य उल्लेखनीय है । लियोनार्डो डा विन्सी जिसे "इतिहास द्वारा ज्ञात सर्वाधिक बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति" कहा गया है, इटली का एक गणितज्ञ एवम् अन्वेषक था ।

प्राकृतिक दर्शन, खगोलविज्ञान, गणित तथा भौतिकीय विज्ञान की विभिन्न शाखाओं का पूर्व वैज्ञानिककाल के ३५०० वर्षों (१५०० ई० तक) में जो भी विकास हुआ वह मुख्यतया ग्रीक, भारतीयों तथा मिश्रनिवासियों के कारण हुआ । इटली तथा अरब के निवासियों ने भी थोड़ा-बहुत महत्वपूर्ण योगदान किया परन्तु इस सम्पूर्ण-काल में प्रगति अत्यन्त मन्द रही क्योंकि इन सत्यान्वेषियों को सदैव जन-समाज की भृकुटि-संधान का भय तथा शासक समाज के कठिन विरोध का सामना करना पड़ता था । यद्यपि उन्होंने प्राकृतिक सत्यों के उद्घाटन में पूर्व निर्णय एवम् पक्षपात से रहित रहने की नीति अपनाने का प्रयास किया तथापि उनकी रचनाओं में विज्ञान की प्रगति पर परम्परा, आध्यात्मवाद तथा दार्शनिक सिद्धान्तों के अनुशासन का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है । वास्तव में, विज्ञान का इतिहास वैज्ञानिक उद्देश्यों, विधियों तथा मतों के इन बाधक शक्तियों से मुक्त होने का इतिहास है ।

●●

विज्ञान की उन्नति पर राष्ट्र की प्रगति निर्भर है । वैज्ञानिक साहित्य के पठन-पाठन बिना विज्ञान की उन्नति का अनुमान लगाना दिवास्वप्न सा होगा ।

भूमि उर्वरता

● भूसुर

यद्यपि शैलों से ही मिट्टी की उत्पत्ति हुई है किन्तु इसे कोई अस्वीकार नहीं करेगा कि मिट्टी शैलों से भिन्न है क्योंकि मिट्टी में उर्वरता (Fertility) का गुण पाया जाता है। तो क्या शैलों में उर्वरता का गुण नहीं होता ? होता है किन्तु अत्यल्प मात्रा में।

सर्वप्रथम शैल चूर्ण होते हैं तो उनमें जलशोषण क्षमता या आर्द्रता ग्राहिता बढ़ती है। फिर धीरे-धीरे सूक्ष्मजीवों का विकास होता है। वर्षा के जल के द्वारा चूर्णित शैलों में पाये जाने वाले भोज्यतत्व धुलते रहते हैं और धुलकर समुद्र में एकत्र होते हैं किन्तु सूक्ष्मजीवों की उपस्थिति में ये तत्व धुलते नहीं वरन् उनके द्वारा अवशोषित होते रहते हैं। विशेष रूप से काइयाँ महत्वपूर्ण हैं। उनके शरीर में विभिन्न तत्व भिन्न भिन्न मात्राओं में संचित होते रहते हैं। गन्धक, फास्फोरस तथा पोटैशियम ये तीन तत्व हैं जो अत्यधिक मात्रा में संचित होते हैं। इनके बाद कैल्सियम, सोडियम आदि का क्रम आता है। ये तत्व "राख तत्व" कहलाते हैं। अत: जब ये सूक्ष्मजीव नष्ट हो जाते हैं तो शैलों की ऊपरी सतह पर इनके 'राख' तत्व एकत्र होते हैं फलस्वरूप शैलों में ऐसे तत्व भी मिल जाते हैं जो उनमें नहीं थे—ये तत्व हैं नाइट्रोजन तथा कार्बन (कार्बनिक पदार्थ या जीवांश)। इस प्रकार प्राकृतिक चक्र के विरोध में जैव चक्र गतिशील देखा जाता है।

कालान्तर में अपक्षीण पर्त पर भोज्यपदार्थों का संचयन होते रहने से बैक्टीरिया, कवक आदि वृद्धि करते हैं और फिर उच्चतर पौदे उगते हैं। ये अपनी जड़ों से काफी गहराई तक चट्टानों को प्रभावित करते हैं जिससे एक मोटी परत तक परिवर्तन होते हैं। यही परत **मिट्टी** (soil) कहलाती है।

इस प्रकार सूक्ष्मजीवों द्वारा भूमि में उर्वरता का विकास, वृद्धि एवं उसका स्थायित्व होता है। उर्वरता के प्रकरण में यह जान लेना आवश्यक है कि तमाम तत्व स्वात्मीकरण होने की दशा में उपलब्ध रहते हैं, शैलों में पाये जाने वाले यौगिक रूपों में नहीं।

पौदों को जल (आर्द्रता) तथा भोज्यपदार्थों की आवश्यकता के साथ ही आक्सीजन की भी आवश्यकता होती है। किन्तु विचित्र बात यह है कि आर्द्रता तथा आक्सीजन में विरोध है। जितनी ही अधिक आर्द्रता मिट्टी में होगी उतनी ही कम वायु (आक्सीजन) मिट्टी के कणों के बीच में पाई जावेगी। किन्तु इस विरोधाभास का निराकरण मिट्टी में समूहन (aggregation) द्वारा हो जाता है।

भूमि उर्वरता के आवश्यक अंग

इस प्रकार भूमि उर्वरता के आवश्यक अंग तीन हैं— आर्द्रता, भोज्यपदार्थ तथा आक्सीजन। ये प्रत्यक्ष उपादान हैं। मिट्टी में ऐसे भी पदार्थ हो सकते हैं जो पौधों की वृद्धि में बाधक हों—यथा लवणों की अधिक मात्रा।

इस प्रकार भूमि उर्वरता मिट्टी का गुण है। रूसी वैज्ञानिक वी० आर० विल्याम्स (Vilyams) के अनुसार "भूमि उर्वरता मिट्टी **की वह शक्ति है जिससे वनस्पति के लिये भोज्यपदार्थ तथा आर्द्रता सम्बन्धी अधिकतम आवश्यकताओं की पूर्ति होती है।**" वे आगे भी कहते हैं "**पौधों के जीवन के लिये जितने भी कारकों की आवश्यकता होती है उनमें से किसी भी कारक की पूर्ति किसी दूसरे कारक द्वारा सम्भव नहीं है। यह सम्भव है कि कोई कारक प्रचुर मात्रा में आवश्यक हो और कोई कम किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं होता कि दूसरा वाला कारक पहले की अपेक्षा कम महत्वपूर्ण है।**"

फलतः उर्वरता सम्बन्धी कारकों पर एक साथ ध्यान देना होगा। यदि केवल सबसे महत्वपूर्ण कारक को चुन कर उसी पर ध्यान दिया जाय—उसकी ही वृद्धि की जाय तो क्रमशः उससे प्राप्त उपज की वृद्धि अनुपाततः घटती जावेगी। उदाहरणार्थ **हेलरीगेल** ने एक प्रयोग में आर्द्रता की वृद्धि द्वारा उपज में वृद्धि ज्ञात करने का प्रयास किया तो उसने यह निष्कर्ष निकला कि प्रारम्भ में प्रति १०% आर्द्रता-वृद्धि से उपज की वृद्धि अधिक थी किन्तु बाद में वह घटती गई। इसे ही '**ह्रासमान उर्वरता का नियम**" कहते हैं। रूसी वैज्ञानिक इसे "मेटाफिजिकल नियम Metaphysical laws)" कहते हैं।

उर्वरता में वृद्धि

उर्वरता में सतत वृद्धि लाना कृषि की गम्भीर समस्याओं में से है। इसे आधुनिक कृषि प्रणालियों द्वारा—यथा सस्यावर्तन, जुताई, उर्वरण, आर्द्रता संरक्षण द्वारा—ही प्राप्त किया जा सकता है।

किन्तु क्या इस विधि से जंगली मिट्टियों को भी सुधारा जा सकता है? उत्तर होगा-क्यों नहीं। किन्तु इसके लिए जंगलों के संघटन में—उगने वाले वृक्षों की किस्मों में—परिवर्तन लाना होगा। जहाँ नुकीली पत्ती वाले जंगल हैं वहाँ चौड़ी पत्ती वाले वृक्षों को लगाकर पत्तियों के सड़ने की क्रिया को द्रुत बनाना होगा। इससे मिट्टियों की जल ग्रहण शक्ति तथा गैस विनिमय क्षमता में सुधार होगा।

जहाँ दलदली भूमि है वहाँ जल निकास पर ध्यान देना होगा। इससे पीट-निर्माण न होकर उसका क्षय होगा।

यही नहीं पत्तियों को तथा तिनों को मिट्टी की ऊपरी सतह के साथ जोतने से उनका क्षय तीव्र गति से होगा जिससे उनके भोज्य पदार्थ जल्दी ही मुक्त हो जावेंगे।

● यदि जिन भूमियों में पहले जंगल नहीं थे वहाँ वनरोपण करना हो तो जल

[शेषांश पृष्ठ १० पर

अंतरिक्ष अनुसन्धान से लाभ

● डा० जार्ज ई० म्यूलर

अमेरिका ने अंतरिक्ष-अनुसन्धान के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है। १९७० में चन्द्रमा पर मनुष्य को उतारने का लक्ष्य संभव ही नहीं है वरन साकार होने जा रहा है। अमानव कृत्रिम उपग्रहों से प्राप्त जानकारियों की सहायता से मौसम सम्बन्धी भविष्यवाणी, संचार, नौचालन आदि ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में नई तथा उपयोगी टेक्नोलौजी का विकास किया गया है।

अंतरिक्ष-खोज के सिलसिले जो अनेक प्रयोग भविष्य में किए जायेंगे वे सौर-मंडल और ब्रह्माण्ड के अनेक रहस्यों का उद्घाटन करेंगे। इन अन्वेषणों से यह भी पता चलाया जायगा कि पृथ्वी के अतिरिक्त अन्य किसी ग्रह पर जीवन है या नहीं। यदि है तो उससे ब्रह्माण्ड में उसके वितरण का विवरण ज्ञात हो सकेगा।

अंतरिक्ष के सीमान्तों में प्रवेश करने के जो प्रयत्न किए गये हैं उनसे आर्थिक विकास के एक बुनियादी पक्ष पर बहुत ही ठोस प्रभाव पड़ा है और उसके विकास की गति उत्तरोत्तर तीव्र हुई है। यही नहीं उसने शिक्षा तथा बौद्धिक सक्रियता को बढ़ावा देने में भी महत्वपूर्ण योगदान किया है।

अंतरिक्ष कार्यक्रम से धरती के लोगों को जो अनेकानेक महत्वपूर्ण लाभ हुए है उनमें से एक लाभ वैज्ञानिक और टेक्नोलौजी सम्बन्धी उद्यमों के प्रबन्ध का अनुभव भी है। इस प्रकार प्रशिक्षित कर्मचारियों, तरीकों और दक्षताओं के क्षेत्र में जो तरक्कियाँ की जा रही हैं उनसे आगे चलकर आधुनिक जीवन की अनेक पेचीदा समस्याएँ हल हो सकेंगी। उदाहरणार्थ, शहरों में यातायात व्यवस्था, पानी और हवा के दूषण, फिजूल पदार्थों के निर्वर्तन, कागजाती कार्य, आंकड़ों की व्यवस्था आदि से सम्बद्ध समस्याओं के हल करने में इन तकनीकों और दक्षताओं का परीक्षणात्मक प्रयोग भी किया जा रहा है।

और भी कई क्षेत्र हैं जिसमें इन तकनीकों का इस्तेमाल लाभप्रद सिद्ध हो सकता है जैसे जल-साधन प्रबन्ध, शहर नियोजन व विकास तथा तीव्रतम गति की यातायात पद्धतियों का विकास।

अंतरिक्ष कार्यक्रम ने अब तक ही काफी व्यापक प्रभाव डाला है किन्तु भविष्य में इसके प्रभाव-क्षेत्र का और भी अधिक विस्तार होगा। उदाहरणार्थ, धरती की कक्षा में ऐसे समानव उपग्रहों की उड़ानें जिनमें अत्यधिक संवेदनशील यंत्र लगे होंगे। इन यंत्रों की सहायता से विश्व भर में साधनों की खोज और उनकी देखरेख हो सकेगी। इसके अतिरिक्त ये उड़ानें ऐसी बहुत ही महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त करने में सहायक होंगी जिन्हें दूसरे तरीकों से प्राप्त नहीं किया जा सकता। ये सूचनाएँ उन एजेन्सियों

और संगठनों के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध होंगी जो संसार भर की भूखी मानवता की भूख शान्त करने के प्रयास में लगी हुई हैं।

फसलों और जंगलों की स्थिति, फसलों की कुछ बीमारियों के कुछ कारण तथा मिट्टी में पानी और खनिजों का असंतुलन आदि ऐसी अनेक चीजें है जिनकी जानकारी अंतरिक्ष से की जा सकती है।

इसी प्रकार वैज्ञानिक लोग अंतरिक्ष से धरती का ऐसा सर्वेक्षण कर सकेंगे, जो उसके साधनों के अतिरिक्त और भी कई लाभकारी जानकारियाँ प्रदान कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, उपग्रह द्वारा पृथ्वी की भौमिकीय तस्वीरों द्वारा अपेक्षाकृत श्रेष्ठतर मानचित्रों की तैयारी।

दूर से पता लगाने की विभिन्न प्रक्रियाओं का प्रयोग करके अन्तरिक्ष में उड़ते हुए वैज्ञानिक संसार के खनिज भण्डारों तथा तैल-भण्डारों, भूमिगत जल-साधनों और संसार के अन्य साधनों का पता लगा सकेंगे और उनका अध्ययन कर सकेंगे। उदाहरण के रूप में, भूमिगत जलभण्डारों और स्रोतों का पता लगाना सम्भव हो सकेगा। भूमिगत नदियों के ऊपर की भूमि के तापमानों में पाये जाने वाले अन्तरों का माप करके अन्तरिक्षयानों में स्थित यंत्रों की सहायता से उनका पता लगाया जा सकेगा। ऐसे स्रोतों में भूमि पर बहने वाली समस्त नदियों से हजारों गुना अधिक जल वर्तमान है।

ऐसे भूमिगत जल भण्डारों की खोज से भूमि की सतह पर विद्यमान जल की बढ़ती हुई खपत की पूर्ति में सहायता मिल सकेगी और इसका उन देशों के लिये बड़ा महत्व है, जहाँ जलाभाव के कारण बड़े-बड़े मरुस्थल पड़े हैं।

इसके साथ ही, हिमपात को मापा जा सकेगा और बाढ़ों के नियन्त्रण करने तथा जलागारों की सभी प्रकार की व्यवस्था करने तथा उनके जल के स्तरों का नियन्त्रण करने के लिए बर्फ के पिघलने के सम्बन्ध में भविष्यवाणी की जा सकेगी।

ऐसे भू उपग्रह द्वारा ज्वालामुखी पर्वत के फटने जैसी दैवी विपत्तियों के सम्बन्ध में पहले से चेतावनी दी जा सकेगी जो ज्वालामुखी पर्वत के धीरे-धीरे बढ़ते हुए तापमान का पता लगा सकता है।

मौसम सम्बन्धी भू-उपग्रहों द्वारा विश्व की खाद्य समस्याओं को हल करने में भी सहायता मिल सकेगी। उन्होंने मौसम सम्बन्धी भविष्यवाणी करने में क्रान्ति लाना प्रारम्भ कर दिया है।

भविष्य में, अन्तरिक्ष से प्राप्त होने वाली मौसम सम्बन्धी सूचनाओं में बहुत अधिक वृद्धि की जा सकेगी और उससे एक ऐसे गणनायन्त्र को पृथ्वी के समूचे वायु-मण्डल के सम्बन्ध में आवश्यक आंकड़े उपलब्ध करना सम्भव हो जायेगा जिसकी सहायता से समूचे विश्व के सम्बन्ध में ठीक-ठीक दीर्घकालीन भविष्यवाणियां की जा सकेंगी।

पृथ्वी के किसी भी स्थान के लिये तीन दिन पूर्व मौसम के सम्बन्ध में ठीक भविष्यवाणी करने की क्षमता के परिणामस्वरूप कृषि, मछली पकड़ने, व्यापार तथा अन्य क्षेत्रों में प्रति वर्ष करोड़ों डालर की बचत हो सकेगी।

भू-उपग्रहों ने टैलिविजन चित्र एवं अन्य आंकड़े आदि प्रेषित करके अपनी व्यावहारिकता प्रदर्शित कर दी है।

इसका विस्तार किया जा सकता है और अन्ततः अन्तरिक्ष में स्थित संचार केन्द्र संसार के सभी भागों में स्थित घरों और सार्वजनिक स्थानों में सीधे टैलिविजन चित्र प्रेषित कर सकेंगे।

शिक्षा के साधन के रूप में ऐसे भू-उपग्रहों के उपयोग के परिणामस्वरूप लाखों-करोड़ों लोगों को नई जानकारी और नई सूचनाएँ प्राप्त हो सकेंगी।

अन्तरिक्ष में चक्कर लगाने वाले अन्तरिक्ष-केन्द्र रोगों तथा महामारी को कम करने के कार्य में, विशेष रूप से विकासोन्मुख देशों में, बड़ा योगदान कर सकेंगे। उदाहरणार्थ दूरवर्ती क्षेत्र में एक चिकित्सक, निदान करने सम्बन्धी कम सुविधाओं के बावजूद, भू-उपग्रह द्वारा संसार के दूरवर्ती भाग में स्थित किसी बड़ी क्लीनिक (औषधालय) को रोगी के लक्षण भेज सकेगा। वहाँ गणनायन्त्र द्वारा रोग का पता लगाया जायगा। उस समय उस क्लीनिक के चिकित्सक, संसार के दूसरे भाग में, रोगी के रोग का निदान करके वह परामर्श दे सकेंगे, उस रोगी का क्या उपचार तथा देखभाल की जानी चाहिये।

निश्चय ही इससे संसार के सभी लोगों को असीम लाभ पहुँचेंगे। ● ●

[पृष्ठ ७ का शेषांश]

संरक्षण की विधियाँ अपनानी होंगी। यही नहीं, मिट्टी का निवेशन (इनाकुलेशन) भी करना होगा जिसमें किसी जंगली मिट्टी से प्राप्त माइकोरिजीय कवक प्रविष्ट करने होंगे। क्षारीय तथा लवणीय मिट्टियों का सुधार जिप्सम द्वारा करना होगा। शुष्क प्रदेशों में जल संरक्षण विधियों के साथ-साथ वनरोपण का कार्य अपनाना होगा।

भारतवर्ष "सोने की चिड़िया" कहलाता था जहाँ "दूध और घी की नदियाँ" बहती थीं किन्तु पिछले कई वर्षों से हमारे देश में जो अन्न संकट उत्पन्न हुआ है उससे यही निष्कर्ष निकलता है कि हमारी मिट्टियों की उर्वरता वांछित स्तर से नीचे चली गई है और जब तक कि उसे सुधारने का यत्न नहीं किया जाता चाहे जितनी सिंचाई क्यों न की जाय और चाहे कितने ही उन्नत बीज क्यों न बोये जायँ, ठीक से उपज नहीं होगी।

बस, यहीं से मिट्टी के सुव्यवस्थित अध्ययन की आवश्यकता लक्षित हो जाती है। खेद है कि कृषि प्रधान देश होने पर भी मिट्टी के पठन-पाठन एवं उस पर अनुसन्धान करने की दिशा में ठीक से कदम ही नहीं उठाये गये। ● ●

क्या विश्व खाद्य-संकट की ओर अग्रसर हो रहा है ।

● जोन ए० डिनटकर

खाद्य समस्या सम्बन्धी यह दूसरा लेख प्रकाशित किया जा रहा है। पाठक अपने सुझाव भेज सकते हैं :—सम्पादक

प्रत्येक दिन विश्व की जनसंख्या में १० लाख की वृद्धि हो रही है। इस गति से, अगले १५ वर्षों में विश्व की जनसंख्या में १ अरब की और वृद्धि हो जायेगी। दूसरे शब्दों में इस अवधि में विश्व की जनसंख्या में लगभग एक-तिहाई वृद्धि हो जायेगी और वह बढ़ कर ४ अरब तक पहुँच जायेगी।

क्या विश्व, जिसको इस समय भी खाद्य-पदार्थों का अत्यन्त अभाव अनुभव हो रहा है, इस बढ़ती हुई जनसंख्या को आहार सुलभ करने में समर्थ हो सकेगा ?

यदि विश्व के भोजन सम्बन्धी स्रोतों में इसी तीव्रगति से वृद्धि और विस्तार नहीं होता तो विश्व निश्चयात्मक रूप से इतनी बड़ी जनसंख्या को भोजन सुलभ करने में समर्थ नहीं हो सकेगा। इस समस्या का हल क्या हो सकता है—कृषि का आधुनिकीरण! समुद्रों से भोजन की प्राप्ति अथवा कृत्रिम भोजन का निर्माण? इस सम्बन्ध में किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के पूर्व विश्व की वर्तमान कृषि स्थिति का सिंहावलोकन कर लेना समीचीन होगा।

अधिक खाद्य-पदार्थ उत्पन्न करने के लिए किसानों को या तो अधिक भूमि की जरूरत पड़ेगी अथवा अपनी वर्तमान कृषि-भूमि की उत्पादन क्षमता बढ़ानी पड़ेगी। अनेक विकासोन्मुख देशों के पास कृषि करने के लिए नई भूमि का अभाव है। लगभग, सम्पूर्ण एशिया, पश्चिमी एशिया और उत्तर अफ्रीका में कृषि योग्य भूमि का अत्यन्त अभाव अनुभव किया जा रहा है। केवल अफ्रीका के सहारा क्षेत्र तथा लैटिन अमेरिका के कुछ देशों में कृषि करने के लिए नई भूमि प्राप्त करना सम्भव है।

अत्यधिक जरूरतमन्द देशों के पौधों से प्राप्त होने वाले खाद्य-पदार्थों, जैसे दालें और अन्य अन्नों पर अपने आहार के लिए निर्भर करना पड़ता है। मानव भोजन द्वारा जो शक्ति प्राप्त करता है, उसका लगभग ५३ प्रतिशत भाग अन्न वाले आहारों

से प्राप्त होता है। अब तक, विकासोन्मुख देश जनसंख्या में होने वाली वृद्धि के अनुपात में अपने खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि करने में असमर्थ रहे हैं।

आधुनिक कृषि के अन्तर्गत हुए परिवर्तनों का सिंहावलोकन करते हुए एक बात अनिवार्य रूप से हमारा ध्यान आकृष्ट करती है। वह तथ्य यह है कि विकासोन्मुख देशों में भोजन की कमी निरन्तर बढ़ती जा रही है। यद्यपि, इस वर्ष विश्व के सभी भागों में फसलें बहुत अच्छी हुई हैं परन्तु इससे यह तथ्य ओझल नहीं किया जा सकता कि गत ६ वर्षों में खाद्यान्नों की खपत खाद्यान्न-उत्पादन से बढ़ गई हैं।

यदि उत्पादन की पुरानी विधियों और तरीकों में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं होता तो वह समय भी शीघ्र ही आने वाला है जब कि विकसित देश भी इस खाई को नहीं पाट सकेंगे।

अमेरिका में भी कृषि एक निर्णायक मोड़ पर पहुँच गई है। संचित अतिरिक्त कृषि-सामग्री के दिन लद रहे हैं तथा विकासोन्मुख देशों को कृषि-सहायता देने सम्बन्धी अमेरिका की नीति में भी परिवर्तन हो रहा है। अमेरिका का अतिरिक्त अन्न-भण्डार समाप्त हो गया है। वास्तविकता यह है कि आज संसार में कहीं भी गेहूँ, चावल अथवा पशुओं को खिलाए जाने वाले मोटे अन्नों के अतिरिक्त भण्डार नहीं हैं।

अपने सुरक्षित अन्न-भण्डारों में निरन्तर कमी होते जाने के कारण अमेरिका को विकासोन्मुख देशों को खाद्य सहायता देने सम्बन्धी अपने दृष्टि-कोण में परिवर्तन करने के लिए विवश होना पड़ा है। विगत १२ वर्षों से अमेरिका 'शान्ति के आहार' नामक एक खाद्य-सहायता कार्यक्रम का संचालन करता रहा है जिसके अन्तर्गत अमेरिका के अतिरिक्त अन्न-भण्डार से विकासोन्मुख देशों को खाद्यान्न-सहायता सुलभ की जा रही है। इस कार्यक्रम से जो अनुभव प्राप्त हुए हैं उनके आधार पर अब एक अधिक श्रेष्ठ खाद्यान्न सहायता कार्यक्रम चालू किया गया है।

अमेरिकी कांग्रेस द्वारा स्वीकृत नए कार्यक्रम के अन्तर्गत खाद्यान्न सहायता प्राप्त करने के इच्छुक देशों को यह सिद्ध करना पड़ता है कि वे अपने पैरों पर खड़े होने के लिए स्वयं यथाशक्ति प्रयास कर रहे हैं। इसके अन्तर्गत सीधी आर्थिक, टैक्निकल तथा भोजन सम्बन्धी सहायता का लक्ष्य कृषि विकास पर, जहाँ कहीं वह आर्थिक दृष्टि से सम्भव और लाभजनक प्रतीत हो, विशेष बल देना है।

निकट भविष्य में क्षुधित विश्व की क्षुधा शान्त करने के लिए अधिकांश भोजन-सामग्री कृषि के द्वारा ही प्राप्त होने की आशा की जा सकती है। किसी अन्य स्रोत से इतनी अधिक भोजन-सामग्री प्राप्त करना सम्भव नहीं प्रतीत होता।

फिर भी, भोजन-स्रोत के रूप में समुद्रों का उपयोग अभी निश्चय ही नहीं किया गया है। मानव भोजन द्वारा जो शक्ति प्राप्त करता है उसमें समुद्री भोजन-सामग्री द्वारा प्रदत्त शक्ति का अनुपात केवल एक प्रतिशत बैठता है। इसके अलावा,

समुद्रों में पाई जाने वाली कुछ विशिष्ट प्रकार की मछलियों की कमी होती जा रही है तथा विभिन्न राष्ट्रों में ऐसे समुद्री क्षेत्रों को ढूंढ निकालने की प्रतिस्पर्धा चल रही है, जहाँ मछलियाँ प्रचुर संख्या में विद्यमान हों। यदि समुद्रों में मछलियाँ पकड़ने के कार्य को सुचारु रूप और वैज्ञानिक ढंग पर नहीं किया जाता तो समुद्रों से अधिक परिमाण में मछलियाँ प्राप्त करने की आशा नहीं की जा सकती।

भोजन के लिए एल्गी का उत्पादन करना तथा पेट्रोलियम जैसे पदार्थों से कृत्रिम भोजन-पदार्थ तैयार करना टैक्निकल दृष्टि से सम्भव है। इसके अलावा घास से तथा अन्य प्रकार के कृत्रिम उपायों द्वारा प्रोटीन का निर्माण भी किया जा सकता है। परन्तु बड़े पैमाने पर स्वादिष्ट, सस्ते और पोषक कृत्रिम भोजन-पदार्थ तैयार करना अभी बहुत दिनों तक सम्भव नहीं हो सकेगा।

लेकिन, इस समय जो अनुसन्धान-कार्य जारी है, उसके कुछ उत्साहवर्धक पहलू भी हैं। वैज्ञानिक सब्जियों से पर्याप्त प्रोटीनयुक्त खाद्य-पदार्थों का निर्माण करने की दिशा में प्रगति कर रहे हैं। इस प्रकार के कई प्रोटीनयुक्त खाद्य-पदार्थ तैयार भी किए जा चुके हैं। यही नहीं, वैज्ञानिक बीजों और अनाजों में अधिक प्रोटीन प्रविष्ट करने के सम्बन्ध में भी अनुसन्धान कर रहे हैं ताकि उनमें प्रोटीन तत्व की कमी को दूर करना सम्भव हो सके।

प्राविधिक दृष्टि से अब यह सम्भव हो गया है कि समुद्र के पानी से नमक निकाल कर उससे संसार के रेगिस्तानों को सींचा जा सकेगा किन्तु रेगिस्तानों में बड़े पैमाने की व्यापारिक खेती अगली पीढ़ी तक ही की जा सकेगी।

उष्ण-कटिबन्धीय वर्षानुकूल जंगलों का होना अच्छी फसल की भूमि के लिए जरूरी है किन्तु उन पर लाभप्रद खेती करने के लिए ऐसी प्रविधि की जरूरत है जिसका विकास होना अभी शेष है।

आदमी तथा पशुओं को क्षति पहुँचाने वाले कीड़े-मकोड़ों के नियन्त्रण से बड़े-बड़े क्षेत्रों को खेती और रहने के काबिल बनाया जा सकता है। पीला बुखार फैलाने वाले मच्छरों और मलेरिया पर प्राप्त की गई विजय खेती और विश्व भर के इन्सानों के स्वास्थ्य के लिए वरदान सिद्ध हुई है।

ऐसे विकास निश्चय ही अनेक हैं और उनमें लाखों-करोड़ों डालरों की रकम, वर्षों का अनुसन्धान और श्रम लगता है। वे स्वप्न जैसे हैं और उन्हें साकार भी किया जायेगा। फिर भी, मनुष्य की पहली आवश्यकता भोजन है। विकासोन्मुख देशों को यदि उन्हें जीवित रहना है तो अपना खाद्य उत्पादन बढ़ाना ही चाहिए—अनाज पैदा करने वाले खेतों में भी और चारा पैदा करने वाली भूमि पर भी।

इस काम के लिए अच्छी किस्म के पशु और पौधे चाहिए। आदमी ने अनेक पशुओं को खाद्य सामग्री पैदा करने वाली फैक्टरी जैसा बना देने का विस्मयकारी कार्य

कर दिखाया है। दूध देने वाली गायों की प्रारम्भिक जंगली नस्लों की गाय केवल अपने बछड़े की आवश्यकता भर का दूध देती थी। किन्तु, आज आदमी ने ऐसी जातियाँ विकसित कर ली हैं जिनमें एक गाय या भैंस समशीतोष्ण मौसम में एक वर्ष में ४०,००० पौण्ड तक दूध दे सकती है।

जंगली मुर्गी वर्ष में केवल पाँच या आठ अण्डे देती है किन्तु उसी की नस्ल में विकसित आधुनिक मुर्गियाँ साल भर तक नित्य एक अण्डा देने की क्षमता रखती हैं। लेकिन, जहाँ तक विकासोन्मुख देशों का प्रश्न है उनके लिए सबसे ज्यादा आवश्यक बात यह है कि वे अपनी अनाज सम्बन्धी पैदावार में सुधार करें क्योंकि संसार भर में उसी की सर्वाधिक माँग है।

अपनी खाद्य सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जिस प्रकार पशुओं की प्रकृति में परिवर्तन किया है उसी प्रकार उसने पौधों की मूल प्रकृति में भी परिवर्तन किया है। ऐतिहासिक काल से पहिले लगभग ५००० ई० पू० में मैक्सिको में जो जंगली मक्का पैदा होता थी उसमें आदमी के अंगूठे के बराबर बाली में लगभग ५५ छोटे-छोटे दाने लगा करते थे। आज विकसित मैक्सिकन मक्का का भुट्टा १५-१५ इंच तक लम्बा और उसमें १००० से अधिक मोटे-मोटे दाने होते हैं।

अमेरिका में प्रसंकर बीज, उर्वरकों आदि के उपयोग द्वारा सन् १६३० की दशाब्दी की तुलना में १६६० की दशाब्दी में मक्का की उपज को दूना कर लिया गया है। इससे भी अधिक विकास किया जा सकता है किन्तु यह विकास बुनियादी अनुसन्धान पर निर्भर करता है।

गेहूँ के मामले में भी बहुत काफी सुधार किए जा चुके हैं। आजकल प्रसंकर गेहूँ की काफी चर्चा है। गेहूँ के प्रसंकर बीज से पैदावार में २५ प्रतिशत वृद्धि की जा सकती है किन्तु गेहूँ के प्रसंकर बीज तैयार करने में लागत बहुत आती है। १६७० तक ही हम यह जान पायेंगे कि गेहूँ के प्रसंकरित बीज पर क्या लागत आयेगी और उनका क्या प्रतिफल होगा।

वर्तमान टैक्नोलोजी की सहायता से हम ४ अरब से लेकर ८ अरब व्यक्तियों का अच्छे रहन-सहन के साथ भरण-पोषण कर सकने में समर्थ हो सकते हैं, लेकिन, यदि विकासोन्मुख देशों में इस दिशा में तेजी से प्रगति न की गई तो इस होड़ में हमारी जीत नहीं हो सकेगी।

आज अभावों के विरुद्ध हमारा संघर्ष इसलिए हार रहा है क्योंकि अनेक अवरोध सामने हैं। विकासोन्मुख देशों में खेतों के आधुनिकीकरण का तात्पर्य यह है कि दुनिया के आधे से अधिक लोगों के बुनियादी आचरण का स्वरूप बदला जाये। यह एक धीमी और अधिक समय खाने वाली प्रक्रिया द्वारा होता है लेकिन, समय हमारे पास बहुत कम है अतः प्रत्येक घण्टा कीमती और महत्वपूर्ण है। ●●

क्रमशः

दैनिक जीवन में रसायन—५

●डा० शिवगोपाल मिश्र

यातना निवारक औषधियाँ :

किसी अंग में सड़न आ जाय, हड्डी टूट जाय, या फोड़ा हो जाय तो इतनी वेदना होती है कि रोगी को देखने वाले का भी हृदय द्रवित हो उठता है। जरा उन दिनों की कल्पना कीजिये जब रोगी के कष्ट-निवारणार्थ बलपूर्वक फोड़ों को चीरा जाता था अथवा टूटी हड्डियों को निकाला जाता था। न जाने कितने लोग रोगी को पकड़े रहते थे तब कहीं डाक्टर या वैद्य को कोई कार्य करने को मिलता था। किन्तु कभी-कभी थोड़ी सी असावधानी से रोगी के रोग के उपचार के बजाय हिलने डुलने से कहीं और कुछ हो जाता था। सम्भवतः शल्य चिकित्सा (चीड़फाड़) करने में यह सबसे बड़ी बाधा थी।

प्राचीन आयुर्वेद विज्ञान पर दृष्टिपात करने से ऐसा ज्ञात होता है कि कुछ वनस्पतियाँ ऐसी थीं जिन्हें खाने पर पीड़ा का असह्य अनुभव नहीं होता था किन्तु चिकित्सा के इस क्षेत्र में १८०० ई० के बाद ही सफलता मिली।

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डेवी (१७७८—१८२९ ई०) ने अनेक गैसों की पहचान उन्हें सूँघ करके की। 'हँसाने वाली गैस' के सूँघने से उसे चक्कर जैसा आया और उसे यह भी प्रतीत हुआ कि यदि उस अवस्था में वह दीवाल से या मेज से भी टकरा जाय तो पीड़ा का अनुभव नहीं होता। यह एक विलक्षण प्रयोग था किन्तु दुर्भाग्यवश डेवी के मन में यह विचार उठ ही न पाया कि इस गैस का उपयोग हो सकता है। उसके इस प्रयोग के ५० वर्ष बाद जाकर उक्त गैस का प्रयोग चिकित्सा क्षेत्र में हुआ।

जार्जिया के डा० **क्राफोर्ड लांग** ने १८४२ ई० में सर्वप्रथम ईथर का प्रयोग एक अर्बुद (ट्यूमर) के रोगी की चीड़फाड़ के समय की। ईथर के प्रयोग से रोगी को निद्रा आ गई और डाक्टर ने सफलतापूर्वक ट्यूमर निकाल ली। इसके चार वर्ष बाद डा० **विलियम टी० जी० मार्टन** ने जनता के समक्ष प्रदर्शन किया कि ईथर की वाष्प सुंघाने पर रोगी की चीड़फाड़ ठीक से की जा सकती है किन्तु इस निश्चेतक का प्रयोग २५-३० वर्ष बाद ही लोकप्रिय हो सका।

ऐसी अनेक औषधियाँ हैं जिनके प्रयोग से या तो मूर्छा या निद्रा आ जाती है अथवा पीड़ा का अनुभव नहीं होता। ये सभी यातना निवारक औषधियाँ कहलाती हैं। ये वे रासायनिक पदार्थ हैं जो इन्द्रियों को शिथिल कर देते हैं। इन्हें तीन प्रकारों में विभाजित किया गया है—

(१) निश्चेतक या चेतनाहर औषधियाँ (Anaesthetics)

(२) सन्तापहारी (Narcotics)

(३) सम्मोहक या निद्राकारी (Hypnotics)

निश्चेतक

निश्चेतक औषधियाँ यातना निवारक या शामक औषधियाँ (Sedatives) हैं।

निश्चेतकों का प्रभाव इन रासायनिक पदार्थों में उपस्थित कतिपय अणुओं या अणुअंशों के कारण होता है। उदाहरणार्थ यह भलीभाँति ज्ञात हो चुका है कि इन औषधियों में C_2H_5 समूह होता है। रसायन की भाषा में इसे एथिल समूह कहते हैं। ऊपर ईथर की चर्चा हो चुकी है। उसमें यह समूह विद्यमान है। ईथर का सूत्र $(C_2H_5)_2O$ है। इसे डाइ एथिल आक्साइड भी कहते हैं। ऐल्कोहल में भी C_2H_5 समूह पाया जाता है। ऐल्कोहल का सूत्र C_2H_5OH है। अन्य यौगिक जिनका निश्चेतक प्रभाव देखा जाता है वे हैं एथिलीन (C_2H_4), क्लोरोफार्म ($CHCl_3$), ऐसेटिलीन (C_2H_2) तथा नाइट्रस आक्साइड या हँसाने वाली गैस (N_2O)।

ऊपर जिन यौगिकों का नाम गिनाया गया है वे सभी वसाओं (fat) में विलयित हो सकते हैं तथा उनमें से कुछ जल में भी विलेय हैं। यही नहीं, ये पदार्थ शरीर के तन्त्रिकाऊतकों (nerve tissues) से भी संयोग करने की क्षमता रखते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि कोई भी स्नायु या तंत्रिका इनके प्रभाव से संवेदनशीलता त्याग सकती है। यदि किसी रोगी को निश्चेतक सुँघाया जाय तो इसके प्रभाव से कुछ काल के लिये वह संज्ञाशून्य हो जाता है क्योंकि वेदना के संकेत तन्त्रिकाओं द्वारा मस्तिष्क तक नहीं पहुँच पाते जिससे उसे किसी प्रकार वेदना या पीड़ा का अनुभव नहीं हो पाता।

फलतः किसी भी निश्चेतक का प्रभाव मनुष्य शरीर में दो प्रकार से होता है—प्रथम तो वह शरीर के वसा में विलयित होता है। फिर वह तन्त्रिकाओं को शिथिल करता है।

यदि निश्चेक को सुँघाना हो तो उसे वाष्पशील होना चाहिए। ऊपर जिन निश्चेतकों की चर्चा की गई वे या तो सरलता से वाष्पशील द्रव हैं या गैस हैं। कुछ ऐसे भी निश्चेतक हैं जिन्हें गुदा द्वारा भीतर पहुँचाया जाता है—इन्हें वाष्पशील होना आवश्यक नहीं।

डाक्टर यह जानते हैं कि रोगी को निश्चेतक की, कितनी मात्रा देने पर कितने समय तक वह चेतनाशून्य बना रहेगा। जब निश्चेतक की मात्रा अधिक हो जाती है तो उसकी वाष्प बाहर निकलने लगती है। निश्चेतक के द्वारा वसा तथा तन्त्रिका ऊतक का क्षय होता है। यह क्षय इतनी तीव्र गति से होता है कि शरीर उनकी पूर्ति नहीं कर पाता किन्तु ज्योंही यह पूर्ति होनी प्रारम्भ हो जाती है रोगी में चेतना आने लगती है और उसे पुनः वेदना का अनुभव होने लगता है।

काफी मात्रा में ईथर तथा वायु मिश्रण को सुँघाने पर रोगी २-४ घंटे तक बेहोश (चेतनाशून्य) रहा आता है। ऐसा अनुभव है कि प्रयोग के बाद रोगी को कुछ उत्तेजना (खुजलाहट आदि) होती रहती है—यहाँ तक कि न्यूमोनिया भी हो सकता है किन्तु ईथर के प्रयोग से इतना अधिक आराम मिलता है कि अब भी इसको बहुतायत से प्रयुक्त किया जाता है।

क्लोरोफार्म अत्यन्त जल्दी प्रभावित करने वाला शक्तिशाली निश्चेतक है। किन्तु कभी-कभी यह घातक सिद्ध होता है क्योंकि यकृत तथा अन्य अंगों पर इसका क्षयकारी प्रभाव पड़ता है जो आपरेशन के एक सप्ताह बाद तक बना रहता है। इसीलिये क्लोरोफार्म को बहुत कम ही सुँघाया जाता है।

आजकल ईथर के स्थान पर एथिलीन तथा आक्सीजन का मिश्रण व्यवहृत किया जाने लगा है। इस मिश्रण को एक-दो बार सूँघने पर ही मूर्छा आ जाती है और मास्क हटा देने पर ३-१० मिनट में ही चेतना आ जाती है।

हँसाने वाली गैस (नाइट्रस आक्साइड) को आक्सीजन के साथ मिश्रित करके सुँघाने पर अल्पकाल (१-३ मिनट) के लिये चेतना जाती रहती है अतः इसका उपयोग वहीं किया जाता है जहाँ कुछ ही काल में आपरेशन सम्पन्न किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, दाँत के आपरेशन में यह लाभदायी है। इसके प्रयोग से आपरेशन के बाद कोई भी उत्तेजना नहीं होती जिससे यह ईथर से अच्छा निश्चेतक है।

निश्चेतकों का चुनाव डाक्टर अपनी सुविधा के अनुसार करते हैं।

सन्तापहारी (Narcotics)

वे यातनाहारी औषधियाँ जो पीड़ा नाशने वाली होती हैं अर्थात् जिनके प्रयोग से सुन्नता आती है सन्तापहारी कहलाती हैं। इनमें से कुछ औषधियाँ शरीर के सीमित अंगों को संज्ञाशून्य (सुन्न) बनाने के काम आती हैं—इन्हें स्थानीय निश्चेतक कहते हैं—और कुछ पीड़ा हरने तथा नींद लाने के लिये प्रयुक्त होती हैं। इसीलिये इस वर्ग की औषधियों को मूर्छाकारी, निद्राकारी तथा सन्तापहारी—इन तीनों नामों से अभिहित किया जा सकता है। इन औषधियों का सबसे बड़ा दोष यह है कि बारम्बार प्रयोग करने से इनकी लत पड़ जाती है अतः इन्हें बिना डाक्टर की सलाह के नहीं खाना चाहिये।

इस वर्ग की प्रमुख औषधियों के नाम हैं अफीम (मार्फीन), कोडीन, कोकेन आदि।

हमारे देश में भाँग, गाँजा, अफीम, चरस, धतूरे आदि के सेवन करने वालों की कमी नहीं। वे बिना किसी रोग के ही उसकी 'लत' पार लेते हैं। बाद में वे अफीमची, मदकची, भँगेड़ी आदि हेय शब्दों से समाज में पुकारे जाते हैं।

अफीम पोस्ते के दाने से प्राप्त होने वाला रासायनिक पदार्थ है जिसे ऐल्कलायड (alkaloid) कहते हैं। कच्ची अफीम से कई प्रकार के ऐल्कलायड प्राप्त किये जाते हैं—यथा मार्फीन, कोडीन, नार्कोटीन, पैपरवीन आदि। अफीम को ऐल्कोहल में विलयित करके लाडैनम प्राप्त किया जाता है।

भाँग एक प्रकार का क्षुप है जो हमारे देश के पहाड़ी भागों में प्रचुरता से उगता है।

उपर्युक्त सभी पदार्थ नशीले पदार्थ हैं। सम्भव है कि एक बार खाने से ही कोई इनका प्रेमी बन जाय अतः इनके प्रयोग करने में काफी सतर्क रहना चाहिए।

इस वर्ग की औषधियाँ गोली के रूप में, इंजेक्शन के रूप में या धुँये के रूप में सेवन की जाती हैं।

इनके खाने से जो प्रभाव देखे जाते हैं उन्हें कई पदों में समझा जा सकता है। (१) सर्वप्रथम शरीर में जोश आता है (२) अधिक मात्रा लेने से दर्द (वेदना) जाता रहता है (३) इसके बाद मूर्छा और निद्रा की स्थिति आती है। किन्तु यदि इनके खाने की लत (व्यसन) पड़ जाय तो व्यसनी की निद्रा छू-मन्तर हो जाती है—उसे केवल सपने आते हैं। मार्फीन सामान्य मनुष्य का घातक शत्रु है किन्तु डाक्टर के हाथों में वही रोगी के लिये पीड़ानाशक है। अफीमची सदैव इसी ताक में रहता है कि उसे और अधिक अफीम मिले, भले ही खाना न मिले। कभी-कभी उसकी प्राप्ति के लिए वह जघन्य पाप तक कर बैठता है। अमरीका में स्कूली बच्चों तथा बच्चियों को ठगने के लिये भाँग से बनी सिगरेटें पिलाई जाती थीं फलतः वहाँ पर सभी प्रकार के नशीले पदार्थों पर प्रतिबन्ध है। हमारे देश में भी भाँग तथा अफीम के ठेके हैं जहाँ लाइसेंस-प्राप्त विक्रेता ही इन पदार्थों को बेच सकते हैं और खरीदने वालों को केवल एक निश्चित मात्रा तक ही ये पदार्थ मिल पाते हैं।

आत्महत्या के लिये इन पदार्थों का प्रयोग एक सामान्य घटना है।

स्थानीय निश्चेतक

आधुनिक रसायन विज्ञान ने ऐसे अनेक संश्लिष्ट पदार्थों को जन्म दिया है जिनका प्रयोग रोगियों के लिये वरदान सिद्ध हुआ है। उदाहरणार्थ कोकेन से अनेक निश्चेतक तैयार किये गये हैं। इनका उपयोग सामान्य रूप से न होकर व्याधिग्रस्त या

क्षतिग्रस्त अंग के लिये विशेषरूप से लाभदायक पाया गया है। इससे यह लाभ होता है कि रोगी के शरीर में सामान्य निश्चेतक के प्रयोग से जो उत्तेजना या कम्पन होता है, वह स्थानीय रूप से निश्चेतकों के व्यवहार से नहीं होता। फलतः गम्भीर स्थिति वाले रोगियों का भी आपरेशन अब सरल एवं सम्भव हो गया है।

स्थानीय निश्चेतकों का प्रथम प्रयोग १८८४ ई० में वियना के डाक्टर कोलर द्वारा प्रारम्भ किया गया। उसने कोकेन को शल्य क्रिया के समय प्रयुक्त किया। किन्तु कुछ ही काल बाद यह अनुसन्धान हुआ कि कोकेन विषैला होता है जिससे रोगी की मृत्यु भी हो सकती है फलतः इसके ऐसे व्युत्पन्नों की खोज प्रारम्भ हुई जो कम विषैले हों। सन् १९०५ ई० में इस प्रकार का एक व्युत्पन्न "**नोवोकेन**" खोज निकाला गया। तबसे इसका लगातार उपयोग होता आ रहा है। इसे 'प्रोकेन' भी कहा जाता है। एक ऐसा ही अन्य पदार्थ "**न्यूटिन**" है। इसकी खोज १९२० में हुई। यह नोवोकेन की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली है किन्तु विषैला अधिक है। इसके प्रयोग से लत पड़ने की कोई सम्भावना नहीं रहती।

जीव वैज्ञानिकों ने पशुओं की ग्रंथियों में से एक और पदार्थ खोज निकाला जिसका नाम है **ऐड्रेनैलिन**। इसका इंजेक्शन लगाने से रक्त वाहनियों में संकोच उत्पन्न होता है।

स्थानीय निश्चेतक-प्रयोग का एक सामान्य उदाहरण है टीका लगाते समय बाँह में स्पिरिट या अन्य किसी पदार्थ का लेप। स्थानीय निश्चेतक का प्रयोग तीन प्रकार से किया जाता है।

(१) निश्चेतक का जलीय विलयन बनाकर उस क्षेत्र (अंग) में सुई द्वारा त्वचा के नीचे पहुँचा दिया जाता है। इससे उस क्षेत्र में कुछ काल के लिये अचेतनता उत्पन्न हो आती है और दर्द नहीं होता।

(२) सुई द्वारा औषधि को किसी विशेष अंग की मुख्य तन्त्रिका (स्नायु) में प्रविष्ट कर दिया जाता है। प्रायः दाँत उखाड़ने के पूर्व इसी विधि से काम लिया जाता है।

(३) निश्चेतक को ठोस या द्रव रूप में त्वचा के ऊपर रगड़ कर किसी अंग को निश्चेष्ट बनाया जाता है।

सम्मोहक या निद्राकारी (Hypnotics)

जब किसी औषधि को खाकर या शरीर के भीतर इंजेक्शन द्वारा पहुँचाकर निद्रा लाई जाती है तो उस औषधि को **सम्मोहक** या **निद्रकारी** कहते हैं। इसमें किसी प्रकार का निश्चेतक प्रभाव नहीं पाया जाता। यदि डाक्टर की सलाह से निद्राकारी औषधियों का प्रयोग किया जाय तो ये **आदत डालने** वाली सिद्ध नहीं होतीं।

यहाँ प्रश्न यह उठ सकता है कि जिन्हें उनिद्र रोग हुआ है क्या उन्हें भी ऐसी औषधियाँ लाभदायक होती हैं या केवल विशेष प्रकार के रोगियों को ही। उत्तर होगा—उन्हें भी।

रसायनज्ञों ने यह खोज निकाला है कि ऐसे तमाम समूह (अणुओं के) हैं जो निद्रा ला सकते हैं। ब्रोमाइड तथा एथिल समूह ऐसे ही हैं। सोडियम ब्रोमाइड तथा पोटैशियम ब्रोमाइड का स्नायुओं पर सुखकारी प्रभाव देखा गया है किन्तु एथिल समूह वाले ऐल्कोहल से लत पड़ने की आशंका रहती है।

यूरिया इन दोनों से प्रभावशाली सम्मोहक है। यह शरीर में उत्पन्न होता रहता है और मूत्र में संचित होता है। यूरिया के व्युत्पन्न अत्यन्त प्रभावोत्पादक हैं। इनमें यूरिया तथा एथिल समूह वाले व्युत्पन्न ही अविषैले तथा लाभकारी देखे गये हैं। डाक्टर यूरिया के दो व्युत्पन्न प्रयोग में लाते हैं। बार्बिटल तथा फेनो-बार्बिटल। बार्बिटल का प्रयोग आपरेशन के बाद सुखकारी नींद लाने के लिये होता है। इसे सर्व-प्रथम जर्मनी के रसायनज्ञ एमिल फिशर ने १९०३ में खोज निकाला था। इसका दूसरा नाम "वेरोनल" भी है। फीनोबार्बिटल उनिद्र रोग के लिये रामबाण है। मिरगी में भी यह लाभ पहुँचता है।

किन्तु ध्यान रहे कि आप उपर्युक्त सम्मोहकों में से किन्हीं का भी प्रयोग अपने मन से न करें। यदि उनिद्र रोग है तो परवाह न कीजिये किन्तु यदि वह लगातार रहे तो डाक्टर की सलाह लें। नींद लाने के लिये अच्छा भोजन तथा व्यायाम आवश्यक हैं। दवा की बात बाद में सोचनी चाहिए।

उत्तेजक

शराब पीने के बाद व्यक्तियों की जो दशा होती है उसका वर्णन साहित्यिक दृष्टि से मनोरंजक हो सकता है किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से वह उतना महत्वपूर्ण नहीं है।

जितने भी ऐल्कोहल हैं वे उत्तेजक कोटि में आते हैं।

किन्तु क्या आपने कभी यह सोचा है कि ऐल्कोहल उत्तेजक क्यों है? आप चीनी खाते हैं—वह उत्तेजक नहीं किन्तु चीनी से ही बना पदार्थ ऐल्कोहल उत्तेजक है। आखिर ऐल्कोहल में क्या है? शराब क्या है? शराबें सस्ती और महँगी क्यों हैं?

ऐल्कोहल से युक्त पेय पदार्थों को तीन कोटियों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

(१) बियर तथा एल
(२) वाइन तथा साइडर
(३) व्हिस्की, ब्रांडी तथा जिन

प्रथम प्रकार की शराबों को जौ या अन्य अन्नों को पहले उगने देकर फिर अंकुर सहित सुखाकर पीस लिया जाता है, फिर इसमें जल मिलाने पर नियत ताप पर खमीर डालकर ऐल्कोहल उत्पन्न किया जाता है। इसका स्वाद तीता होता है। इसमें जल की मात्रा काफी रहती है।

अंगूर के फलों से रस निकालकर खमीर द्वारा किण्वन करने से कुछ दिनों बाद ऐल्कोहल उत्पन्न होता है। उसमें मिठास रहती है किन्तु यदि अधिक काल तक रखा जाय तो मिठास जाती रहती है।

यदि जौ आदि के अंकुरित दानों के चूर्ण को आसवित किया जाय तो व्हिस्की प्राप्त होती है। इसमें ५० % ऐल्कोहल रहता है।

ऐल्कोहल की मात्रा की दृष्टि से

१ बोतल व्हिस्की = ६ बोतल वाइन = १२ बोतल बियर

पहले ही कहा जा चुका है कि ऐल्कोहल मूर्छाकारी एवं निश्चेतक दोनों है। किन्तु साथ ही उत्तेजक भी है। कुछ लोग उत्तेजक की परिभाषा हृदय की क्रिया की वृद्धि के रूप में करते हैं तो कुछ यह कहते हैं कि इससे ऊँची उडान उत्पन्न होती है। कुछ लोग कार्य-क्षमता में वृद्धि, मस्तिष्क में सोचने की शक्ति की वृद्धि आदि प्रभाव उत्तेजक से उत्पन्न बताते हैं। किन्तु वैज्ञानिक परिभाषा यह होगी कि उत्तेजक द्वारा शरीर के भीतर सक्रियता में वृद्धि होती है।

किन्तु ऐल्कोहल किस प्रकार उत्तेजक है? क्या वह सीधे हृदय को प्रभावित करता है या अपरोक्ष रूप से। यह ज्ञात हुआ है कि ऐल्कोहल द्वारा सर्वप्रथम मस्तिष्क की वह तंत्रिका शिथिल पड़ती है जो हृदय को नियन्त्रित करती है। फलस्वरूप हृदय तीव्र गति से धड़कने लगता है।

ऐल्कोहल ऐसा पदार्थ नहीं जिसके पाचन की आवश्यकता पड़े। वह सीधे रक्त शिराओं में अवशोषित होकर भोज्य-पदार्थ की भाँति आक्सीकृत होना प्रारम्भ हो जाता है और शरीर को ऊर्जा प्रदान करने लगता है। किन्तु कब तक? जब तक कि सूक्ष्म मात्रा में पिया जाय। अधिक मात्रा पी जाने पर वह रक्त में संचित होने लगता है। शायद आपको जानकार यह आश्चर्य हो कि शरीर में शर्कराओं से अल्प मात्रा में ऐल्कोहल उत्पन्न होता रहता है किन्तु पी जाने वाली मात्रा से यह निश्चित रूप में कम रहता है।

ऐल्कोहल का प्रभाव भिन्न-भिन्न व्यक्तियों पर भिन्न-भिन्न प्रकार से लक्षित होता है। इसके अधिक पीने से बुद्धि एवं विवेकशक्ति जाती रहती है, हृदय-गति बढ़ जाती है, शिरायें एवं धमनियाँ मोटी पड़ जाती हैं। इसके सेवन से प्रतिक्रिया अवधि घट जाती है जिनके कारण ड्राइवर इत्यादि दुर्घटना-ग्रस्त हो जाते हैं। ऐल्कोहल पीने

से खाते समय लार तथा थूक की अधिक मात्रा निकलती है। ऐल्कोहल भोज्य पदार्थ से जल को खींचकर पाचन को मन्द करता है। यही कारण है कि शराबियों का कठिनाई से मल निकलता है।

जो लोग यह कहते हैं कि ऐल्कोहल पीने से शरीर गरमाता है, वे भूल करते हैं। वास्तव में रक्तशिरायें बढ़ने से अधिक रक्त बहता है जिससे अधिक ऊर्जा का शरीर से निष्कासन होता है—इसे ही भूलवश गरमाना कहा जाता है।

यह ज्ञात हुआ है कि जो ऐल्कोहल पीते हैं वे कम समय तक जीवित रहते हैं।

काफी तथा चाय भी उत्तेजक पदार्थ हैं। इनमें कैफीन तथा अन्य वाष्पशील पदार्थ पाये जाते हैं। चाय में काफी से दुगना कैफीन रहता है। चाय में टैनिन की मात्रा भी काफी से अधिक (२५%) पाई जाती है। चाय तथा काफी की लत का कारण है कैफीन नामक औषधि का इनमें होना। यह लत डालने वाली औषधि है। इसका प्रभाव प्रायः स्वास्थ्य पर बुरा पड़ता है—पेट की खराबी, सर का चकराना, बेचैनी तथा उनिद्र रोग इसके कारण उत्पन्न होते हैं। किन्तु जो चाय या काफी पीते हैं इसे मानने को तैयार नहीं कि इनका बुरा प्रभाव भी पड़ सकता है।

कैफीन की मात्रा कम करने का उपाय यही है कि काफी से कैफीन निकाल कर उसे पिया जाय। इस दृष्टि से प्रायः ५०-७०% तक कैफीन की मात्रा कम करके काफी तैयार की गई है किन्तु फिर भी उसमें तमाम हानिकारक वाष्पशील पदार्थ बचे रहते हैं।

कुछ कार्बोनेटेड पेयों में कैफीन मिला रहता है। कुछ ऐसे भी पेय उपलब्ध हैं जिनमें कैफीन की मात्रा अधिक रहती है जिससे यात्रियों को या ड्राइवरों को रात में देर तक जगे रहने में सहायता मिलती है; किन्तु स्वास्थ्य पर इनका बुरा प्रभाव पड़ता है।

सिगरेट या बीड़ी में तम्बाकू रहती है जिसमें निकोटीन नामक ऐल्कलायड पाया जाता है। इसकी मात्रा २-८% तक तम्बाकू की किस्म के अनुसार बदलती है। निकोटीन तेल जैसा द्रव है जिसका स्वाद अत्यन्त जलाने वाले तथा प्रभाव विषैला होता है। सिगरेट पीते समय धूम्र के साथ कुछ निकोटीन फेफड़ों में पहुँचता है, कुछ थूक में मिल जाता है। कुछ लोगों का विश्वास है कि तम्बाकू जलाने से पिरिडीन नामक विषैला पदार्थ भी उत्पन्न होता है। सिगार तथा चुरुट आदि में निकोटीन की मात्रा सिगरेट की अपेक्षा कहीं अधिक होती है। यदि छन्ने प्रयुक्त किये जायँ तो यह मात्रा आधी तक घटाई जा सकती है।

डाक्टरों का कथन है कि पेट की अनेक व्याधियाँ धूम्रपान के कारण उत्पन्न होती हैं। कैंसर की उत्पत्ति तक तम्बाकू के खाने तथा पीने दोनों के कारण बताई

जाती है। अमरीका जैसे उन्नत राष्ट्र में भी सिगरेटों-सिगारों का अत्यधिक प्रचलन है।

निर्जर्मीकारक

रोगों के प्रसार को रोकने के लिये प्राचीन काल में विविध उपाय किये जाते थे—गंधक, लोहबान की धुइं, नियमपूर्वक रहना, सफाई, आदि पर बल दिया जाता था। साथ ही यह विश्वास था कि विविध रोग दैवी प्रकोपों के कारण होते हैं अतः वे उन्हें भगाने के लिये देवताओं की विविध प्रकार से पूजा करते थे, बलि चढ़ाते थे, ओझों तथा नाउतों का आश्रय लेते थे। इसमें सन्देह नहीं कि गन्धक आदि के जलाने से रोग-कीटाणुओं का कुछ न कुछ नाश हो जाता था। यह आश्चर्यजनक है कि यद्यपि मिश्रवासियों ने मृत शरीर को दीर्घकाल तक सुरक्षित रखने की विधि ढूँढ़ निकाली थी किन्तु न तो उन्हें रोगों का उपचार ज्ञात था, न रोग फैलने के रोकने के उपाय ही ज्ञात थे।

उन्नीसवीं शती से निर्जर्मीकरण के क्षेत्र में कुछ प्रगति प्रारम्भ हुई। १८०८ ई० में जब इंगलैंड के एक डाक्टर ने जहाजों के कमरों को चूने से पोते जाने का आदेश दिया तो उसका विरोध हुआ। सन् १८४३ में क्लोरीन-जल का उपयोग निर्जर्मीकारक के रूप में हुआ। फीनाल, सिल्वर नाइट्रेट तथा आयोडीन भी काम में लाये जाते। १८६० ई० के बाद ही लुई पास्चुर ने रोगों के फैलने का कारण जर्मों तथा कीटाणुओं को बताया। उसी काल में इंगलैंड के जासेफ लिस्टर का ध्यान लुई पास्चुर की खोजों की ओर गया। उसने घावों को साफ करने के लिये कार्बोलिक अम्ल (फीनोल) का व्यवहार शुरू किया। उसने यह भी कहा कि शल्य चिकित्सा में घावों की सफाई के साथ ही शल्य-यन्त्रों की सफाई भी महत्वपूर्ण है।

आजकल तो अस्पतालों में विविध प्रकार के निर्जर्मीकारक काम में लाये जाते हैं। औजारों को उबालकर निर्जर्मित कर लिया जाता है। अपने हाथों को, रोगी की श्वास को तथा आपरेशन थियेटर को भी निर्जर्मित करने के साधन उपलब्ध हैं।

ये निर्जर्मीकारक हैं क्या ?

अँग्रेजी में दो शब्द प्रचलित हैं—**ऐन्टीसेप्टिक** (antiseptic) तथा **डिसइन्फेक्टैण्ट** (disinfectant)। ऐंटीसेप्टिक वह पदार्थ है जो जर्मों की वृद्धि को रोकता है किन्तु उन्हें नष्ट नहीं कर पाता जब कि डिसइन्फेक्टैण्ट द्वारा सभी प्रकार के जर्म नष्ट हो जाते हैं। किन्तु सामान्य व्यवहार में इन दोनों प्रकार के पदार्थों में भेद कर पाना कठिन है। कार्बोलिक अम्ल का तनु विलयन ऐंटीसेप्टिक है जबकि उसी का सान्द्र विलयन डिसइन्फेक्टैण्ट है।

निजर्मीकारकों के सम्बन्ध में रेडियो सीलोन द्वारा 'डेटाल' जैसे पदार्थों का प्रचार होता रहता है जिससे सामान्य लोगों का ऐसा विश्वास बन गया है कि जब

तक वे अपने मुँह, हाथ, बाल, या शरीर को इन निर्जर्मीकारकों से धोवेंगे नहीं तब तक उनके आसपास रोगों के जर्म ही जर्म रहेंगे। यह वास्तविकता से परे है। जो लोग मुँह के गरारे के रूप में कोई निर्जर्मीकारक प्रयुक्त करते हैं पहले तो वह इतने तनु घोल के रूप में रहता है कि उससे जर्म मर ही नहीं सकते। फिर गरारे की अवधि भी कम होती है जो जर्मों को मारने में समर्थ नहीं। यही नहीं, यदि मुँह को निर्जर्मित कर भी दिया जाय तो नाक से आई साँस मुँह में लगातार आती रहती है अत: वह निर्जर्मित तो रह ही नहीं सकता। यदि आपका दृढ़ विश्वास है कि गरारे का कुछ भी उपयोग है तो सर्वोत्तम गरारा नमक का घोल होगा। एक चम्मच नमक को जल में घोलकर गरारा करने से कहीं अधिक लाभ पहुँचेगा। यह सस्ता भी होगा।

अक्सर खरोंच लगने, कट जाने या चोट लग जाने पर जो घाव हो जाते हैं उन्हें निर्जर्मित करने की नितान्त आवश्यकता होती है। इसके लिये बहुप्रचलित दवा **टिंकचर आयोडीन** है। किन्तु स्मरण रहे कि ३% से अधिक सान्द्रता का टिंकचर व्यवहार में न लाया जाय। अधिक सान्द्र टिंकचर लगाने से छाले पड़ जाने या पीड़ा बढ़ जाने का भय रहता है।

टिंकचर आयोडीन का बनाना भी सरल है। ऐल्कोहल में आयोडीन को घोल लिया जाता है। लगाने के लिये रुई की फिरहरी प्रयुक्त करना चाहिए।

एक अन्य लाभप्रद निर्जर्मीकारक **"मर्थिओलेट"** है। यह सोडियम एथिल मरक्यूरी थायोसैलिसिलेट नामक मरकरी (पारद) का कार्बनिक यौगिक है। इसमें प्राय: ५० % तक पारद रहता है। यह जल तथा ऐल्कोहल दोनों में ही विलेय है। ऐल्कोहल में बना विलयन टिंकचर मर्थिओलेट कहलाता हैं। इससे कपड़ों पर धब्बे लग सकते हैं।

पारद का अन्य कार्बनिक यौगिक **"मरक्यूरोक्रोम"** है। इसमें ब्रोमीन भी रहता है। इसका सूत्र $C_{20}H_{8}O_{6}Br_{2}N_{2}Hg.3H_{2}O$ है। यह गंधहीन, हरा ठोस है जो जल में विलेय है और लाल रंग उत्पन्न करता है। इसका १% विलयन मृदु निर्जर्मीकारक का काम करता है।

पारद का एक और भी यौगिक निर्जर्मीकारक के रूप में प्रयुक्त होता है। इसे मरक्यूरिक क्लोराइड ($Hg\,Cl_{2}$), बाइक्लोराइड आफ मरकरी या करोसिव सब्लीमेट भी कहते हैं। यह अत्यन्त विषैला होता है। यह सफेद रंग का होता है इसलिये इसके विलयन को रंगीन करके अस्पतालों में रखा जाता है जिससे कभी भी भूलकर जल के स्थान पर इसका विलयन प्रयुक्त न हो पाये।

बोरिक अम्ल ($H_{3}BO_{3}$) भी मृदु निर्जर्मीकारक है। यह श्वेत गंधहीन चूर्ण के रूप में रहता है। यह ठंडे जल में कम किन्तु गरम जल में अधिक विलेय है।

आँखों के लिये यह उत्तम निर्जर्मीकारक है। इसका १—४% तक विलयन काम में लाया जाता है। आजकल इस अम्ल से सिक्त रुई मिलती है जिससे आँख सेंकने का काम लिया जाता है।

घाव हो जाने पर उसकी मरहम-पट्टी होनी आवश्यक है। इसके लिये प्रथम तो घाव को जल से धोकर उसके आसपास के भाग को निर्जर्मित गाज के टुकड़े से साबुन या ऐल्कोहल में डुबोकर साफ कर देना चाहिये। फिर घाव को सुखाना चाहिए। तब घाव में निर्जर्मीकारक लगाकर ऊपर से कई परत गाज की रखकर घाव को पट्टी से बाँध देना चाहिए;

मृदुरेचक (Laxatives)

जिसे सामान्य बोलचाल की भाषा में कब्जियत कहते हैं उसे अंग्रेजी में Constipation कहते हैं। इसका अर्थ है पेट में देर तक भोजन का रहना तथा मल निकलने में कठिनाई का अनुभव होना। इस अवस्था—कब्जियत—के कई कारण हैं—

(१) चिन्ता करना। (२) निष्क्रिय रहना—कुर्सी में बैठे रहना, चारपाई में लेटे रहना, व्यायाम न करना। (३) कम भोजन करना। (४) कम सोना। (५) ज्वर आदि का होना। (६) अधिकाधिक मृदुरेचकों का व्यवहार।

यदि कब्जियत दीर्घकाल तक बनी रहे तो उस पर विजय पाना कठिन हो जाता है।

कब्जियत बनी रहने से भोज्य पदार्थ अधिक काल तक आमाशय में रहता है जिससे मल में से अधिकाधिक मात्रा में विषैले पदार्थों का पुनः शोषण होता रहता है। इसके फलस्वरूप भूख मर जाती है, सर में दर्द रहता है, शरीर में फुंसियाँ हो जाती हैं। कभी-कभी कानों में सनसनाहट, शरीर में भारीपन तथा थकान प्रतीत होती है।

कुछ लोग दिन में नियमित रूप से दो बार मल-विसर्जन करते हैं, कुछ एक बार और कुछ दो दिन में एक बार। इससे यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि जो दो दिन में मल-विसर्जन करता है वह कब्जियत का शिकार है। किन्तु हाँ, उसे अपनी इस क्रिया में नियमित होना चाहिए, यदि कभी इसमें कुछ गड़बड़ी आ भी जाती है तो सामान्यतः वह अपने आप सुधर जाती है किन्तु दीर्घकाल तक अनियमितता होने पर डाक्टर की सलाह लेना चाहिए।

मृदुरेचक वे पदार्थ हैं जो पेट को साफ करके कब्जियत को हटाने में सहायक होते हैं। अपने प्रभाव के अनुसार ये तीन प्रकार के माने गये हैं:

(१) मृदुरेचक जो नाम से ही मृदु प्रभाव डालने वाले हैं
(२) मार्जक (Cathartics) ये कुछ तीव्र होते हैं।

(३) जुलाब (Purgatives)—ये अत्यन्त तीव्र होते हैं अतः इनके प्रयोग में काफी सावधानी बरतनी चाहिए।

क्रिया की दृष्टि से मृदुरेचकों की पाँच कोटियाँ मान्य हैं।

(१) आयतनवर्द्धक—यथा एगर-एगर, चोकर, ईसबगोल की भूसी। पहले अधिक मात्रा में देकर धीरे-धीरे इनकी मात्रा घटाकर अन्त में बन्द कर देनी चाहिए। ये पेट में जाकर फूलते हैं जिससे मल के आयतन में वृद्धि होती है। फलस्वरूप मल निष्कासन में सुगमता होती है क्योंकि आँतों में लहर जैसी गति होती है।

(२) स्नेहक—खनिज तेल तथा पायस—यथा पेट्रोलेटम। ये न तो अवशोषित होते हैं, न पाचित होते हैं, न जर्मों द्वारा प्रभावित होते हैं। ये अत्यन्त निर्दोष पदार्थ हैं। इनमें उपस्थित तेल की पतली तह मल के चारों ओर बन जाती है जिससे वह बिना प्रयास के आँतों में सरकने लगता है।

जो लोग स्नेहक का प्रयोग करने के आदी हैं उन्हें चाहिए कि वे डाक्टर की राय लें क्योंकि प्राकृतिक रूप से आमाशय में ऐसे पदार्थों को बाहर से पहुँचाने की आवश्यकता नहीं होती।

(३) नशीली दवायें—फेनाप्थलेन नामक यौगिक स्वादहीन होकर भी अत्यन्त विषैला है। यह छोटी आँत में लहरों जैसी गति उत्पन्न करता है। इसे प्रायः चीनी या चाकलेट के साथ मिश्रित करके मृदुरेचक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। स्ट्रिकनीन भी ऐसा ही विषैला पदार्थ है जिसका प्रयोग मृदुरेचक के रूप में किया जाता है। रेंडी का तेल भी काम में लाया जाता है किन्तु यह जुलाब लाता है अतः यदि पेट में दर्द हो तो इसका प्रयोग कभी नहीं करना चाहिए।

(४) लवणीय मृदुरेचक—एप्सम लवण ($MgSO_4H_2O$) मैग्नीशिया दूध, $Mg(OH)_2$, मैग्नीशियम सिट्रेट आदि। ये लवण मल के तरल के घनत्व को बढ़ाकर जल के शोषण में सहायक बनते हैं फलस्वरूप मल पतला हो जाता है। इनके प्रयोग की एक कठिनाई यह है कि ये कुछ काल बाद अपना प्रभाव दिखाते हैं अतः यदि धैर्य से काम न लेकर इनकी अधिक मात्रा खा ली जाय तो भयानक परिणाम हो सकते हैं। विशेषतः वृक्कों पर बुरा प्रभाव पड़ता सकता है।

(५) प्राकृतिक मृदुरेचक—चोकर, दलिया आदि। किन्तु स्मरण रहे कि तरकारियों, फलों आदि में इतना प्राकृतिक मृदुरेचक रहता है कि ऊपर से खाने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। यदि कब्जियत जान पड़े तो एक कप गरम जल पी लेने से लाभ हो जावेगा। इसी प्रकार जल में नमक या नींबू मिलाकर पीने से भी लाभ होगा। यदि ठीक से भोजन किया जाय, थोड़ी कसरत की जाय या घूमा जाय तो कब्जियत जैसे उदर-विकार का नामोनिशान न रहे। [क्रमशः]
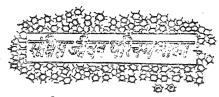
डा० परपिया—खाद्य-संरक्षण विशेषज्ञ

भारत में इस समय खाद्य-पदार्थों की उपलब्धि बढ़ाने, लोगों के आहार की कोटि सुधारने और खाद्यों व अनाज के उठाने-धरने तथा गोदामों के दोषपूर्ण होने के कारण कीड़ों, टिड्डियों, चूहों, पक्षियों आदि से होने वाली हानि को यथाशक्ति कम करने के कामों पर सबसे अधिक ध्यान दिया जा रहा है।

विविध पहलुओं वाली इस कार्यवाही में डा० हुसेनअली भीमजी परपिया सक्रिय रूप से जुटे हुए हैं। आप मैसूर-स्थित 'केंद्रीय खाद्य तकनीकी अनुसन्धान संस्थान' के निदेशक हैं।

भारत के आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए विज्ञान और तकनीकी ज्ञान का प्रयोग करने के निमित्त देश में १९५० के बाद से जो ३४ राष्ट्रीय अनुसन्धानात्मक प्रयोगशालाएं स्थापित की गई हैं उनमें 'केन्द्रीय खाद्य तकनीकी संस्थान' भी है। यह संस्थान इस समय खाद्य-समस्या को हल करने के उद्देश्य वाली १०० से अधिक अनुसन्धान-परियोजनाओं में जुटा हुआ है।

डा० परपिया शैक्षिक और व्यवसायिक दृष्टियों से अच्छी योग्यता लेकर इस संस्थान में आये हैं। बम्बई विश्वविद्यालय से १९४५ में जीवाणुशास्त्र में बी० एस-सी० करके आप उच्च अध्ययन के लिए अमेरिका गये थे। १९४८ में आपने औरेगोन विश्वविद्यालय से एम० एस० और १९५१ में पी-एच० डी० की उपाधियाँ प्राप्त कीं। आप वहाँ फैलो भी रहे।

१९५२ में भारत लौट कर डा० परपिया ने बम्बई में ३ वर्ष तक 'प्योर प्रोडक्ट्स' और 'मधु कैनिंग' फर्मों में मुख्य तकनीकी विशेषज्ञ के रूप में काम किया। फिर अगले ३ वर्ष आप 'केन्द्रीय खाद्य तकनीकी अनुसन्धान-संस्थान' में अनुसन्धान-विकास और आंकड़ों के सम्बन्ध में सह-निदेशक रहे।

१९५९ से १९६१ तक डा० परपिया नई दिल्ली में 'वैज्ञानिक एवं औद्योगिक

अनुसन्धान परिषद्' में औद्योगिक सम्पर्क-अधिकारी रहे। १९६२ में आप खाद्य-संरक्षण एवं डिब्बाबन्दी उद्योग विषयक भारतीय उत्पादकता मण्डली के वैकल्पिक नेता होकर कुछ सप्ताहों के लिए अमेरिका गये। इस दौरे की व्यवस्था अमेरिका की 'अन्तर्राष्ट्रीय विकास एजेन्सी' ने की थी।

डा० परपिया 'खाद्य-कृषि संघटन', विश्व स्वास्थ्य संघटन' और 'अन्तर्राष्ट्रीय बाल सहायता कोष' की ओर से बनी 'प्रोटीन परामर्शदात्री मण्डली' के सदस्य हैं। आपने पौष्टिकता, खाद्य-विज्ञान और तकनीकी ज्ञान विषयक अनेक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भाग लिया है। आपने अनेक गवेषणात्मक निबन्ध भी लिखे हैं।

'केन्द्रीय खाद्य तकनीकी अनुसन्धान संस्थान' ने भैंस के दूध से उच्च कोटि के शिशु-आहार बनाने की एक प्रक्रिया निकाली है। संस्थान ने सस्ते और प्रोटीन-बहुल खाद्य तैयार करके बच्चों में अपोषण की रोकथाम की दृष्टि से बहुत उपयोगी कार्य किया है।

संस्थान की एक और कार्य-सिद्धि बहु-प्रयोजनीय खाद्य का निर्माण करने की है। उसने मूंगफली के आटे और भुने चने के आटे से उसे तैयार किया और उसमें विटामिन व खनिज लवण भी मिलते हैं।

इस पूरक खाद्य को प्रोटीन की कमी दूर करने के लिए भारतीय भोजन में मिलाया जा सकता है। केन्द्रीय खाद्य तकनीकी अनुसन्धान संस्थान के एक कारखाने में प्रतिदिन आधा टन यह बहु-प्रयोजनीय खाद्य तैयार किया जाता है।

डा० परपिया के कथनानुसार, एक टन बहुप्रयोजनीय खाद्य से ३६००० लोगों के भोजन को, प्रतिदिन प्रति व्यक्ति एक औन्स के हिसाब से, शक्तिवर्धक बनाया जा सकता है। बहुप्रयोजनीय खाद्य को स्कूलों के जलपान-कार्यक्रम में प्रयुक्त किया जाता है। इस कार्यक्रम का विस्तार इतना हो चुका है कि भारत में स्कूलों में पढ़ने वाले लगभग १७ प्रतिशत बच्चे उससे लाभान्वित हो रहे हैं। इस देश व्यापी कार्यक्रम में अमेरिका द्वारा उपहारस्वरूप दिये गये खाद्य-पदार्थ प्रयुक्त किये जाते हैं।

खाद्य समस्या को हल करने का उपाय है

अधिक अन्न उत्पादन

अप्रैल मास के कृषि कार्य

● (कृषि समाचार सेवा से साभार)

अप्रैल मास में कृषकों को ४ प्रकार के कार्य करने होंगे :—

१. गर्मियों की जुताई
२. गर्मियों की सब्जियाँ
३. मडुआ की बुआई
४. पशुओं के लिये हरे चारे

गर्मियों की जुताई

रबी की फसल की कटाई पूरी होने पर खेतों की जुताई कर देना आवश्यक व लाभदायक होती है। आमतौर से अधिकतर किसान लोगों को गर्मी की जुताई के लाभों की जानकारी नहीं। तथा कुछ लोगों को जानकारी हुए भी इस कार्य को पूरा करने का समय नहीं मिल पाता। समय न मिलने का एक विशेष कारण उनका रबी की कटी हुई फसल की मड़ाई तथा ओसाई करना है। लेकिन गर्मी की जुताई इतनी लाभदायक होती है कि इसे तो किसी भी कीमत पर कर ही देना चाहिये।

गर्मी की जुताई में विशेष सावधानी व बारीकी की आवश्यकता नहीं होती। किसी भी मिट्टी पलटने वाले हल से खेत में केवल ३०-३० सें०मी० पर कूँड निकाल देना ही काफी रहता है। खेत की सूखी जुताई हो जाने पर खेत में खरपतवार नहीं पनपते, रबी की फसल के-साथ उगे हुए खरपतवार नष्ट हो जाते हैं जो आगे की फसल के लिये खाद का काम करते हैं। साथ ही भूमि में ऊष्मा तथा वायु का संचारण (साइल हीट तथा साइल एअर) का समावेश खूब होता रहता है। हानिकारक कीड़े मकोड़े मर जाते हैं तथा जीवाणु खूब पनपते हैं व उनकी क्रियाओं में वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त जुती हुई भूमि पर मवेशियों के घूमने-फिरने से मिट्टी ढीली नहीं होती तथा वह तेज हवाओं के चलने के कारण एक स्थान से उड़कर दूसरे स्थान पर नहीं जा पाती और इस प्रकार होने वाली हानि से बच जाती है।

गर्मियों की सब्जियाँ

आमतौर से गर्मियों के मौसम में आने वाली सब्जियों की बुवाई मार्च के अन्त तक कर दी जाती है। यदि किसी कारणवश कुछ स्थानों पर बुवाई पूरी न

की गई हो वहाँ उन्हें अप्रैल मास में भी बोया जा सकता है तथा उनसे अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है। घर के बागीचों में जहाँ काफी जगह मौजूद हो वहाँ पर ऐसी सब्जियों की बुवाई कुछ समय के अन्तर से रुक-रुक करना अच्छा रहता है। ऐसा करने से फल काफी देर तक मिलते रहते हैं। गर्मी के दिनों में पौधों पर पानी की कमी तथा मौसम में अधिक ताप होने के कारण फल अधिक संख्या में नहीं आते। पहली-दूसरी बारिश हो जाने पर ऐसे पौधों में वायुमंडलीय परिस्थितियों में कुछ परिवर्तन हो जाने के कारण फल अच्छे और अधिक संख्या में आते हैं।

गर्मियों में उगायी जाने वाली सब्जियाँ भिन्डी, लौकी, तोरई, कद्दू, करेला, तोरई, सीताफल आदि हैं। दिल्ली स्थित भारतीय कृषि अनुसंधानशाला भिन्डो की पूसा मखमली तथा पूसा सावनी किस्में उगाने की सिफारिश करती है। इनके फल लम्बे और मुलायम हरे व चिकने होते हैं। टी १, टी २, टी ३ किस्में उत्तर प्रदेश के लिये अच्छी किस्में हैं। पंजाब के कृषि-विभाग ने नं० १३ नामक भिंडो की किस्म तैयार की है। इसके अतिरिक्त भिन्डी की अन्य विकसित किस्में सतपानी, वदनावट, खिलारी, पटना, भवुआ, बौने तथा हरे रंग की व लम्बी सफेद व लाल रंग वाली किस्म हैं।

गर्मी में उगायी जाने वाली भिन्डी की फसल की बुवाई वर्षा के मौसम वाली फसल की अपेक्षा पास-पास करनी चाहिये। पौधों के बीच २५ सेंटीमीटर से ४० सेंटीमीटर दूरी रखनी चाहिये। अधिक संख्या में पौधों के लिये एक एकड़ के लिये ४ से ५ किलो बीज की आवश्यकता होती है।

भिन्डी की फसल पर कुछ कीट पतंग आक्रमण करते हैं जिसके कारण फसल को हानि उठानी पड़ती है। ऐसे कीटों में तना छेदक तथा जैसिड कीट प्रमुख है। तना छेदक पौधों को चोटी की ओर से नीचे तक बेधता चला जाता है फलस्वरूप कुछ दिनों बाद पौधा मुरझाकर सूख जाता है। जैसिड कीट पौधों की पत्तियों के नीचे की ओर पाया जाता है। वे पत्तियों को बेलनाकार रूप में मोड़ते हैं। कुछ समय के पश्चात् पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं और सूख जाती हैं। इसके बाद यही कीड़े अन्य पत्तियों पर पहुँच कर उन्हें हानि पहुँचाते हैं।

इन दोनों प्रकार के कीटों की रोकथाम के लिये फसल पर २·० प्रतिशत एल्ड्रीन का घोल तथा जैसिड को नष्ट करने के लिये ०·०२ प्रतिशत पैराथियन, मैला-थियान अथवा ऐल्ड्रीन का घोल छिड़कना लाभकारी होता है।

तोरई, लौकी, करेला, तथा अन्य लौकी वर्गीय सब्जियों की बुवाई भी इसी महीने में की जा सकती है। इन फसलों को पंक्तियों के बीच २ से २½ मीटर व पौधों के बीच लगभग एक मीटर का फासला रखना चाहिये। प्रत्येक स्थान पर २, ३ बीज बोना अच्छा रहता है। सीताफल, लौकी के बीज आलू के खेत में ऊपर बताये

गये फासले पर डौलियों के बीच में गड्ढे बनाकर बोये जा सकते हैं। बुवाई से पहले प्रत्येक गड्ढे में ९-१० टोकरी जैविक खाद तथा अमोनियम सल्फेट मिला कर देना चाहिये। इसी के साथ सुपरफास्फेट मिलाना भी अच्छा रहता है।

पौधों की बढ़ोतरी के आरम्भ में पौधों पर लाल कीड़ा आक्रमण करता है तथा पौधों की पत्तियों को खाकर उन्हें हानि पहुँचाता है। फसल को इस कीड़े के आक्रमण से बचाने के लिये उन पर किरासिन तेल युक्त लकड़ी की राख छिड़कना लाभकारी होता है। 'फलों की मक्खी' द्वारा फलों को हानि से बचाने के लिये उन पर ०·१ प्रतिशत निकोटिन सल्फेट अथवा ०·०२ प्रतिशत ऐल्ड्रीन का घोल छिड़कना लाभकारी होता है।

मँडुआ की बुवाई

रबी की फसल में कई एक जिन्सें जैसे तिलहनी फसलें, जौ, जई, मटर खिसारी आदि की कटाई अन्य फसलों की अपेक्षा शीघ्र हो जाती है तथा खेत खाली पड़े रहते हैं। जिन किसान भाइयों को फुरसत होती है वे ऐसे खाली खेतों की समय से जुताई कर देते हैं, परन्तु कुछ दूसरे किसान लोगों को अन्य कार्यों के कारण फुरसत नहीं मिल पाती तथा उनके खेत खाली पड़े रहते हैं। उनमें खरपतवार पनपते हैं; उनकी उर्वराशक्ति कमजोर हो जाती है। ऐसे खेतों की यदि जुताई करके उनमें गर्मी के मौसम में चेंना, मंडुआ आदि की फसल उगायी जाय तो इससे न केवल अन्नोत्पादन को बढ़ाया जा सकेगा अपितु खरपतवारों का नाश भी होगा और भूमि की उर्वरता बनी रहेगी।

खेत की तैयारी तथा बुवाई

फसल के कट जाने के बाद प्रारम्भ में खेत की दो या तीन बार जुताई कर लेनी चाहिये। प्रत्येक जुताई के बाद सुहाया देना अत्यन्त आवश्यक है जिससे खेत की मिट्टी बिल्कुल भुरभुरी हो जाय और उसमें नमी काफी दिन तक बनी रहे। कम्पोस्ट अथवा गोबर की सड़ी खाद खेत में डालें। लगभग १० से १२ टन खाद प्रति हैक्टेयर काफी रहती है। यदि खेत में रबी के मौसम में मटर बोयी गयी हो तो कम्पोस्ट की खाद में कमी की जा सकती है। खाद को खेत में अच्छी तरह मिलाकर फसल की बुवाई कर देनी चाहिये। मंडुआ की फसल की बुवाई के समय काफी नमी की जरूरत रहती है इसलिये आवश्यक यह है कि बुवाई के समय यदि खेत की नमी में कमी हो तो पलेवा कर के ही फसल बोनी चाहिये। बुवाई बीजों को छिटकर अथवा कूँड़ों में बोकर करनी चाहिये। आमतौर से कूँड़ों में बुवाई करने का तरीका अच्छा रहता है। एक हैक्टेयर के लिये १५-१८ किलो बीज काफी रहता है।

सिचाई

मंडुआ की फसल के लिये सिंचाई की विशेष रूप से आवश्यकता होती है। गर्म मौसम में तेज हवायें चलने के कारण भूमि की नमी बड़ी तेजी से कम होती है और उसका प्रभाव फसल पर पड़ता है। इसलिये अच्छी फसल के लिये आवश्यकतानुसार फसल की सिंचाई करते रहना लाभकारी रहता है।

बिहार राज्य, पूर्वी उत्तर प्रदेश, मध्यभारत के किन्हीं-किन्हीं क्षेत्रों में मंडुआ की पौधशाला (बियाड़) तैयार की जाती है। इन क्षेत्रों में आमतौर से मंडुआ के बीज को पहले पौधशाला में बोकर पौद तैयार करते हैं फिर उसे खेत में रोपते हैं। अगेती फसल की बुवाई अप्रैल के दूसरे पखवाड़े में की जाती है। अगेती फसल के लिये १०-१५ कि० बीज काफी रहता है। पौधे जब लगभग १५ सेंटीमीटर ऊँचे हो जायें तो उन्हें उखाड़कर खेत में रोपा जाता है तथा रोपाई के तुरन्त बाद सिंचाई कर दी जाती है। पौधों के बीच लगभग १५-१२ सेंटीमीटर का फासला रखना उचित होता है।

फसल में उर्वरक देना

अच्छी फसल लेने के लिये ६६ किलोग्राम नाइट्रोजन देना अच्छा रहता है। नाइट्रोजन देने के लिये कोई भी नाइट्रोजनधारी उर्वरक ले लें। एमोनियम सल्फेट तथा कैलशियम एमोनियम नाइट्रेट अधिक प्रचलित हैं। उर्वरकों की मात्रा खेत की उर्वरता के अनुसार कम-अधिक की जा सकती है। उर्वरक की समूची मात्रा को दो या तीन वार में सिंचाई से तुरन्त पहले खेत में छिटक देना चाहिये। अंतिम मात्रा फसल में फूल आने के समय देनी चाहिये। फसल में इस समय नाइट्रोजन देने से दाने अधिक संख्या में भरते हैं और फूलते भी खूब हैं।

फसल की निराई-गुड़ाई व रोग और कीड़े-मकोड़ों की रोकथाम

गर्मी के मौसम में खरपतवार बहुत पनपते हैं। फसल से अच्छी उपज पाने के लिए खरपतवारों की रोकथाम बहुत जरूरी है। समय-समय पर निराई-गुड़ाई करते रहना चाहिये ताकि फसल के पौधों को समुचित पोषण मिलता रहे तथा खाद और उर्वरकों के रूप में दी गयी पौधों की खुराक को खरपतवार न ले सकें। कीड़े-मकोड़ों और रोगों से फसल की रक्षा के सम्बन्ध में फसल पर लगातार निगरानी रखनी चाहिए। बोने से पहले बीजों को तूतिया के घोल अथवा फार्मलीन से उपचारित कर लेना चाहिये। कीड़ों की रोकथाम के लिये ३० किलो बी० एच० सी० का ५ प्रतिशत पाउडर फसल पर छिड़कना चाहिये।

फसल की कटाई व मँड़ाई

अगेती बोयी गयी फसल लगभग ९० दिन में और पछेती किस्में ११० दिन में पककर तैयार हो जाती हैं। बालियों में दाने पकने पर फसल की तुरन्त कटाई कर

देनी चाहिये। बालियों के सूखने पर उन्हें खेत में रहने देने से दाने झड़ जाने का डर रहता है अतः जरूरी यह है कि फसल को अधिक देर तक खेत में खड़ा नहीं रहने दिया जाय। मंडुआ की खेती अन्तवर्तीय फसल के रूप में थोड़ी ही जमीन में की जाती है इसलिये इसमें किसी प्रकार की विकसित मशीनरी का समुचित ढंग से उपयोग सम्भव नहीं हैं। मंड़ाई के लिये ऑलपाड थ्रेशर काम में लाया जा सकता है। परन्तु अभी तक आमतौर से मडाई हाथ अथवा बैलों द्वारा ही की जाती है।

पशुओं के लिये हरे चारे

गर्मी के मौसम में पशु सूखे चारे को खाना कम पसन्द करते हैं। खुराक में कमी हो जाने के कारण उनका स्वास्थ्य गिर जाता है। अतः गर्मियों में उन्हें हरा चारा उपलब्ध कराने के लिये, हरे चारे की मिली-जुली फसलों की बुवाई भी इसी मास में कर देनी चाहिये।

गर्मी के मौसम में आमतौर से तापमान की अधिकता और सिंचाई के पानी में कमी हो जाने के कारण हरे चारे की किसी एक जिन्स की बुवाई लाभदायक नहीं रहती। अच्छा यही रहता है कि कई एक जिन्सों को एक साथ मिलाकर बोया जाय। ऐसी जिन्सों में ज्वार, लोबिया, सोंठ, ग्वार, बाजरा तथा मक्का हैं। ऐसी मिली-जुली जिन्सों के बोने में भूमि में नमी लम्बे समय तक बनी रहती है और फसल को बार-बार सिंचाई के लिये पानी की आवश्यकता नहीं होती।

इन सभी जिन्सों के बीजों को प्रति एकड़ नीचे लिखी मात्रा में मिलाकर बोना चाहिये :—

	जिंस	मात्रा प्रति एकड़ किलो में
१.	ज्वार	४
२.	लोबिया	२
३.	मौठ	१
४.	ग्वार	२
५.	बाजरा	१
६.	मक्का	५

रबी की फसल कट जाने पर खेत में पलेवा कर जुताई कर दें। दो या तीन जुताइयाँ काफी होती हैं। इसके पश्चात् बीज के मिश्रण को छिटककर अथवा कूड़ों में बोया जा सकता है।

वायु के विषाक्तीकरण के विरुद्ध अभियान ● स्टिवर्ट एल० ऊडल

वायु का विषाक्तीकरण एक गम्भीर समस्या बनता जा रहा है। तत्सम्बन्धी संकट की सम्भावना के प्रमुख्यत: दो स्रोत हैं। कार्बन डाइआक्साइड और सल्फर डाइआक्साइड। ये दोनों ही उन जीवाश्म (फौसिल) ईंधनों के प्रदहन के उपोत्पाद हैं, जिनसे विश्व के अधिकांश ताप, प्रकाश, परिवहन और वस्तु-निर्माण कार्यों का प्रादुर्भाव होता है। कार्बन डाइआक्साइड की वृद्धि अतीव तीव्र गति से हो रही है। यदि यह गति अगले कुछ वर्षों तक जारी रही, तो पृथ्वी के वायुमण्डल में आज की अपेक्षा २५ प्रतिशत और अधिक कार्बन डाइआक्साइड हो जायेगी। इससे ताप-सन्तुलन में इतना परिवर्तन हो जायेगा कि उसके कारण जलवायु में उल्लेखनीय परिवर्तन उत्पन्न हो सकता है।

यद्यपि कोई भी इन परिवर्तनों की भविष्यवाणी नहीं कर सकता, फिर भी कुछ अमेरिकी वैज्ञानिकों का अनुमान है कि कार्बन डाइआक्साइड में एक ऐसी 'खोल' के निर्माण के लिए पर्याप्त वृद्धि हो सकती है, जो एक सूर्य के ताप को कैद करने और दक्षिणी ध्रुव-प्रदेश के हिमावरण को गला देने के लिए पर्याप्त होगा। ऐसा होने पर महासागरों का जलतल ऊपर उठ जायेगा और विश्व के बन्दरगाहों वाले नगर बाढ़-ग्रस्त हो जायेंगे।

वायु को विषाक्त करने वाले तत्व के रूप में कार्बन डाइआक्साइड को अलग कर देने पर, जीवाश्म ईंधनों को प्रयुक्त करने को दृष्टिकोण से सबसे बड़ी तात्कालिक समस्या सल्फर डाइआक्साइड है। ताप और बिजली के लिए जीवाश्म ईंधन जलाने से उत्पन्न लगभग आधे विषाक्तकारी तत्वों का प्रतिनिधित्व आक्साइड के रूप में गंधक रहती है।

कोयला और पेट्रोलियम जैसे समस्त जीवाश्म ईंधनों और प्राकृतिक गैस में गन्धक पायी जाती है। यह ईंधन के ६ से ८ प्रतिशत तक की पाई जाती है। जब इस प्रकार के ईंधन जला दिये जाते हैं, तो ९५ प्रतिशत तक सल्फर डाइआक्साइड के रूप में परिणत हो जाती है।

यदि पूर्ण प्रदहन उपलब्ध हो जाये, तो प्राकृतिक गैस जल कर वस्तुतः कोई भी ऐसी वस्तु उत्पन्न नहीं करेगी, जो वायुमण्डल में व्याप्त घोलों से भिन्न हो। किन्तु, ठोस और द्रव, दोनों ही प्रकार के जीवाश्म ईंधन, चाहे उन्हें किसी भी प्रकार जलाया जाये, भिन्न-भिन्न मात्राओं में विषाक्तकारी तत्व अवश्य उत्पन्न करेंगे।

कच्ची अवस्था में होने पर जीवाश्म ईंधनों का मीटरी मूल्य भार या घनत्व की प्रति इकाई बहुत ही कम होता है, इसलिए उनसे उत्पन्न वायु-विषाक्तीकरण को हटाने की लागत अपेक्षाकृत कम होनी चाहिए, अन्यथा शक्ति या बिजली की लागत बहुत अधिक बढ़ जायेगी। फिर भी, ऐसे उपाय ढूँढ़े जा सकते हैं, जिनके द्वारा अर्थ-व्यवस्था को विच्छिन्न किये बिना ही प्रति टन ईंधन द्वारा उत्पन्न गंधक की मात्रा को कम किया जा सके।

अमेरिका में, जहाँ जीवाश्म ईंधन के प्रदहन के फलस्वरूप प्रतिवर्ष लगभग १३ करोड़ टन विषाक्तीकरण तत्व उत्पन्न होते हैं, एक सुदृढ़ विषाक्तीकरण-नियन्त्रण कार्य-क्रम बनाया गया है। इसका संचालन आन्तरिक विभाग खान-परिषद के माध्यम से करता है, जो १९१० से ही इस क्षेत्र में सक्रिय रहा है।

गन्धक के निस्सरण से होने वाली क्षति को कम करने का एक सम्भाव्य उपाय यह है कि विद्युत संयन्त्रों को एकांन्त क्षेत्रों में स्थापित किया जाये, अथवा उन्हें कम गन्धक वाला ईंधन सुलभ किया जाये, जिसमें १ प्रतिशत या उससे भी कम गन्धक हो। किन्तु अत्यधिक औद्योगीकृत और घने बसे क्षेत्रों में, एकान्त क्षेत्र प्रायः दुर्लभ होते हैं। साथ ही, इन संयन्त्रों के लिए कम गन्धक वाले ईंधन की पर्याप्त पूर्त्ति का निश्चित आश्वासन देना सरल नहीं।

सबसे तर्कसंगत उपाय यह है कि अनुसन्धान और विकास द्वारा ऐसी लाभकर विधियाँ ढूँढी जायँ, जिनके द्वारा या तो जलने से पूर्व ईंधन से, अथवा वायुमण्डल में पहुँचने से पूर्व प्रदहन के उत्पादों से गन्धक को निकाला जा सके। यदि हम गन्धक के बजाय घोलों पर ध्यान दें, तो दो स्थान ऐसे हैं, जहाँ उन्हें निकालना सम्भव हो सकता है। (१) भट्ठी के प्रदहन कक्ष में उस समय जब ईंधन को जलाया जा रहा हो; और (२) उन ढेरों में, जो प्रदहन की निरर्थक गैसों को वायुमण्डल में फैलाते हैं।

ईंधन में से, जलने के पूर्व गन्धक को निकालना इस समस्या का सबसे तर्क-संगत उपाय प्रतीत हो सकता है। किन्तु अभी तक इसकी लागत एक अलंघ्य बाधा बनी हुई है। उदाहरण के लिए, ईंधन वाले अवशिष्ट तेल को गन्धकरहित करने की ऐसी विधियाँ हैं, जो प्रौद्योगिक दृष्टि से ठोस प्रतीत होती हैं, किन्तु उनसे ईंधन की लागत में अनुमानतः २० के ४० प्रतिशत तक वृद्धि हो सकती है।

गन्धक के निष्कासन के बाद, ईंधन के तेल को साफ किया जा सकता है और इस पर भी प्रायः इसी प्रकार की अतिरिक्त लागत पड़ेगी। किन्तु साफ हो जाने पर वह तेल अधिक बहुमूल्य उत्पाद बन जायेगा। अतः स्पष्ट है कि जब तक ईंधन वाले तेल को अधिक बहुमूल्य उत्पाद में परिणत किये बिना उससे गन्धक को निकालने का अधिक सस्ता और सक्षम उपाय ढूँढ़ लिया जाये, तब तक उसे उपचारित करने की प्रेरणा बहुत ही कम रहेगी।

कोयले से गन्धक को अलग करना भी एक समस्या है। यदि गन्धक उस रूप में है जिसे 'कार्बनिक' कहा जाता है तो वैज्ञानिक आज भी उसे हटा सकने की विधि नहीं जानते। यदि कोयले में गन्धक ऐसी कम मात्रा में है जिसे 'माक्षिक' (पिराइट्स) कहते हैं तो उसे अलग कर सकना सम्भव है किन्तु इसकी विधि खर्चीली है और दोषपूर्ण भी। उससे सभी 'माक्षिक' अलग नहीं होते।

'ब्यूरो औव् माइन्स' के वैज्ञानिकों का विश्वास है कि अन्ततः कुछ चुनी हुई किस्मों के कोयले से माक्षिकों कम खर्च में और ठीक तरह से अलग किया जा सकेगा जिससे उसका प्रयोग वातावरण को दूषित किए बिना छोटी और मध्यम आकार की भट्ठियों में किया जा सकेगा।

(२) दूसरी विधि भी है जो छोटे उष्मन (हीटिंग) कारखानों और कुछ दैनिक उपयोग की वस्तुओं के उन दूसरे कारखानों के लिए जिनके पास स्थान की कमी है, उपयोगी हो सकती हैं। इस विधि के अन्तर्गत कोयले में भट्ठी में डालने के पहले चूना और डोलोमाइट मिला दिया जाता है। यह प्रयोग के रूप में अमेरिका और दूसरे देशों में किया जा चुका है। इस विधि से धुएँ के रूप निकलने वाला गन्धक मिश्रित आक्साइड २५ से ५० प्रतिशत तक रह जाता है।

गन्धक-नियन्त्रण के लिए और भी सम्भावित विधियाँ हैं पर अब तक एक भी विधि ऐसा नहीं है जो औद्योगिक स्तर पर उपयोग के योग्य हो।

व्यापारिक सफलता की दृष्टि से ब्यूरो द्वारा परीक्षित "अल्कालाइज्ड एल्यूमिना' प्रणाली है। इस प्रणाली पर ब्यूरो की देखरेख में तथा अमेरिकी सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा के सहयोग में एक परीक्षणात्मक परियोजना में काम हो रहा है। इस प्रणाली (फ्ल्यू गैस) में उपस्थित औक्साइड से गन्धक का तत्व निकालने के लिए अपनाया गया है। यदि यह विधि सफल हुई तो मितव्ययी ढंग से गन्धक निकालने की एक और विधि निकल आवेगा। गन्धक का उत्पादन इस समय भी विश्व की माँग की तुलना में बहुत कम है।

कैंसर का उपचार

अभी हाल में, वैज्ञानिकों ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि सिगरेट के जलने से कैंसर रोग को जन्म देने वाले रसायनों का सृजन होता है। यह

माना जाता है कि फेफड़े के अधिकांश रोगों का जन्म इन्हीं हानिकारक रसायनों के कारण होता है। अतएव, बहुत से विशेषज्ञ अब यह मानने लगे हैं कि फेफड़े के कैंसर पर नियन्त्रण प्राप्त किया जा सकता है।

लेकिन, अधिकांश प्रकार के कैंसरों के कारणों पर अभी भी रहस्य का पर्दा पड़ा हुआ है। यह सिद्ध किया जा चुका है कि कुछ प्रकार के विषाणु पशुओं में कई प्रकार के कैंसर पैदा कर सकते हैं। फिर भी, काफी अनुसन्धान करने के बावजूद अभी तक यह सिद्ध नहीं किया जा सका है कि किसी भी प्रकार का विषाणु मानव शरीर में कैंसर उत्पन्न कर सकने में समर्थ है।

फिर भी, अनेक अनुसन्धान कर्त्ताओं का यह विश्वास है कि कैंसर रोग के विकास में विषाणु निश्चय ही इस प्रकार की भूमिका का निर्वाह करते हैं और इसी विश्वास के आधार पर वे अन्ततोगत्वा ऐसे टीके का विकास करने की आशा कर रहे हैं जो अन्य रोग-निरोधक टीकों की तरह मानव शरीर को कैंसर रोग के विरुद्ध पूर्ण सुरक्षा प्रदान कर सकेगा।

इस मान्यता के आधार पर अनुसन्धान करते हुए कि कैंसर निरोधक टीके का विकास करना सम्भव है, कुछ अनुसन्धान-कर्ताओं का यह दृढ़ विश्वास है कि मानव शरीर में कैंसर रोग का हमला उसी समय प्रारम्भ हो सकता है जब मानव शरीर किन्हीं अज्ञात कारणों वश शरीर में प्रविष्ट होने वाले विदेशी अथवा बाहरी तत्वों का प्रतिरोध करने की क्षमता खो बैठता है। स्वस्थ मानव शरीर में इस प्रकार की क्षमता सदैव विद्यमान रहती है।

बफैलो (न्यूयार्क) स्थित रोजवेल पार्क मैमोरियल इन्स्टिट्यूट की गणना कैंसर रोग पर अनुसन्धान करने वाले विश्व के सब से बड़े अनुसन्धान-केन्द्र के रूप में की जाती है। इस अनुसन्धान-केन्द्र में कैंसर रोग से पीड़ित एक व्यक्ति के रोगग्रस्त कुछ अंश को निकाल कर दूसरे रोगी के शरीर में लगा देने का महत्वपूर्ण प्रयोग किया गया है। ऐसा इस विचार से किया गया कि इस प्रकार के कार्य से दूसरे रोगी के शरीर में उन श्वेत रक्त-कोषों का उत्पादन अधिक परिमाण में किया जा सकेगा जिनमें विदेशी तत्वों का प्रतिरोध करने की क्षमता निहित रहती है। इसके उपरान्त, अनुसन्धान-कर्ताओं ने दूसरे रोगी के रक्त से कुछ श्वेत रक्त-कोष निकाल कर उस प्रथम रोगी के शरीर में प्रविष्ट कर दिए जिसके शरीर से कैंसरग्रस्त कोष निकाल कर दूसरे रोगी की त्वचा पर लगाए गए थे।

सिद्धान्त यह था कि प्रथम रोगी के शरीर में प्रविष्ट किए जाने वाले श्वेत रक्त-कोष (जो दूसरे रोगी के रक्त से निकाले गए थे) उसके शरीर में मौजूद कैंसर रोग का प्रतिरोध करेंगे। लगभग ४० रोगियों पर इस प्रकार के प्रयोग किए गए जिनमें

[शेषांश पृष्ठ ४४ पर]

१. हड्डियों के विकास में बिजली का उपयोग

शरीर के किसी विशिष्ट भाग में एक निर्धारित परिमाण में विद्युत-धारा प्रवाहित करके अमेरिकी वैज्ञानिक हड्डियों का विकास करने में सफल हुए हैं।

इस विधि के फलस्वरूप अन्ततोगत्वा दुर्घटना अथवा किसी रोग के कारण नष्ट हो जाने वाली हड्डी के स्थान पर धातु-निर्मित नकली हड्डी लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। धातु की बनी हड्डी धीरे-धीरे गल जाती है। इस विधि द्वारा रोगी के शरीर की हड्डी के विकास के फलस्वरूप रोगी को वह असुविधा नहीं होगी जो कृत्रिम हड्डी के उपयोग के कारण बहुधा होती है।

उक्त प्रयोग की सूचना 'वेटरेन्स एडमिनिस्ट्रेशन हास्पिटल', सिराक्यूज (न्यूयार्क) के एसोशिएट चीफ आव् स्टाफ डा० रोबर्ट बेकर ने दी है। उन्होंने बताया कि जीवित कुत्ते के पैरों की हड्डियों में एक निश्चित परिमाण में विद्युत् धारा प्रवाहित कर हड्डी को बढ़ाने में सफलता प्राप्त कर ली गई है। अनेक वर्षों से यह ज्ञात है कि जब विकसित हड्डियों को मरोड़ा अथवा खींचा जाता है तो वे बढ़ जाती हैं औरकमजोर स्थान मजबूत हो जाते हैं। डा० बेकर ने बताया कि हड्डी की विकास प्रक्रिया पर पूरा नियन्त्रण है। हड्डी ठीक उसी जगह पर बढ़ती है जहाँ अतिरिक्त मजबूती की आवश्यकता होती है। वह केवल उतना ही बढ़ती है जितना कि आवश्यक होता है। हड्डियों में दबाव पड़ने पर उनमें एक प्रकार की विद्युत् धारा उत्पन्न होती है और इसी से हड्डी बढ़ती है। धारा का परिमाण हड्डी पर पड़ने वाले दबाब की मात्रा पर निर्भर होता है।

२. ग्रीष्मकालीन गोष्ठियाँ

भारतीय स्कूलों और कालेजों में विज्ञान, गणित, इंजिनियरिंग और तकनीकी विद्या की शिक्षा देने वाले ५,००० से अधिक अध्यापकों के लिए पुरानी जानकारी को दुहराने और नई बातों का प्रशिक्षण लेने के लिए, इस वर्ष अप्रैल और अगस्त के बीच, १४० से अधिक गोष्ठियों का आयोजन किया जायेगा। ये शिक्षक भारत के विभिन्न भागों में स्थित कोई ६५ विश्वविद्यालयों और तकनीकी शिक्षा-संस्थाओं में एकत्र होंगे।

गोष्ठी-कार्यक्रम द्वारा उच्च कोटि के भारतीय प्रोफेसरों की देखरेख में छः सप्ताह का जोरदार प्रशिक्षण लेने और प्रमुख अमेरिकी वैज्ञानिकों तथा इंजिनियरों के साथ परामर्श करने के लिए अध्यापकों को किसी विश्वविद्यालय में बुलाकर इस प्रकार के अवसर प्रदान किये जायेंगे। शिक्षार्थी-अध्यापक शिक्षण की नवीनतम विधियों और प्रयोगशाला के यन्त्रों तथा अध्यापन-साधनों से काम लेना सीखते हैं। वे नवीनतम और सर्वोत्तम पाठ्य-पुस्तकें पढ़ते हैं।

इस वर्ष ये उपकरण और पाठ्य-पुस्तकें अमेरिकी सरकार द्वार हाल में भारत को दिये गये १ करोड़ २० लाख डालर (९ करोड़ रु०) के शिक्षा-ऋण में से निकाले गये ३५ लाख डालर की सहायता से सुलभ की जायगी।

यह कार्यक्रम १९६३ में चार गोष्ठियों से शुरू हुआ था और तब उनमें भारत के हाईस्कूलों के ५४ अध्यापकों ने भाग लिया था। उसके बाद इस कार्यक्रम का उत्तरोत्तर विस्तार होता गया। इस वर्ष गर्मियों में हाईस्कूलों, हायर सेकण्डरी स्कूलों और इण्टरमीडिएट कालेजों के अध्यापकों के लिए ६१ गोष्ठियों का, विश्वविद्यालयों के शिक्षकों के लिए ५६ गोष्ठियों का, इंजिनियरिंग कालेजों के लिए ११ गोष्ठियों का, और पोलिटैक्नीक संस्थाओं के शिक्षकों के लिए १२ गोष्ठियों का आयोजन किया जायेगा।

पुरानी जानकारी को ताजा करने और नई बातों का प्रशिक्षण देने के उद्देश्य से आयोजित की जाने वाली गोष्ठियों—जिन्हें अक्सर 'ग्रीष्मकालीन विज्ञान गोष्ठियाँ' कहा जाता है—से शिक्षक को स्कूलों में विज्ञान की पढ़ाई में नया जीवन फूँकने में मदद मिली है और उनके द्वारा भारत के शिक्षा आयोग के सुझाव प्रभावकारी ढंग से फैले हैं।

३. लखनऊ में स्टार्च सम्बन्धी अनुसन्धान

यद्यपि शारीरिक वृद्धि के लिए प्रोटीन और विटामिन आवश्यक है, पर मानवी शरीर के इंजन को चालू रखने के लिए बुनियादी ईंधन स्टार्च (मंड) ही है। इसे ध्यान में रखते हुए लखनऊ विश्वविद्यालय ने इस बात का व्यापक अध्ययन करने का कार्यक्रम बनाया है कि पेड़-पौधे किस प्रकार स्टार्च का उत्पादन और उपयोग करते हैं ताकि स्टार्च पैदा करने वाले पौधों की पैदावार बढ़ाई जा सके। ५ वर्षीय अनुसन्धान का निर्देशन लखनऊ विश्वविद्यालय के जीव-रसायन विज्ञान विभाग के अध्यक्ष डा० पी० एस० कृष्णन करेंगे। इस अनुसन्धान-कार्यक्रम में उनके सहायक होंगे डा० जी० जी० सनवाल। वे टेपिओका, आलू, चावल और मक्का जैसे स्टार्च स्रोतों पर अपना अध्ययन केन्द्रित करेंगे और केले तथा आम जैसे फलों को भी अपनी सूची में शामिल करेंगे।

लखनऊ विश्वविद्यालय के अनुसन्धान-कार्य के लिए अमेरिकी सरकार ने २,४४,४९९ रु० का अनुदान दिया है।

४. जहाँ जल पहाड़ पर चढ़ता है !

अमेरिका में कुछ ऐसे भी स्थान हैं जहाँ जल पहाड़ी की चोटी की ओर प्रवाहित होता है तथा कारें ढलान पर नीचे लुढ़कने के बजाय ऊपर की ओर चढ़ती प्रतीत होती हैं। न्यूयार्क राज्य, जोर्जिया, फ्लोरिडा, डाकोटा और न्यू ब्रन्सविक (कनाडा) में ऐसे रहस्यपूर्ण स्थलों का पता चला है।

आश्चर्यचकित प्रत्यक्षदर्शी इन पहाड़ी स्थलों को चुम्बक शक्ति से युक्त समझते हैं। लेकिन, अमेरिका की 'नेशनल ज्योग्रैफिक सोसायटी' के अनुसार, वैज्ञानिकों द्वारा किये गये अन्वेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि इस प्रकार के दृश्य केवल दृष्टि-भ्रम के कारण दृष्टिगोचर होते हैं। कुछ मामलों में तो यह दृष्टिभ्रम भू-स्खलनों के परिणामस्वरूप वृक्षों, मकानों तथा अन्य वस्तुओं के इधर-उधर तिरछे हो कर झुक जाने के कारण उत्पन्न होता है।

इस प्रकार की 'चुम्बकीय शक्ति युक्त' पहाड़ियों में सर्वाधिक प्रसिद्ध पहाड़ी मोंकटन (न्यू ब्रन्सविक) में है। यहाँ दर्शक अपनी कार को पहाड़ की चोटी पर ले जाता है और वहाँ पहुँचने पर कार को रोक कर नीचे सीधी सड़क की ओर निहारता है।

उसे लगभग एक-चौथाई मील की दूरी पर एक बड़ा सा सफेद चिन्ह दीखता है। दर्शक बिना किसी प्रकार की हिचक के कह सकता है कि यह निशान ४०० फुट की दूरी पर १० से लेकर १८ फुट तक की निचाई पर होगा।

लेकिन जब मोटरचालक अपने ब्रेक को ढीला कर देता है तो कार नीचे की ओर नहीं सरकती। एक्सीलेरेटर (गति प्रदान करने वाला यन्त्र) को दबाने पर जब वह 'नीचे' पहुँचता है तो वही करता है जो उस निशान पर लिखा होता है। वह अपनी मोटर रोक देता है, गियर को न्यूटरल में डाल देता है और ब्रेकों को ढीला कर देता है। और उस समय उसके विस्मय का ठिकाना नहीं रहता जब वह देखता है कि उसकी गाड़ी धीरे-धीरे पीछे की ओर सरकती हुई उस चोटी की ओर 'ऊपर' जा रही है, जहाँ से वह चला था।

अभी तक कोई भी 'मोंकटन हिल' के इस रहस्य को पूरी तरह सुलझा नहीं पाया है, लेकिन वहाँ इस प्रकार का दृष्टि-भ्रम उत्पन्न होने के अनेक कारण हो सकते हैं : आसपास की भूमि की बनावट, सड़क की टेढ़ी-मेढ़ी सीढ़ीनुमा आकृति और ग्रेड का कोण।

५. धातुओं की खानों की खोज के प्रयत्न

भारत में ताँबा, सीसा, जस्ता और अन्य उपयोगी धातुओं की खानों की खोज करने की जोरदार कोशिशों के सिलसिले में पिछले मास एक ठोस काम हुआ।

भारत-सरकार ने धातुओं की खानें निकलने की संभावना वाले तीन प्रदेशों में बड़े पैमाने पर वैज्ञानिक छानबीन किये जाने के लिये लौस-एंजेलेस की 'पार्सन्स कार्पोरेशन' नामक फर्म के साथ एक करार पर हस्ताक्षर किये। ये प्रदेश हैं : आन्ध्र प्रदेश में पूर्वी कुडुपा अंचल, बिहार में अबरक वाली पट्टी और राजस्थान में अरावली का क्षेत्र। आशा है कि छानबीन के इस काम में लगभग ३० महीने लगेंगे। ठेके वाली कम्पनी के कुल काम पर ३५ लाख डालर (२·६ करोड़ रु०) की विदेशी मुद्रा खर्च आयेगी, जिसे अमेरिकी सरकार द्वारा भारत को गत मई में दिये गये ऋण से पूरा किया जायेगा। ताँबा, जस्ता, सीसा, रांगा और निकेल ये सभी अलौह धातुएँ हैं, पर ये उद्योगों के लिये बहुत काम की हैं। भारत में ये सभी धातुएँ बहुत थोड़ी मात्रा में तैयार होती हैं हालांकि देश की क्षमता बहुत अधिक समझी जाती है। इस समय भारत इन धातुओं को विदेशों से मँगाने पर प्रतिवर्ष १ अरब २० करोड़ रु० की विदेशी मुद्रा खर्च करता है। ताँबा, सीसा और जस्ता के काफी भण्डार मिल जाने पर न केवल भारत के भावी औद्योगीकरण पर जोरदार प्रभाव पड़ेगा, बल्कि उससे पर्याप्त विदेशी मुद्रा की बचत भी होगी। हवाई जहाजों से और स्थल पर जाँच-पड़ताल के सारे कार्यक्रम की पूरीजिम्मेदारी भारत-सरकार के खान और धातु मन्त्रालय की ही होगी।

इस योजना में कुल मिलाकर १६ अमेरिकी विशेषज्ञ भाग लेंगे। ये धातुएँ प्राय: कठोर चट्टानों वाले क्षेत्रों में पाई जाने के कारण इस योजना को 'औपरेशन हाई राक' नाम दिया गया है।

प्रत्येक अमेरिकी विशेषज्ञ के साथ एक भारतीय भी होगा। इसका लाभ यह होगा कि जब अमेरिकी फर्म के साथ ठेका पूरा हो जायेगा तो उसके बाद छानबीन के काम को भारतीय कर्मचारी जारी रख सकेंगे।

३० महीनों की इस छानबीन को तीन चरणों में किया जायेगा : (१) हवाई जहाजों से पड़ताल करके विद्युतचुम्बकीय तरंगों, पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र और प्राकृतिक रेडियमधर्मिता में विशिष्ट अन्तरों को दर्ज किया जायेगा। (२) फिर अधिक छाँट कर और सही स्थलों की पड़ताल की जायेगी; और (३) उससे भी अधिक चुनी हुई जगहों की बारीकी से पड़ताल करके खनिज नमूनों के लिए खुदाई की जायेगी।

आकाश से छानबीन का काम विशिष्ट उपकरणों से सज्जित दो वायुयानों द्वारा किया जायेगा। ये कुल १४३,००० किलोमीटर लम्बे सुनिश्चित मार्गों पर उड़ान करेंगे। बाद में भूगर्भशास्त्री और भूसर्वेक्षणकर्ता आकाशीय सर्वेक्षण के आधार पर खनिज पदार्थ निकलने की सबसे अधिक संभावना वाले स्थलों का निर्धारण करेंगे, फिर उन स्थानों पर बरमों से खुदाई की जायेगी।

चौथी ५-वर्षीय योजना के अन्त तक भारत की अलौह धातुओं की आवश्यकता ३७५ करोड़ रु० तक बढ़ जाने की संभावना है। धातुओं की खोज की उक्त योजना से तथा बाद में खुदाई के कार्यों से आशा है कि इस मद में भारत विदेशी मुद्रा के खर्चों में काफी बचत कर सकेगा।

६. भारतीय वैज्ञानिक को अमेरिकी पुरस्कार

विश्व-विख्यात भारतीय नक्षत्र भौतिकविद् डॉ० एस० चन्द्रशेखर ने ६ फरवरी को वाशिंगटन में आयोजित एक समारोह में प्रेसिडेण्ट जौनसन से विज्ञान का राष्ट्रीय पदक प्राप्त किया। यह विज्ञान में अमेरिका का सबसे बड़ा पुरस्कार है। डॉ० चन्द्रशेखर भारतीय नोबेल पुरस्कार विजेता सी० वी० रमन के भतीजे हैं और इन दिनों शिकागो विश्वविद्यालय में हैं।

७. नई माप प्रणाली

जिस समय १९०१ में वाशिंगटन में राष्ट्रीय मानक परिषद् की स्थापना हुई, उसका एक प्रमुख कार्य 'मीटर-बार' का संरक्षक बनना था। मीटर-बार प्लैटिनम-इरिडियम का एक टुकड़ा था, जिस पर दो पंक्तियाँ खुदी हुई थीं। इन दोनों पंक्तियों के बीच की दूरी एक मीटर का सही माप थी। लम्बाई नापने वाले सभी उपकरणों का अंकशोधन इस बार से नाप कर बनाये गये सर्वश्रेष्ठ मीटरों से हुआ था।

१९६० में लम्बाई के प्रतिमान के रूप में मीटर-बार का स्थान क्रिप्टन-८६ नामक दुर्लभ गैस से निस्सृत नारंगी-लाल रंग के प्रकाश के तरंग-आयामों (वेवलैंग्थ) की निर्दिष्ट संख्याओं ने ले लिया। अस्तु, परिभाषा के अनुसार, मीटर अब क्रिप्टन के १६,५०,७६३,६३ तरंग-आयामों के बराबर होता है।

दर्पणों और लैंसों की एक जटिल प्रणाली द्वारा वैज्ञानिक दो बिन्दुओं के बीच इन तरंग-आयामों की गणना कर सकते हैं, और ऐसा करके कुछ दूरियों का निर्धारण इतनी शुद्धता से कर सकते हैं कि उनमें १० करोड़ के केवल एक अंश की, अथवा १०० किलोमीटर में एक मिलिमीटर से भी कम की त्रुटि हो।

अनेक शताब्दियों तक मनुष्य समय का माप करने के लिए जिस प्रतिमान का प्रयोग करता रहा, यह वह ब्रह्माण्डीय पिण्डों या ग्रहों की गति, जैसे सूर्य के चारों ओर पृथ्वी की परिक्रमा, पर आधारित था।

१९६४ में, परिषद् ने आणविक काल-मान का प्रयोग किया। अब एक सैकण्ड की लम्बाई की व्याख्या एक सीसियम अणु के ९,१९,२६,३१,७७० स्पन्दनों के लिए आवश्यक अंतर्काल के रूप में की गई है।

इस प्रकार, आज समय के माप की गणना मनुष्य द्वारा किये जा सकने वाले सबसे सही मापों में की जाती है। आणविक घड़ी द्वारा समय का निर्धारण इतनी बारीकी और विशुद्धता से किया जा सकता है कि उसमें त्रुटि की सम्भावना ३० हजार वर्षों में एक सैकण्ड से भी कम, अथवा कुछ १ लाख करोड़वें अंशों तक ही हो सकती है।

किन्तु, उपग्रहों की टोह लेने, और कुछ आणविक कणों के, जिनका जीवन-काल एक सैकन्ड के दस लाखवें अंश के एक-हजारवें अंश से भी कम होता है, विघटन का काल-निर्धारण करने विषयक अनुसन्धान की आवश्यकताएँ पूरी करने की दृष्टि से इतनी विशुद्धता भी अपर्याप्त सिद्ध होती है। परिषद् के वैज्ञानिक आजकल एक हाइड्रोजन मेसर घड़ी विकसित कर रहे हैं जिसकी शुद्धता में त्रुटि की सम्भावना ३ करोड़ वर्षों के भीतर एक सैकण्ड से भी कम होगी। (मेसर का तात्पर्य उत्तेजित विद्युत् चुम्बकीय विकिरण द्वारा सूक्ष्म तरंगों का विस्तार है।)

इस शताब्दी के प्रारम्भ से विज्ञान और प्रौद्योग की आवश्यकताएं पूरिवर्तित हो गई हैं। अकल्पनीय शुद्धता वाले माप अब वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक प्रगति की कुंजी बन गये हैं।

अन्तरिक्ष के खोज सम्बन्धी अनुसन्धानों में तथा पृथ्वी पर प्रयोग के लिए भी, वैज्ञानिकों और इंजिनियरों को हजारों अंश से लेकर लगभग निरपेक्ष शून्य (—२७३.१० सेण्टीग्रेड या —४५६ फारेनहाइट) तक तापमानों का माप सूक्ष्मतम अंशों तक करना होता है।

आज के उद्योगों में, प्लास्टिक को उपचारित करने, रबड़ का गुण परिवर्तन करने, औषधियों को कीटाणुरहित बनाने, खाद्य-पदार्थों का संरक्षण करने तथा धातु की ढलाई के भीतरी दोषों की जाँच करने के लिए इलैक्ट्रोन रश्मियों का प्रयोग नियमित रूप से किया जा रहा है।

८. शिशु के लिंग-भेद सम्बन्धी भविष्यवाणी

अति प्राचीन काल से भावी माँ-बाप इस बात की भविष्यवाणी करने की विधि ढूँढते आ रहे हैं कि गर्भस्थ बच्चे का लिंग क्या होगा। कुछ ही थोड़े समय पूर्व तक इस प्रकार की भविष्यवाणी की कोई विश्वसनीय विधि ज्ञात नहीं थी। किन्तु, कुछ वर्ष हुए, ऐसे परीक्षण विकसित किये गये, जो लगभग ८० प्रतिशत सही सिद्ध हुए। इन परीक्षणों के अन्तर्गत सूक्ष्मवीक्षण यन्त्रों द्वारा गर्भ से, और सब से हाल में, माँ के मुख से, प्राप्त नमूनों की जाँच की जाती है।

अब, अमेरिकी वैज्ञानिकों की एक टोली ने एक ऐसी परीक्षण-विधि विकसित की है, जो लगभग ५० मामलों में, जिन पर इसकी आजमाइश की गयी, १००

फीसदी सही सिद्ध हुई है। फिर भी, वैज्ञानिकों का कहना है कि इस परीक्षण-विधि का प्रयोग केवल जिज्ञासा की शान्ति के लिए नहीं होना चाहिए, क्योंकि इसमें माँ और भ्रूण, दोनों ही के लिए खतरा निहित होता है, और इसलिए इसका प्रयोग, केवल तभी होना चाहिए, जब कोई चिकित्सक इस बात का निर्धारण कर ले कि यह आवश्यक है।

उदाहरण के लिए, जब लिंग-भेद सम्बन्धी वंशगत रोगों, जैसे हेमोफिलिया (जिसमें अनियन्त्रित रूप से रक्त निकल सकता है) या ज्यूडोलायोमा, जिसमें मानसिक विकास अवरुद्ध हो सकता है, की सम्भावना हो, तो भ्रूण के लिंग-भेद सम्बन्धी जानकारी गर्भपात के पक्ष या विपक्ष में निर्णय लेने के लिए महत्वपूर्ण होगी।

इसी प्रकार, भ्रूणावस्था में लिंग-भेद सम्बन्धी निर्धारण कुछ यौन-रोगों, जैसे किसी नर भ्रूण के अण्डकोष के नारीकरण, में महत्वपूर्ण हो सकते हैं। इस प्रकार के मामलों में, माँ का उपचार इस प्रकार करना सम्भव होना चाहिए, जिससे गर्भ में भ्रूण के आन्तरिक वातावरण को, जिससे यह स्थिति उत्पन्न होती है, सुधारना सम्भव हो जाये।

पृष्ठ ३७ का शेषांश

से कई की दशा में उल्लेखनीय सुधार दृष्टिगोचर हुआ तथा एक कैंसर रोगी तो पूरी तरह स्वस्थ हो गया।

डेट्रायट (मिशिगन) स्थित वेन स्टेट यूनिवर्सिटी में डा० नोरवर्ट-जाजकोवास्की ने रोगी के कैंसर का एक भाग अलग कर लिया तथा खरगोश के रक्त-कोषों के साथ उसे मिला कर एक विशेष प्रकार का पदार्थ तैयार किया। इस प्रकार तैयार किए गए पदार्थ को उन्होंने रोगी के शरीर में इंजेक्शन द्वारा पुनः प्रविष्ट कर दिया।

कैंसर-निरोधक टीकों के विकास विषयक सिद्धान्त को आधार बना कर अमेरिकी अनुसन्धानकर्ताओं द्वारा किए जा रहे प्रयास तथा इसी प्रकार के अन्य प्रयास, अभी भी प्रयोगात्मक चरण में ही हैं। उसको पूर्णता प्रदान करने तथा प्रभावशाली कैंसर निरोधक औषधियों और विधियों का विकास करने के लिए अभी उन्हें और अधिक अनुसन्धान और प्रयोग करने पड़ेंगे।

जबलपुर विश्वविद्यालय का प्रशंसनीय कार्य

इस वर्ष जबलपुर विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह की समस्त कार्यवाही हिन्दी में हुई। यहाँ तक कि सभी उपाधि पत्र भी हिन्दी में बाँटे गये। स्मरण हो कि इसके पूर्व राजस्थान, मध्य प्रदेश तथा गुजरात के कई विश्वविद्यालय ऐसा कर चुके हैं।

६. रैपिंग-कागज के बजाय इस्पात का उपयोग

अमेरिका में कागज से भी पतली इस्पात की चद्दरें बनने और प्रयोग में लायी जाने लगी हैं। इनका इस्तेमाल पैकिंग के काम में तथा दूसरे व्यापारिक एवं औद्योगिक उपयोगों में होता है।

हलके वजन के इस इस्पात फोयल की मोटाई एक इंच के हजारवें भाग के बराबर या आदमी के बाल की मोटाई से लगभग आधी होती है। यह ४२ इंच तक चौड़े रोलों में आता है। इसका उत्पादन पिट्सवर्ग (पेन्सिल्वेनिया) यूनाइटेड स्टेट्स स्टील कार्पोरेशन द्वारा किया जाता है। इसी फर्म की ओर से इसका निर्माण शीघ्र ही शिकागो के निकट भी होने लगेगा। वहाँ इस्पात की बहुत पतली फौयल बनाने का कारखाना स्थापित किया गया है।

यह फोयल अनेक कामों में बहुत उपयोगी सिद्ध होता है जैसे, विकीर्ण तापन पैनल में रोधक तत्व के रूप में, ताश के पत्तों और खिलौने में, आटोमोबील हेड के गैसकेट तथा रंगीन टेलिविजन की इलैक्ट्रोमैगनेटिक शील्ड आदि में। इस फौयल में वजन संभालने की क्षमता बहुत अधिक है तथा रोडेण्ट, कीड़े-मकोड़ों, सीलन धूल, गर्द और रोशनी आदि से चीजों को सुरक्षित रखता है। फौयल पर चित्र बनाए जा सकते हैं तथा छपाई भी की जा सकती है।

मौजूदा फौयल की मोटाई से दूनी इस्पाती फौयल सन् १९६४ से उपलब्ध है किन्तु इन अत्यधिक पतली फौयलों का उपयोग अपेक्षाकृत अधिक कामों में हो सकता है। मरीसावेल (पेन्सिलवेनिया) में यू० एस० स्टील कार्पोरेशन के अन्तर्गत एक प्रयोगशाला केवल इस्पात के फौयल के उपयोगों पर ही कार्यरत है।

वैज्ञानिक पठन-पाठन में हिन्दी का प्रयोग करें
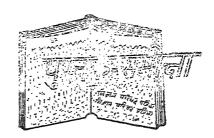
वनस्पति कोश

डॉ० सुधांशु कुमार जैन, राजकमल प्रकाशन, पृ० १००, मूल्य १० रुपये, प्रथम संस्करण १६६७

हिन्दी के राष्ट्र-भाषा घोषित हो जाने पर यह आवश्यक है कि विज्ञान के विविध क्षेत्रों में हिन्दी का प्रवेश हो। यह हर्ष का विषय है कि विभिन्न शाखाओं में जो भी कार्य हिन्दी के माध्यम से हो रहा है वह सन्तोषजनक है। इसमें सन्देह नहीं कि भौतिक विज्ञान की अपेक्षा जीव विज्ञान में हिन्दी पारिभाषिक शब्दों का चयन एवं प्रयोग अपेक्षतया कठिन कार्य है।

वनस्पति विज्ञान में पौधों के नामों पर एकमत होना जरूरी है किन्तु प्रायः यह देखने को मिलता है कि उनके देशी नाम कुछ और हैं जबकि प्रामाणिक साहित्य में उनके लिये सर्वथा भिन्न नाम ग्रहीत हैं। ये नाम वस्तुतः लैटिन प्रणाली पर आधारित हैं। देशी नामों की तुलना में इस प्रणाली के नाम कठिन एवं अटपटे भले लगें किन्तु वे अत्यन्त वैज्ञानिक एवं प्रामाणिक प्रणाली पर आधारित हैं फलतः उनके ग्रहण करने का प्रयास होना चाहिए। किन्तु ऐसे नामों का उच्चारण कठिन है फलतः नामों का प्रामाणिक उच्चारण भी उपलब्ध होना चाहिए।

यह परम संतोष की बात है कि डॉ० जैन ने 'वनस्पति कोश' तैयार करके उपर्युक्त अभावों की पूर्ति की है। इस लघुकाय कोश में भारत में पाये जाने वाले मुख्य पौधों के देशी तथा लैटिन नाम एक साथ दिये गये हैं। लैटिन नामों के सही-सही उच्चारण के उद्देश्य से उन्हें हिन्दी में भी रूपान्तरित किया गया है।

परिशिष्ट में पर्यायवाची नामों की सूची देकर लेखक ने और भी सराहनीय कार्य किया है।

कोश की छपाई अत्यन्त सुन्दर एवं ग्राह्य है। आशा है कि सभी पुस्तकालय एवं शोध में रत वैज्ञानिक इस कोश से लाभ उठावेंगे।

हिन्दी विश्वकोश : खण्ड ७ : पंखा से प्राग तक

नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृष्ठ संख्या ५०४ मूल्य २५ रु० । प्रथम संस्करण १९६६ ।

नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित होने वाले हिन्दी विश्वकोश की श्रृंखला में ७वीं कड़ी पूरी करते हुये सम्पादक ने यह आशा व्यक्त की है कि इसी वर्ष के भीतर इस श्रृंखला की शेष ३ कड़ियाँ भी जुड जावेंगी और यह श्रृंखला पूर्ण हो जावेगी। निस्संदेह, किसी भी विश्वकोश का निर्माण कार्य गुरुतर कार्य होता है किन्तु हिन्दी में विश्वकोश का निर्माण तो और भी कठिन कार्य है क्योंकि देश, काल को ध्यान में रखते हुये शीर्षकों का चुनाव, अधिकारीजनों से उन पर प्रामाणिक सामग्री प्राप्त करना तथा उसे पुस्तकाकार करना—ये एक से एक बढ़कर पद-श्रेणियाँ हैं। किन्तु हर्ष का विषय है कि सभा सुयोग्य सम्पादकों के निरीक्षण में इस कार्य को सरलता से सम्पादित कर सकी है।

प्रस्तुत खंड में २०५ विद्वानों द्वारा लिखित ५९३ लेख हैं जो साहित्य, इतिहास, भूगोल, विज्ञान एवं अन्य विविध विषयों से सम्बद्ध हैं। वैज्ञानिक विषयों से सम्बद्ध लेखों को सजीव बनाने के लिये विविध सादे एवं रंगीन चित्रों की योजना की गई है जो कोश के उच्चस्तर के अनुरूप ही हैं। वैज्ञानिक लेखों को हिन्दी के माध्यम से व्यक्त करना, उनकी छपाई, विविध संकेतों के प्रयोग आदि अनेक कठिनाइयाँ हैं किन्तु कोश में इन सब पर सुयोजित ढंग से विजय प्राप्त की गई है। हिन्दी का टाइप ही कुछ विचित्र होता है अन्यथा अनेक सारणियाँ और घने रूप में छापी जातीं तो कम जगह घिरती और कोश की रुचिरता में वृद्धि होती।

कोश की सामग्री अत्यन्त प्रामाणिक है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। केवल एक ही अभाव खटकता है और वह है पृष्ठ संख्या सम्बन्धी। अच्छा होता यदि सभी खण्डों की पृष्ठ संख्याएँ निरन्तर अग्रसर होती रहतीं। भिन्न-भिन्न खण्डों की पृष्ठ संख्यायें पृथक्-पृथक् न होतीं। आशा है इस सुझाव पर सम्पादक मंडल ध्यान देगा।

वैज्ञानिक कृषक

पिछले बीस वर्षों से हमारे देश में वैज्ञानिक कृषि समर्थन एवं उसकी पुष्टि की जाती रही है किन्तु उसकी विफलता इतनी स्पष्ट रही है कि देश को भुखमरी का शिकार होना पड़ा। शायद वैज्ञानिक कृषि इस देश के लिये अनुकूल भी नहीं क्योंकि इमारतों के बनाने, सड़कें पक्की करने, बीज भंडार बनाने में ही देश का सारा श्रम लगा रहा। यदि कोई यह कहे कि बिना इस कार्य के आगे कोई भी प्रगति नहीं की जा सकती थी तो यह भी दुराग्रह होगा क्योंकि इसके लिए एक पंचवर्षीय योजना काफी थी। ऐसी तीन योजनाओं के अन्त में पता चला कि देश के अन्नोत्पादन का स्तर ऊपर उठने के बजाय नीचे गिर गया है। क्या यह वैज्ञानिक कृषि का दोष है ? या यह कि वैज्ञानिक कृषि को ठीक से कार्यान्वित न करके उसे नारे का रूप दे दिया गया। चिल्लाने से अन्नोत्पादन नहीं बढ़ सकता। कृषि विभाग में नौकरी करने वालों की वृद्धि से भी अन्नोत्पादन नहीं बढ़ेगा। उसके बढ़ाने का एकमात्र उपाय है कृषकों को वैज्ञानिक बनाना।

इससे हमारा तात्पर्य यह नहीं है कि कृषक स्कूल, कालेज या विश्वविद्यालय में क्रम से पढ़कर डाक्टरेट की उपाधि ग्रहण करें। प्रत्येक किसान को अपनी भूमि पर ही सारे प्रयोग करने होंगे, उनके परिणामों की उसे उतनी ही चिन्ता करनी होगी जितनी कि शोध-छात्र को होती है। वह कृषि की उन्नति के लिये तन-मन-धन से जुट सकेगा, तभी वास्तविक लाभ होगा। बिना ऐसा किये भारत देश को भूखों मरना होगा। "जय किसान" न कहकर "जय वैज्ञानिक किसान" का नारा अपनाना होगा।

●●